## स्वागत-गान

(रचयिता—कल्याणकुमार जैन 'शशि')

१

मलयानिल कोकिल कलिकाएँ
करतीं अमर प्रेम-प्रचाल।
नवजीवनके मुक्त-कण्ठमें
डाल डाल सुन्दर वरमाल॥

२

आज चिरंतन दिव्य ज्योतिसे
दीख रहा है विश्व विशाल।
नव किरणोंसे आच्छादित हो,
तरु-लतिकाएँ हुईं निहाल॥

३

'अनेकान्त' नूतन साकृति बन,
पाकर कण-कणमें विस्तार।
अखिल जगतमें पुनःप्रवाहित—
हो, बनकर पुनीत रस-धार॥

४

सुख-सौभाग्य-कीर्ति-यशका हो—
प्राप्त तुम्हे नूतन-वरदान।
इसी हेतु आनन्दित हो कर
रहे तुम्हारा स्वागत-गान॥

## वीर-निर्वाण

(रचयिता—कल्याणकुमार जैन 'शशि')

१

फिर सरसता जग उठी है
प्राणमें संचरित होकर।
मानसरमें भर रहा है
कौन यह जीवन निरन्तर?

२

फिर नया-सा हो रहा है
रोम रोम प्रदीप्त-प्रमुदित।
बज उठेगी उल्लसित हो
आज हृत्तंत्री कदाचित॥

३

लग रहा है और कुछ ही—
आज मुझको दिव्य जीवन।
आज मानो लहलहाया—
हो शतोमुख विश्व-उपवन॥

४

प्राणके प्रत्येक कणमें—
आप्त-व्याप्त नवीनता है।
मग्न हो, जय-केतु बन, फह-
रा रही स्वाधीनता है॥

५

हाँ, इसलिये आनन्द है
सर्वत्र खग-नर-देव-घर।
आज पाया है महाप्रभु-
'वीर' ने निर्वाण गुरुतर॥
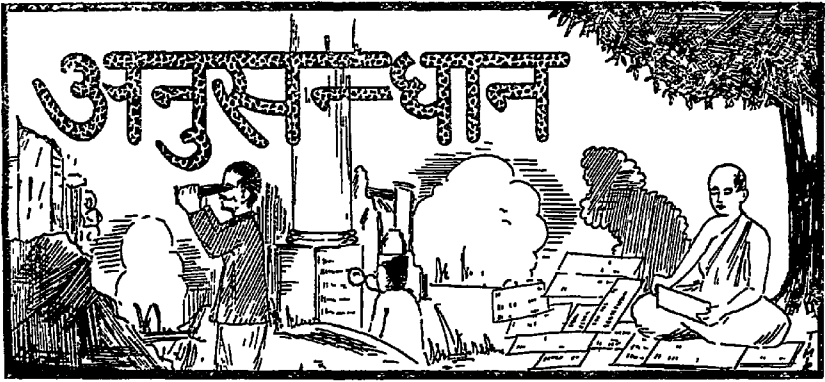
# श्रीकुन्दकुन्द और यतिवृषभमें पूर्ववर्ती कौन ?

(सम्पादकीय)

जैन समाजके प्राचीन प्रधान ग्रंथकारों-मे श्री 'कुन्दकुन्द' और 'यतिवृषभ' नामक आचार्यों के नाम खास तौरसे उल्लेखनीय है। कुन्दकुन्दके रचे हुए प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार, नियमसार, द्वादशानुप्रेक्षा और दर्शन-प्राभृतादि प्राकृत ग्रथ प्रसिद्ध है, जिनमें से कितने ही तो संसारको अपने गुणोंसे बहुत ही मुग्ध कर रहे है। यतिवृषभके ग्रथ अभी तक बहुत ही कम प्रकाश मे आए हैं, फिर भी उनमे मुख्यतया तीन प्राकृत ग्रथोंका पता चलता है—एक तो गुणधराचार्य के 'कसायपाहुड' की चूर्णि है, जिसकी सूत्रसंख्या छह हजार श्लोक-परिमाण है और जिसे साथमे लेकर ही वीरसेन-जिनसेनाचार्योंने उक्त पाहुड पर 'जयधवला' नामकी विशाल टीका लिखी है, दूसरा ग्रंथ 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' है, जिसकी सख्या आठ हजार श्लोक-परिमाण है और जिसका प्रकाशन भी जैन-सिद्धान्त-भास्करमे शुरु होगया है; तीसरा ग्रथ है 'करणस्वरूप', जिसका उल्लेख त्रिलोकप्रज्ञप्तिके अन्तके निम्न वाक्यमे पाया जाता है और उसपरसे जिसका परिमाण भी दो हजार श्लोक-जितना जान पडता है, क्योंकि इस परिमाणको चूर्णिसूत्रके परिमाण (६ हजार) के साथ जोड़ देनेसे ही आठ हजार श्लोकका वह परिमाण आता है जिसे त्रिलोकप्रज्ञप्तिका परिमाण बतलाया गया है—

> चुण्णिसरूवं अत्थं करण-
> सरूवपमाण होदि किं जत्तं।
> अट्ठसहस्सपमाणं
> तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥

'करणस्वरूप' ग्रथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। बहुत सम्भव है कि यह ग्रथ उन करणसूत्रों-का ही समूह हो जो गणितसूत्र कहलाते है और जिनका कितना ही उल्लेख त्रिलोकप्रज्ञप्ति, गोम्मट-सार, त्रिलोकसार और धवला जैसे ग्रथो मे पाया जाता है। अस्तु।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनों आचार्योंमें पूर्ववर्ती कौन है और उत्तरवर्ती कौन ?

इन्द्रनन्दीने अपने 'श्रुतावतार' में, 'षट्खण्डा-गम' सिद्धान्तकी उत्पत्तिका वर्णन देकर, द्वितीय सिद्धान्तग्रंथ 'कषायप्राभृत' की उत्पत्तिको बतलाते हुए लिखा है कि—गुणधराचार्य ने इस ग्रंथकी मूल-गाथाओ तथा विवरण-गाथाओंको रचकर उन्हें नागहस्ति और आर्यमक्षु नामके मुनियोंको व्याख्या करके बतला दिया था। उन दोनों मुनियोंके पाससे यतिवृषभने उक्त सूत्रगाथाओका अध्ययन करके

उनके ऊपर वृत्तिरूपसे छह हज़ार श्लोक-प्रमाण चूर्णिसूत्रोंकी रचना की। उन चूर्णिसूत्रोंको पढ़कर उच्चारणाचार्यने उच्चारणसूत्र रचे, जिनकी संख्या १२हज़ार श्लोकप्रमाण है। सत्तेपतः गाथा-सूत्रों, चूर्णिसूत्रों और उच्चारणसूत्रोंमे गुणधर, यतिवृषभ एवं उच्चारणाचार्योंके द्वारा 'कषाय-प्राभृत' उपसंहृत हुआ है। इस तरह दोनों सिद्धान्त-ग्रंथ द्रव्यभावरूपसे पुस्तकारूढ़ हुए गुरु-परिपाटीसे कोंडकुन्दनगरमे 'पद्मनन्दी' मुनिको प्राप्त हुए और उनके द्वारा भले प्रकार जाने तथा समझे गये। पद्मनन्दीने—जो कुन्दकुन्दका ही पहला दीक्षानाम है—षट्खण्डागमके प्रथम तीन खण्डो-पर 'परिकर्म' नामके एक ग्रंथकी रचना की, जिसका परिमाण १२ हज़ार श्लोक-जितना है।' इस कथन के पिछले तीन पद्य इस प्रकार हैं:—

गाथाचूर्ण्युच्चारणासूत्रैरुपसंहृतं कषायाख्य-
प्राभृतमेवं गुणधरयतिवृषभोच्चारणाचार्यैः ॥
एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्तकगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धान्तः कोण्डकुन्दपुरे॥
श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपिद्वादशसहस्रपरिमाणः।
ग्रन्थपरिकर्मकर्ता षट्खण्डा-ऽऽद्यत्रिखण्डस्य॥*

—नं० १५९, १६०, १६१

इन्द्रनन्दीके इस कथनके आधारपर अबतक यह समझा और माना जाता रहा है कि कुन्द-कुन्दाचार्य यतिवृषभाचार्यके बाद हुए है। विबुध-श्रीधरने, दूसरी कुछ बातोंमें मत भेद रखते हुए भी, अपने 'श्रुतावतार' प्रकरण × के निम्न वाक्यों-द्वारा भविष्य-कथनके रूपमें इसी बातको पुष्ट किया है:—

"ज्ञानप्रवादपूर्वस्य नामत्रयोदशमो-वस्तुकस्तदीयतृतीयप्राभृतवेत्तागुणधरनामग-णी मुनिर्भविष्यति। सोऽपि नागहस्तिमुनेः पुरतस्तेषांसूत्राणामर्थान्प्रतिपादयिष्यति। तयो गुणधरनागहस्तिनामभट्टारकयोरुपकंठे पठि-त्वा तानि सूत्राणि यतिनायकाभिधो मुनिस्ते-षां गाथासूत्राणां वृत्तिरूपेण षट्सहस्र-प्रमाण-'चूर्णिशास्त्रं' करिष्यति, तेषां चूर्णि-शास्त्राणां समुद्धरणानामामुनिर्द्वादशसहस्रप्र-मितां तट्टीकांरचयिष्यंति निजनामालंकृतांइति सूरिपरंपरया द्विविधसिद्धान्तोव्रजन् मुनीन्द्र-कुन्दकुन्दाचार्यसमीपे सिद्धान्तं ज्ञात्वा कुन्द-कीर्तिनामा षट्खंडानां मध्ये प्रथमत्रिखंडानां द्वादशसहस्रप्रमितं 'परिकर्म' नामशास्त्रं करिष्यति।"

इन्हीं सब बातोंके आधारपर बनी तथा पुष्ट हुई मान्यताके फलस्वरूप, सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीने, 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' का परिचय देते हुए, जब उसमें प्रवचनसारकी 'एस सुरासुरमणुसिंद वंदियं'

---

* देखो, 'माणिकचंदग्रंथमाला' में प्रकाशित 'तत्त्वानुशासनादिसंग्रह' के अन्तर्गत 'श्रुतावतार'।

× यह प्रकरण 'पंचाधिकार' नामक शास्त्रका चौथा परिच्छेद है और उक्त माणिकचन्द्रग्रंथमालाके २१ वे ग्रंथसंग्रहमें प्रकाशित हुआ है।

नामकी पहली मंगलाचरण-गाथाको देखा तो कुछ अहतियातके साथ यह लिख दिया कि "यदि त्रिलोक-प्रज्ञप्तिके कर्त्ता यतिवृषभ ही हैं (जो कि है ही) तो यह मानना पड़ेगा कि प्रवचनसारमे यह गाथा इसी ग्रंथपरसे ली गई है ; क्योंकि इन्द्रनन्दी के कथनानुसार कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे पीछे हुए हैं—यतिवृषभके बाद ही उन्होंने सिद्धान्त ग्रंथोंकी टीका लिखी है।" साथ ही दवे शब्दोंमे यह लिख कर कुछ पुष्टि भी करदी कि "त्रिलोकप्रज्ञप्तिमे यह गाथा उद्धृत नहीं जान पड़ती, क्योंकि वहाँ यह तीर्थंकरोंके क्रमागत स्तवन मे कही गई है" * । परन्तु प्रचलित मान्यताके प्रभाववश उन्हे यह खयाल नहीं आया कि प्रवचनसारमे भी यह गाथा कुछ उद्धृत नहीं जान पड़ती । वहाँ तो वह एक ऐसे मौलिक ग्रंथकी आद्यिम मंगलाचरण-गाथा है जिसके कर्ता महान् आचार्य श्रीकुन्दकुन्दके विषयमें यह कल्पना भी नहीं की जासकती कि उन्होंने अपने ऐसे महत्वशाली ग्रंथके लिये मंगलाचरणकी गाथा भी कहींसे उठाकर अथवा उधार लेकर रक्खी होगी—उसे वे स्वयं न बना-सके होंगे। दूसरे, मंगलाचरणकी दूसरी गाथा **'सेसे पुण तित्थयरे०'** के साथ वह इतनी अधिक सुसम्बद्ध है कि उसके विना 'सेसे पुण तित्थयरे' वाक्यका कोई भी स्पष्ट अर्थ नहीं बैठता। जो महानुभाव **'सेसेपुणतित्थयरे'** जैसी चार महत्वपूर्ण गाथाओंकी रचना अपने मंगलाचरणके लिये कर सकता हो उसके लिये **'एससुरासुर'** नामकी गाथाकी रचना कौन बड़ी बात है ? तीसरे, पुरातनाचार्य श्रीअपराजितसूरिने 'भगवती आराधना' की टीकाके शुरूमे इस गाथाको तीर्थंकरोंमें भी सबसे पहले अन्तिम तीर्थंकर श्री-वर्द्धमानको नमस्कार करनेके उदाहरणस्वरूप अथवा आदिय मंगलाचरणके नमूनेके तौरपर दिया है। साथमे, 'सेसे पुणतित्थयरे' वाली दूसरी गाथा भी एक ही विद्वानकी कृतिरूपसे दी है, जिससे इस गाथाके कुन्दकुन्द-कृत होने मे सन्देह नहीं रहता।

प्रत्युत इसके, त्रिलोकप्रज्ञप्ति मे यह गाथा इतनी अधिक सुसम्बद्ध और अनिवार्य मालूम नहीं होती—वहाँपर 'सिद्धलोकप्रज्ञप्ति' नामक अन्तिम महाधिकार के चरमाधिकार 'भावना' को समाप्त करके और **'एवं भावना सम्मत्ता'** तक लिखकर कुन्थुजिनेन्द्र से वर्द्धमान पर्यंत आठ तीर्थंकरोंकी स्तुति आठ गाथाओंमे दी है —उन्ही मे उक्त गाथा भी शामिल है। ये सब गाथाएँ वहाँ पर कोई विशेष आवश्यक मालूम नहीं होतीं–खासकर ऐसी हालतमे जबकि एक पद्यके बाद ही, जिसकी स्थिति भी संदिग्ध है, २४ तीर्थंकरों को अन्तमंगलके तौरपर नमस्कार किया गया है; वहाँ प्राकृत गाथाका 'एस' पद भी कुछ खटकता हुआ जान पड़ता है और ये सब गाथाएँ 'उद्धृत' भी हो सकती हैं। त्रिलोकप्रज्ञप्तिके इसी ९वें अधिकारमे तथा अन्यत्र भी कुन्दकुन्दके प्रवचन-सारादि ग्रंथोंकी और भी कितनी ही गाथाएँ ज्यों-की त्यों अथवा कुछ परिवर्तन या पाठभेदके साथ उद्धृत पाई जाती हैं, जिनके दो तीन नमूने इस प्रकार हैं:—

---

* देखो, जैनहितैषी भाग १३, अंक १२, पृष्ठ ५३०-३१ ।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेको।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा॥
—प्रवचनसार, २-६६

'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' के उक्त अन्तिम अधिकारमें यह गाथा ज्यों की त्यों नं० ३५ पर दी है। और २५ वें नम्बर पर इसी गाथाके पहले तोन चरण देकर चौथा चरण 'सो मुचइ अट्ठकम्मेहिं' बना दिया है। इस तरह एकही अधिकार में इस गाथा की पुनरावृत्ति कीगई है।

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं।
धुवमचलमणालंबं मण्णे हं अप्पगं सुद्धं॥
—प्रवचनसार, २-१००

यह गाथा, जो पूर्वोक्त गाथाके अनन्तर की सुसम्बद्ध गाथा है, त्रिलोकप्रज्ञप्तिके उक्त अधिकारमे पहले नं० ३४ पर दी है इसमें सिर्फ "मण्णेहं अप्पगं" के स्थानपर 'भावेयं अप्पयं' पाठ बना दिया गया है।

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥
—प्रवचनसार २-१०२

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पयं विसुद्धप्पा।
अणुवममपारदिसयं सोक्खं पावेदि सो जीवो॥
—त्रिलोकप्रज्ञप्ति ६-३६

अहमिको खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णंतपरमाणुमित्तंपि॥
—समयसार, ४३

यह गाथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिके उक्त ६वें अधिकारमे नं० २७ पर दी हुई है, सिर्फ 'णाणमइओ-सदा' के स्थानपर णाणप्पगासगा' पाठ दिया है, जिसमे अर्थभेद प्रायः कुछ भी नहीं है।

खंधं सयलसमत्थं तस्स दुअद्धं भणंति देसो त्ति
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेवअविभागी॥
एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्कारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणु तं वियाणेहि॥
—पंचास्तिकाय ७५, ८१,

कुन्दकुन्दकी ये दोनों गाथाएँ त्रिलोकप्रज्ञप्ति के प्रथमाधिकारमे क्रमशः नं० ६५ और ६७ पर प्रायः ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं, दोनों का सिर्फ चौथा चरण बदला हुआ है—अर्थात् पहलीका चौथा चरण 'अविभागी होदि परमाणू' और दूसरीका 'तंपरमाणु भणंति वुधा' दिया है, जिससे कोई अर्थभेद नहीं होता और जिसे साधारण पाठभेद भी कह सकते हैं।

ऐसी हालतमें यह नहीं कहा जासकता कि त्रिलोकप्रज्ञप्तिपर से कोई भी वाक्य कुन्दकुन्दके किसी ग्रंथमे उद्धृत किया गया है। कुन्दकुन्द और यतिवृषभ की रचनामें ही बहुत बड़ा अन्तर है—कुन्दकुन्दकी रचनामे जो प्रौढ़ता, गम्भीरता और सूत्ररूपता आमतौरपर पाई जाती है वह यतिवृषभकी रचनाओं में प्रायः देखनेको नहीं मिलती। त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें तो दूसरे प्राचीन ग्रंथवाक्योंका कितना ही संग्रह जान पड़ता है। और इसलिये त्रिलोकप्रज्ञप्तिके किसी वाक्यको कुन्दकुन्दके ग्रथमें देखकर यह अनुमान लगाना ठीक नहीं है कि

कुन्दकुन्द यतिवृपभके वाद हुए है।

कुन्दकुन्दको यतिवृपभके वादका विद्वान् वतलानेवाला यदि कोई भी प्रमाण है तो वह मुख्यतया इन्द्रनन्दि-श्रुतावतारका उक्त उल्लेख है। विवुध श्रीधरका कथन उसको पुष्ट जरूर करता है परन्तु वह स्वयं अन्य प्रकारसे वहुत कुछ आपत्तिके योग्य है। उसमे प्रथमतो कपायप्राभृतको ज्ञानप्रवाद पूर्वकी त्रयोदशम वस्तुके अन्तर्गत किया है, जबकि स्वयं श्री गुणधराचार्यने "**पुव्वम्मि पंचमम्मि दु दसमे वत्थुम्मि पाहुडे तदिये**" इस सूत्रगाथा-वाक्यके द्वारा उसे दशमवस्तु का तृतीय प्राभृत वतलाया है। दूसरे, यतिवृपभको गुणधरा-चार्यका साक्षात् शिष्य वतला दिया है, जबकि गुणधर-सूत्रगाथाओकी वृहट्टीका 'जयधवला' नागहस्ति तकको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य नही वतलाती और यतिवृपभ अपनी चूर्णिमे भी कहीं अपनेको गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य सूचित नहीं करते, प्रत्युत इसके सूत्रगाथाओंपर होनेवाले पूर्ववर्ती आचार्योंके अर्थभेद अथवा मतभेदको प्रकट करते है, जिससे वे गुणधराचार्यसे वहुत-कुछ वादके ग्रथकार मालूम होते हैं; और तीसरे चूर्णिके टीकाकारका नाम 'समुद्धरण' और उस टीकाका नाम समुद्धरण-टीका घोपित किया है, जवकि 'जयधवला' मे पचासो जगह उक्त टीका-परसे वाक्योंको उद्धृत करते हुए वीरसेन-जिनसेना-चार्योंने उसे उच्चारणाचार्यकी कृति, टीकाका नाम 'उच्चारणावृत्ति' और उसके वाक्योंको 'उच्चारणा-सूत्र' के नामसे उल्लेखित किया है। ऐसी मोटी मोटी भूलोके कारण विवुध श्रीधरकी इस वात पर भी सहसा विश्वास नहीं होता कि 'परिकर्म' नाम की टीका कुन्दकुन्दकी कृति न होकर उनके शिष्य कुन्दकीर्ति-द्वारा लिखी गई है—कुन्दकीर्तिका नाम कुन्दकुन्दके शिष्य रूपमे अन्यत्र कहींसे भी उपलब्ध नहीं होता। जान पड़ता है विवुध श्रीधरने योंही इधर-उधरसे सुन-सुनाकर कुछ बातें लिखदी है—उसे किसी अच्छे प्रामाणिक पुरुषसे ठीक परिचय प्राप्त नहीं हुआ। और इसलिये उसके उल्लेखपर कोई विशेप जोर नही दिया जासकता और न उसे प्रमाणकोटिमे ही रक्खा जासकता है।

अब देखना है, इन्द्रनन्दीके श्रुतावतारका वह उल्लेख कहाँ तक ठीक है जो प्रचलित मान्यताका मुख्य आधार बना हुआ है। कुछ अर्से पहले मैं समझता था कि वह ठीक ही होगा, परन्तु उसकी विशेप जाँचके लिये मेरा प्रयत्न वरावर जारी रहा है। हालमे विशेष साहित्यके अध्ययन-द्वारा मुझे यह निश्चित होगया है कि इन्द्रनन्दीने अपने पद्य न० १६० मे 'द्विविधसिद्धान्त' के उल्लेख-द्वारा यदि कपायप्राभृतको उसकी टीकाओं-सहित कुन्द-कुन्दतक पहुँचाया है तो वह जरूर ही गलत है और किसी गलत सूचना अथवा ग़लत-फ़हमीका परिणाम है। नि:सदेह, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य यतिवृ-पभसे पहले हुए है। नीचे इन्हीं सब वातोको स्पष्ट किया जाता है.—

(१) इन्द्रनन्दीने यह तो लिखा है कि गुणधर और धरसेनाचार्योंकी गुरुपरम्परा का पूर्वाऽपरक्रम उसे मालूम नहीं है, क्योंकि उनके वंश का कथन करने वाले शास्त्रो तथा मुनिजनोंका उस समय अभाव है†; परन्तु दोनों सिद्धान्तग्रन्थोंके अवतार-का जो कथन दिया है वह भी उन ग्रन्थो तथा

† गुणधर-धरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिर्न ज्ञायते तदन्वमकथकागम-मुनिजनाभावात् ॥१५०॥

उनकी टीकाओंको स्वय देखकर लिखा गया मालूम नहीं होता—और तो क्या, पिछली 'धवला' और 'जयधवला' नामकी टीकाओं तकका इन्द्रनन्दी के सामने मौजूद होना नहीं पायाजाता। इसीसे उन्हों-ने अपने 'श्रुतावतार' मे 'धवला' को 'षट्खण्डा-गम' के छहों खण्डों की टीका बतला दिया है *, जबकि वह प्रथम चार खण्डोंकी ही टीका है ! दूसरे, आर्यमंचु और नागहस्ती नामके आचार्यों को गुणधराचार्यका साक्षात् शिष्य घोषित कर दिया और लिखदिया है कि गुणधराचार्यने 'कसाय-पाहुड,की सूत्रगाथाओंको रचकर उन्हे स्वयंही उनकी व्याख्या करके आर्यमंचु और नागहस्ती को पढ़ाया था †; जबकि 'जयधवला में स्पष्ट लिखा है कि 'गुणधराचार्यकी उक्त सूत्रगाथाएँ आचार्यपरम्परा-से चली आती हुई आर्यमंचु और नागहस्तीको प्राप्त हुई थीं—गुणधराचार्यसे उन्हे उनका सीधा (direct) आदान-प्रदान नहीं हुआ था। यथा:-

> "पुणो ताओ सुत्तगाहाओ आईरिय-परंपराए आगच्छमाणाओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ"।
>
> —आराप्रति, पत्र नं० १०

यदि आर्यमंचु और नागहस्ती को गुणधराचार्य के साक्षात् शिष्य ही मान लिया जाय और साथ ही यह भी स्वीकार कर लिया जाय कि यतिवृषभाचार्य-ने उन दोनों के पाससे उक्त गाथासूत्रोंको पढ़ा था, जैसा कि इन्द्रनन्दीने "पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः" इस वाक्यके द्वारा सूचित किया है, तो यतिवृषभका समय षट्खण्डा-गमकी रचनासे पूर्वका नहीं तो समकालीन जरूर मानना पड़ेगा; क्योंकि षट्खण्डागमके वेदनाखण्ड-में आर्यमंचु और नागहस्तीके मतभेदों तकका उल्लेख है §। चूंकि यतिवृषभका अस्तित्वकाल, जैसाकि आगे स्पष्ट किया जायगा, शक सवत् ३८० (वि० सं० ५१५) के बादका पाया जाता है और कुन्दकुन्दका समय इससे बहुत पहलेका उपलब्ध होता है। ऐसी हालतमें कुन्दकुन्दके द्वारा षट्खण्डा-गमके किसीभी खण्डपर टीकाका लिखा जाना नहीं बनता। और जब टीका ही नहीं बनती तो उसके रचनाक्रमके आधार पर कुन्दकुन्दको यति-वृषभसे बादका विद्वान् क़रार देना बिल्कुल ही निरर्थक और निर्मूल है।

(२) यतिवृषभकी त्रिलोकप्रज्ञप्तिके अनेक पद्यों में 'लोकविभाग' नामके ग्रंथका स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। यथा:—

> जलसिहरे विक्खंभो जलणिहिणो जोयणा दससहस्सा।
> एवं संगाइणिए लोयविभाए विणि-द्दिट्ठं ॥ अ० ४
>
> लोयविणिच्छयगंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
> ओगाहणपरिमाणं भाणिदं किंचूण चरिमदेहसमो ॥ अ० ९

---

* इति षण्णां खण्डानां ग्रन्थसहस्रैर्द्वि-सप्तत्या॥१८१॥
प्राकृत-संस्कृतमिश्रां टीकां विलिख्य धवलाख्याम्॥१८२॥

† एवं गाथासूत्राणि पंचदशमहाधिकाराणि।
प्रविरच्य व्याचख्यौ स नागहस्त्यार्यमंचुभ्याम्॥१५४॥

§ "कम्मट्ठिदिअणियोगद्दारेहि भण्णमाणो वे उवदे-सा होंति जहण्णुक्कस्सट्ठिदीणं पमाणपरूवणा कम्मट्ठिदिपरूवणेत्ति णागहत्थिखमासमणा भणंति, अज्जमंखुखमासमणा पुण कम्मट्ठिदिसंचिदसंतकम्म-परूवणा कमट्ठिदिपरूवणेत्ति भणंति।"

—धवल सिद्धान्त, आरा-प्रति, पत्र नं० ११०९

यह 'लोकविभाग' ग्रंथ उस प्राकृत लोक विभाग ग्रंथसे भिन्न मालूम नहीं होता जिसे प्राचीन समय में सर्वनन्दी आचार्य ने लिखा था,जो कांची के राजा सिंहवर्मा के राज्यके २२ वें वर्ष—उस समय जबकि उत्तराषाढ़ नक्षत्रमे शनिश्चर, वृषराशि-में वृहस्पति, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमे चन्द्रमा था, शुक्लपक्ष था—शक संवत् ३८० मे लिखकर पाणराष्ट्र के पाटलिक ग्राम मे पूरा किया गया था और जिसका उल्लेख सिंहसूरि के उस सस्कृत 'लोकविभाग' के निम्न पद्यों मे पाया जाता है, जो कि प्राय. सर्वनन्दी के लोकविभागको सामने रखकर ही भाषा के परिवर्तनादिद्वारा ('भाषाया: परिवर्तनेन') रचागया है:—

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे ।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे,
शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनि सर्वनन्दी॥३॥
संवत्सरे तु द्वाविंशे कांचीशसिंहवर्मणः ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये॥४॥

त्रिलोकप्रज्ञप्ति की उक्त दोनों गाथाओंमे जिन विशेषवर्णनोंका उल्लेख 'लोकविभाग' आदि ग्रंथोंके आधारपर किया गया है वे सब संस्कृत लोक-विभाग मे भी पाये जाते हैं*, जोकि विक्रमकी ११वीं शताब्दीके बादका बना हुआ है; क्योंकि उसमें त्रिलोकसारसे भी कुछ गाथाएँ, त्रिलोकसारका नाम साथमें देते हुए भी, 'उक्तंच' रूपसे उद्धृत की गई है। और इसलिये यह बात और भी स्पष्ट होजाती है कि संस्कृतका उपलब्ध लोकविभाग उक्त प्राकृत लोकविभागको सामने रखकर ही लिखा गया है।

इस सम्बन्धमे एक बात और भी प्रकट करदेने-की है और वह यह कि संस्कृत लोकविभागमे उक्त दोनों पद्यों के बाद एक पद्य निम्न प्रकार दिया है—

पंचादशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेदं छंदसानुष्टुभेन च ॥५॥

इसमे ग्रंथकी संख्या १५३६ श्लोक-परिमाण बतलाई है, जबकि उपलब्ध संस्कृत लोकविभागमे वह २०३० के करीब जान पड़ती है। मालूम होता है यह १५३६ की श्लोकसंख्या उसी पुराने प्राकृत लोकविभाग की है—यहाँ उसके संख्यासूचक पद्य-का भी अनुवाद करके रखदिया है। इस संस्कृत-ग्रंथमे जो ५०० श्लोक जितना पाठ अधिक है वह प्राय. उन 'उक्तच' पद्योंका परिमाण है जो इस ग्रथमे दूसरे ग्रंथोंसे उद्धृत करके रक्खे गये हैं—१०० से अधिक गाथाएँ तो त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी ही है, २०० के करीब श्लोक आदिपुराणसे उठाकर रक्खे गये है और शेष ऊपरके पद्य- त्रिलोकसार तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि ग्रथोंसे लिये गये हैं। इस तरह इस ग्रथमें भाषाके परिवर्तन और दूसरे ग्रंथों से कुछ पद्योंके 'उक्तंच' रूपसे उद्धरणके सिवाय सिंहसूरिकी प्राय और कुछ भी कृति मालूम नहीं होती। और इसलिये इस सारी परिस्थितिपर से यह कहनेमे कोई संकोच नहीं होता कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति में जिसलोकविभागका उल्लेख है वह वही सर्वनन्दीका प्राकृत लोकविभाग है, जिसका उल्लेख ही नहीं किंतु

*"दशैवैषसहस्राणि मूलेऽपि पृथुर्मतः"। प्रक० २ "अंत्यकायप्रमाणात्तु किंचित्संकुचितात्मकाः" ॥प्रक० ११

अनुवादितरूप संस्कृत लोकविभागमें पाया जाता है। चूंकि उस लोकविभागका रचनाकाल शकसं० ३८० है, अतः त्रिलोकप्रज्ञप्तिके रचियता यतिवृषभ शकसं० ३८० के बाद हुए हैं, इसमें जराभी संदेह नहीं है। अब देखना यह है कि कितने बाद हुए हैं?

(३) त्रिलोकप्रज्ञप्ति में अनेक कालगणनाओंके आधारपर, चतुर्मुखनामक कल्किकी मृत्यु वीरनिर्वाण से एकहज़ार वर्ष बाद बतलाई है, उसका राज्य-काल ४२ वर्ष दिया है, उसके अत्याचार तथा मारे जानेकी घटनाओंका उल्लेख किया है और मृत्युपर उसके पुत्र अजितंजयका दो वर्षतक धर्मराज्य होना लिखा है। साथही, बादको धर्मकी क्रमशः हानि बतलाकर और किसी राजाका उल्लेख नहीं किया है*। इस घटनाचक्र परसे यह साफ मालूम होता है कि त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी रचना कल्किराजाकी मृत्युसे १०-१२ वर्षसे अधिक बादकी नहीं है। यदि अधिक बादकी होती तो ग्रंथपद्धतिको देखते हुए यह संभव नहीं था कि उसमें किसी दूसरे प्रधान राज्य अथवा राजाका उल्लेख न किया जाता। अस्तु; वीरनिर्वाण शकराजा अथवा शकसंवतसे ६०५ वर्ष ५ महीने पहले हुआ है, जिसका उल्लेख त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें भी पाया जाता है ‡। एकहज़ार वर्ष में से इस संख्या-को घटानेपर ३६४ वर्ष ७ महीने अवशिष्ट रहते हैं। यही (शकसंवत ३६५) कल्किकी मृत्युका समय है। और इसलिये त्रिलोकप्रज्ञप्तिका रचनाकाल शकसं० ४०५ के करीबका जान पड़ता है, जबकि लोकविभाग को बनेहुए २५ वर्ष के करीब होचुके थे, और यह अर्सा लोकविभागकी प्रसिद्धि तथा यतिवृषभ तक उसके पहुँचनेके लिये पर्याप्त है।

(४) कुर्ग इन्सक्रिप्शन्स (E C I) में मर्कराका एक ताम्रपत्र प्रकट हुआ है, जो कुन्दकुन्दके वंशमें होनेवाले कुछ आचार्योंके उल्लेखको लिये हुए है और जिसमें उसके लिखेजानेका समय भी शक-संवत् ३८८ दिया है। उसका प्रकृत अंश इस प्रकार है:—

---

*इस प्रकरणकी कुछ गाथाएँ इसप्रकार हैं, जोकि पालकादि राजाओंके राज्यकाल ९५८ का उल्लेख करने के बाद दीगई हैं:—

तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णामो।
सत्तरिवरिसा आऊ विगुणिय-इगिवीसरज्जत्तो ॥९९॥
आचारांगधरादो पणहत्तरिजुत्तदुसयवासेसुं।
वोलीणेसुं बद्धो पट्टो कक्कीसणरवइणो ॥ १००॥
कक्किसुदो अजिदंजय णामो रक्खंति णमदि तच्चरणे।
तं रक्खदि असुरदेओ धम्मे रज्जं करेज्जंति ॥१०४॥
तत्तो दोवे वासो सम्मं धम्मो पयट्ठदि जणाणं।
कमसो दिवसे दिवसे कालमहप्पेण हाएदे ॥१०५॥

‡ "णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरसेसु।
पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा॥"
—त्रिलोकप्रज्ञप्ति

"पणछस्सय वस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं॥"
—त्रिलोकसार

वीरनिर्वाण और शकसंवत् की विशेष जानकारीके लिये, लेखककी 'भगवान महावीर और उनका समय' नामकी पुस्तक देखनी चाहिये।

"......श्रीमान् कोंगणि-महाधिराज अविनीतनामधेयदत्तस्य देसिगणं कोण्ड-कुन्दान्वय-गुणचन्द्रभटार-शिष्यस्य अभ[य] णंदिभटार तस्य शिष्यस्य शीलभद्रभटार-शिष्यस्य जनाणंदिभटारशिष्यस्य गुणणंदि-भटार-शिष्यस्य वन्दणन्दिभटारर्गे अष्ट-अशीति-उत्तरस्य त्रयो-शतस्य सम्वत्सरस्य माघमासं......"

इस ताम्रपत्रसे स्पष्ट है कि शकसंवत् ३८८ मे जिन आचार्य वन्दनन्दीको जिनालयके लिये एक गॉव दान किया गया है वे गुणनन्दीके शिष्य थे, गुणनंदी जनानंदीके, जनानदी शीलभद्रके, शीलभद्र अभयनंदीके और अभयनंदी गुणचन्द्राचार्यके शिष्य थे। इस तरह गुणचन्द्राचार्य वन्दनंदीसे पाँच पीढ़ी पहले हुए है और वे कोण्कुन्दके वंशज थे—उनके कोई साक्षात् शिष्य नहीं थे।

अब यदि मोटे रूपसे गुणचंद्रादि छह आचार्यों का समय १५० वर्ष ही कल्पना किया जाय, जो उस समयकी आयुकायादिककी स्थितिको देखते हुए अधिक नहीं कहा जासकता, तो कुंदकुंदके वंशमे होनेवाले गुणचंद्रका समय शक सवत् २३८ (वि० सं० ३७३) के लगभग ठहरता है। और चूकि गुण-चंद्राचार्य कुंदकुंदके साक्षात् शिष्य या प्रशिष्य नहीं थे बल्कि कुन्दकुन्द के अन्वय (वंश) में हुए हैं और अन्वयके प्रतिष्ठित होने के लिये कम से कम ५० वर्षका समय मानलेना कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसी हालत में कुन्दकुन्दका पिछला समय उक्त ताम्रपत्रसे २०० वर्ष पूर्वका तो सहज ही में हो जाता है। और इसलिये कहना होगा कि कुन्दकुन्दा-चार्य यतिवृषभ से २०० वर्ष से भी अधिक पहले हुए हैं।

मर्कराके इस ताम्रपत्रसे यह बात भी स्पष्ट होजाती है कि कुन्दकुन्दके नियमसारकी एक गाथा मे * जो 'लोयविभागेसु' पद पड़ा हुआ है उसका अभिप्राय सर्वनन्दीके उक्त लोकविभाग ग्रथ-से नहीं है और न हो सकता है; बल्कि बहुवचनान्त पद होनेसे वह 'लोकविभाग' नामके किसी एक ग्रथविशेष का भी वाचक नहीं है। वह तो लोकविभा-गविषयक कथनवाले अनेक ग्रंथों अथवा प्रकरणों-के संकेतको लिये हुए जान पड़ता है और उसमे खुद कुन्दकुन्द के 'लोयपाहुड'–'संठाणपाहुड' जैसे ग्रंथ तथा दूसरे लोकानुयोग अथवा लोकालोकके विभागको लिये हुए करणानुयोग-सम्बंधी ग्रंथ भी शामिल किये जा सकते हैं। बहुवचनान्त पद-के साथ होनेसे वह उल्लेख तो सर्वार्थसिद्धिके "इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः (३-२) इस उल्लेखसे भी अधिक स्पष्ट है, जिसमे विशेष कथन के लिये 'लोकानुयोग' को देखने की प्रेरणा की गई है, जोकि किसी ग्रंथ-विशेषका नाम नहीं किन्तु लोकविषयक ग्रंथसमूहका वाचक है। और इसलिये 'लोयविभागेसु' इस पदका जो अर्थ कई शताब्दियों पीछे के टीकाकार पद्मप्रभने "लोक-विभागाभिधानपरमागमे" ऐसा एक वचनान्त किया है वह ठीक नहीं हैं। उपलब्ध लोकविभाग-

* वह गाथा इस प्रकार है:—

"चउदहभेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा। एदेसिं वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं" ॥ १७ ॥

मे, जोकि सर्वनन्दी के प्राकृत 'लोकविभाग' का ही प्राय: अनुवादितरूप है, तिर्यचोंके उन चौदह भेदों के विस्तार-कथनका कोई पता भी नहीं है, जिसका उल्लेख नियमसार की उक्त गाथा मे किया गया है। और इससे उक्त कथन अथवा स्पष्टीकरण और भी ज्यादा पुष्ट हो जाता है।

(५) कुन्दकुन्द-कृत 'बोधपाहुड' के अन्त मे एक गाथा (६१) निम्न प्रकार से पाई जाती है :—

**सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।**
**सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥**

इसमे बतलाया है कि 'जिनेन्द्रने—भगवान् महावीरने—अर्थरूपसे जो कथन किया है वह भाषासूत्रोंमे शब्दविकार को प्राप्त हुआ है—अनेक प्रकार के शब्दों मे गूथा गया है—भद्रबाहु के मुझ शिष्यने उन भाषासूत्रों परसे उसको उसी रूपमें जाना है और (जानकर इस ग्रंथ में) कथन किया है।

इससे बोधपाहुड के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहु के शिष्य मालूम होते हैं। और ये भद्रबाहु-श्रुतकेवलीसे भिन्न द्वितीय भद्रबाहु जानपड़ते है, जिन्हे प्राचीन ग्रंथकारों ने 'आचारांग' नामक प्रथम अंगके धारियों में तृतीय विद्वान् सूचित किया है, और जिनका समय जैनकालगणनाओं * के अनुसार वीर निर्वाण संवत् ६१२ अर्थात् विक्रम संवत् १४२ से पहले भले ही हो परन्तु पीछे का मालूम नहीं होता। और इसलिये कुन्दकुन्दका समय विक्रम की दूसरी और तीसरी शताब्दी तो हो सकता है परन्तु तीसरी शताब्दीसे बादका वह किसी तरह भी नहीं बनता।

यहांपर इतना और भी प्रकट करदेना उचित मालूम होता है कि 'बोधपाहुड' की उक्त गाथाके अनन्तर निम्न गाथा नं० (६२) और दी है, जिसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु का जयघोष किया गया है:—

**बारसअंगवियाणं चौदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।**
**सुयणाणिभद्दबाहू गमयगुरूभयव ओ जयऊ ॥**

इस परसे यह कहा जासकता है कि पहली गाथा (नं० ६१) मे जिन भद्रबाहु का उल्लेख है वे द्वितीय भद्रबाहु न होकर भद्रबाहु-श्रुतकेवली ही हैं और कुन्दकुन्दने अपनेको उनका जो शिष्य बतलाया है वह परम्परा शिष्यके रूप मे उल्लेख है। परन्तु ऐसा नहीं है। पहली गाथा में वर्णित भद्रबाहु श्रुतकेवली मालूम नहीं होते; क्योंकि श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमे जिन कथित श्रुतमे ऐसा कोई खास विकार उपस्थित नहीं हुआ था, जिसे उक्त गाथा मे "सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं" इन शब्दों द्वारा सूचित किया गया है—वह अविच्छिन्न चला आया था। परन्तु दूसरे भद्रबाहु के समयमें वह स्थिति नहीं रही थी—कितना ही श्रुतज्ञान लुप्त हो चुका था और जो अवशिष्ट था वह अनेक भाषासूत्रों मे परिवर्तित होगया था। इससे ६१ वीं गाथाके भद्रबाहु भद्रबाहुद्वितीय ही जान पड़ते हैं। ६२ वीं गाथा में उसी नाम से प्रसिद्ध होने वाले प्रथम भद्रबाहुका अन्त्यमंगलके तौर पर जयघोष किया गया है और उन्हें साफ तौर से 'गमकगुरु' लिखा है। इस तरह दोनों गाथाओं में दो अलग अलग भद्रबाहुओं का उल्लेख होना अधिक युक्तियुक्त और बुद्धिगम्य जान पड़ता है। अस्तु।

ऊपरके इस समग्र अनुसंधान एवं स्पष्टीकरणसे, मैं समझता हूँ, विद्वानोंको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहेगा कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे पूर्ववर्ती ही नहीं, किन्तु कई शताब्दी पहलेके विद्वान् हैं। जिन्हे कुछ आपत्ति हो वे सप्रमाण लिखनेकी कृपा करें, जिससे यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जाय।

वीरसेवामन्दिर, सरसावा, ता० ३-८-१९३८

---

* जैनकालगणनाओंका विशेष जाननेके लिये देखो, 'स्वामी समन्तभद्र' (इतिहास) का 'समय-निर्णय' प्रकरण तथा 'भगवान् महावीर और उनका समय' नामक पुस्तक पृष्ठ ३१ से।

# आत्मा का बोध

( ले०—श्री यशपाल बी० ए०, एल० एल० बी०

कुण्डलपुरके यशस्वी राजा सिद्धार्थकी मृत्युके कई वर्ष बादकी बात है। युवराज वर्द्धमान गृहस्थ-आश्रम पारकर राज-पाटको छोड़ वनमें चलेगये थे और कुण्डलपुरके सिंहासनपर उनका ज्येष्ठ भ्राता नंदिवर्द्धन आसीन होगया था। युवराज के नगर छोड़देनेपर अभी चारोंओर अशान्ति फैली हुई थी।

उन्हीं दिनों कनखल तापसाश्रममें बड़ा आतंक छागया। वर्षोंसे निवास करनेवाले तपस्वी आश्रम छोड़-छोड़कर अन्यत्र बसने जाने लगे। भला कौन उस आश्रमके समीप रहनेवाले विषधरकी मात्र एक दृष्टि से भस्म होजाना चाहता? तपस्वी सामान उठाकर चलते जाते थे और चर्चा करते जाते थे।

कोई कहता—भैया, जंगलोंमें रहते-रहते ही मेरी उमर बीती है; लेकिन ऐसा अजगर मैंने कभी नहीं देखा।

दूसरा कहता—हाय, साँप है कि आफत है। जिसकी ओर वह एकबार दृष्टि डालदेता है वह वहीं भस्म होजाता है। क्या मजाल कि एक साँस भी तो लेले।

तीसरा कहता—सच कहता हूं, मेरी आँखों देखी बात है। वहाँ (उँगली से संकेत करके) वह तपस्वी बैठता था न? बिचारा छिनभरमें भस्म होगया। उस भुजङ्गके आगे किसीकी नहीं बसियाती।

और पगडण्डीके सहारे विलाप करती हुई स्त्री मृत-प्राय होचली थी। उसका चार-पाँच बरसका अबोध बालक उसकी छातीपर चढ़ा उसके रूखे स्तनका पान कर रहा था और दूध न पीकर अनायासही चीख मारकर रो उठता था। स्त्री बेसुध-सी पड़ी थी। रो रही है, बिलख रही है,

इसका भी उसे ध्यान नहीं था। अचेतनावस्थामे ही वह देखरही थी कि कैसे वह जरा-सी देरमें सधवा से विधवा बनगई। उसी अजगरने तो उसके पतिको राख कर दिया। बेचारे वे लोग आश्रम से दूर अपनी छोटी-सी कुटियामे आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे थे, लेकिन अभागेसे वह सुख न देखा गया।

असल बात यह थी कि उस तापसाश्रमके पास एक सर्प इनदिनों आ बसा था। उसका विष इतना तीव्र था कि जिसकी ओर वह एकबार देख भी देता, वही जलकर राख होजाता। आश्रमके कई तपस्वी उसके शिकार बन गए। जो बचे उन्होंने उचित समझा कि आश्रम छोडदे और किसी दूसरे स्थानपर जा बसें। वे आश्रम छोड़-छोड़कर जाने लगे और उस रास्तेसे पथिकोंने भी आना-जाना छोड़ दिया। थोड़े दिनोंमे ही वहाँपर भयकरता व्यापने लगी।

× × ×

संध्या होने को थी। वर्द्धमान बनमे चक्कर लगाते लगाते उसी मार्गपर आगए जिसपर कुछ आगे चलकर चंडकोसिया (सर्पका नाम था) की विवर थी। लोगोंने उन्हे उस सापका विस्तृत हाल सुनाया और आग्रह किया कि वह उस मार्गपर आगे न बढ़ें; लेकिन वर्द्धमानने एक न सुनी। वह उसी मार्गपर चलते गए, चलते गए। उन्होंने उस सर्पको बोध देनेका विचार करलिया था। इसीसे वह अपने विचारपर दृढ़ रहे, विचलित न हुए।

साँपकी विवर आगई और वर्द्धमान उसीके ऊपर ध्यानावस्थ होगए।

लोग डरके मारे दूर हट गए। किसीको साहस न हुआ कि वहाँ पर ठहरकर अपने इष्ट-देवकी उस विष-धरसे रक्षा करता; लेकिन वर्द्धमान तनिक भी भयभीत न हुए और शान्ति-पूर्वक ध्यानमे लगे ही रहे।

कुछ देरके बाद सर्प अपने बिलसे निकला, और अपनी विवर पर एक आदमीको बैठा देख-कर क्रोधसे लाल हो उठा। उसने कई बार अपनी जीभ मुँहसे भीतर-बाहर की और विषभरी आँखोंसे उस मूर्ति-वत् बैठे व्यक्ति की ओर देखा; लेकिन उस असाधारण मानवका कुछ भी न बिगड़ा।

सर्पने देखा उसकी वह दृष्टि जिसके आगे कभी कोई भस्म होनेसे नहीं बचा, उस आदमीपर अपना प्रभाव डालनेमे असमर्थ प्रमाणित हुई है तो उसका क्रोध और बढ़गया। आँखोसे चिनगारियाँ बरसने लगीं और उसने कई बार अपना फन धरतीमे मारा, जैसे उसके भीतर भरा गुस्सा उससे सहा नहीं जारहा हैं।

वह आगे बढ़ा और ज़ोरसे उसने वर्द्धमानके पैर पर अपना मुँह मार दिया। क्षणभर रुका, मानो देखना चाहता था कि उसका शिकार अब भस्म हुआ, अब भस्म हुआ। लेकिन वर्द्धमान ज्यो के त्यों ध्यानमे लगे रहे जैसे सर्पकी शक्ति और कोपका उन्हे लेशमात्र भी बोध नहीं है।

सर्प अपनी असमर्थतापर खीझ उठा। उसने झुंझलाकर कई बार वर्द्धमानके पैर पर मुँह मारे; लेकिन ज़रा-सा रुधिर निकालनेके अतिरिक्त वह उन्हें कोई कष्ट न पहुंचा सका।

इतने मे वर्द्धमान की समाधि टूटी। उन्होने देखा सामने एक सर्प क्रोधसे लाल अपनी विवशता पर खीजता हुआ खड़ा है।

उन्होने उसे संकेत कर कहा—क्रोधित क्यों होते हो, ओ सर्पदेव ? आओ, लो काट लो न ?

चंडकोसिया चुप! वह क्या कहे ? क्या यह उसकी पराजय नहीं है? उसने एक निरपराधी व्यक्ति को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया और वही व्यक्ति शान्तिपूर्वक उसके साथ भाई-चारे का व्यवहार कर रहा है। जरा भी रोप उसे नही है।

वर्द्धमानने फिर कहा—ओ, नागराज! किस द्विविधा मे हो ? लो, मै तुम्हारे सामने हूँ। बचने का प्रयत्न भी नहीं कर रहा हूँ। जहाँ चाहो काट सकते हो।

चडकोसिया धरती फटजाय तो उसमे समा जाय। वह आज कितना क्षुद्र है !? उसकी शक्ति उस वली, वज्रऋषभ नाराच संहननके धारकके सामने कितनी सीमित है ?

वर्द्धमान ने कुछ ठहर कर कहा—भैया तुम क्या सोच रहे हो ? मै तैयार हूँ। तुम मुँह मार सकते हो। एक नहीं, जितने चाहो।

चडकोसिया ने लज्जा से शिर झुका लिया। बोला, "भगवन्, मुझे क्षमा करो। मैं अपराधी हूँ।..."

वर्द्धमानने बीचमे ही रोककर कहा, "है—है, ऐसा न कहो, नागदेव! तुम शक्तिमान हो! तुमने अगणित व्यक्तियोंको अपने तेज-बलसे भस्म करदिया है।"

चडकोसिया अब क्या करे ? क्या मर जाए ? उसने कहा, "भगवान् मुझे, दण्ड दीजिये। मै क्षमा करने योग्य नहीं हूं।"

और वह वर्द्धमानके चरनोंमें सिर डालकर रोने लगा।

वर्द्धमानने उसे उठाया। बोले, "बन्धु, यह दीनता कैसी? उठो सीखो कि भविष्यमे कभी किसीको कष्ट न दोगे।"

चडकोसिया ज्यों का त्यों पड़ा रहा।

वर्द्धमानने कहा, "उठो, उठो, अपने आत्म-स्वरूपको पहचानो, मनमे दया रक्खो और मनसे वचनसे तथा कर्मसे जहाँतक होसके कभी किसी को दुख मत पहुचाओ"।

चडकोसिया को जातिस्मरण हो आया उसने वर्द्धमानकी वाणीसे तृप्त होकर कहा, "भगवन् .. "

और सिर झुका-झुकाकर उसने अनेकों वार वर्द्धमानके सदुपदेशके प्रति कृतज्ञता प्रगट की; जैसे प्रदर्शित करना चाहता हो कि हे भगवान्, तुमने मुझे आत्माका बोध कराया। मैं तो मूर्ख था, निरा अज्ञानी।

वर्द्धमानने अशीर्वाद दिया और वह अपनी विवरमे चला गया।

उसदिनसे फिर कभी किसीने चडकोसिया को हिंसक नहीं पाया। विवरसे निकलता था और मनुष्योंके साथ भाई-जैसा व्यवहार करता था।

थोड़े ही दिनोंमे उस उजड़े स्थानपर फिर तपस्वी आ बसे और तपस्या करने लगे*।

---

* इस कहानी की मूल कथावस्तु श्वेताम्बर-ग्रन्थाश्रित है, परन्तु उसे भी यहाँ कुछ परिवर्तित करके रक्खा गया है।

—सम्पादक

# उपरम्भा

[लेखक—श्री भगवत्स्वरूप जैन 'भगवत्']

मर्यादा-पुरुषोत्तम-रामकी—प्राणेश्वरी—सीताका रावणने हरण किया। इस कृत्यने संसारकी नज़रों में उसे कितना गिराया, यह आप अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन क्या आप यह भी जानते हैं कि वह कितना महान था? उसकी जीवन-पुस्तक में केवल एकही पृष्ठ है।...जो दूषित है। वरन् सारी पुस्तक प्यारकी वस्तु है।...इसे पढ़िये इसमे चित्रका दूसरा पहलू है। जो ... ...।'

[१]

अन्तःपुरमें—

'.........और कुछ देर तक तो 'विचित्र-माला' स्वामिनीके हृदय-रहस्यसे अनभिज्ञ ही रही। स्पष्ट-भाषा और विस्तृत-भूमिका कही जानेपर भी उसकी समझमें कुछ न आया।

वह चतुर थी। दासित्व का अनुभव उसका बहुत पुराना था। स्वामिनीका 'रुख़' किधर है, यह बात वह अविलम्ब पहिचान लेती थी। किन्तु आज, जैसे उसकी समग्र चतुरतापर तुषार-पात हो गया। यह पहला मौक़ा था, जब वह इस तरह परास्त हुई। शायद इसलिए कि उसकी स्वामिनीने आज जो कार्य सौंपा, जो प्रस्ताव सामने रखा, वह सर्वथा नवीन, सर्वथा अनूठा और सर्वथा आश्चर्यप्रद था। जिसकी कल्पना तक उसके हृदयमें मौजूद न थी।

उसने अनुभव किया—आज उसकी स्वामिनीकी मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन है। स्वभावत मुख-मण्डलपर विराजने वाला तेज, दर्प, विलीन हो चुका है। वाणी की प्रखरतामे याचक-कण्ठ की कोमलता छिप गई है। उसके व्यवहारमें आज शासकता नहीं, दलित-प्रजाकी क्षीण-पुकार अवशिष्ट है। लेकिन यह सब है—क्यों?—यह वह न समझ सकी।

उस सुसज्जित-भव्य-भवन मे केवल दो-ही तो हैं। फिर उसकी स्वामिनी हृदयस्थ-बातको क्यों इतना संकोचके साथ बयान करना चाहती है? क्या वास्तवमें कोई गूढ़-रहस्य है?...और वह रहस्य कहीं प्रेम-पथका तो नहीं?

नारी-हृदयका अन्वेषण-कार्य प्रारम्भ हुआ। वह विचारने लगी 'इतने बड़े प्रतापशाली महाराजकी पटरानी क्या किसीका हृदयमे आव्हान कर सकती है? छि: पर-पुरुष।...कोरी विडम्बना!'

पर उसी समय, उसकी एक अन्तरशक्तिने इसकी प्रतिद्वन्दता स्वीकारकी। '......हाँ, हृदय, हृदय है। उसका तक़ाज़ा ठुकराया नहीं जाता।

वह सब-कुछ कर सकता है। उसकी शक्ति सामर्थ्य सुदूर-सीमावर्तिनी है।'

मनके सघर्षको दबाये, वह स्वामिनीकी तरफ देखती-भर रही। इस आशासे कि वे कुछ स्पष्ट कहे। और तभी—

स्वामिनीके युगल-अधरोंमे स्पन्दन हुआ। शुभ्र-दन्त-पंक्तिको सीमित-कारावासके बाहर क्या है?—यह देखनेकी इजाज़त मिली, अरुण, कोमल कपोलोंपर लालिमाकी एक रेखा खिंची। पश्चात्—नव-परिणीता-पत्नीकी भाँति सलज्ज—वाणी प्रस्फुटित हुई!—

'तू मेरी प्यारी सहेली है, तुझसे मेरा क्या छिपा है। कुछ छिपाया भी तो नहीं जासकता। भेदकी गुप्त-बात तुझसे न कहूँ तो, कहूँ फिर किससे ..?—सखीको छोड़, ऐसा फिर कौन? .. मेरे दुख-सुखकी बात... ... .।'—रानी साहिबाने बातको अधूरा ही रहने दिया। बात कुछ बन ही न पड़ी इसलिये, या देखें सखीका क्या आइडिया है—अभिमत है, यह जाननेके लिए।

सखीको महारानीसे कुछ प्रेम था, सिर्फ वेतन या दासित्व तक की ही मर्यादा न थी। ''समस्याका कुछ आभास मिलते ही उसने अपने हृदय उद्गारोंको बाहर निकाला—आप ठीक कह रही हैं, महारानी, कोई भी बात आपको मुझसे न छिपाना चाहिये। और मैं शक्ति-साध्य कार्य भी यदि आपके लिये सम्पन्न न कर सकी तो—मेरा जीवन धिक्कार। आप विश्वास कीजिए—मुझसे कही हुई बात आपके लिये सुखप्रद हो सकती है। दुखकर कदापि नहीं। आपकी अभिलाषाको मुझ तक आना चाहिये, बगैर संकोच, झिझकके! इसके बाद उसे पूर्णताका रूप देना—मेरा काम! मै उसे प्राणों की बाज़ी लगाकर भी पूरा करनेकी चेष्टा करूँगी।'

'· लेकिन सखी! बात इतनी घृणित है, इतनी पाप-पूर्ण है, जो मुँहसे निकाले नहीं निकलती। मैं जानती हूँ—ऐसा प्रस्ताव मुझे मुँहपर भी न लाना चाहिए। मगर लाचारी है, हृदय समझाये नहीं समझता। एक ऐसा नशा सवार है, जो—या तो मिलन या प्राण-विसर्जन—पर तुला बैठा है। मैं उसे ठुकरा नहीं सकती। कलंक लग जायेगा, इसका मुझे भय नहीं। लोग क्या कहेंगे, इसकी मुझे चिन्ता नही। मै तो बस, अपने हृदयके ईश्वरको चाहतीहूँ। ···· '—महारानीके विव्हल-कण्ठने प्रगट किया। शायद और भी कुछ प्रगट होता, कि विचित्रमालाने बीच ही मे टोका—'···परन्तु वह ईश्वर है कौन?'

'लंकेश्वर-महाराज-रावण!'—अधमुँदी-आँखोमे स्वर्ग-सुखका आव्हान करती-सी, महारानी कहने लगी—'शायद तू नहीं जानती! मै उस पुरुषोत्तमपर, आजसे नहीं विवाहित होनेके पूर्वसे ही, प्रेम रखती हूँ, मोहित हूँ। तभीसे उसके गुणोंकी, रूपकी, और वीरताकी, हृदयमें पूजा करती आ रही हूँ। लेकिन कोई उचित, उपयुक्त अवसर न मिलनेसे चुप थी, परन्तु—अब आज वह शुभ दिवस सामने है, जब मैं उसतक अपनी इच्छा पहुँचा सकू। उसके दर्शनकर, चरणोमें स्थान पाकर, अपनी अन्तराग्नि शान्त कर सकू!! वह आज समीप ही पधारे है। हमारे देशपर विजय-पताका फहराना उनका ध्येय है। · काश! उन्हें मालूम होता कि देशकी महारानीके हृदयपर वह कबसे शासन कर रहे हैं!' - - -

'तो ··?'—विचित्रमालाने स्वयं भी कुछ कहना चाहा। पर महारानीने मौका ही न दिया! वह बोलीं—'मैं कुछ सुनना नहीं चाहती—विचित्र-माला! बस, मुझे तो कहनाही है, सिर्फ कहना-भर!—और शायद अन्तिम! · अगर तुम मेरा जीवन चाहती हो, तो मुझे आज उनसे मिलादो, नहीं, मैं आत्मघातकर प्यारेकी आराधना-वेदीपर बलिदान होजाऊँगी।'

'इतनी कठिनता न अपनाओ—स्वामिनी, मुझपर विश्वास रखो, मैं अभी उनसे जाकर निवेदनकर, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कराऊँगी। मेरा धर्म तुम्हारी आज्ञा पालनमें है, इसे मैं खूब जानती हूँ। धैर्य रखो—मैं इस कार्यमें जो बन पड़ेगा, सब करूँगी।'

महारानी गद्गद् होगईं।

दूसरे ही क्षण विचित्रमाला महारानीकी सुदीर्घ, कोमल, बाहु-पाशमें आबद्ध थी।

× × ×

[२]

'कौन? महाराज नलकुँवरकी पटरानी उप-रम्भाकी दासी ··? ··'

'हाँ, महाराज!'

'क्या चाहती है?—इतनी रात बीते यहाँ आनेका कारण?

'ज्ञात नहीं! वह आपसे एकान्तमें मिलनेकी इच्छा प्रगट करती है! बतलाती है, बात अत्यन्त गोपनीय है, प्रगट नहीं की जासकती।'

···लंकेश्वरने एक भेद-भरी दृष्टि विभीषण पर डाली, वे बोले—साक्षात् करनेमें कोई हानि नहीं! सम्भव है, गढ़विजयकी कोई युक्ति बत-लाये।'

'अच्छा भेजदो, पिछले खेमेमें।'

'जो आज्ञा!'—प्रहरी चला गया।

लंकेश एकान्त-खेमेमें उसकी प्रतीक्षा करने लगे। विभीषण बराबरके शिविरमें विराजे रहे।

उसी समय, श्याम-वस्त्रोंसे सुसज्जित विचित्र मालाने प्रवेश किया!

× × × ×

'··· उनका नाम है—उपरम्भा! है तो नारी, परन्तु किन्नरी भी उनके सौन्दर्यका लोहा मानती है। वह पृथ्वीकी रम्भा हैं। चाँद-सा बदन, कोयल-सा स्वर, मराल-सी गति और सौन्दर्यकी साक्षात प्रतिमूर्ति! यौवनका विराम-सदन! महा-राज नल-कुंवर, जिनकी यशस्विता सर्वत्र व्याप्त है, उनकी प्राण-प्यारी पटरानी हैं—वह!'—दासीने अपनी सफलताकी भूमिका बाँधी! लेकिन दशाननने मुँहपर अरुचिका भाव लाते हुए कहा—

'अच्छा। अब मतलबकी बात कहो।'

दासी चुप। '···क्या ये वे मतलबकी बातें है?·· व्यर्थ हैं ··?'—वह फिर कहने लगी—'मैं महारानी उपरम्भाकी अन्तरंग-सखी हूँ, मुझे उन्होंने आपके पास भेजा है।'

'किसलिए?'—गंभीर प्रश्न हुआ।

इसलिए कि वह आपपर मोहित हैं। आपकी कृपा-काँक्षिणी हैं। संयोग-याचना करती हैं। वह

बहुत-दिनसे आपके नामकी माला जपती आरही हैं। अब उनका जीवन केवल आपके कृपा-दान परही निर्भर है। उनका हृदयांचल सिर्फ एक वस्तु चाहता है—मिलन या मृत्यु !'—विचित्र-मालाने स-शीघ्र स्वामिनीका सन्देश सामने रख दिया।

उधर—कठिनता-पूर्वक महाराज रावण, मर्यादा और उज्वल चरित्रके उपासक—उपर्युक्त-शब्दोंको सुन सके। जैसेही दासीका मुँह बन्द हुआ कि—दोनों कानोंपर हाथ रख, खेद-भरे स्वरमे बोले—'उफ्! उफ्!! यह मैं क्या सुन रहा हूँ। यह जघन्य-पाप !! भद्रे ! अपनी स्वामिनीसे कहना कि मैं पर-नारी को अंग-दान देनेके लिये दरिद्री हूँ। एक-दम असमर्थ हूँ। मुझसे · · · · ।'

दासी अवाक् !

यह मनुष्य है या देवता ? ·· गृहस्थ है या वासना-विजयी-साधु ? दुर्लभ-प्राप्त प्रेमीकी यह अवहेलना ?—यह निरादर ?

उसी समय बराबरके शिबिरका पट-हिला। महाराज रावण उधर चले। सामने विभीषण। वह बोले—'भूलते हो-भाई ! यह राजनीति है। केवल सत्यसे यहाँ काम नहीं चलता। · इसे ऐसा कोरा जवाब न दो। अवश्य ही उपरम्भा वश होकर गढ़-विजयकी कोई गुप्त-युक्ति बतलाएगी। क्या तुम्हें मालूम नहीं, नलकुँवरने कैसा दुर्भेद्य, मायामयी प्रासाद निर्माण किया है ? जिसके समीप जाना तक दुरूह।'

रावण लौटे। मुखपर प्रसन्नता थी। बोले—'मैं ऐसा जघन्य-पाप हर्गिज न करता। लेकिन जब वह प्राणान्त तकके लिए उद्यत है, तो ·· उसकी प्राण-रक्षाके निमित्त मुझे सब कुछ करना होगा। जाओ उसे शीघ्र ही मेरे समीप ले आओ। मै उसकी प्रतीक्षामें हूँ।'

दासीके हर्षका क्या ठिकाना ? वह वाणीसे, आकृतिसे, सारे शरीरसे अभिवादन करती, खेमेसे बाहर निकली। उसके हृदयमें सफल-चेष्टा-की खुशी लहरें ले रही थी।

[३]

धन्य ! उस यौवन और सौन्दर्यकी मूर्तिमान् प्रतिमा—उपरम्भा—को देखकर भी रावणका हृदय विचलित न हुआ। वह अटल-भावसे उसकी ओर देखता रहा।

उपरम्भाकी वेश-भूषा आज नित्यकी अपेक्षा कहीं, बहुमूल्य, आकर्षक और नेत्रप्रिय थी। उसने आज लगनके साथ शृंगार किया था। भूषणोंके आधिक्यके कारण वह भारान्वित थी अवश्य। पर उसका पैर आज फूल-सा पड़ता था। मनमे खुशी जो थी, फूल जो थी।

वह आई। उसने अभिवादन किया। रावणने एक मधुर-मुस्कानमें उसका प्रत्युत्तर दिया। संकेत प्राप्त कर, योग्य-स्थानपर वह बैठ गई।

वह मधु-निशीथ ! चतुर्दिक नीरवताका साम्राज्य। बाहर ज्योत्स्ना रजत-राशि बखेर रही थी। मलय-समीर मन्थर-गतिसे विहार कर रहाथा।

—और उसी समय, उस भव्य खेमेमें उपरम्भाने अपनी मधुर-ध्वनि-द्वारा निस्तब्धता भंग की।—

'प्राणेश्वर ! मेरी अभिलाषा आप तक पहुँच

चुकी है। और आपने उसका सन्मान भी किया है। अब इस वियोगाग्निको अंग-दान द्वारा शान्ति दीजिए। विलम्ब असहनीय बन रहा है—प्रभु! आओ ··।'

तभी उसने बढ़कर महाराज रावणके कण्ठमें अपनी बाहु-पाश डालनी चाही। रावणने देखा—उपरम्भाके हृदयमें वासना आँधी-प्रलयका सन्देश सुना देनेके लिए व्यग्र होरही है। आँखें उन्मादसे ओत-प्रोत होरही है। वाणीमें विव्हलता समा चुकी है। और वह एक दम पागल है। उसे अपनी मर्यादाका ध्यान नहीं।

'भद्रे! तुम्हारी इच्छा मुझसे छिपी नहीं। मेरी इच्छा भी तुम्हारे अनुकूल ही है। परन्तु थोड़ा अन्तर है। मैं चाहता हूँ—तुम्हारा समागम स्वाधीनतापूर्वक राज-प्रासादके भीतर ही हो। यों जंगलोंमें पशुओंकी तरह क्या आनन्द ?—कहो, तुम क्या सम्मति रखती हो? ·'—रावणने उसके आलिंगन-अवसरको व्यर्थ करते हुए, जरा मिठासपूर्वक पूछा।

'··· जैसी तुम्हारी इच्छा हो—प्यारे! तुम्हारी खुशीमे ही मेरा आनन्द है, सुख है !!·· ···'

—उपरम्भाके उत्तेजित-मनने व्यक्त किया।

'तो उस मायामय-गढ़-ध्वंसका उपाय · ?'—बातको बहुत साधारण ढंगकी बनाते हुए, रावणने प्रश्न किया।

'उपाय ?—जब तुमसे मेरी इच्छा छिपी न रह सकी, तो उपाय कैसे रह सकता है। सुनो गढ़-ध्वंशका उपाय यह है कि···· · ·'

—और उस मुग्धाने बग़ैर इसकी चिन्ता किये कि उसके पतिका कितना पराभव होगा, क्या होगा; गढ़-ध्वंस-कारिणी-विद्या रावणको दे ही दी।

ओफ्! नारीके विचलित-हृदय!

× × × ×

[४]

दूसरे ही दिन—

वह दुर्भेद्य-नगर महाराज-रावणके आधीन था। सारी प्रजाके मुँहपर रावणके नामका जयघोष था। वह भयंकर मायापूर्ण-दुर्ग विलीन हो चुका था। कलतक सिंहासनपर विराजने वाले महाराज नलकुँवर आज बन्दीके रूपमे—रावणके प्रचण्ड-तेजके आगे खड़े हुएथे। शेष सब ज्योंका त्यों था।···

उपरम्भा अपने पतिके समीप खड़ी हुई थी। हृदयमे द्वन्द चल रहा था—पता नहीं कैसा ··?

सब दरबारी उपस्थित थे।

'सुनो ··।'—रावणने उपरम्भाको संकेत करते हुए कहा—'तुम स्वय जानती हो, पर-पुरुष-संगम कितना जघन्य-पाप है। और इसके अतिरिक्त—तुमने मुझे विद्या-दान दिया है, अत. तुम मेरी 'गुरानी' हो, पूज्य हो। मैं तुम्हारे आनन्द, सुख और सम्भोगके लिए महाराज नलकुँवरको बन्धन-मुक्त कर तुम्हे देरहा हूँ। जाओ, उनके साथ आनन्द करो। पुरुष-पुरुषमें कोई भेद नहीं, मुझे क्षमा करो। ·'

उपरम्भाका हृदय - आत्म-ग्लानिसे भर गया। उसने समझा—रावण कितना महान है! कितना उच्च है! वह पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम है! वन्दनीय है !!····
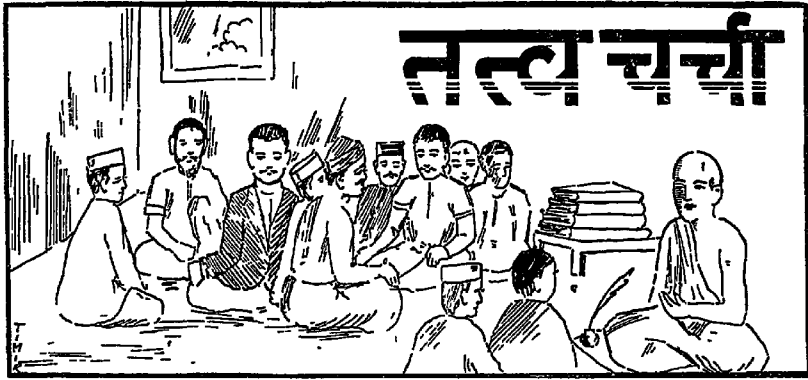
# अनेकान्तवाद

[लेखक—पं० मुनि श्रीचौथमलजी]

> इस लेखके लेखक मुनि श्रीचौथमलजी श्वे० स्थानकवासी जैनसमाजके एक प्रधान साक्षर साधु और प्रसिद्ध वक्ता हैं। आपका यह लेख महत्वपूर्ण है और उसपरसे मालूम होता है कि आपने अनेकान्त-तत्त्वका अच्छा मनन और परिशीलन किया है; तभी आप विषयको इतने सरल ढंगसे समझाकर लिख सके हैं। लेख परसे पाठकोंको अनेकान्त-तत्त्वके समझनेमें बहुत कुछ आसानी होगी। आशा है सेवाधर्मके लिये दीक्षित मुनिजीके लेख इसी तरह बराबर 'अनेकान्त' के पाठकोंकी सेवा करते रहेंगे।
>
> —सम्पादक

जैन-धर्म एवं जैनदर्शनमें जिन बहुमूल्य सिद्धान्तोंका प्ररूपण किया गया है उनमें 'अनेकान्त' मुख्य है। अनेकान्तवादकी महत्ता, उपयोगिता औरवास्तविकताको देखते हुए, उसे जैन-साहित्यमें जो स्थान प्राप्तहुआ है वह सर्वथा उचित ही जान पड़ता है। अनेकान्तवाद वस्तुतः जैन-दर्शनका प्राण है। यद्यपि इसे अन्यान्य दर्शनकारोंनेभीकहीं-कहीं अपनाया है पर अधिकांशमें उन्होंने इसकी उपेक्षा ही की है। इस उपेक्षाका एक फल तो यह हुआ कि जो 'अनेकान्त' सर्वसाधारणका सिद्धान्त बन जाना चाहिए था वह सिर्फ जैन-दर्शन तक ही सीमित रह गया औरउसेभी साम्प्रदायिकताकारूप धारण करना पड़ा। दूसरे, दर्शनशास्त्रोंके परस्पर विरोधी दृष्टिकोण, जो जनताको भ्रममें डालते हैं, एक-दूसरेसे पृथक् ही बने रहे—उनका समन्वय न होसका। दर्शनशास्त्रोंके इस पृथक्त्वने साम्प्रदायिकता खड़ी करके जनतामें धार्मिक असहिष्णुताको उत्पन्न किया सो तो किया ही, पर उसने अखण्ड सत्यका प्रकाशन भी न होने दिया।

कुछ दार्शनिक विद्वानोंने तो अनेकान्तवाद-के विरोधका भी प्रयत्न किया है; पर उन्हें अस-फल होना ही चाहिए था और वैसा हुआ भी, यह हम नहीं आजके जैनेतर निष्पक्ष विद्वान भी स्वीकार करते हैं। कुछ लोगोंने अनेकान्तवादको संशयवाद कहकर भी अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित की है, पर उसके विवेचनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है।

हम संसारमे जो भी दृश्य पदार्थ देखते हैं अथवा आत्मा आदि जो साधारणतया अदृश्य पदार्थ हैं, उन सबके अविकल ज्ञानकी कुंजी अनेकान्तवाद है। अनेकान्तवादका आश्रय लिए बिना हम किसी भी वस्तुके परिपूर्ण स्वरूपसे अवगत नहीं होसकते। अतएव अन्य शब्दोंमे यह कहा जासकता है कि 'अनेकान्त' वह सिद्ध यंत्र है जिसके द्वारा अखण्ड सत्यका निर्माण होता है और जिसके बिना हम कदापि पूर्णतासे परिचित नहीं होसकते।

प्रत्येक पदार्थ अपरिमित शक्तियों-गुणों-अंशोंका एक अखण्ड पिण्ड है। पदार्थकी वे शक्तियाँ ऐसी विचित्र हैं कि एक साथ मित्रभावसे रहती हैं, फिर भी एक दूसरेसे विरोधी-सी जान पड़ती हैं, उन विरोधी प्रतीत होने वाली शक्तियो का समन्वय करने, उन्हें यथायोग्य रूपसे वस्तुमें स्थापित करनेकी कला 'अनेकान्तवाद' है। जैसे अन्यान्य कलाओंके लिए कुछ उपादान अपेक्षित हैं उसी प्रकार अनेकान्तकलाके लिए भी उपादानों-की आवश्यकता है। उन उपादानोंका जैन-दर्शनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। सप्तभंगीवाद और नयवाद उनमें मुख्य हैं। नयवाद वस्तुमें विभिन्न धर्मोंका आयोजन करता है और सप्तभंगीवाद एक-एक धर्मका विश्लेषण करता है। कुछ उदाहरणों द्वारा नीचे इसी विषयको स्पष्ट किया जाता है:—

बौद्ध दार्शनिक प्रत्येक पदार्थको क्षणभंगुर मानते हैं। उनके मतसे पदार्थ क्षण-क्षण नष्ट होता जाता है और अव्यवहित दूसरे क्षणमें ज्यों का त्यों नवीन पदार्थ हो जाता है। इसके विरुद्ध कपिलका सांख्य दर्शन कूटस्थ नित्यवादको अंगी-कार करता है। इसके मतसे सत्का कभी विनाश नहीं होता और असत्का उत्पाद नहीं होता। अतएव कोई भी पदार्थ न तो कभी नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है। इसी प्रकार वेदान्त दर्शनके अनुसार इस विशाल विश्वमे वस्तुओंकी जो विवि-धता दृष्टिगोचर हो रही है सो भ्रम-मात्र है। वस्तुत: परम-ब्रह्मके अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं है। वस्तुओकी विविधता सत्ता-रूप ब्रह्मके ही विविध रूपान्तर हैं। इस प्रकार वेदान्त अद्वैत-वादको अंगीकार करता है। इसके विरुद्ध अनेक दार्शनिक परमात्मा, जीवात्मा और जड़की पृथक् पृथक् सत्ता स्वीकार करते हैं और कोई-कोई जीव और जड़का द्वैत मानकर शेष समस्त पदार्थोंका इन्हींमें अन्तर्भाव करते है।

जब कोई भद्र जिज्ञासु दर्शन-शास्त्रोकी इस विवेचनाका अध्ययन करता है तो वह बड़े अस-मंजस में पड़जाता है। वह सोचने लगता है कि मै अपनेको क्षणिक समझूँ या कूटस्थ नित्य मानलूँ ? मैं अपने आपको परम ब्रह्मस्वरूप मान-

कर कृतार्थ होऊँ या उससे भिन्न जीवात्मा समझूँ? यदि सचमुच मैं क्षणिक हूँ—उत्तरकालीन क्षणमे ही यदि मेरा समूल विध्वंस होने जारहा है तो फिर धर्मशास्त्रोमे उपदिष्ट अनेकानेक अनुष्ठानोका क्या प्रयोजन है? क्षणभंगुर आत्मा उत्पन्न होते ही नष्ट होजाता है तो चारित्र आदि का अनुष्ठान कौन किसके लिये करेगा? यदि मैं क्षणभंगुर न होकर कूटस्थ नित्य हूँ—मुझमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन कदापि होना संभव नहीं है, तो अनन्तकाल तक मैं वर्त्तमान कालीन अवस्थामे ही रहूँगा। फिर संयम और तपश्चरण के संकटों मे पड़ने की क्या आवश्यकता है?

और यदि वेदान्त-दर्शनकी प्ररूपणाके अनुसार प्रत्येक पदार्थ परमब्रह्म ही हैं तबतो हमे किसी प्रकारकी साधना अपेक्षित ही नहीं है। ब्रह्मसे उच्चतर पद तो कोई दूसरा है नहीं जिसकी प्राप्तिके लिए उद्योग किया जाय? यदि परमात्मा मूलतः जीवात्मासे भिन्न है तो जीवात्मा कभी परमात्मपदका अधिकारी न हो सकेगा। फिर परमात्मपद प्राप्त करनेके लिए प्रयास करना निरर्थक है।

इस प्रकार विरोधी विचारोके कारण किसी भी जिज्ञासुमुमुक्षका गड़बड़में पड़ जाना स्वाभाविक है। ऐसे समय जब कोई व्यक्ति निराश होजाता है तो अनेकान्तवाद उसका पथ-प्रदर्शन करके उसे उत्साह प्रदान करता है। वह इन विरोधोंका मथन करके उलझी हुई समस्याओंको सुलझा देता है। अनेकान्तवाद विरोधी प्रतीत होनेवाले क्षणिकवाद और नित्यवादको विभिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे अविरोधी सिद्ध करके उनका साहचर्य सिद्ध करता है।

अनेकान्तवाद बतलाता है कि वस्तु द्रव्यरूप भी है पर्यायरूप भी। मनुष्य, सिर्फ मनुष्यही नहीं है बल्कि वह जीव भी है और जीव सिर्फ जीवही नहीं वरन् मनुष्य, पशु आदि पर्याय-रूप भी है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु द्रव्य भी है और पर्यायभी है। यद्यपि द्रव्य और पर्यायका पृथक्करण नहीं किया जासकता फिरभी उनकी भिन्नताका अनुभव किया जासकता है। यदि कोई कागजके एक टुकड़ेको अग्निमे जलादे और इस प्रकार उसकी अवस्था—पर्यायको परिवर्तित करदे तो ऐसा करके वह उसके जड़त्वको कदापि नहीं बदल सकता। इससे यह स्पष्ट है कि पर्यायोंका उलटफेर तो होता है परन्तु द्रव्य सदैव एक-सा बना रहता है। पर्यायोंके परिवर्तनकी यदि हम सावधानीसे अनुभव करें तो हमे प्रतीत होगा कि परिवर्तनका क्रम प्रतिक्षण जारी रहता है। कोईभी नई वस्तु किसी खास नियत समयपर पुरानी नहीं होती। बालक किसी एक नियत समय पर युवक नहीं बनता। बननेका क्रम प्रतिक्षणही चालू रहता है। इस प्रकार द्रव्यकी पर्यायें प्रतिक्षण पलटती रहती है। अतः पर्यायकी अपेक्षा वस्तुको प्रतिक्षण विनश्वर कहा जासकता है। किन्तु द्रव्य अपने मूल स्वरूपका कभी परित्याग नहीं करता। जो जीव है वह भले ही कभी मनुष्य हो, कभी पशु-पक्षी हो, कभी कीड़ा-मकोड़ा हो, पर वह जीव तो रहेगा ही। द्रव्यरूपसे पदार्थका व्यय कदापि नहीं हो सकता। अत द्रव्यकी अपेक्षा प्रत्येक वस्तु नित्य कही जासकती है। इस प्रकार अनेकान्तवाद नित्यत्व और अनित्यत्वका समन्वय करता है।

स्वामी अपने सेवकसे कहता है—'एक जानवर लाओ।' सेवक गाय, भैंस या घोड़ा कुछभी ले आता है और स्वामी इससे परितुष्ट होजाता है। फिर स्वामी कहता है—'गाय लाओ।' सेवक यदि घोड़ा लेआता है तो स्वामीको सन्तोष नहीं होता। क्यों? इसीलिये कि पहले आदेशमें सामान्यका निर्देश था और उस निर्देशके अनुसार प्रत्येक जानवर एकही कोटिमें था। दूसरे आदेशमें विशेषका निर्देश किया गया है और उसके अनुसार गाय अन्य पशुओंसे भिन्न कोटिमें आगई है। इस प्रकार जान पड़ता है कि सामान्यकी अपेक्षा प्रत्येक पदार्थ एक है और विशेषकी अपेक्षा सब जुदा-जुदा हैं। जब ऐसा है तो सामान्य-रूपसे (सत्ताकी अपेक्षा) समस्त पदार्थोंको एक रूप कहा जा सकता है और इस प्रकार वेदान्तका अद्वैतवाद तर्कसंगत सिद्ध होजाता है। किन्तु जब हमारा लक्ष्य विशेष होता है तो प्रत्येक पदार्थ हमें एक दूसरेसे भिन्न नजर आता है अतः विशेषकी अपेक्षा द्वैतवाद संगत है। इस प्रकार अनेकान्तवाद द्वैत और अद्वैतकी समस्याका समाधान करता है।

ऊपर जिन अपेक्षाओं, दृष्टिकोणों या अभिप्रायोंका उल्लेख किया गया है वेही जैन-दर्शन-सम्मत नय हैं। नय, बोधके वे अंश हैं जिनके द्वारा समूची वस्तुमेंसे किसी एक विवक्षित गुणको ग्रहण किया जाता है और इतर गुणोंके प्रति उपेक्षा-भाव धारण किया जाता है। इन नयोंके द्वारा ही विरोधी धर्मोंका ठीक-ठीक समन्वय किया जाता है। जो दृष्टिकोण द्रव्यको मुख्य मानता है उसे द्रव्यार्थिक-नय कहते हैं और जो अभिप्राय पर्यायको मुख्यता प्रदान करता है वह पर्यायार्थिक-नय कहलाता है। जैसे संगीत कलाका आधार नाद है उसी प्रकार समन्वय-कला या अनेकान्तवादका आधार नय है। नयोंका यहाँ विस्तृत विवेचन करना संभव नहीं है। नयवाद बड़ा विस्तृत है। कहा है—"जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया।" अर्थात वचनके जितने मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं।

अनेकान्त-सिद्धान्त का दूसरा आधार सप्तभंगीवाद है। सप्तभंगीवाद, जैसा कि पहले कहा गया है, प्रत्येक-धर्म का विश्लेषण करता रहता है और उससे यह मालूम होता है कि कोई भी धर्म वस्तु में किस प्रकार रहता है। एक ही वस्तु के अनन्त-धर्मोंमें से किसी एक धर्मके विषयमें विरोध-रहित सात प्रकारके वचन प्रयोगको सप्तभंगी कहते हैं। उदाहरणार्थ अस्तित्व-धर्म को लीजिए। अस्तित्व-धर्मके विषयमें सात भंग इस प्रकार बनते हैं—

(१) स्यादस्ति घटः—अर्थात् घटमें घटविषयक अस्ति पाया जाता है। घटमें घट-संबंधी अस्तित्व न माना जाय तो वह खरविषाणकी भांति अवस्तु-नाचीज ठहरेगा।

(२) स्यान्नास्ति घटः—इसका अर्थ यह है कि घटमें, घटातिरिक्त अन्य पट आदिमें पाया जाने वाला अस्तित्व नहीं पाया जाता। यदि पटादि-विषयक अस्तित्वका निषेध न किया जाय तो घट, पट आदि भी हो जायगा। इस प्रकार एक ही वस्तुमें अन्य समस्त वस्तुओंकी सत्ता होनेसे वस्तुका स्वरूप स्थिर न हो सकेगा। अतएव

प्रत्येक वस्तुमे, उसके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं-की असत्ता मानना अनिवार्य है।

(३) **स्याद्स्ति नास्ति घटः**— क्रमशः स्वरूप और पररूपकी अपेक्षासे वस्तुका विधान किया जायतो पूर्वोक्त दोनों वाक्योंका जो निष्कर्ष निकलता है वही तीसरा अंग है।

(४) **स्यादवक्तव्यो घटः**—वस्तुमें अनन्त धर्म है। भाषा द्वारा उन सबका एक साथ विधान नहीं किया जा सकता। इस अपेक्षा वस्तुका स्वरूप कहा नहीं जा सकता है अर्थात् घट अवक्तव्य है।

इसी प्रकार स्यादस्ति अवक्तव्यो घटः, स्यान्नास्ति अवक्तव्योघटः, और स्यादस्ति-नास्ति-अवक्तव्यो घटः, यह तीन भग पूर्वोक्त भंगोंके संयोगसे बनते हैं। अतः पूर्वोक्त दिशासे इन्हें भी घटित कर लेना चाहिए।

ऊपरसे यह सिद्धान्त एक पहेली-सा जान पड़ता है, किन्तु गंभीरतापूर्वक मनन करनेसे इस मे रहे हुए शुद्ध सत्यकी प्रतीति होने लगती है। सुप्रसिद्ध विद्वान प्लेटोने एक जगह लिखा है—

When we speak of not being we speak, I suppose, not of something opposed to being but only different

अर्थात् जब हम असत्ताके विषयमें कुछ कहते हैं तो मैं मानता हूँ, हम सत्ताके विरुद्ध कुछ नहीं कहते, सिर्फ भिन्नके अर्थमें कहते हैं।

इस प्रकार सप्तभंगीवाद यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक धर्म वस्तुमे किस अपेक्षासे रहता है और किस अपेक्षासे नहीं रहता।

अनेकान्तवादकी तात्विक उपयोगिता—वस्तु-स्वरूपका वास्तविक परिचय देना है। किन्तु इस-की व्यावहारिक उपयोगिता भी कुछ कम नहीं है। यदि हम अनेकान्तवादके मर्मको समझलें और जीवनमें उसका प्रयोग करें तो यह विवेकशून्य सम्प्रदायिकता, जिसकी बदौलत धर्म बदनाम हो रहा है, धर्मको सर्व साधारण लोग क्षयका कीटाणु समझने लगे हैं, आये दिन सिर फुटौव्वल होती है, और जिसने धर्मके असली उज्ज्वल रूपको तिरोहित कर दिया है, शीघ्र ही हट सकती है। इसके लिए दूसरेके दृष्टिबिन्दु को समझने और सहन करनेकी आवश्यकता है। विश्व-शान्तिके लिए जैसे 'जीओ और दूसरोंको जीने दो' इस सिद्धान्तके अनुसरणकी आवश्यकता है उसी प्रकार दार्शनिक जगत्की शान्ति के लिए 'मैं सही- और दूसरे भी सही' का अनुसरण करना होगा। अनेकान्तकी यही खूबी है कि वह हमें यह बतलाता है कि हम तभी तक सही रास्तेपर हैं जब तक दूसरोंको गलत रास्तेपर नही कहते। दूसरोंको जब हम भ्रान्त या मिथ्या कहते हैं तो हम स्वयमेव मिथ्या हो जाते हैं; क्योंकि ऐसा करनेमे अन्य दृष्टिकोण का निषेध हो जाता है, जो किसी अपेक्षासे वस्तु में पाया जाता है। अतएव यदि हम सत्यका अन्वेषण करना चाहें तो हमारा कर्तव्य होगा कि हम दूसरेके विचारको समझें, उसकी अपेक्षा

को सोचें और तब अमुक नयसे उसे संगतियुक्त स्वीकार करलें।

लेख समाप्त करनेसे पहले हमें खेदपूर्वक यह स्वीकार करना चाहिये कि जैनेतरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं जैनोंने भी एक प्रकारसे अनेकान्तवाद को भुला दिया है। जो अनेकान्त नास्तिकवाद जैसे जघन्य माने जाने वाले वादोंका भी समन्वय करनेमें समर्थ है उसे स्वीकार करते हुएभी जैन-समाज अपने क्षुद्रतर मतभेदोंका आज समन्वय नहीं कर सकता। आज अनेकान्तवाद 'पोथीका बैंगन' बन गया है, वह विद्वानोंकी चर्चाका विषय बना हुआ है और उसपर हम अभिमान करते हैं; पर उसका व्यवहार हमने नहीं किया। यही कारण है कि जिनके आँगनमें कल्पवृक्ष खड़ा है वेही आज संताप भोग रहे हैं और अपनी शक्तियोंको विभाजित करके अशक्त एवं दीन बन गये हैं। क्या यह संभव नहीं है कि अनेकान्तवादके उपासक अपने मतभेदोंका अनेकान्त-वादके द्वारा निपटारा करें और सत्यके अधिक सन्निकट पहुँचकर एक अखंड और विशाल संघका पुनर्निर्माण करें। यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि अनेकान्त अबभी जीवित है और भविष्यमें भी जीवित रहेगा। अस्तु।

# दीपावलीका एक दीप

( १ )

दीपक हूँ मस्तकपर मेरे
अग्नि-शिखा है नाच रही—
यही सोच समझा था शायद
आदर मेरा करें सभी !

( २ )

किन्तु जल गया प्राण-सूत्र जब
स्नेह सभी निःशेष हुआ—
बुझी ज्योति मेरे जीवनकी
शवसे उठने लगा धुआँ;

( ३ )

नहीं किसीके हृदय-पटल पर
खिंची कृतज्ञताकी रेखा,
नहीं किसीकी आँखों में
आँसू तक भी मैंने देखा !

( ४ )

मुझे विजित लखकर भी दर्शक
नहीं मौन हो रहते हैं,
तिरस्कार विद्रूप भरे वे
वचन मुझे आ कहते हैं-

( ५ )

'बना रखी थी हमने दीपों-
की सुन्दर ज्योतिर्माला—
रे कृतघ्न, तूने बुझ कर क्यों
उसको खण्डित कर डाला ?,

—भगवत

वीरशासनके मूलतत्व

# अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

( ले० श्री पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य, न्यायतीर्थ व साहित्यशास्त्री )

कोई भी धर्मप्रवर्तक अपने शासनको स्थायी और व्यापक-रूप देनेके लिये मनुष्य समाजके सामने दो वातोंको पेश करता है—एकतो धर्मका उद्देश्य-रूप और दूसरा उसका विधेय-रूप। दूसरे शब्दोंमें धर्मके उद्देश्य-रूपको साध्य, कार्य या सिद्धान्त कह सकते हैं और उसके विधेय-रूपको साधन, कारण या आचरण कह सकते हैं। वीर-शासनके पारिभाषिक शब्दोंमे धर्मके इन दोनों रूपोंको क्रमसे निश्चयधर्म और व्यवहारधर्म कहा गया है। प्राणिमात्रके लिये आत्मकल्याण मे यही निश्चय-धर्म उद्दिष्ट वस्तु है और व्यवहार-धर्म है इस निश्चय-धर्मकी प्राप्तिके लिये उसका कर्तव्य मार्ग।

इन दोनों वातोंको जो धर्मप्रवर्तक जितना सरल,स्पष्ट और व्यवस्थित रीतिसे रखनेका प्रयत्न करता है उसका शासन संसारमे सबसे अधिक महत्वशाली समझा जा सकता है। इतना ही नहीं, वह सबसे अधिक प्राणियों को हितकर हो सकता है। इसलिये प्रत्येक धर्मप्रवर्तकका लक्ष्य दार्शनिक सिद्धान्तकी ओर दौड़ता है। वीरभगवान्‌का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने दार्शनिक तत्त्वोंको व्यवस्थित रूपसे उनकी तथ्यपूर्ण स्थिति तक पहुँचानेके लिये दर्शनशास्त्रके आधारस्तम्भ-रूप अनेकान्तवाद और स्याद्वाद इन दो तत्त्वोंका आविर्भाव किया।

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद ये दोनों दर्शनशास्त्र-के लिये महान् गढ़ हैं। जैनदर्शन इन्हींकी सीमामें विचरता हुआ संसारके समस्त दर्शनोंके लिये आज तक अजेय वना हुआ है। दूसरे दर्शन जैन दर्शनको जीतनेका प्रयास करते तो हैं परंतु इन दुर्गोंके देखने मात्रसे उनको निःशक्त होकर बैठ जाना पड़ता है—किसी के भी पास इनके तोड़नेके साधन मौजूद नहीं हैं।

जहाँ अनेकान्तवाद और स्याद्वादका इतना महत्व वढ़ा हुआ है वहाँ यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि साधारण जनकी तो बात ही क्या? अजैन विद्वानोंके साथ साथ प्रायः जैन विद्वान भी इनका विश्लेषण करनेमें असमर्थ हैं।

अनेकान्त और स्यात् ये दोनो शब्द एकार्थक हैं या भिन्नार्थक? अनेकान्तवाद और स्याद्वादका स्वतन्त्र स्वरूप क्या है? अनेकान्तवाद और स्याद्वाद दोनोंका प्रयोगस्थल एक है या स्वतन्त्र? आदि समस्याएँ आज हमारे सामने उपस्थित हैं। यद्यपि इन समस्याओंका हमारी व दर्शनशास्त्र-की उन्नति या अवनति से प्रत्यक्ष रूपमें कोई संवन्ध नहीं है परन्तु अप्रत्यक्षरूपमें ये हानिकर

अवश्य है। क्योंकि जिस प्रकार एक ग्रामीण कवि छंद, अलंकार, रस, रीति आदिका शास्त्रीय परिज्ञान न करके भी छंद अलंकार आदिसे सुसज्जित अपनी भावपूर्ण कवितासे जगतको प्रभावित करनेमें समर्थ होता है उसी प्रकार सर्वसाधारण लोग अनेकान्तवाद और स्याद्वादके शास्त्रीय परिज्ञानसे शून्य होने पर भी परस्पर विरोधी जीवन-संबन्धी समस्याओंका इन्हीं दोनों तत्त्वोंके बल-पर अविरोध रूपसे समन्वय करते हुए अपने जीवनसंबन्धी व्यवहारोंको यद्यपि व्यवस्थित बना लेते हैं परंतु फिर भी भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके जीवन-संबन्धी व्यवहारोंमें परस्पर विरोधीपन होनेके कारण जो लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं वे सब अनेकान्तवाद और स्याद्वादके रूपको न समझनेका ही परिणाम है। इसी तरह अजैन दार्शनिक विद्वान भी अनेकान्तवाद और स्याद्वादको दर्शनशास्त्र के अंग न मानकरके भी अपने सिद्धान्तोंमें उप-स्थित हुई परस्पर विरोधी समस्याओंको इन्हींके बलपर हल करते हुए यद्यपि दार्शनिक तत्त्वोंकी व्यवस्था करनेमें समर्थ होते हुए नज़र आ रहे हैं तो भी भिन्न भिन्न दार्शनिकोंके सिद्धान्तोंमें परस्पर विरोधीपन होनेके कारण उनके द्वारा अपने सिद्धान्तों को सत्य और महत्वशाली तथा दूसरेके सिद्धान्त को असत्य और महत्वरहित सिद्ध करनेकी जो असफल चेष्टा की जाती है वह भी अनेकान्तवाद और स्याद्वादके स्वरूपको न समझनेका ही फल है।

सारांश यह कि लोकमें एक दूसरेके प्रति जो विरोधी भावनाएँ तथा धर्मोंमें जो साम्प्रदायिकता आज दिखाई दे रही है उसका कारण अनेकान्तवाद और स्याद्वादको न समझना ही कहा जा सकता है।

जैनी लोग यद्यपि अनेकान्तवादी और स्याद्वादी कहे जाते हैं और वे खुद भी अपनेको ऐसा कहते हैं, फिरभी उनके मौजूदा प्रचलित धर्ममें जो साम्प्रदायिकता और उनके हृदयोंमें दूसरोंके प्रति जो विरोधी भावनाएँ पाई जाती हैं उसके दो कारण हैं—एकतो यह कि उनमें भी अपने धर्मको सर्वथा सत्य और महत्वशील तथा दूसरे धर्मोंको सर्वथा असत्य और महत्व रहित समझनेकी अहंकारवृत्ति पैदा होजानेसे उन्होंने अनेकान्तवाद और स्याद्वाद-के क्षेत्रको बिलकुल संकुचित बना डाला है, और दूसरे यह कि अनेकान्तवाद और स्याद्वादकी व्यावहारिक उपयोगिताको वे भी भूले हुए हैं।

## अनेकान्त और स्यात् का अर्थभेद

बहुतसे विद्वान् इन दोनों शब्दोंका एक अर्थ स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अनेकान्त रूप-पदार्थ ही स्यात् शब्दका वाच्य है और इसी-लिये वे अनेकान्त और स्याद्वादमें वाच्य-वाचक संबन्ध स्थापित करते हैं—उनके मतसे अनेकान्त वाच्य है और स्याद्वाद उसका वाचक है। परन्तु "वाक्येष्वनेकान्तद्योती" इत्यादि कारिकामें पड़े हुए "द्योती" शब्दके द्वारा स्वामी समन्तभद्र स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि 'स्यात्' शब्द अनेकान्तका द्योतक है वाचक नहीं।

यद्यपि कुछ शास्त्रकारोंने भी कहीं कहीं स्यात् शब्दको अनेकान्त अर्थका बोधक स्वीकार किया है, परन्तु वह अर्थ व्यवहारोपयोगी नहीं मालूम पड़ता है—केवल स्यात् शब्दका अनेकान्तरूप रूढ़ अर्थ मानकरके इन दोनों शब्दोंकी समानार्थकता सिद्ध की गई है। यद्यपि रूढ़िसे शब्दोंके अनेक

अर्थ हुआ करते हैं और वे असंगत भी नहीं कहे जाते हैं फिरभी यह मानना ही पड़ेगा कि स्यात् शब्दका अनेकान्तरूप अर्थ प्रसिद्धार्थ नहीं है। जिस शब्दसे जिस अर्थका सीधे तौरपर जल्दीसे बोध हो सके वह उस शब्दका प्रसिद्ध अर्थ माना जाता है और वही प्रायः व्यवहारोपयोगी हुआ करता है, जैसे गो शब्द पशु, भूमि, वाणी आदि अनेक अर्थोंमे रूढ़ है परन्तु उसका प्रसिद्ध अर्थ पशु ही है, इसलिये वही व्यवहारोपयोगी माना जाता है। और तो क्या? हिन्दीमे गौ या गाय शब्द जो कि गो शब्दके अपभ्रंश हैं केवल स्त्री गो मे ही व्यवहृत होते हैं पुरुष गो अर्थात् वैल रूप अर्थमे नहीं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे वैल रूप अर्थके वाचक ही नहीं हैं किन्तु वैल रूप अर्थ उनका प्रसिद्ध अर्थ नहीं ऐसा ही समझना चाहिये। स्यात् शब्द उच्चारणके साथ साथ कथंचित् अर्थकी ओर संकेत करता है अनेकान्त-रूप अर्थकी ओर नहीं, इसलिये कथंचित् शब्दका अर्थ ही स्यात् शब्दका अर्थ अथवा प्रसिद्ध अर्थ समझना चाहिये।

## अनेकान्तवाद और स्याद्वादका स्वरूप

अनेकान्तवाद शब्दके तीन शब्दांश हैं—अनेक, अन्त और वाद। इसलिये अनेक—नाना, अन्त—वस्तु धर्मोंकी, वाद—मान्यताका नाम 'अनेकान्तवाद' है। एक वस्तुमे नाना धर्मों (स्वभावों) को प्रायः सभी दर्शन स्वीकार करते हैं, जिससे अनेकान्तवादकी कोई विशेषता नहीं रह जाती है और इसलिये उन धर्मोंका क्वचित् विरोधीपन भी अनायास सिद्ध हो जाता है, तव एक वस्तुमें परस्पर विरोधी और अविरोधी नाना धर्मोंकी मान्यताका नाम अनेकान्तवाद समझना चाहिये। यही अनेकान्तवादका अविकलस्वरूप कहा जा सकता है।

स्याद्वाद शब्दके दो शब्दांश हैं-स्यात् और वाद। ऊपर लिखे अनुसार स्यात् और कथंचित् ये दोनों शब्द एक अर्थके बोधक हैं—कथंचित् शब्दका अर्थ है "किसीप्रकार" यही अर्थ स्यात् शब्दका समझना चाहिये। वाद शब्दका अर्थ है मान्यता।"किसी प्रकारसे अर्थात् एकदृष्टिसे-एक अपेक्षासे या एक अभिप्रायसे" इस प्रकारकी मान्यताका नाम स्याद्वाद है। तात्पर्य यह कि विरोधी और अविरोधी नाना धर्मवाली वस्तुमें अमुक धर्म अमुक दृष्टिसे या अमुक अपेक्षा या अमुक अभिप्रायसे है तथा व्यवहारमे "अमुक कथन, अमुक विचार, या अमुक कार्य, अमुक दृष्टि, अमुक अपेक्षा, या अमुक अभिप्राय को लिये हुए है" इस प्रकार वस्तुके किसीभी धर्म तथा व्यवहारकी सामंजस्यता की सिद्धिके लिये उसके दृष्टिकोण या अपेक्षाका ध्यान रखना ही स्याद्वादका स्वरूप माना जासकता है।

## अनेकान्तवाद और स्याद्वाद के प्रयोगका स्थल भेद

(१) इन दोनोंके उल्लिखित स्वरूपपर ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि जहाँ अनेकान्तवाद हमारी बुद्धिको वस्तुके समस्त धर्मोंकी ओर समान रूपसे खींचता है वहाँ स्याद्वाद वस्तुके एक धर्मका ही प्रधान रूपसे बोध करानेमे समर्थ है।

(२) अनेकान्तवाद एक वस्तुमें परस्पर विरोधी और अविरोधी धर्मोंका विधाता है—वह वस्तुको नाना धर्मात्मक बतलाकर ही चरितार्थ हो

जाता है। स्याद्वाद उस वस्तुको उन नाना धर्मोंके दृष्टिभेदोंको वतला कर हमारे व्यवहारमे आने योग्य वना देता है—अर्थात् वह नाना धर्मात्मक वस्तु हमारे लिये किस हालतमे किस तरह उपयोगी होसक्ती है यह वात स्याद्वाद वतलाता है। थोड़ेसे शब्दोंमे यों कहसकते हैं कि अनेकान्तवादका फल विधानात्मक है और स्याद्वाद-का फल उपयोगात्मक है।

(३) यहभी कहा जासकता है कि अनेकान्तवाद-का फल स्याद्वाद है—अनेकान्तवादकी मान्यताने ही स्याद्वादकी मान्यताको जन्म दिया है। क्योंकि जहाँ नानाधर्मों का विधान नहीं है वहाँ दृष्टिभेदकी कल्पना होही कैसे सकती है?

उल्लिखित तीन कारणो से विल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि अनेकान्तवाद और स्याद्वादका प्रयोग भिन्न २ स्थलो मे होना चाहिये। इस तरह यह षात भलीभांति सिद्ध हो जाती है कि अनेकान्त-वाद और स्याद्वाद ये दोनों एक नहीं हैं; परन्तु परस्पर सापेक्ष अवश्य है। यदि अनेकान्तवादकी मान्यताके विना स्याद्वादकी मान्यताकी कोई आवश्यकता नहीं है तो स्याद्वादकी मान्यताके विना अनेकान्तवादकी मान्यता भी निरर्थकही नहीं वल्कि असंगत ही सिद्ध होगी। हम वस्तुको नानाधर्मात्मक मान करके भी जवतक उन नाना-धर्मोंका दृष्टिभेद नहीं समझेंगे तवतक उन धर्मोंकी मान्यता अनुपयोगी तो होगी ही, साथही वह मान्यता युक्ति-संगत भी नहीं कही जा सकेगी।

जैसे लंघन रोगीके लिये उपयोगी भी है और अनुपयोगी भी, यह तो हुआ लघनके विषय मे अनेकान्तवाद। लेकिन किस रोगीके लिये वह उपयोगी है और किस रोगीके लिये वह अनुप-योगी है, इस दृष्टिभेदको वतलाने वाला यदि स्याद्वाद न माना गया तो यह मान्यता न केवल व्यर्थ ही होगी वल्कि पित्तज्वरवाला रोगी लंघन-की सामान्य तौरपर उपयोगिता समझकर यदि लंघन करने लगेगा तो उसे उस लंघनके द्वारा हानि ही उठानी पड़ेगी। इसलिये अनेकान्तवादके द्वारा रोगीके संवन्ध में लंघनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता रूप दो धर्मोंको मान करके भी वह लंघन अमुक रोगीके लिये उपयोगी और अमुक रोगीके लिये अनुपयोगी है इस दृष्टि-भेदको वतलाने वाला स्याद्वाद मानना ही पड़ेगा।

एक वात और है, अनेकान्तवाद वक्तासे अधिक संवन्ध रखता है; क्योंकि वक्ताकी दृष्टि ही विधानात्मक रहती है। इसी प्रकार स्याद्वाद श्रोता से अधिक संवन्ध रखता है; क्योकि उसकी दृष्टि हमेशा उपयोगात्मक रहा करती है। वक्ता अनेकान्तवादके द्वारा नानाधर्मविशिष्ट वस्तुका दिग्दर्शन कराता है और श्रोता स्याद्वादके जरिये से उस वस्तुके केवल अपने लिये उपयोगी अंशको ग्रहण करता है।

इस कथन से यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिये कि वक्ता 'स्यात्' की मान्यताको और श्रोता 'अनेकान्त'की मान्यताको ध्यान मे नहीं रखता है। यदि वक्ता 'स्यात्'की मान्यताको ध्यान मे नहीं रक्खेगा तो वह एक वस्तु में परस्पर विरोधी धर्मों-का समन्वय न कर सकनेके कारण उन विरोधी धर्मोंका उस वस्तु मे विधान ही कैसे करेगा? ऐसा करते समय विरोधरूपी सिपाही चोरकी

तरह उसका पीछा करनेको हमेशा तैयार रहेगा। इसी तरह यदि श्रोता 'अनेकान्त'की मान्यताको ध्यान में नहीं रक्खेगा तो वह दृष्टिभेद किस विषय में करेगा? क्योंकि दृष्टिभेदका विषय अनेकान्त अर्थात् वस्तुके नाना धर्म ही तो है।

इसलिये ऊपरके कथनसे केवल इतना तात्पर्य लेना चाहिये कि वक्ताके लिये विधान प्रधान है-वह स्यात्की मान्यतापूर्वक अनेकान्तकी मान्यताको अपनाता है; और श्रोताके लिये उपयोग प्रधान है वह अनेकान्तकी मान्यतापूर्वक स्यात्की मान्यता को अपनाता है।

मान लिया जाय कि एक मनुष्य है, अनेकान्तवादके जरिये हम इस नतीजेपर पहुँचे कि वह मनुष्य वस्तुत्वके नाते नानाधर्मात्मक है—वह पिता है, पुत्र है, मामा है, भाई है आदि आदि बहुत कुछ है। हमने वक्ताकी हैसियत से उसके इन सम्पूर्ण धर्मोंका निरूपण किया। स्याद्वाद से यह बात तय हुई कि वह पिता है स्यात्—किसी प्रकारसे—दृष्टिविशेषसे—अर्थात् अपने पुत्रकी अपेक्षा, वह पुत्र है, स्यात्—किसी प्रकार अर्थात् अपने पिताकी अपेक्षा, वह मामा है स्यात्-किसी प्रकार अर्थात् अपने भानजे की अपेक्षा, वह भाई है स्यात्-किसी प्रकार-अर्थात् अपने भाई की अपेक्षा।

अब यदि श्रोता लोग उस मनुष्यसे इन दृष्टियोंमे से किसी भी दृष्टि से संबन्ध है तो वे अपनी अपनी दृष्टिसे अपने लिये उपयोगी धर्मको ग्रहण करते जावेंगे। पुत्र उनको पिता कहेगा, पिता उसको पुत्र कहेगा, भानजा उसको मामा कहेगा और भाई उसको भाई कहेगा, लेकिन अनेकान्तवादको ध्यान मे रखते हुए वे एक दूसरेके व्यवहारको असंगत नहीं ठहरावेंगे। अस्तु।

इस प्रकार अनेकान्तवाद और स्याद्वादके विश्लेषणका यह यथाशक्ति प्रयत्न है। आशा है इससे पाठकजन इन दोनोंके स्वरूपको समझने में सफल होनेके साथ साथ वीर-भगवान्के शासन की गम्भीरताका सहज ही मे अनुभव करेंगे और इन दोनों तत्वोंके द्वारा साम्प्रदायिकताके परदेको हटा कर विशुद्ध धर्मकी आराधना करते हुए अनेकान्तवाद और स्याद्वादके व्यावहारिक रूपको अपने जीवन में उतार कर वीर-भगवान्के शासनकी अद्वितीय लोकोपकारिताको सिद्ध करने मे समर्थ होंगे।

---

'मैं' और 'मेरे' के जो भाव हैं, वे घमण्ड और खुदनुमाईके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो मनुष्य उनका दमन कर लेता है वह देवलोकसे भी उच्चलोक को प्राप्त होता है।'

'दुनियामे दो चीजें हैं जो एक दूसरे से बिल्कुल नहीं मिलतीं। धन-सम्पत्ति एक चीज है और साधुता तथा पवित्रता बिल्कुल दूसरी चीज'।

—तिरुवल्लुवर

# क्रान्ति पथे

( १ )

तोड़ो मृदुल वल्लकी के ये
सिसक सिसक रोते से तार,
दूर करो संगीत कुञ्ज से
कृत्रिम फूलों का शृङ्गार !

( २ )

भूलो कोमल, स्फीत स्नेह-स्वर
भूलो क्रीड़ा का व्यापार,
हृदय पटल से आज मिटा दो
स्मृतियों का अभिनय-आगार!

( ३ )

भैरव शंख नाद की गूंज
फिर फिर वीरोचित ललकार,
मुरझाए हृदयों में फिर से उठे
गगन भेदी हुङ्कार !

( ४ )

धधक उठे अन्तस्तल में फिर
क्रान्ति गीतिका की झंकार—
विह्वल, विकल, विवश, पागल
हो नाच उठे उन्मद संसार !

( ५ )

दाप्त हो उठे उरस्थली में
आशा की ज्वाला साकार,
नस नस में उद्दण्ड हो उठे
नव यौवन रस का सञ्चार !

( ६ )

तोड़ो वाद्य, छोड़ दो गायन,
तज दो सकरुण हाहाकार;
आगे है अब युद्ध-क्षेत्र—फिर,
उसके आगे—कारागार !

—भग्नदूत

# गोत्रकर्माश्रित ऊँच-नीचता — (ले० श्री० बा० सूरजभानुजी, वकील)

इस लेखके लेखक श्रद्धेय बाबू सूरजभानजी वकील समाजके उन पुराने प्रमुख सेवकों एवं लेखकों में से हैं जिन्होंने शुरू शुरूमें समाज को ऊंचा उठाने, उसमें जीवन फूकने और जागृति उत्पन्न करनेका भारी काम किया था। आज जैन समाजमें सभा-सोसाइटियो की स्थापना, आश्रमों-विद्यालयोंकी योजना, वेश्या-नृत्यादि जैसी कुरीतियोंका निवारण, ग्रन्थों तथा पत्रों का प्रकाशनादिरूपसे जो भी जागृतिका कार्य देखने में आता है वह सब प्रायः आपकी ही बीजरूप सेवाओं का प्रतिफल है। अर्से से वृद्धावस्था आदि के कारण आप कुछ विरक्तसे हो गये थे और आपने लिखना-पढ़ना सब छोड़ दिया था; लेकिन बहुत दिनोंसे मेरी आप से यह बराबर प्रेरणा और प्रार्थना रही है कि आप वीर-सेवा-मन्दिरमें आकर सेवा कार्य मे मेरा हाथ बटाएँ और अपना शेष जीवन सेवामय होकरही व्यतीत करें। बहुत कुछ आशा-निराशाके बाद अन्त को मेरी भावना सफल हुई और अब बाबू साहब कई महीनेसे वीर-सेवा-मन्दिरमें विराज रहे हैं। इस आश्रममें आते ही आपने अपनी निःस्वार्थ सेवाओं से आश्रम-वासियोंको चकित कर दिया! आप दिन-रात सेवा-कार्य में लगे रहते हैं, चर्चा-वार्ता करते हुए नहीं थकते, प्रति दिन दो घंटे कन्या-विद्यालयमें कन्याओंको शिक्षा देते हैं, दो घटे शास्त्र-सभामें व्याख्यान करते हैं और शेष सारा समय आपका ग्रन्थों पर से खोज करने तथा लेख लिखने-जैसे गम्भीर कार्य में ही व्यतीत होता है। यह लेख आपके उसी परिश्रम का पहला फल है, जिसे प्रकाशित करनेमें 'अनेकान्त' अपना गौरव समझता है। आशा है अब आपके लेख बराबर 'अनेकान्त' के पाठकों की सेवा करते रहेंगे। इस लेखमें विद्वानोंके लिये विचारकी पर्याप्त सामग्री है। विद्वानो को उस पर विचार कर अपना अभिमत प्रकट करना चाहिये, जिससे यह विषय भले प्रकार स्पष्ट होकर खूब रोशनी में आ जाय। —सम्पादक

कर्मकी आठ मूल प्रकृतियों में 'गोत्र' नाम का भी एक कर्म है, जो जीवके असली स्वभाव को घात नहीं करता, इसी कारण अघातिया कहलाता है। केवल-ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अर्थात् तेरहवे गुण-स्थानमें भी इसका उदय बना रहता है, इतना ही नहीं किन्तु चौदहवे गुणस्थानमें भी अन्त समय के पूर्व तक इसका उदय बराबर चला जाता है। चौदहवेंके अन्त समयमें इसकी व्युच्छित्ति होती है, जैसा कि श्री गोम्मटसार—कर्मकाण्ड के निम्न वाक्यसे प्रकट है—

*तदियेक्क मणुवगदी,पंचिदियसुभगतसतिगादेज्ज।*
*जसतित्थं मणुवाऊ, उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥*
गाथा २७३

इससे यह बात भी स्पष्ट होजाती है कि गोत्र-कर्मसे जीवोंके भावोंका कोई खास सम्बन्ध नहीं है। जैन शास्त्रों मे इस कर्मके ऊँच और नीच ऐसे दो भेद बता कर यह भी बता दिया है कि अस्तित्व तो नीचगोत्रका भी केवल-ज्ञान प्राप्त करनेके बाद तेरहवें गुण-स्थानमें बना रहता है तथा १४वें गुणस्थानमे भी अन्तसमयके पूर्व तक पाया जाता है। यथा—

*णीचुच्चाणेकदर, बधुदया होंति संभवट्ठाणे।*
*दो सत्ता जोगित्ति य, चरिमे उच्चं हवे सत्तं ॥*
—गो० कर्म० ६३६

जब नीच गोत्रका अस्तित्व केवल-ज्ञान प्राप्त होनेके बाद सयोग-केवली और अयोगकेवली के भी बना रहता है और उससे उन आप्त-पुरुषोंके सच्चिदानन्द स्वरूपमें कुछ भी बाधा नहीं आती तब इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता

कि, नीच हो या उच्च, गोत्रकर्म अपने अस्तित्वमे जीवोंके भावों पर कोई असर नहीं डालता है।

गोम्मटसारके कर्मकाण्डमें ऊँच और नीच गोत्रकी जो पहचान बतलाई है वह इस प्रकार है—

*संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।*
*उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥ १३ ॥*

अर्थात्—कुलकी परिपाटीके क्रमसे चला आया जो जीवका आचरण उसको गोत्र कहते हैं; वह आचरण ऊँचा हो तो उसे 'ऊँचगोत्र' और नीचा हो तो 'नीचगोत्र' समझना चाहिये।

इस गाथामें कुल-परम्परासे चले आये ऊँच-नीच आचरणसे ही ऊँच-नीच गोत्रका भेद किया गया है अर्थात् ऊँच-नीच गोत्रके पहचाननेमें कुलका आचरण ही एकमात्र कारण बतलाया है। इससे अब केवल यह बात जाननेको रह गई कि इस आचरणसे सम्यक् चारित्र और मिथ्या चारित्रसे—खरे खोटे धर्माचरणसे—मतलब है या लौकिक आचरणसे—अर्थात् लोक-व्यवहारमें एक तो व्यवहार-योग्य कुल वाला होता है, जिसको आजकलकी भाषामें नागरिक कहते हैं और दूसरा ठग-डकैत आदि कुल वाला होता है, जो लोक-व्यवहारमें व्यवहारयोग्य नहीं माना जाता—निंद्य गिना जाता है, अथवा यों कहिये कि एक तो सभ्य कहे जाने वालोंका कुल होता है और दूसरा उन लोगोंका जो असभ्य कहे जाते हैं। इनमें से कौनसे कुलका आचरण यहाँ अभिप्रेत है?

सर्वार्थसिद्धिमें, श्रीपूज्यपाद स्वामीने, तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ८ सूत्र १२ की टीका लिखते हुए, ऊँच-नीच गोत्र की निम्न पहचान बतलाई है।

*यस्योदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रं।*
*यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥*

अर्थात्—जिसके उदयसे लोकमान्य कुलोंमें जन्म हो वह उच्च गोत्र और निंद्य अर्थात् बदनाम कुलोंमें जन्म हो तो वह नीच गोत्र। ऐसा ही लक्षण ऊँच-नीच गोत्रका श्रीअकलंकदेवने राजवार्तिकमें और विद्यानन्दस्वामीने श्लोकवार्तिकमें दिया है। इससे इतनी बात तो बिलकुल स्पष्ट होजाती है कि सम्यक् चारित्र और मिथ्या चारित्र अर्थात् धर्माचरण-अधर्माचरणसे यहाँ कोई मतलब नहीं है—एकमात्र लौकिक व्यवहारमें ही मतलब है। और यह बात इस कथनसे और भी ज्यादा पुष्ट हो जाती है कि 'सबही देव और भोगभूमिया जीव—चाहे वे सम्यग्दृष्टि हों वा मिथ्या-दृष्टि—जो अणुमात्र भी चारित्र नहीं ग्रहण कर सकते हैं वे तो उच्चगोत्री हैं, परन्तु सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर्थात् हाथी, घोड़ा, बैल, बकरी आदि देशचारित्र धारण कर सकने वाले—पंचमगुणस्थान तक पहुँच कर श्रावक के व्रत तक ग्रहण करनेवाले—जीव नीच-गोत्री ही हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि जो व्रती-श्रावकके योग्य धर्माचरण धारण नहीं कर सकते वे तो उच्चगोत्री और जो धारण कर सकते हैं वे नीचगोत्री। इससे ज्यादा और क्या सबूत इस बातका हो सकता है कि गोत्रकर्मकी ऊँच-नीचताका धर्म-विशेषसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका आधार एकमात्र लोकमें किसी कुलकी ऊँच-नीच-मान्यता है, जो प्रायः लोक-व्यवहार पर अवलम्बित होती है। लोकमें देव शक्तिशाली होने के कारण ऊँचे माने जाते हैं, इस कारण वे तो उच्चगोत्री हुए और पशु जो अपने पशुपनेके कारण हीन माने जाते हैं वे नीचगोत्री ठहरे।

'सब ही देव उच्चगोत्री हैं' यह बात हृदयमे धारण करके, जब हम उनके भेद-प्रभेदो तथा जातियो और कृत्यो की तरफ ध्यान देते हैं तो यह बात और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाती है कि गोत्रकर्म क्या है और उसने ससारभरके सारे प्राणियोको ऊँच-नीच रूप दो भागों मे किस तरह बाट रक्खा है। मोटे रूपसे देव चार प्रकारके है—भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी और कल्पवासी अथवा वैमानिक। इनमे से भवनवासी, व्यतर और ज्योतिषी देवो मे सम्यग्दृष्टि जन्म ही नही लेता—इन कुलों मे पैदा ही नही होता है। इन सबके प्रायः कृष्ण, नील, कापोत ये तीन खोटी लेश्याएँ ही होती हैं, चौथी पीत लेश्या तो किंचित्मात्र ही हो सकती है। यथा—

*कृष्णा नीला च कापोता लेश्याश्च द्रव्यभावतः।*
*तेजोलेश्या जघन्या च ज्योतिषान्तेषु भाषिताः॥*

—हरिवंशपुराण, ६-१०८

बाकी रहीं पद्म और शुक्ल दो उत्तम लेश्याएँ, ये उनके होती ही नही हैं। परिणाम उनके प्रायः अशुभ ही रहते हैं और इसी से वे बहुधा पाप ही उपार्जन किया करते हैं। परन्तु सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके छहो लेश्याएँ होती हैं अर्थात् पीत पद्म और शुक्ल ये तीनों पुण्य उपजानेवाली लेश्याएँ भी उनके हुआ करती हैं*। इस प्रकार धर्माचरण बहुत कुछ उच्च हो जाने पर भी सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च तो नीच गोत्री ही बने रहते हैं और पापाचारी होने पर भी भवन वासी-व्यतर-जैसे देव उच्चगोत्री कहलाते हैं। साराश यह कि धर्म-अधर्म-रूप प्रवर्तने, पाप-पुण्यरूप क्रियाओं मे रत रहने अथवा सम्यग्दृष्टि -मिथ्यादृष्टि होने पर उच्च और नीच गोत्रका कोई भेद नहीं है— धर्म विशेषसे उसका कोई सम्बन्ध ही नही है। उसका सम्बन्ध है एकमात्र लोकव्यवहार-से।

कल्पवासी देव भी सब एक समान नहीं होते— उनमे भी राजा, प्रजा, सिपाही, प्यादे, नौकर, चाकर और किल्विष आदि अनेक जातिया होती हैं। पाप कर्म के उदयसे चाडालों के समान नीच काम करने वाले, नगरसे बाहर रहनेवाले और अछूत माने जानेवाले नीच जाति के देव 'किल्विष' कहलाते हैं। अनेक देव हाथी घोड़ा आदि बनकर इन्द्रादिक की सवारी का काम देते हैं, परन्तु ये सब भी उच्च गोत्री ही हैं।

भवनवासी भी अनेक प्रकार के हैं, जिनमे से अम्बावरीष आदि असुरकुमार जातिके देव प्रथम नरक के ऊपरके हिस्सेके दूसरे भागमे रहते हैं। पूर्व भवमे अति तीव्र सक्लेश भावोंसे जो पापकर्म उपार्जन किया था, उसके उदयसे निरन्तर सक्लेश-युक्त परिणाम वाले होकर ये नारकियों को दुख पहुँचाने के वास्ते नरककी तीसरी पृथिवी तक जाते हैं×, जहा नारकियोको पिघला हुआ गरम लोहा पिलाया जाता है, गरम लोहे के खम्भों से उनके शरीर को बाधा जाता है, कुल्हाड़ा-बसूला आदि से उनका शरीर छीला जाता है, पकते हुए गरम तेल मे पकाया जाता है, कोल्हू मे पेला जाता है,

---

* "णरतिरियाणं ओघो" (गो० जी० ५३०)। टीका—'नरतिरश्चा प्रत्येक ओघ. सामान्योत्कृष्ट-षट्लेश्याः स्युः'—केशववर्णी। 'षट्नुतिर्यक्षु० २६७' —पचसग्रहे अमितगतिः।

× पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण सक्लेश-परिणामेन यदुपार्जित पापकर्म तस्योदयात्सतत क्लिष्टा. सक्लिष्टा असुराः सक्लिष्टासुरा.' । इत्यादि – सर्वार्थसिद्धि ३-५

इत्यादिक अनेक प्रकार की वेदनाएँ नारकियोंको दिलवाकर ये असुरकुमार अपना खेल किया करते हैं। परन्तु ऐसा नीचकृत्य करते रहने पर भी ये उच्चगोत्री ही बने रहते हैं।

व्यंतरदेवोंकी भी यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच आदि अनेक जातिया हैं। इनमेंसे भूत, पिशाच और राक्षसों के कृत्यों का वर्णन करनेकी कोई ज़रूरत मालूम नहीं होती। इनकी हृदय-विदारक कहानियां तो कथा-शास्त्रों से अक्सर सुननेमें आती रहती हैं. भूत-पिशाचोंके कृत्यों को भी प्रायः सभी जानते हैं और यह भी मानते हैं कि इनकी अत्यन्त ही नीच पर्याय है, जो इनको इनके पाप कर्मोंके कारण ही मिलती है। परन्तु ये सब देव भी उच्चगोत्री ही हैं।

हरिवंशपुराण का कथन है कि कंस को जब यह मालूम हुआ कि उसका मारनेवाला पैदा हो गया है तो उसने अपने पहले जन्म को सिद्ध की हुई देवियों को याद किया, याद करते ही वे तुरन्त हाज़िर हुई और बोलीं कि हम तुम्हारे वैरी को एक क्षण में मार डाल सकतीं हैं। कंसने उनको ऐसा ही करनेका हुक्म दिया, जिस पर उन्होंने कृष्णके मारनेकी बहुत ही तदवीरें कीं। सिद्ध की हुई ऐसी देवियोंके ऐसे ऐसे अनेक दुष्कृत्योंकी कथाएँ जैन ग्रन्थोंमें भरी पड़ी हैं। फिर भी ये सब देविया उच्च गोत्री ही हैं।

अब ज़रा तिर्यंचोंकी भी जाच कर लीजिए और सबसे पहले वनस्पति को ही लीजिए. जिसमें चन्दन, केसर और अगर आदि वनस्पतिया बहुत ही उच्च जातिकी हैं, बड़-पीपल भी बहुत प्रतिष्ठा पाते हैं और २० करोड़ हिंदुओंके द्वारा पूजे जाते हैं, फूलों में कमल तो सब से श्रेष्ठ है ही— उसकी उपमा तो तीर्थंकरों के अंगों तक को दी गई है, चम्पा, चमेली, गुलाब भी कुछ कम प्रतिष्ठा नहीं पा रहे हैं; फलों में भी अनार, संतरा, अंगूर, सेब और आम बहुत क़दर पाए हुए हैं।

पशुओंमें भी सफ़ेद हाथीकी बड़ी भारी प्रतिष्ठा है: सिंह तो मृगराज व वनका राजा माना ही जाता है, जिस के बल-पराक्रम-साहस-दृढ़ता और निर्भीकतादिकी उपमा बड़े बड़े राजा महाराजाओं तथा महान् तपस्वियों तक को दी जाती है और जिसके दहाड़ने की आवाज़ से अच्छे अच्छों के छक्के छूट जाते हैं. गौ माता २० करोड़ हिंदुओं की तो पूज्य देवता है ही, किन्तु संसार के अन्य भी सब ही मनुष्य उसके अमृतोपम दूध के कारण उसको बहुत उत्कृष्ट मानते हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया आदि देशोंमें तो, जहा गायके सिवाय भैंस-बकरीका दूध पीना पसन्द नहीं किया जाता है, गायों की बड़ी भारी टहल की जाती है, अपनेसे भी ज्यादा उनको इतना खिलाया-पिलाया जाता है कि वहा की गायें एक बार दुहनेमें एक मन भर तक दूध देने लग गई हैं और पाच हज़ारसे भी अधिक मूल्यको मिलती हैं। इतना सब कुछ होने पर भी ये सब तिर्यंच नीचगोत्री हैं। तिर्यंचों की हज़ारों-लाखों जातियों में आकाश-पाताल-का अन्तर होने और उनमें बहुत कुछ ऊंच-नीचपना माना जाने पर भी गोत्र कर्म के बटवारे के अनुसार सब ही तिर्यंच नीच गोत्र की पंक्ति में बिठाये गये हैं।

जिस प्रकार देवों की अनेक जातियों में ऊँच-नीच-का साक्षात् भेद होने पर भी सब देव उच्चगोत्री और तिर्यंचों में अनेक प्रतिष्ठित तथा पूज्य जातिया होने पर भी सब तिर्यंच नीच गोत्री हैं उसी प्रकार नरकोंमें भी यद्यपि प्रथम नरकसे दूसरे नरकके नारकी नीच हैं,

दूसरेसे तीसरेके, तीसरेसे चौथेके, चौथेसे पाचवेके, पाचवेंसे छठेके और छठेसे सातवेके नीच हैं, परन्तु ये सब नारकी भी नीच गोत्रकी ही पक्तिमें रखे गए हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य गति रूप जो बटवारा ससारीजीवोंका हो रहा है गोत्रकर्म के अनुसार उसमे से एक एक गति के सारे ही जीव ऊँच वा नीचरूप एकही पक्तिमे रक्खे गए हैं। सब ही नारकी तथा सब ही तिर्यंच नीचगोत्री और सवही देव उच्चगोत्री, ऐसा ठहराव हो रहा है।

अब रहे मनुष्य, उनमे भी अनेक भेद हैं। अफ-रीका आदिके हवशी तथा अन्य जगली मनुष्य कोई तो ऐसे हैं जो आग जलाना तक नहीं जानते, स्त्री-पुरुष सब ही नगे रहते हैं, जगल के जीवों का शिकार करके कच्चा ही खाजाते हैं, लड़ाईमे जो वैरी हाथ आ जाय उसको भी मारकर खाजाते हैं, कोई ऐसे हैं जो मनुष्यों को खाते तो नहीं हैं, किंतु मनुष्योंका मारना ही अपना मनुष्यत्त्व समझते हैं, जिसने अधिक मनुष्य मारे हों और जो उनकी खोपरिया अपने गलेमे पहने फिरता हो उस ही को स्त्रिया अधिक चाव से अपना पति बनाती हैं, कोई ऐसे हैं जो माता पिताके बूढे होने पर उनको मार डालते हैं, कोई ऐसे हैं जो अपनी कमजोर सन्तान को मार डालते हैं। यहा इस आर्यवर्तमे भी उच्चवर्ण और उच्चगोत्रका अभिमान रखने वाले क्षत्रिय राजपूत अपनी कन्याओं को पैदा होते ही मार डालते थे और इसको अपने उच्चकुल का बड़ा भारी गौरव समझते थे, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों ही उच्चवर्ण और उच्चगोत्रके माननीय पुरुष अपने घरकी स्त्रियोंको विधवा होने पर पति के साथ जल मरने का प्रोत्साहन देते थे और उनके जल मरने पर अपना भारी गौरव मानते थे।

अफरीका के हब्शियों की अन्य भी अनेक जातिया हैं, जिनमें एक दूसरेकी अपेक्षा बहुत कुछ नीचता-ऊँचता है। यहा हिंदुस्तान मे भी अनेक ऐसी जातिया थीं और कुछ अब भी हैं जो मनुष्यहत्या और लूटमार-को ही अपनी जातिका गौरव समझते हैं। भील, गौंड कोल, सथाल और कोरकू आदि जो जगलों में रहते हैं और खेती-वाड़ी वा मेहनत-मज़दूरी करते है वे उन डकैतोंसे तो श्रेष्ठ हैं, तो भी नगरमे रहने वालोसे तो नीच ही हैं। नगरनिवासियोंमे भी कोई चाडाल हैं, कोई विष्ठा उठाते हैं, कोई गदगी साफ करते हैं, कोई मरे हुए पशुओंका चमड़ा उतारनेका काम करते हैं, अन्य भी अनेक जातिया है जो गदा काम करती हैं, कोई जाति धोवीका काम करती है, कोई नाईका, कोई लुहारका, कोई वाढीका कोई सेवा-चाकरीका, कोई रोटी पकानेका, कोई पानी भरनेका, कोई खेती, कोई-कोई वणज, व्यापारका, कोई ज़मींदार है और कोई सरदार इत्यादि। अन्य देशोंमे भी कोई राजघराना है, कोई बड़े बड़े लार्डों और पदवी-धारियोंका कुल है, कोई धर्म-उपदेशक हैं, कोई मेहनत मज़दूरी करने वालोंका कुल है कोई पूँजीपतियोका, इत्यादि अनेक भेद-प्रभेद हो रहे हैं। इस प्रकार मनुष्य जातिमें भी देवों और तिर्यंचो की तरह एक से एक ऊँच होते होते ऊँच-नीच की अपेक्षासे हजार श्रेणिया हो गई हैं, परन्तु मनुष्य जातिकी अपेक्षा वे सब एक ही हैं। जैसा कि आदि पुराण के निम्न वाक्य से प्रकट है —

*मनुष्यजातिरेकैव जातिकर्मोदयोद्भवा।*
*वृत्तिभेदा हि तद्भेदाचातुर्विध्यमिहाश्नुते॥*

अर्थात्—मनुष्यजाति नामा नाम कर्म के उदय से पैदा होने के कारण समस्त मनुष्यजाति एक ही है—

पेशे के भेदसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद किए गए हैं।

देवों मे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये जो चार भेद हैं उनके चार अलग निकाय हैं, इस कारण ज्योतिषी बदलकर वैमानिक नहीं हो सकता और न वैमानिक बदलकर ज्योतिषी ही बन सकता है। इस-ही प्रकार अन्य भी किसी एक निकाय का देव दूसरे निकायमे नहीं बदल सकता।

तिर्यंचो मे भी जो वृक्ष हैं वे कीडे-मकोड़े नहीं हो-सकते, कीड़े-मकोड़े पक्षी नहीं हो सकते, जो पक्षी हैं वे पशु नहीं हो सकते वनस्पतियो मे भी जो आम है वह अमरूद नहीं हो सकता, जो अनार है वह अगूर नहीं हो सकता पक्षियों मे भी तोता कबूतर नहीं हो सकता. मक्खी चील या कौआ नहीं बन सकता: पशुओं मे भी कुत्ता गधा नहीं बन सकता घोड़ा गाय नहीं बन सकता इत्यादि, परन्तु मनुष्यों मे ऐसा कोई भेद नहीं है। इसी से श्री गुणभद्राचार्यने कहा है—

*वर्णाकृत्यादिभेदना देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्*
*ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥*
*नास्ति जातिकृतो भेदो मनुष्याणा गवाश्ववत् ।*
*आकृतिग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्प्यते ॥*

—उत्तरपुराण पर्व ७४

अर्थात्—मनुष्योंके शरीरोंमे ब्राह्मणादि वर्णों की अपेक्षा आकृति आदि का कोई खास भेद न होनेसे और शूद्र आदिको के द्वारा ब्राह्मणी आदि मे गर्भ की प्रवृत्ति होसकनेसे उनमे जातिकृत कोई ऐसा भेद नहीं है जैसा कि बैल-घोड़े आदि मे पाया जाता है।

यह भेद न होनेके कारण ही तो भरत महाराजने म्लेच्छों की कन्याओंसे ब्याह किया है। आदिपुराण मे उन कन्याओंको 'कन्यारत्न' कहा है। इन म्लेच्छ कन्या-ओंके साथ ब्याह करनेके बाद वे ही भरत महाराज सयम धारण कर और केवलज्ञान प्राप्तकर उसही भव से मोक्ष गए हैं। भरत महाराजके साथियो ने भी म्लेच्छ-कन्याएँ ब्याही हैं। इसही प्रकार सबही समयोंमे उच्चजाति के लोग म्लेच्छ कन्याएँ ब्याहते आए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये सब ही शूद्र कन्याओंको ब्याह सकते हैं। ऐसी आज्ञा तो आदि पुराणमे स्पष्ट ही लिखी है ÷। हिंदुओं के मान्यग्रन्थ मनुस्मृतिमे भी ऐसा ही लिखा है ×। अबसे सौ दो सौ बरस पहले अरबके लोग अफरीका के हब्शियोंको जगली पशुओं की तरह पकड़ लाते थे, और देश देशान्तरोंमे लेजाकर पशुओं ही के समान बेच देते थे, जो खरीदते थे वे उनको गुलाम बनाकर पशु-समान ही काम लेते थे। अनुमान सौ बरस से गुलामी की प्रथा बन्द हो जानेके कारण वे लोग अब आज़ाद हो गए हैं और विद्याध्ययन करके बड़े बड़े विद्वान् तथा गुणवान बन गए हैं— यहा तक कि उनमे से कोई कोई तो अमरीका जैसे विशाल राज्यका सभापति चुना गया है और उसने बड़ी योग्यता के साथ वहाँ राज्य किया है।

मनुष्यपर्याय सब पर्यायोंमे उच्चतम मानी गई है, यहाँ तक कि वह देवोंसे भी ऊँची है, तब ही तो उच्चजाति के देव भी इस मनुष्य पर्यायको पाने के लिए लालायित रहते हैं, मनुष्य पर्यायकी प्रशसा सभी शास्त्रो ने मुक्त-कण्ठसे गाई है। यहा हमको मनुष्यजातिको देवोंसे उच्च सिद्ध नहीं करना है, केवल इतना ही करना है कि देवोंके समान मनुष्य भी सब उच्चगोत्री ही हैं। जिस प्रकार देवों-

÷ *शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्था स्वा ता च नैगमः ।*
*वहेत्स्वा ते च राजन्यः स्वा द्विजन्मा कचिच्च ताः ॥*

× *शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ।*
*ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥*

मे नौकर, चाकर, हाथी घोडा आदि सवारी बनाने वाले, चण्डालका काम करने वाले अछूत, भूत-प्रेत-राक्षस और व्यतर जैसे नीच काम करनेवाले पापी देव सबही उच्चगोत्री हैं, उसही प्रकार मनुष्य भी घटिया से घटिया और बढिया से बढिया सब ही उच्चगोत्री हैं। गोमटसार-कर्मकाण्ड गाथा न० १८ मे यह बात साफ तौर से बताई गई है कि नीच-उच्चगोत्र भावोंके अर्थात् गतियोंके आश्रित हैं। जिससे यह स्पष्टतया ध्वनित है कि नरक-भव और तिर्यञ्च-भव केसब जीव जिस प्रकार नीचगोत्री हैं उसी प्रकार देव और मनुष्य-भव वाले सब जीव भी उच्चगोत्री हैं। यथा—

*"भवमस्सिय णीचुच्च इदि गोद।"*

तत्वार्थसूत्र अध्याय ८ सूत्र २५ की प्रसिद्ध टीकाओं मे—सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमे—देव और मनुष्य ये दो गतिया शुभ वा श्रेष्ठ और उच्च बताई हैं और नरक तथा तिर्यंच ये दो गतिया अशुभ वा नीच, इसी कारण गोम्मटसार-कर्मकाण्ड गाथा २८५ मे मनुष्यगति और देवगति मे उच्चगोत्रका उदय बताया है। यथा—

*गदिआणुआउउदओ सपदे भूपुरणवादरे ताओ।*
*उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये॥*

इसी प्रकार गाथा २९० और २९४ के द्वारा नारकीयों तथा तिर्यंचो मे नीचगोत्रका उदय बताया है, जिससे चारो ही गतियोंका बटवारा ऊच और नीच दो गोत्रों मे इस प्रकार हो गया है कि नरक और तिर्यंच ये दो भव तो नीचगोत्री और देव तथा मनुष्य ये दो भव उच्चगोत्री है। 'जिस प्रकार सभी नारकी और सभी तिर्यंच नीचगोत्री हैं उसी प्रकार सभी देव और सभी मनुष्य उच्चगोत्री हैं, ऐसा गोमटसार मे लिखा है,' यह बात सुनकर हमारे बहुत से भाई चौंकेंगे! 'सभी देव उच्चगोत्री हैं,' इसका तो शायद उन्हें कुछ फिकर न होगा, परन्तु 'सभी मनुष्य उच्चगोत्री हैं', यह बात एकदम माननी उनके लिये मुश्किल जरूर होगी, इस कारण इसके लिये कुछ और भी प्रबल प्रमाण देनेकी ज़रूरत है। श्रीतत्त्वार्थसूत्रमे आर्य और म्लेच्छ ये दो भेद मनुष्य-जातिके बताये गये हैं, अगर प्रबल शास्त्रीय प्रमाणो से यह बात सिद्ध हो जावे कि म्लेच्छ खण्डोके म्लेच्छ भी सब उच्चगोत्री है तो आशा है कि उनका यह भ्रम दूर हो जायगा। अस्तु।

गोम्मटसार-कर्मकाण्ड गाथा २६७ और ३०० के कथनानुसार नीचगोत्रका उदय पाचवे गुणस्थान तक ही रहता है, इसके ऊपर नहीं* अर्थात् छठे गुणस्थान और उसके ऊपरके गुणस्थानोमे नीचगोत्रका उदय नहीं है अथवा यो कहिये कि नीचगोत्री पाचवे गुणस्थानसे ऊपर नहीं चढ सकता, छठा गुणस्थानी नहीं हो सकता और न सकल सयम ही धारण कर सकता है। बहुधा हमारे जैनी भाई श्रीधवल और जयधवल आदि सिद्धान्त ग्रन्थोंको नमस्कार करनेके वास्ते जैनविद्री-मूडविद्रीकी यात्रा करते हैं। उनमे से श्रीजयधवल ग्रन्थमे स्पष्ट तौर पर सिद्ध किया है कि म्लेच्छखण्डो के म्लेच्छ भी सकल सयम धारण कर सकते हैं—छठे गुणस्थानी मुनि-साधु हो सकते हैं। दिगम्बर आम्नाय मे यह शास्त्र बहुत ही ज्यादा माननीय है। इसके सिवाय, श्रीलब्धिसारकी

---

* *देसे तदियकसाया तिरिया उज्जोव णीचतिरियगदी। छट्ठे आहारदुगथीणतिय उदयवोच्छिण्णा॥ २६७॥*

*देसे तदियकसाया णीच एमेव मणुससामण्णे।*
*पज्जत्तेविय इत्थी वेदाऽपज्जत्तिपरिहीणा॥ ३००॥*

संस्कृत टीका में भी ज्यों का त्यों ऐसा ही कथन मिलता है। ये दोनों महान प्रमाण नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

*"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवो त्ति णासंकणिज्जं । दिसाविजयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टिआदीहिं सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजम-पडिवत्तीए विरोहाभावादो। अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेपत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीह विवक्षिताः ततो न किञ्चिद्विप्रतिषिद्धम्। तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावादिति।"*

—जयधवला, आरा-प्रति, पत्र ८२७-२८

*"म्लेच्छभूमिज-मनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यम्। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा तत्कन्यानां चक्रवर्त्यादि परिणीतानां गर्भेपत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेश-भाजः संयमसम्भवात् तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"*

—लब्धिसार-टीका (गाथा १९३ वीं)

इन दोनों लेखोंका भावार्थ इस प्रकार है कि— म्लेच्छ भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके सकल संयम कैसे हो सकता है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि दिग्विजय के समय चक्रवर्तीके साथ आए हुए उन म्लेच्छ राजाओंके, जिनके चक्रवर्ती आदिके साथ वैवाहिक सम्बन्ध उत्पन्न हो गया है, संयमप्राप्तिका विरोध नहीं है, अथवा चक्रवर्त्यादि के साथ विवाही हुई उनकी कन्याओं के गर्भ से उत्पन्न पुरुषोंके, जो मातृपक्षकी अपेक्षा म्लेच्छ ही कहलाते हैं, संयमोपलब्धिकी सम्भावना होनेके कारण; क्योंकि इस प्रकार की जाति वालों के लिये दीक्षाकी योग्यता का निषेध नहीं है।'

इन लेखोंमें श्रीआचार्य महाराजने यह बात उठाई है कि म्लेच्छ-भूमिमें पैदा हुये जो भी म्लेच्छ हैं उनके सकलसंयम होनेमें कोई शंका न होनी चाहिये—सभी म्लेच्छ सकलसंयम धारण कर सकते हैं, मुनि हो सकते हैं और यथेष्ट धर्माचरणका पालन कर सकते हैं। उनके वास्ते कोई खास रोक-टोक नहीं है। अपने इस सिद्धान्त को पाठकों के हृदय में बिठानेके वास्ते उन्होंने दृष्टान्त-रूपमें कहा है कि जैसे भरतादि चक्रवर्तियों की दिग्विजयके समय उनके साथ जो म्लेच्छ राजा आये थे अर्थात् जिन म्लेच्छ राजाओंको जीत कर अपने साथ आर्यखण्डमें लाया गया था और उनकी कन्याओं का विवाह भी चक्रवर्ती तथा अन्य अनेक पुरुषोंके साथ हो गया था, उन म्लेच्छ राजाओंके संयम ग्रहण करने में कोई ऐतराज नहीं किया जाता—अर्थात् जिस प्रकार यह बात मानी जाती है कि उनको सकलसंयम हो सकता है उसी प्रकार म्लेच्छखंडों में रहने वाले अन्य सभी म्लेच्छ आर्यखण्डोद्भव आर्यों की तरह सकल-संयम के पात्र हैं* ।

दूसरा दृष्टान्त यह दिया है कि जो म्लेच्छकन्याएँ चक्रवर्ती तथा अन्य पुरुषों से व्याही गई थीं उनके गर्भ-में उत्पन्न हुए पुरुष यद्यपि मातृपक्ष की अपेक्षा म्लेच्छ

---

*म्लेच्छखण्डों में तो काल भी चतुर्थ वर्तता है; जैसा कि त्रिलोकसार की निम्न गाथा नं० ८८३ से प्रकट है—

*भरहइरावदपणपण मिलेच्छखंडेसु खयरसेढीसु।*
*दुस्समसुसमादीदो अंतोत्ति य हाणिवड्ढी य॥*

ही थे—माताकी जाति ही सन्तानकी जाति होती है, इस नियमके अनुसार जाति उनकी म्लेच्छ ही थी—तो भी मुनिदीक्षा ग्रहण करनेका उनके वास्ते निषेध नहीं है—वे सकल-सयम ग्रहण कर सकते है। इसी प्रकार म्लेच्छखड के रहने वाले दूसरे म्लेच्छ भी सकल सयम ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु सकल सयम उच्चगोत्री ही ग्रहण कर सकते हैं, इस कारण इन महान् पूज्य ग्रन्थो के उपर्युक्त कथनसे कोई भी सदेह इस विषयमे बाकी नहीं रहता कि म्लेच्छ खंडोके रहने वाले सभी म्लेच्छ उच्चगोत्री हैं। जब कर्मभूमिज म्लेच्छ भी सभी उच्चगोत्री ह औरआर्य तो उच्चगोत्री हैं ही, तब सार यही निकला कि कर्मभूमि के सभी मनुष्य उच्चगोत्री हैं और सकल सयम ग्रहण करने की योग्यता रखते हैं।

अब रही भोगभूमिया मनुष्योकी बात, जो खेती वा कारीगरी आदि कोई भी कर्म नहीं करते, कल्पवृक्षोसे ही अपनी सब जरूरतें पूरी कर लेते हैं, लड़का और लड़की दोनों का इकट्ठा जोड़ा मॉके पेट से पैदा होता है, वे ही आपसमें पति-पत्नी बन जाते हैं और सन्तान पैदा करते हैं। ये सबभी उच्चगोत्री ही कहे गए हैं। हॉ, इनके अतिरिक्त अन्तरद्वीपोमे अर्थात् लवणसमुद्रादि के टापुओंमे रहनेवाले कुभोगभूमिया मनुष्य भी हैं, जो अन्तरद्वीपज म्लेच्छ कहलाते हैं। वे भी कर्मभूमियों जैसे कोई कर्म नही करते और न कर सकते हैं। इनमेसे कोई सींगवाले, कोई पूॅछवाले, कोई ऐसे लम्बे कानों वाले जो एक कानको ओढ लेवे और एकको बिछा लेवे कोई घोड़े-जैसा मुखवाले, कोई सिंह-जैसा, कोई कुत्ते-जैसा, कोई भैंसे-जैसा, कोई उल्लू-जैसा, कोई बदर-जैसा, कोई हाथी-जैसा, कोई गाय-जैसा. कोई मैंढे-जैसा और कोई सूअर-जैसा मुख वाले हैं, प्राय पेडो पर रहते हैं—कोई गुफाओं में भी, कच्चे फल-फूल खाकर ही अपना पेट भरते हैं, कोई एक जघावाले भी हैं और मिट्टी खाते हैं। इनकी शकलो तथा पेड़ो पर रहने और फल-फूल खाने आदिसे तो यही मालूम होता है कि, ये पशु ही हैं। सम्भव है कि खड़े होकर दो पैरोंसे चलने आदिकी कोई बात इनमे ऐसी हो जिससे ये मनुष्योंकी गिनतीमे गिन लिये गये हो। परन्तु कुछ भी हो, अपनी आकृति, प्रवृत्ति और लोक-पूजित कुलोमे जन्म न होनेके कारण इनका गोत्र तो नीच ही समझना चाहिये।

नीचगोत्री जीव अधिकसे अधिक पॉचवॉ गुणस्थान प्राप्त कर सकता है—अर्थात् श्रावकके व्रत धारण कर सकता है—सकलसयम धारण कर छठा गुणस्थान प्राप्त नही कर सकता, जैसा कि पूर्वोद्धृत गोम्मटसार, कर्मकाण्ड गाथा २९७,३०० से प्रकट है। इस कथन पर पाठक यह आशका कर सकते हैं कि जब गोत्रकर्मका धर्माचरणसे कोई खास सम्बन्ध नहीं है, महापापी असुरकुमार, भूत-पिशाच तथा राक्षस-जातिके देव भी उच्चगोत्री हैं और उच्चगोत्रका लक्षण एकगोत्र लोकमान्य कुलो मे पैदा होना ही है, तब यह बात कैसे सगत हो सकती है कि नीचगोत्री पचमगुणस्थान तक ही धर्माचरण कर सकता है?

इस विषयमे पाठकगण जब इस बातपर दृष्टि डालेंगे कि वे नीचगोत्री हैं कौन? तब उनकी यह शका बिल्कुलही निर्मूल होकर उल्टी यह शका खड़ी हो जायगी कि वे तो पचमगुणस्थानी भी कैसे हो सकते हैं? नारकी, तिर्यंच और अन्तरद्वीपज ये ही तो नीचगोत्री हैं। इनमे से नारकी बेचारे तो भयकर दुखोमे पड़े रहनेके कारण ऐसे महा सक्लेश परिणामी रहते हैं कि उनके लिए तो किसी प्रकारका व्रतधारण करना ही अर्थात् पचमगुणस्थानी होना भी असम्भव बताया गया है। तिर्यंचोमे भी सबसे

ऊँची अवस्थावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, उनकी भी ऐसी नीच अवस्था है कि उनमें न तो आपसमें बातचीत करनेकी ही शक्ति है, न उपदेशके सुनने-समझनेकी, कोई नया विचार या कोई नई बात भी वे नहीं निकाल सकते। इसीसे वे अपने जीवनके नियमोंमे भी कोई उन्नति या परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। कौवा जैसा घोंसला बनाता चला आ रहा है वैसाही बनाता है, चिड़ियाकी जो रीति है वह वैसा ही करती है, बयाकी जातिमें जैसा घोंसला बनता चला आरहा है वैसा ही वह बन ता है, शहदकी मक्खी और भिरड़ भी अपनी-अपनी जातिके नियमके अनुसार जैसा छत्ता बनाती आरही है वैसा ही बनाती है—रत्तीभर भी कोई फेर-फार नहीं हो सकता है। ऐसा ही दूसरे सब तिर्यंचोंका हाल है। इसी कारण उनकी बुद्धिको पश्चिमी विद्वानोंने Instinct of Bruts अर्थात् पशु-बुद्धि कहा है, जो बहुधाकर उसी प्रकार प्रवर्तती है जिस प्रकार कि पुद्गलपदार्थ बिना किसी सोच समझ के अपने स्वभावानुसार प्रवर्तते हैं। ऐसी दशा मे संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच किस प्रकार सप्ततत्त्वोंका स्वरूप समझकर सम्यग्दर्शन ग्रहण कर सकते हैं और सम्यग्दृष्टि होने पर किस प्रकार श्रावकके व्रत धारण कर पचम गुणस्थानी हो सकते हैं ? यह बात असम्भवसी ही प्रतीत होती है; परन्तु उनको जाति-स्मरण हो सकता है अर्थात् किसी भारी निमित्त कारण के मिलने पर पूर्वभवके सब समाचार याद आ सकते हैं, जिससे उनकी बुद्धि जाग्रत होकर वे धर्म का श्रद्धान भी कर सकते हैं और नाममात्रको कुछ सयमभी धारण कर सकते हैं। इस प्रकार नीचगोत्रियोंकी अत्यन्त पतित अवस्था होने से उनमें सकल सयम की अयोग्यता पाई जाती है और इसी कारण यह कहा गया है कि नीच-गोत्री पचम गुणस्थान से ऊपर नहीं चढ सकते हैं।

यही हाल अन्तरद्वीपजोंका समझ लेना चाहिये, जो मोटे रूप मे तिर्यंचोंके ही समान मालूम होते हैं। उनके अस्तित्वका पता आजकल मालूम न होनेसे और शास्त्रों मे भी उनका विशेष वर्णन न मिलनेके कारण उनकी बाबत अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। हाँ, उनका नाम आते ही इतना अफ़सोस ज़रूर होता है कि पशु-समान अपनी पतित अवस्थाके कारण उनका नीचगोत्री होना तो ठीक ही है, परन्तु उनको मनुष्योंकी गणनामें रखनेसे मनुष्यजाति नाहक़ ही इस बातके लिये कलंकित होती है कि उनमें भी नीचगोत्री होते हैं।

जान पड़ता है अन्तरद्वीपजोंको म्लेच्छ-मनुष्योंकी कोटिमें शामिल कर देनेसे ही मनुष्योंमे ऊंच-नीचरूप उभयगोत्रकी कल्पनाका जन्म हुआ है—किसी ने अन्तरद्वीपजोंको भी लक्ष्यमें रखते हुए, मनुष्योंमें सामान्यरूपमें दोनों गोत्रोंका उदय बतला दिया, तब दूसरोंने, वैसी दृष्टि न रखते हुये, अन्तरद्वीपजोंसे भिन्न मनुष्योंमें भी, ऊँच-नीचगोत्रकी कल्पना कर डाली है। अन्यथा, जो वास्तवमें मनुष्य हैं उनमें नीचगोत्रका उदय नहीं—उन्हें तो बराबर ऊँचा उठते तथा अपनी उन्नतिकी ओर क़दम बढाते हुए देखते हैं। उदाहरण के लिये अफरीकाकी पतितसे पतित मनुष्यजाति भी आज उन्नतिशील है—अपनी कहने, दूसरोंकी सुनने, उपदेश ग्रहण करने, हिताहितको समझने, व्यवहार परिवर्तन करने, और अन्य भी सब प्रकारसे उन्नतिशील होनेकी उसमें शक्ति है। उसके व्यक्तियोंमें Instinct of Bruts अर्थात् पशुबुद्धि नहीं है, किंतु मनुष्यों-जैसा उन्नतिशील दिमाग़ है; तबही तो वे ईसाई पाद-रियों आदिके उपदेशसे अपने असभ्य और कुत्सित व्यव-

हारोंको छोड़कर दिनप्रतिदिन उन्नति करते चले जा रहे हैं और सभ्य बनने लग गये हैं। इन्ही मे से जो लोग अरबवालोंके द्वारा पकड़े जाकर अमरीका मे गुलाम बनाकर बेचे गये थे उन्होंने तो ऐसी अद्भुत उन्नति करली है कि जिसको सुनकर अचम्भा होता है। उनमेंसे बहुतसे तो आजकल कालिजों मे प्रोफैसर हैं और कई अन्य प्रकारसे अद्वितीय विद्वान हैं, यहाँ तक कि कोई कोई तो अमरीका जैसे विशाल द्वीपके मुख्य शासक (President) रह चुके हैं। वास्तवमें सबही कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंकी एक मनुष्य जाति है, उनमे परस्पर घोड़े-बैल जैसा अन्तर नहीं है, सभी मे सासारिक और परमार्थिक उन्नतिके ऊँचेसे ऊँचे शिखरपर पहुँचने की योग्यता है, और वे सब ही नारकियो, तिर्यंचो तथा अन्तर-द्वीपजोंसे बिल्कुलही विलक्षण हैं और बहुत ज्यादा ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित हैं—इसीसे उच्चगोत्री हैं।

गोमटसार और श्रीजयधवल आदि सिद्धात ग्रन्थों के अनुसार यह बात सिद्ध करनेके बाद कि आर्य और म्लेच्छ सब ही कर्मभूमिया मनुष्य उच्चगोत्री हैं, अब हम श्रीविद्यानन्द स्वामीके मतका उल्लेख करते हैं, जो उन्होंने श्लोकवार्तिक अध्याय ३, सूत्र ३७ के प्रथम वार्तिक-की निम्न टीकामे दिया है—

*"उच्चैर्गोत्रोदयादेरार्याः, नीचैर्गोत्रोदयादेश्च म्लेच्छाः।"*

अर्थात्—उच्च गोत्रके उदयके साथ अन्य कारणोंके मिलने से आर्य और नीचगोत्रके उदय के साथ अन्य कारणोंके मिलनेसे म्लेच्छ होता है*। भावार्थ जो आर्य है उसके उच्चगोत्र का उदय ज़रूर है और जो म्लेच्छ है उसके नीच गोत्रका उदय अवश्य है। आर्य और म्लेच्छ कौन हैं, इसको श्रीअमृतचन्द्राचार्यने तत्वार्थसार अध्याय १, श्लोक २१२ मे इस प्रकार बतलाया है—

*आर्यखण्डोद्भवा आर्या म्लेच्छाः केचिच्छकादयः।*
*म्लेच्छखण्डोद्भवा म्लेच्छा अन्तरद्वीपजा अपि॥*

अर्थात्—जो मनुष्य आर्यखण्ड मे पैदा हों वे सब आर्य हैं, जो म्लेच्छखण्डोंमे उत्पन्न होने वाले शकादिक हैं वे सब म्लेच्छ हैं। और जो अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्न होते हैं वे भी सब म्लेच्छ ही हैं। श्लोकवार्तिकमे म्लेच्छों-का पता इस प्रकार दिया है

*"तथान्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः परे स्युः कर्मभूमिजाः।"...*
*"कर्मभूमिभवा म्लेच्छाः प्रसिद्धा यवनादयः।"...*

अर्थात्—म्लेच्छोंके 'अन्तरद्वीपज' और 'कर्मभूमिज' ऐसे दो भेद हैं। जो कर्मभूमिमे पैदा हुए म्लेच्छ हैं वे यवन आदि प्रसिद्ध हैं। इससे स्पष्ट है कि श्रीविद्यानन्द आचार्यने यवनादिकको म्लेच्छखण्डोद्भव म्लेच्छ माना है, और इस तरह उनके तथा अमृतचन्द्राचार्यके कथन की एक-वाक्यता सिद्ध होकर दोनों की सगति ठीक बैठ जाती है — शकादिक और यवनादिक कहने में वस्तुत·

---

** श्री गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रथों के उक्त कथनकी रोशनी में विद्यानन्दाचार्यका यह आर्य-म्लेच्छ विषयक स्वरूप-कथन कुछ सदोष जान पडता है। पूज्यपाद-अकलंकादि दूसरे किसी भी प्राचीन आचार्य का ऐसा अभिमत देखने में नहीं आता। अतः जिन विद्वानों को यह कथन निर्दोष जान पडे उनसे निवेदन है कि वे स्वरूपकथन में प्रयुक्त हुए 'आदि' शब्द के वाच्य को स्पष्ट करते हुए आगम तथा सिद्धातों ग्रन्थों के इस कथन की सगति ठीक करने की कृपा करें, जिससे यह विषय अधिक प्रकाश में लाया जा सके।*

—सम्पादक

कोई अन्तर नहीं। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में शक, यवन, शबर, पुलिन्दादिको कर्मभूमिज म्लेच्छ बतलाया ही है। अस्तु ये शक यवनादिक कौन थे और अब इनका क्या हुआ? इसपर एक विस्तृत लेख के लिखे जानेकी ज़रूरत है जिससे यह विषय साफ़-साफ़ रोशनी में आजाय। हो सका तो इसके अनन्तर उसके लिखनेकी कोशिश की जावेगी।

यहाँ सबसे पहले यह जाननेकी ज़रूरत है कि आर्य-खंडकी हद कहाँ तक है। भरतक्षेत्रकी चौड़ाई ५२६ योजन ६ कला है। इसके ठीक मध्यमें ५० योजन चौड़ा विजयार्ध पर्वत है, जिसे घटाकर दो का भाग देनेसे २३८ योजन ३ कलाका परिमाण आता है, यही आर्य-खण्डकी चौड़ाई बड़े योजनों से है, जिसके ४७६००० से भी अधिक कोस होते हैं, और यह संख्या आजकलकी जानी हुई सारी पृथिवीकी पैमाइशसे बहुतही ज्यादा-कई गुणी अधिक है। भावार्थ इसका यह है कि आज कल की जानी हुई सारी पृथिवी तो आर्यखण्ड ज़रूर ही है और आजकलकी जानी हुई इस सारी पृथिवी पर रहने वाले सभी मनुष्य आर्य होनेसे उच्चगोत्री भी ज़रूर ही हैं।

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिक आदि महान ग्रन्थोंमें क्षेत्र-आर्य, जाति-आर्य, कर्म-आर्य, चारित्र-आर्य और दर्शन-आर्य ऐसे पाँच प्रकारके आर्य बतलाये हैं। जो आर्यखण्डमें उत्पन्न हुए हैं—ब्राह्मण हों वा शूद्र, छूत हों वा अछूत यहाँके क़दीम रहने वाले (आदिम निवासी) हों या म्लेच्छखण्डों से आकर बसे हुये स्त्री-पुरुषोंकी सन्तानसे हों, वे सब क्षेत्र-आर्य हैं। जाति-आर्य वे कहलाये जा सकते हैं, जो सन्तान क्रमसे आर्य हैं, परन्तु इस समय आर्य-क्षेत्रों में न रहकर म्लेच्छ-देशोंमें जावसे हैं। पहले, दूसरे और तीसरे कालमें इस आर्यखण्डमें भोगभूमिया रहते थे, जो अतिउत्तम आर्य तथा उच्चगोत्री थे और कल्पवृक्षोंसे ही अपनी सब इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कर लेते थे। तीसरे कालके अन्त में कल्पवृक्ष समाप्त हो गए, तब श्रीऋषभदेव भगवान् ने उनको क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्ररूप तीन भेदों में बाँट कर, खेती, पशु-पालन, व्यापार, सेवा और सिपाही-गीरी आदिके कर्म सिखाए। तत्पश्चात् भरत महाराज ने उन्हीं तीनों में से कुछ मनुष्योंकी एक चौथी ब्राह्मण जाति बनाई। इन चारों ही जातियोंकी सन्तानें, जिनमें छूत-अछूत सभी शामिल हैं, आर्य-सन्तान होनेसे जाति-आर्य हैं।

कर्म आर्योंका वर्णन करते हुए श्री अकलंकदेवने राजवार्तिकमें लिखा है कि वे तीन प्रकारके हैं—एक सावद्यकर्मार्य दूसरे अल्पसावद्यकर्मार्य, तीसरे असावद्य-कर्म-आर्य। पिछले दो भेदोंका अभिप्राय देशव्रतियों तथा महाव्रतियोंसे है। रहे सावद्यकर्मार्य, वे ऐसे कर्मोंसे आजी-विका करने वाले होते हैं जिनमें प्रायः पाप हुआ करता है। उनके छह भेद हैं—(१) जो तीर तलवार आदि हथियार चलाने में होशियार हों— फौज, पुलिस के सिपाही और शिकारी आदि वे असिकर्मार्य (२) जो आमद खर्च आदि लिखने में दक्ष हों वे मसिकर्मार्य (३) जो खेतीके औजार चलाना जानने वाले, स्वय खेतीहर, हलचलाने, खेत नौराने, झाड़झूड़ काटने, घास खोदने, पानी सींचने, खेती काटने, ईख छीलने आदि खेतके कामकी मज़दूरी करने वाले हो वे कृषिकर्मार्य, (४) जो चित्रकारी आदि ७२ प्रकारके कलाकार—जैसे चित्रकार, बहुरूपिये, नट, भांडे, नाचनेवाले, गानेवाले, ढोल-मृदङ्ग-वीणा-बांसरी-सारङ्गी-दोतारा-सितार आदि बजानेवाले, गजेवाले, इन्द्रजालिये, अर्थात् बाजीगर,

जुए के खिलाड़ी उबटन आदि सुगन्ध वस्तु बनाने वाले शरीरको मलने और पैर चापी करने वाले, चिनाई के वास्ते ईंट बनाने वाले, चूना फूकने वाले, पत्थर काटने वाले, जर्राही अर्थात् शरीर को फाड़ने चीरने वाले, लोकरजन आदि करने वाले भॉड, कुश्तीके पहलवान, डण्डों मे लड़ने वाले पटेबाज आदि विद्याकर्मार्य, (५) धोबी, नाई, लुहार, कुम्हार, सुनार आदि-आदि शब्दसे, मरे पशुओं की खाल उतारने वाले, जूता बनाने वाले चर्मकार, बास की टोकरी और छाज बनानेवाले बॅसफोड़ आदि शिल्पकर्मार्य. (६) चन्दनादि गन्धद्रव्य, घी आदि रस, चावल आदि अनाज और रुई-कपास मोती आदिका सग्रह करके व्यापार करनेवाले वणिक्कर्मार्य। इस तरह ये छहों प्रकारके कर्म करनेवाले श्री अकलकदेवके कथनानुसार सावद्यकर्म-आर्य हैं। परन्तु ये उपरोक्त छहों कर्म-क्षेत्र-आर्य और जाति-आर्य तो करते ही हैं, तब ये कर्म-आर्य म्लेच्छ खडोंमे रहनेवाले म्लेच्छ ही होसकते हैं, जो आर्यों के समान उपर्युक्त कर्म करने लगे हैं, इसीसे कर्म-आर्य कहलाते हैं।

ये सभी प्रकारके आर्य श्रीविद्यानन्दके मतानुसार उच्चगोत्री होते हैं अर्थात् कर्मभूमिके सब म्लेच्छ भी आर्योंके समान कर्म करने से कर्म-आर्य हो जाते हैं। इनको छोड़ कर जो म्लेच्छ बच रहे हों वे ही नीचगोत्री रह जाते हैं,और वे सिवाय अन्तरद्वीपजोंके और कोई भी नहीं हो सकते हैं—वे ही खेती, कारीगरी आदि कोई भी आर्य-कर्म करने के योग्य नहीं हैं और न आर्य-क्षेत्रों मे उनका आगमन अथवा निवास ही बनता है। इस प्रकार विद्यानन्दस्वामीके मतानुसार भी यही परिणाम निकल आता है कि अन्तरद्वीपजोंके सिवाय वर्तमान ससारके सभी मनुष्य उच्चगोत्री हैं।

अन्तमें व्यावहारिक दृष्टिसे ऊँच-नीचताका विचार करनेके लिये पाठकोंसे हमारा यह नम्र निवेदन है कि वे श्रीप्रभाचन्द्राचार्य-रचित प्रमेयकमलमार्तण्डके चतुर्थ अध्यायको अवश्य पढे, जिसमें श्रीआचार्य महाराजने अनेक अकाट्य युक्तियो के द्वारा यह सिद्ध किया है कि जाति सब मनुष्योंकी एक ही है, जन्मसे उसमें भेद नहीं है, जो जैसा काम करने लगता है वह वैसा ही कहलाता है। प्रतिपक्षी इस विषयमें जो भी कुछ तर्क उठा सकता है उस सबका एक-एक करके श्रीआचार्य महाराजने बड़ी प्रबल युक्तियोंसे खडन किया है, जिससे यह कथन बहुत विस्तृत हो गया है। इसी से उसको हम यहा उद्धृत नहीं कर सके हैं। उसको पाठक स्वय पढलें, ऐसी हमारी प्रार्थना है। हॉ अन्य ग्रन्थोंके कुछ वाक्य लिखेजाते हैं, जिनसे व्यवहारिक दृष्टिकी ऊँच-नीचताके विषयमें पूर्वाचार्यों का कुछ अभिमत मालूम होसके और उससे हृदयमें बैठी हुई चिरकालकी मिथ्या रूढिका विनाश होकर सत्यकी खोज के लिए उत्कण्ठा पैदा होसके, और पूरी खोज होजानेपर अनादि कालका मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्श्रद्धान पैदा होसके। वे वाक्य इस प्रकार हैं,

*दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाश्चतुर्थश्च विधोचित।*
*मनोवाक्कायधर्माय मता सर्वेऽपि जन्तव ॥*
*उच्चावचजनप्राय समयोऽयं जिनेशिनाम्।*
*नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालय ॥*

—यशस्तिलक चम्पू

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनो तो दीक्षा के योग्य हैं ही, किन्तु शूद्र भी विधि द्वारा दीक्षाके योग्य हैं। मन-वचन-कायसे पालन किये जाने वाले धर्मके सब ही अधिकारी हैं। जिनेन्द्र भगवानका यह धर्म-ऊँच नीच दोनों ही प्रकारके मनुष्योंके आधार पर टिका हुआ है। एक स्तम्भके आधार पर जिस तरह

मकान नहीं ठहर सकता उसही तरह ऊँच वा नीचरूप एकही प्रकारके मनुष्योंके आधार पर धर्म नहीं ठहर सकता है।

*न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणम्।*
*व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदु॥*
—पद्मचरित

भावार्थ—कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, मनुष्य के गुण ही कल्याण करनेवाले होते हैं, व्रतधारी चाडाल भी महापुरुषों द्वारा ब्राह्मण माना जाता है।

*सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।*
*देवा देवं विदुर्भस्मगूढागारान्तरौजसम्॥*
—रत्नकरण्डजात

भावार्थ—चाण्डालकी सन्तानभी सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेसे देवों द्वारा देव ( आराध्य ) मानी जाती है।

*चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणम्।*
*सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धिं भुवने गतम्॥*
—पद्मचरित

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाडाल सब आचारणके भेदसे ही भेद रूप माने जाते हैं।

*आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।*
*न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्त्विकी॥*
*गुणैः सम्पद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते।*
—धर्मपरीक्षा

भावार्थ—ब्राह्मणादि जाति कोई वास्तविक जाति नहीं है, एकमात्र आचारके भेदसे ही जातिभेदकी कल्पना होती है। गुणोंके प्राप्त करनेसे जाति प्राप्त होती है और गुणोंके नाश होने से वह नष्ट भी होजाती है।

*चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित्।*
*अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः॥*
—पद्मचरित

भावार्थ—व्यभिचारसे अर्थात् हरामसे पैदा हुएका कोई निशान शरीरमें नहीं होता है, जिससे वह नीच समझा जावे। अतः जिसका आचरण अनार्य अर्थात् नीच हो वहही लोकव्यवहार में नीच समझा जाता है—गोत्रकर्म मनुष्योंको नीच नहीं बनाता।

*विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।*
*जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः॥*
—धर्मरसिक

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सब अपनी अपनी कुछ क्रियाविशेषके कारण ही भेदरूप कहे जाते हैं। वास्तवमें जैनधर्मको धारण करने के लिये सभी समर्थहैं, और उसे पालन करते हुए सब परस्परमें भाई भाईके समान हैं। अस्तु।

अब इस गोत्र कर्मके लेखको समाप्त करनेसे पहले यह भी प्रकट कर देना ज़रूरी है कि किन कारणोंसे उच्चगोत्र कर्मका बन्ध होता है और किन कारणोंसे नीच गोत्रका। इसकी बाबत तत्वार्थसूत्र, अध्याय ६ठे के सूत्र नं० २५, २६ इस प्रकार हैं:—

*"परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥ २५॥"*
*"तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥" २६॥*

इनमें बतलाया है कि अपनी बड़ाई और दूसरोंकी निंदा करनेसे—दूसरोंके विद्यमान गुणोंकोभी ढाँकने और अपने अनहोते गुणोंकोभी प्रकट करनेसे नीचगोत्रकर्म पैदा होता है। प्रत्युत इसके दूसरोंकी बड़ाई और अपनी

निन्दा आदि करने तथा नम्रता धारण करनेसे उच्च-गोत्रकर्मका उपार्जन होता है।

नीच और ऊँच गोत्र कर्मके पैदा होनेके इस सिद्धान्तको अच्छी तरह ध्यानमें रखकर हमको मन, वचन, कायकी प्रत्येक क्रियामें बहुत ही सावधान रहनेकी ज़रूरत है। ऐसा न हो कि अपनी अकड़, अहम्मन्यता वा असावधानीसे हम नीचगोत्र बाँधलें, जिससे नरकोंमें पटके जावें या वृक्ष और कीड़े-मकौड़े आदि बनकर तिर्यंचगति में पड़े-पड़े सड़ा करें अथवा कुभोग-भूमिया बनकर तिर्यंचों-जैसा जीवन व्यतीत करनेके लिये बाध्य होवें।

# धर्म क्या ?

( ले०—श्री० जैनेन्द्रकुमारजी )

बडा अच्छा प्रश्न किया गया है कि धर्म क्या है ? जैन आगम में कथन है कि वस्तुका स्वभाव ही धर्म है।

इस तरह स्वभावच्युत होना अधर्म और स्वनिष्ठ रहना धर्म हुआ।

मानवका धर्म मानवता। दूसरे शब्दों में उसका अर्थ हुआ आत्मनिष्ठा।

मनुष्यमें सदा ही थोड़ा-बहुत द्वित्व रहता है। इच्छा और कर्म मे फासला दीखता है। मन कुछ चाहता है, तन उस मनको बाधे रखता है। तन पूरी तरह मनके बसमें नही रहता, और न मन ही एक दम तन के तावे हो सकता है। इसी द्वित्वका नाम क्लेश है। यहीं से दु:ख और पाप उपजता है।

इस द्वित्वकी अपेक्षा में हम मानवको देखें तो कहा जासकता है कि मन ( अथवा आत्मा ) उसका स्व है, तन पर है। तन विकारकी ओर जाता है, मन स्वच्छ स्वप्न की ओर। तन की प्रकृतिका विकार स्वीकार करने पर मन मे भी मलिनता आजाती है और उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। इससे तन की गुलामी पराधीनता है और तन को मन के वश रखना और मन को आत्मा के वश मे रखना स्व-निष्ठा स्वास्थ्य और स्वाधीनता की परिभाषा है।

संक्षेप में सब समय और सब स्थिति में आत्मानुकूल वर्तन करना धर्माचरणी होना है। उस से अन्यथा वर्तन करना धर्म-विमुख होना है। असयम अधर्म है, क्योंकि इसका अर्थ मानव का अपनी आत्मा के निषेध पर देह के क़ाबू हो जाना है। इसके प्रतिकूल सयम धर्माभ्यास है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो धर्म को कहीं भी खोजने जाना नही है। वह आत्मगत है। बाहर ग्रन्थों और ग्रन्थियों में वह नहीं पायगा, वह तो भीतर ही है। भीतर एक लौ है। वह सदा जगी रहती है। बुझी, कि वही प्राणी की मृत्यु है। मनुष्य प्रमाद से उसे चाहे न सुने, पर वह अतर्ध्वनि कभी नहीं सोती। चाहे तो उसे अनसुना कर दो, पर वह तो तुम्हें सुनाती ही है। प्रति क्षण वह तुम्हें सुझाती रहती है कि यह तुम्हारा स्वभाव नही है, यह नहीं है।

उसी लौ में ध्यान लगाये रहना, उसी अतर्ध्वनि के आदेश को सुनना और तदनुकूल वर्तना, उसके अतिरिक्त कुछ भी और की चिंता न करना, सर्वथैव उसी के हो रहना और अपने समूचे अस्तित्व को उसमें होम देना, उसी में जलना और उसी में जीना—यही धर्मका सार है।

सूने महल मे दिया जगाले। उसकी लौ मे लौ लगा बैठ। आसन से मत डोल। बाहर की मत सुन। सब बाहर को अन्तर्गत हो जाने दे। तब त्रिभुवन में तू ही होगा और त्रिभुवन तुझ मे, और तू उस लौ में। धर्मकी यही इष्टावस्था है। यहाँ द्वित्व नष्ट हो जाता है। आत्मा की ही एक सत्ता रहती है। विकार असत् हो रहते हैं, जैसे प्रकाश के आगे अन्धकार।

# अनित्यता

[ ले०—श्री० शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ ]

( १ )

दहला देता था वीरों को जिनका एक इशारा,
जिनकी उँगली पर नचता था यह भूमंडल सारा।
थे कल तक जो शूरवीर रणधीर अभय सेनानी,
पड़े तड़पते आज न पाते हैं चुल्लू-भर पानी!

( २ )

अमर मानकर निज जीवनको पर-भव हाय भुलाया,
चाँदी-सोने के टुकड़ों में फूला नहीं समाया।
देख मूढ़ता यह मानव की उधर काल मुस्काया,
अगले पल ले चला यहाँपर नाम-निशान न पाया!

( ३ )

उच्छ्वासों के मिष से प्रतिपल प्राण भागते जाते,
बादल की-सी छाया काया पाकर क्या इठलाते?
कौन सदा रख सका इन्हें फिर क्या तू ही रख लेगा?
पा यम का संकेत तनिक-सा तू प्रस्थान करेगा!

( ४ )

बिजली की क्षण-भंगुर आभा कहती-देखो आओ,
तेरे-मेरे जीवन में है कितना भेद बताओ?
जल-बुद्-बुद् मानों दुनिया को अमर सीख देता है—
मौत तभी से ताक रही जब जीव जन्म लेता है।

( ५ )

बड़े भोर चहुँ ओर ललाई जो भू पर छाई थी,
नभ से उतर प्रभा दिनकर की मध्य दिवस आई थी।
सन्ध्या-राग रँगीला मन को तुरत मोहने वाला,
हाय! कहाँ अब जब फैला है यह भीषण तम काला!

( ६ )

लहरें लोल जलधि हैं अपनी आज जहाँ लहराता,
हा! संसार मरुस्थल उसको थोड़े दिन में पाता!
मनहर कानन में सौरभ-मय सुंदर सुमन खिले हैं,
आँधी के हलके झौंके से अब वे धूल मिले हैं!

( ७ )

है संसार सराय जहाँ हैं पथिक आय जुट जाते,
लेकर टुक विश्राम राह को अपनी-अपनी जाते।
जो आये थे गये सभी, जो आये हैं जाएँगे,
अपने-अपने कर्मों का फल सभी आप पाएँगे॥

( ८ )

जीवन-तन-धन-भवन न रहे हैं, स्वजन-प्रान छूटेंगे,
दुनियाँके संबंध विदाई की वेला टूटेंगे।
यह क्रम चलता रहा आदि से, अब भी चलता भाई,
संयोगो का एकमात्र फल—केवल सदा जुदाई॥

( ९ )

कोटि-कोटि कर कोट ओटमें उनकी तू छिप जाना,
पद-पद पर प्रहरी नियुक्त करके पहरा बिठलाना।
रक्षण-हेतु सदा हो सेन सजी हुई चतुरङ्गी,
काल बली ले जाएगा, ताकेंगे साथी-सङ्गी॥

( १० )

धन-दौलत का कहाँ ठिकाना, वह कब तक ठहरेगी?
चारु सुयश की विमल पताका क्या सदैव फहरेगी?
पिता-पुत्र-पत्नी-पोतो का संग चार दिन का है,
फिर चिर-काल वियोग-वेदना-वेदन फल इनका है॥

( ११ )

जीवन का सौंदर्य सुनहरा शैशव कहाँ गया रे! आंधी-सा मतमाता यौवन भी तो चला गया रे!
अर्द्ध-मृत्युमय बूढ़ापन भी जाने को आया है, हा! सारा ही जीवन जैसे बादल की छाया है!!

# सेवाधर्म-दिग्दर्शन

## [ सम्पादकीय ]

अहिंसाधर्म, दयाधर्म, दशलक्षणधर्म, रत्नत्रय धर्म, सदाचारधर्म, अथवा हिन्दूधर्म, मुसलमानधर्म, ईसाईधर्म, जैनधर्म, बौद्धधर्म इत्यादि धर्म नामोंसे हम बहुत कुछ परिचित हैं; परन्तु 'सेवाधर्म' हमारे लिये अभी तक बहुत ही अपरिचितसा बना हुआ है। हम प्रायः समझते ही नही कि सेवाधर्मभी कोई धर्म है अथवा प्रधान धर्म है। कितनों ही ने तो सेवाधर्मको सर्वथा शूद्रकर्म मान रक्खा है, वे सेवकको गुलाम समझते हैं और गुलामीमे धर्म कहाँ? इसीसे उनकी तद्रूप संस्कारोंमें पली हुई बुद्धि सेवाधर्मको कोई धर्म अथवा महत्त्वका धर्म माननेके लिये तैय्यार नहीं—वे समझ ही नही पाते कि एक भाड़ेके सेवक, अनिच्छा पूर्वक मजबूरीसे काम करने वाले परतंत्र सेवक और स्वेच्छासे अपना कर्तव्य समझकर सेवाधर्म का अनुष्ठान करने वाले अथवा लोक-सेवा बजानेवाले स्वयसेवक में कितना बडा अन्तर है। ऐसे लोग सेवाधर्म को शायद किसी धर्मकी ही सृष्टि समझते हो, परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है। वास्तव में सेवाधर्म सब धर्मों में ओत-प्रोत है और सबमे प्रधान है। बिना इस धर्म के सब धर्म निष्प्राण हैं, निसत्व हैं और उनका कुछ भी मूल्य नहीं है। क्योंकि मन-वचन-कायसे स्वेच्छा एव विवेकपूर्वक ऐसी क्रियाओं का छोड़ना जो किसी के लिये हानिकारक हो और ऐसी क्रियाओं का करना जो उपकारक हो सेवाधर्म कहलाता है।

'मेरे द्वारा किसी जीवको कष्ट अथवा हानि न पहुँचे मैं सावद्ययोग से विरक्त होता हूँ,' लोक-सेवाकी ऐसी भावना के बिना अहिंसाधर्म कुछ भी नहीं रहता और 'मैं दूसरों का दुख-कष्ट दूर करने मे कैसे प्रवृत्त हूँ' इस सेवा-भावनाको यदि दयाधर्मसे निकाल दिया जाय तो फिर वह क्या

अवशिष्ट रहेगा ? इसे सहृदय पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इसी तरह दूसरे धर्मों का हाल है, सेवा-धर्म की भावनाको निकाल देने से वे सब थोथे और निर्जीव हो जाते हैं। सेवाधर्म ही उन सब में, अपनी मात्रा के अनुसार प्राणप्रतिष्ठा करने वाला है। इसलिये सेवाधर्मका महत्व बहुत ही बढ़ा चढ़ा है और वह एक प्रकार से अवर्णनीय है। अहिंसादिक सब धर्म उसीके अंग अथवा प्रकार हैं और वह सब मे व्यापक है। ईश्वरादिक की पूजा भक्ति और उपासना भी उसी में शामिल (गर्भित) है, जो कि अपने पूज्य एव उपकारी पुरुषोंके प्रति किये जाने वाले अपने कर्तव्यके पालनादि स्वरूप होती है। इसी से उसको 'देव-सेवा' भी कहा गया है। किसी देव अथवा धर्म प्रवर्तकके गुणों का कीर्तन करना, उसके शासन को स्वय मानना सदुपदेशको अपने जीवन में उतारना और शासन का प्रचार करना, यह सब उस देव अथवा धर्म-प्रवर्तक की सेवा है और इसके द्वारा अपनी तथा अन्य प्राणियोंकी जो सेवा होती है वह सब इससे भिन्न दूसरी आत्म-सेवा अथवा लोकसेवा है। इस तरह एक सेवा में दूसरी सेवाएँ भी शामिल होती हैं।

स्वामी समन्तभद्र ने अपने इष्टदेव भगवान् महावीरके विषयमें अपनी सेवाओंका और अपने को उनकी फलप्राप्तिका जो उल्लेख एक पद्यमे किया है वह पाठकोंके जानने योग्य है और उससे उन्हें देवसेवाके कुछ प्रकारोंका बोध होगा और साथ ही, यह भी मालूम होगा कि सच्चे हृदयसे और पूर्ण तन्मयताके साथ की हुई वीर-प्रभुकी सेवा कैसे उत्तम फलको फलती है। इसीसे उस पद्यको उनके 'स्तुतिविद्या' नामक ग्रन्थ (जिनशतक) से यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते
हस्तावं जलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि संप्रक्षते।
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदशी येन ते
तेजस्वीसुजनोऽहमेव सुकृत तेनैव तेजःपते ॥११४॥

इसमें बतलाया है कि—'हे भगवन्! आपके मतमें अथवा आपके ही विषयमें मेरी सुश्रद्धा है—अन्धश्रद्धा नहीं—, मेरी स्मृति भी आपको ही अपना विषय बनाये हुए है, मैं पूजन भी आपका ही करता हूँ, मेरे हाथ आपको ही प्रणामांजलि करनेके निमित्त हैं, मेरे कान आपकी ही गुणकथा सुननेमें लीन रहते हैं, मेरी आँखे आपके ही रूपको देखती हैं, मुझे जो व्यसन है वह भी आपकी ही सुन्दर स्तुतियों*के रचनेका है और मेरा मस्तक भी आपको ही प्रणाम करनेमें तत्पर रहता है; इस प्रकारकी चूँकि मेरी सेवा है—मैं निरन्तर ही आपका इस तरह पर सेवन किया करता हूँ—इसीलिये हे तेजःपते! (केवलज्ञान स्वामिन्) मैं तेजस्वी हूँ, सुजन हूँ और सुकृति (पुण्यवान्) हूँ।'

यहाँ पर किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि सेवा तो बड़ोंकी—पूज्य पुरुषों एवं महात्माओं-की होती है और उसीसे कुछ फल भी मिलता है,

* समन्तभद्रकी देवागम, युक्त्यनुशासन और स्वयंभूस्तोत्र नामकी स्तुतियाँ बड़े ही महत्वकी एवं प्रभावशालिनी हैं और उनमें सूत्ररूपसे जैनागम अथवा वीरशासन भरा पड़ा है।

छोटों-असमर्थों, अथवा दीन-दुःखियों आदिकी सेवामें क्या धरा है ? ऐसा समझना भूल होगा। जितने भी बड़े पूज्य, महात्मा अथवा महापुरुष हैं वे सब छोटों, असमर्थों, असहायों एवं दीन-दुःखियोंकी सेवासे ही हुए हैं—सेवा ही सेवकको सेव्य बनाती अथवा ऊँचा उठाती है। और इस लिये ऐसे महान् लोक-सेवकोंकी सेवा अथवा पूजा भक्तिका यह अभिप्राय नहीं कि हम उनका कोरा गुणगान किया करें अथवा उनकी ऊपरी (औपचारिक) सेवा चाकरीमें ही लगाये रक्खें—उन्हें तो अपने व्यक्तित्वके लिये हमारी सेवाकी जरूरत भी नहीं है—कृतकृत्योंको उसकी जरूरत भी क्या हो सकती है ? इसीसे स्वामी समन्तभद्रने कहा है—"न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे"—अर्थात् हे भगवन्, पूजा भक्तिसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है ; क्योंकि आप वीतरागी हैं—रागका अंश भी आपके आत्मामें विद्यमान नहीं है, जिसके कारण किसीकी पूजा-सेवासे आप प्रसन्न होते। वास्तवमें ऐसे महान् पुरुषोंकी सेवा-उपासनाका मुख्य उद्देश्य उपकारस्मरण और कृतज्ञताव्यक्तीकरणके साथ 'तद्गुणलब्धि'—उनके गुणोंकी सम्प्राप्ति-होता है। इसी बातको श्री पूज्यपादाचार्यने 'सर्वार्थ सिद्धि' के मंगलाचरण ('मोक्ष मार्गस्यनेतारं' इत्यादि ) में "वन्दे तद्गुणलब्धये" पदके द्वारा व्यक्त किया है। तद्गुण लब्धिके लिये तद्रूप आचरणकी जरूरत है, और इसलिये जो तद्गुण लब्धिकी इच्छा करता है वह पहले तद्रूप आचरण को अपनाता है-अपने आराध्यके अनुकूल वर्तन करना अथवा उसके नक़्शेक़दम पर चलना प्रारंभ करता है। उसके लिये लोकसेवा अनिवार्य हो जाती है—दीनों, दुःखितों, पीड़ितो, पतितों, असहायों, असमर्थों, अज्ञों और पथभ्रष्टोंकी सेवा करना उसका पहला कर्तव्यकर्म बन जाता है। जो ऐसा न करके अथवा उक्त ध्येयको सामने न रखकर ईश्वर-परमात्मा या पूज्य महात्माओंकी भक्तिके कोरे गीत गाता है वह या तो दंभी है, ठग है—अपनेको तथा दूसरोंको ठगता है—और या उन जड़ मशीनोंकी तरह अविवेकी है जिन्हे अपनी क्रियाओंका कुछ भी रहस्य मालूम नहीं होता। और इसलिये भक्तिके रूपमें उसकी सारी उछल-कूद तथा जयकारोंका—जय जयके नारोंका—कुछ भी मूल्य नहीं है। वे सब दंभपूर्ण अथवा भावशून्य होनेसे बकरीके गलेमें लटकते हुए स्तनों (थनों) के समान निरर्थक होते हैं—उनका कुछ भी वास्तविक फल नहीं होता।

महात्मा गांधीजीने कई बार ऐसे लोगोंको लक्ष्य करके कहा है कि 'वे मेरे मुँह पर थूकें तो अच्छा, जो भारतीय होकर भी स्वदेशी वस्त्र नहीं पहनते और सिरसे पैर तक विदेशी वस्त्रोंको धारण किये हुये मेरी जय बोलते हैं। ऐसे लोग जिस प्रकार गांधीजी के भक्त अथवा सेवक नहीं कहे जाते बल्कि मजाक उड़ाने वाले समझे जाते हैं, उसी प्रकार जो लोग अपने पूज्य महापुरुषोंके अनुकूल आचरण नहीं करते—अनुकूल आचरण की भावना तक नहीं रखते—खुशी से विरुद्धाचरण करते हैं और उस कुत्सित आचरण को करते हुए ही पूज्य पुरुषकी वंदनादि किया करते तथा जय बोलते हैं, उन्हें उस महापुरुषको सेवक अथवा

उपासक नहीं कहा जासकता—वे भी उस पूज्य व्यक्तिका उपहास करने-कराने वाले ही होते हैं। अथवा यह कहना होगा कि वे अपने उस आचरण के लिये जड़ मशीनों की तरह स्वाधीन नहीं हैं। और ऐसे पराधीनोका कोई धर्म नहीं होता। सेवा धर्मके लिये स्वेच्छापूर्वक कार्यका होना आवश्यक है; क्योंकि स्वपरहित साधन की दृष्टि से स्वेच्छा-पूर्वक अपना कर्तव्य समझकर जो निष्काम कर्म अथवा कर्मत्याग किया जाता है, वह सच्चा सेवा-धर्म है।

जब पूज्य महात्माओंकी सेवाके लिये गरीबों, दीन-दुखितोंकी, पीडितों-पतितोंकी, असहायो-असमर्थोंकी, अज्ञों और पथभ्रष्टोंकी सेवा अनिवार्य है—उस सेवाका प्रधान अग है, बिना इसके वह बनती ही नहीं—तब यह नहीं कहा जा सकता और न कहना उचित ही होगा कि 'छोटों-असमर्थों अथवा दीन-दुःखितों आदिकी सेवा मे क्या धरा है?' यह सेवा तो अहंकारादि दोषो को दूर करके आत्मा को ऊँचा उठाने वाली है, तद्गुण-लब्धिके उद्देश्यको पूरा करने वाली है और हर तरह से आत्मविकास मे सहायक है, इसलिये परमधर्म है और सेवाधर्मका प्रधान अग है। जिस धर्मके अनुष्ठानसे अपना कुछ भी आत्म-लाभ न होता हो वह तो वास्तवमें धर्म ही नहीं है।

इसके सिवाय, अनादिकालसे हम निर्बल, असहाय, दीन, दुःखित, पीडित, पतित, मार्गच्युत और अज्ञ जैसी अवस्थाओंमें ही अधिकतर रहे हैं और उन अवस्थाओंमे हमने दूसरोकी खूब सेवाएँ ली हैं तथा सेवा-सहायताकी प्राप्तिके लिये निरन्तर भावनाएँ भी की हैं, और इसलिये उन अवस्थाओंमें पड़े हुए अथवा उनमेंसे गुजरने वाले प्राणियोंकी सेवा करना हमारा और भी ज्यादा कर्त्तव्यकर्म है, जिसके पालनके लिये हमे अपनी शक्तिको जरा भी नहीं छिपाना चाहिये—उसमे जी चुराना अथवा आना-कानी करने जैसी कोई बात न होनी चाहिये। इसीको यथाशक्ति कर्त्तव्यका पालन कहते हैं।

एक बच्चा पैदा होते ही कितना निर्बल और असहाय होता है और अपनी समस्त आवश्यक-ताओंकी पूर्तिके लिये कितना अधिक दूसरों पर निर्भर रहता अथवा आधार रखता है। दूसरे जन उसकी खिलाने-पिलाने, उठाने-बिठाने, लिटाने-सुलाने, ओढ़ने-बिछाने, दिल बहलाने, सर्दी-गर्मी आदिसे रक्षा करने और शिक्षा देने-दिलानेकी जो भी सेवाएँ करते हैं वे सब उसके लिये प्राणदानके समान है। समर्थ होने पर यदि वह उन सेवाओं को भूल जाता है और घमण्डमें आकर अपने उन उपकारी सेवकोंकी—माता-पितादिकोंकी—सेवा नहीं करता—उनका तिरस्कार तक करने लगता है तो समझना चाहिये कि वह पतनकी ओर जा रहा है। ऐसे लोगोंको संसारमें कृतघ्न, गुणमेट और अहसानफरामोश जैसे दुर्नामोंसे पुकारा जाता है। कृतघ्नता अथवा दूसरोंके किये हुए उपकारो और ली हुई सेवाओं को भूल जाना बहुत बड़ा अपराध है और वह विश्वासघातादिकी तरह ऐसा बड़ा पाप है कि उसके भारसे पृथ्वी भी काँपती है।

किसीने ठीक कहा है:—

करै विश्वासघात जो कोय, कीया कृतको विसरै जोय।
आपद पडे मित्र परिहरै, तासु भार धरणी थरहरै ॥

ऐसे ही पापोंका भार बढ़जानेसे पृथ्वी अक्सर डोला करती है—भूकम्प आया करते हैं। और इसीसे जो साधु पुरुषभ-ले आदमी होते हैं वे दूसरो के किये हुए उपकारों अथवा ली हुई सेवाओंको कभी भूलते नही हैं—'**न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति**' वदलेमे अपने उपकारियोकी अथवा उनके आदर्शानुसार दूसरोंकी सेवा करके ऋण-मुक्त होते रहते हैं। उनका सिद्धान्त तो '**परोपकाराय सतां विभूतयः**' की नीतिका अनुसरण करते हुए प्रायः यह होता है:—

**उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्यको गुणः ?**
**अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥**

अर्थात्—अपने उपकारियोके प्रति जो साधुता का—प्रत्युपकारादिरूप सेवाका—व्यवहार करता है उसके उस साधुपनमें कौन बड़ाईकी बात है ? ऐसा करना तो साधारण जनोचित मामूली-सी बात है। सत्पुरुषोंने तो उसे सच्चा साधु बतलाया है जो अपना अपकार एवं बुरा करने वालोंके प्रति भी साधुताका व्यवहार करता है—उनकी सेवा करके उनके आत्मासे शत्रुताके विषको ही निकाल देना अपना कर्तव्य समझता है।

ऐसे साधु पुरुषोकी दृष्टिमें उपकारी, अनुपकारी और अपकारी प्रायः सभी समान होते हैं। उनकी विश्वबन्धुत्वकी भावनामें किसीका अपकार या अप्रिय आचरण कोई बाधा नहीं डालता। '**अप्रियमपि कुर्वाणो यः प्रियः प्रिय एव सः**' इस उदार भावनासे उनका आत्मा सदा ऊँचा उठा रहता है। वे तो सेवाधर्मके अनुष्ठान द्वारा अपना विकाससिद्ध किया करते हैं, और इसीसे सेवाधर्मके पालनमे सब प्रकारसे दत्तचित्त होना अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

वास्तवमें, पैदा होते ही जहाँ हम दूसरोंसे सेवाएँ लेकर उनके ऋणी बनते हैं वहाँ कुछ समर्थ होने पर अपनी भोगोपभोगकी सामग्रीके जुटानेमें, अपनी मान-मर्यादाकी रक्षामें, अपनी कषायोंको पुष्ट करनेमें और अपने महत्व या प्रभुत्वको दूसरों पर स्थापित करनेकी धुनमें अपराध भी कुछ कम नहीं करते हैं। इस तरह हमारा आत्मा परकृत-उपकार भार और स्वकृत-अपराध भारसे बराबर दबा रहता है। इन भारोंके हलका होनेके साथ साथ ही आत्माके विकासका सम्बन्ध है। लोक-सेवासे यह भार हलका होकर आत्मविकासकी सिद्धि होती है। इसीसे सेवाको परमधर्म कहा गया है और वह इतना परम गहन है कि कभी कभी तो योगियोंके द्वारा भी अगम्य हो जाता है—उनकी बुद्धि चकरा जाती है, वे भी उसके सामने घुटने टेक देते हैं और गहरी समाधिमें उतरकर उसके रहस्यको खोजनेका प्रयत्न करते हैं। लोक-सेवाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देने पर भी उन्हे बहुधा यह कहते हुए सुनते हैं—

"हा दुट्ठकयं ! हा दुट्ठं भासियं ! चिंतियं च हा दुट्ठं !
अन्तो अन्तोऽम्मम्मि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥"

मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिमें जहाँ जरा भी

प्रमत्तता, असावधानी अथवा त्रुटि लोकहितके विरुद्ध दीख पड़ती है वहाँ उसी समय उक्त प्रकार के उद्गार उनके मुँहसे निकल पडते हैं और वे उनके द्वारा पश्चाताप करते हुए अपने सूक्ष्म अपराधोंका भी नित्य प्रायश्चित्त किया करते हैं। इसीसे यह प्रसिद्ध है कि—

"सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।"

सेवाधर्मकी साधनामे, निःसन्देह, बड़ी सावधानी की जरूरत है और उसके लिये बहुत कुछ आत्मबलि-अपने लौकिक स्वार्थोंकी आहुति-देनी पड़ती है। पूर्ण सावधानी ही पूर्ण सिद्धिकी जननी है, धर्मकी पूर्णसिद्धि ही पूर्ण आत्मविकासके लिये गारण्टी है और यह आत्मविकास ही सेवाधर्मका प्रधान लक्ष्य है, उद्देश्य है अथवा ध्येय है।

मनुष्यका लक्ष्य जब तक शुद्ध नहीं होता तब तक सेवाधर्म उसे कुछ कठिन और कष्टकर जरूर प्रतीत होता है, वह सेवा करके अपना अहसान जतलाता है, प्रतिसेवाकी—प्रत्युपकार की—वाँछा करता है, अथवा अपनी तथा दूसरो-की सेवाकी मापतौल किया करता है और जब उसकी मापतौल ठीक नहीं उतरती—अपनी सेवा से दूसरेकी सेवा कम जान पड़ती है—अथवा उसकी वह वाँछा ही पूरी नही होती और न दूसरा आदमी उसका अहसान ही मानता है, तो वह एकदम झुंझला उठता है, खेदखिन्न होता है, दुःख मानता है, सेवा करना छोड़ देता है और अनेक प्रकारके रागद्वेषोंका शिकार बनकर अपनी आत्मा का हनन करता है। प्रत्युत इसके, लक्ष्य शुद्धिके होते ही यह सब कुछ भी नहीं होता, सेवाधर्म एकदम सुगम और सुखसाध्य बन जाता है, उसके करनेमे आनन्द ही आनन्द आने लगता है और उत्साह इतना बढ़ जाता है कि उसके फलस्वरूप लौकिक स्वार्थों की सहज ही मे बलि चढ़ जाती है और जरा भी कष्ट बोध होने नहीं पाता—इस दशामें जो कुछ भी किया जाता है अपना कर्तव्य समझ कर खुशीसे किया जाता है और उसके साथमे प्रतिसेवा, प्रत्युपकार अथवा अपने आदर-सत्कार या अहंकारकी कोई भावना न रहने से भविष्यमें दुःख, उद्वेग तथा कषाय भावो की उत्पत्तिका कोई कारण ही नहीं रहता; और इसलिये सहज ही मे आत्मविकास सध जाता है। ऐसे लोग यदि किसीको दान भी करते हैं तो नीचे नयन करके करते हैं और उसमे अपना कर्तृत्व नहीं मानते। किसीने पूछा "आप ऐसा क्यों करते हैं?" तो वे उत्तर देते हैं—

देनेवाला और है मैं समरथ नहिं देन।
लोग भरम मो करत हैं याते नीचे नैन॥

अर्थात्—देनेवाला कोई और ही है और वह इसका भाग्योदय है-मैं खुद कुछ भी देने के लिये समर्थ नही हूँ। यदि मैं दाता होता तो इसे पहले से क्यों न देता? लोग भ्रमवश मुझे व्यर्थ ही दाता समझते हैं, इससे मुझे शरम आती है और मैं नीचे नयन किये रहता हूँ। देखिये, कितना ऊँचा भाव

है। आत्मविकास को अपना लक्ष्य बनानेवाले मानवोंकी ऐसी ही परिणति होती है। अस्तु।

लक्ष्यशुद्धिके साथ इस सेवाधर्मका अनुष्ठान हर कोई अपनी शक्तिके अनुसार कर सकता है। नौकर अपनी नौकरी, दुकानदार दुकानदारी, वकील वकालत, मुख्तार मुख्तारकारी, मुहर्रिर, मुहर्रिरी, ठेकेदार ठेकेदारी, ओहदेदार ओहदेदारी, डाक्टर डाक्टरी, हकीम हिकमत, वैद्य वैद्यक, शिल्पकार शिल्पकारी, किसान खेती तथा दूसरे पेशेवर अपने अपने उस पेशे का कार्य और मज़-दूर अपनी मज़दूरी करता हुआ उसीमेंसे सेवा का मार्ग निकाल सकता है। सबके कार्य्यों मे सेवाधर्मके लिये यथेष्ट अवकाश है—गुंजाइश है।

## सेवाधर्मके प्रकार और मार्ग

अब मैं संक्षेप मे यह बतलाना चाहता हूँ कि सेवा-धर्म कितने प्रकारका है और उसके मुख्य मार्ग कौन कौन हैं। सेवा-धर्मके मुख्य भेद दो हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा अक्रियात्मक। क्रिया-त्मकको प्रवृत्तिरूप तथा अक्रियात्मकको निवृत्तिरूप सेवाधर्म कहते हैं। यह दोनो प्रकारका सेवाधर्म मन, वचन और काय के द्वारा चरितार्थ होता है, इसलिये सेवाके मुख्य मार्ग मानसिक, वाचिक और कायिक ऐसे तीन ही हैं—धनादिकका सम्बध काय के साथ होने से वह भी कायिक मे ही शामिल है। इन्हीं तीनों मार्गोंसे सेवाधर्म अपने कार्यमें परिणत किया जाता है और उसमे आत्म-विकास के लिये सहायक सारे ही धर्म-समूह का समावेश होजाता है।

निवृत्तिरूप सेवाधर्ममें अहिंसा प्रधान है। उसमें हिंसारूप क्रियाका—सावद्यकर्मका—अथवा प्राणव्यपरोपण मे कारणीभूत मन-वचन-कायकी प्रमत्तावस्थाका त्याग किया जाता है। मन-वचन कायकी इन्द्रिय-विषयोंमें स्वेच्छा प्रवृत्तिका भले प्रकार निरोधरूप 'गुप्ति', गमनादिकमे प्राणि-पीड़ाके परिहाररूप 'समिति', क्रोधकी अनुत्पत्ति रूप 'क्षमा', मानके अभावरूप 'मार्दव', माया अथवा योगवक्रता की निवृत्तिरूप 'आर्जव,' लोभ के परित्यागरूप 'शौच', अप्रशस्त एव असाधु वचनोके त्यागरूप 'सत्य', प्राणव्यपरोपण और इन्द्रिय विषयोंके परिहाररूप 'सयम', इच्छानिरोध-रूप 'तप', दुष्ट विकल्पोके सत्याग अथवा आहा-रादिक देय पदार्थों मे से ममत्वके परिवर्जनरूप 'त्याग,' बाह्य पदार्थों मे मूर्छाके अभावरूप 'आ-किंचिन्य,' अब्रह्म अथवा मैथुनकर्मकी निवृत्तिरूप 'ब्रह्मचर्य,' ( ऐसे 'दशलक्षणधर्म )' क्षुधादि वेदना-ओंके उत्पन्न होने पर चित्तमे उद्वेग तथा अशान्ति को न होने देने रूप 'परिषहजय,' राग-द्वेषादि विषमताओंकी निवृत्तिरूप 'सामायिक,' और कर्म-ग्रहण की कारणीभूत क्रियाओंसे विरक्ति-रूप 'चारित्र,' ये सब भी निवृत्तिरूप सेवाधर्मके ही अग हैं, जिनमे से कुछ 'हिंसा' और कुछ हिंसेतर क्रियाओंके निषेधको लिये हुए हैं।

इस निवृत्ति-प्रधान सेवाधर्मके अनुष्ठानके लिये किसी भी कौडी-पैसेकी पासमे जरूरत नहीं है। इसमे तो अपने मन-वचन-कायकी कितनी ही क्रियाओ तकका रोकना होता है—उनका भी व्यय नहीं किया जाता। हाँ, इस धर्म पर चलनेके लिये नीचे लिखा गुरुमंत्र बड़ा ही उपयोगी है—अच्छा मार्गदर्शक है :—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।"

'जो जो बाते, क्रियाएँ, चेष्टाएँ, तुम्हारे प्रतिकूल हैं—जिनके दूसरों द्वारा किये हुए व्यवहार को तुम अपने लिये पसन्द नहीं करते, अहितकर और दुखदाई समझते हो—उनका आचरण तुम दूसरोंके प्रति मत करो।'

यही पापोसे बचनेका गुरुमंत्र है। इसमे सकेतरूपसे जो कुछ कहा गया है व्याख्या द्वारा उसे बहुत कुछ विस्तृत तथा पल्लवित करके बतलाया जा सकता है।

प्रवृत्तिरूप सेवाधर्म मे 'दया' प्रधान है। दूसरो के दुःखो-कष्टो का अनुभव करके—उनसे द्रवीभूत होकर—उनके दूर करनेके लिये मन-वचन-कायकी जो प्रवृति है-व्यापार है-उसका नाम 'दया' है। अहिंसाधर्मका अनुष्ठाता जहाँ अपनी ओर से किसीको दुःख-कष्ट नही पहुँचाता, वहाँ दयाधर्म का अनुष्ठाता दूसरों के द्वारा पहुँचाए गये दु.ख-कष्टोंको भी दूर करनेका प्रयत्न करता है। यही दोनो में प्रधान अन्तर है। अहिंसा यदि सुन्दर पुष्प है तो दयाको उसकी सुगंध समझना चाहिये।

दयामें सक्रिय परोपकार, दान, वैय्यावृत्य, धर्मोपदेश और दूसरोके कल्याणकी भावनाएँ शामिल हैं। अज्ञानसे पीड़ित जनता के हितार्थ विद्यालय-पाठशालाएँ खुलवाना, पुस्तकालय-वाचनालय स्थापित करना, रिसर्च इन्सटीट्यूटो का – अनुसन्धान प्रधान संस्थाओंका – जारी कराना, वैज्ञानिक खोजोको प्रोत्तेजन देना तथा ग्रन्थनिर्माण और व्याख्यानादिके द्वारा अज्ञानान्धकारको दूर करनेका प्रयत्न करना, रोगसे पीड़ित प्राणियोंके लिये औषधालयो-चिकित्सालयोंकी व्यवस्था करना, बेरोजगारी अथवा भूखसे संतप्त मनुष्योंके लिये रोजगार-धन्धेका प्रबन्ध करके उनके रोटीके सवालको हल करना, और कुरीतियों कुसस्कारों तथा बुरी आदतोंसे जर्जरित एव पतनोन्मुख मनुष्य समाजके सुधारार्थ सभा-सोसाइटियोका क़ायम करना और उन्हे व्यवस्थित रूपसे चलाना, ये सब उसी दया प्रधान प्रवृत्तिरूप सेवाधर्मके अङ्ग हैं। पूज्योंकी पूजा-भक्ति-उपासना के द्वारा अथवा भक्तियोग-पूर्वक जो अपने आत्मा का उत्कर्ष सिद्ध किया जाता है वह सब भी मुख्यतया प्रवृत्तिरूप सेवाधर्मका अङ्ग है।

इस प्रवृत्तिरूप सेवाधर्ममें भी जहाँतक अपने मन, वचन और कायसे सेवाका सम्बन्ध है वहाँ तक किसी कौड़ी पैसे की जरूरत नहीं पड़ती–जहाँ सेवाके लिये दूसरे साधनोंसे काम लिया जाता है वहाँही उसकी जरूरत पड़ती है। और इस तरह यह स्पष्ट है कि अधिकांश सेवाधर्म के अनुष्ठानके लिये मनुष्यको टके-पैसेकी जरूरत नहीं है। जरूरत है अपनी चित्तवृत्ति और लक्ष्यको शुद्ध करनेकी, जिसके बिना सेवाधर्म बनता ही नहीं।

इस प्रकार सेवाधर्मका यह संक्षिप्तरूप, विवेचन अथवा दिग्दर्शन है, जिसमे सब धर्मोंका समावेश हो जाता है। आशा है यह पाठकोंको रुचिकर होगा और वे इसके फलस्वरूप अपने लक्ष्यको शुद्ध बनाते हुये लोकसेवा करनेमें अधिकाधिक रूपसे दत्तचित्त होंगे।

वीर सेवा मन्दिर, सरसावा,
ता० २५-८-१९३८

# लुप्तप्राय जैन साहित्य

सम्पादकीय

## भगवती आराधनाकी दूसरी प्राचीन टीका-टिप्पणियाँ

'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ' नामका एक विस्तृत लेख 'अनेकान्त' के प्रथम वर्षकी किरण ३, ४ में प्रकाशित हुआ था। उसमें सुहृद्वर पं० नाथूरामजी प्रेमीने शिवोचार्य-प्रणीत 'भगवती आराधना' नामक महान् ग्रंथकी चार संस्कृत टीकाओंका परिचय दिया था—१ अपराजित सूरिकी 'विजयोदया,' २ पं० आशाधरकी 'मूलाराधना-दर्पण', ३ अज्ञातकर्तृका 'आराधना-पंजिका' और ४ प० शिवजीलालकी 'भावार्थ-दीपिका' टीका। पं० सदासुखजीकी भाषावचनिकाके अतिरिक्त उस वक्त तक इन्हीं चार टीकाओं का पता चला था। हाल में मूलाराधना-दर्पण-को देखते हुए मुझे इस ग्रन्थकी कुछ दूसरी प्राचीन टीका-टिप्पणियोंका भी पता चला है और यह मालूम हुआ है कि इस ग्रंथ पर दो संस्कृत टिप्पणों के अतिरिक्त प्राकृत भाषाकी भी एक टीका थी, जिसके होनेकी बहुत बड़ी सभावना थी; क्योंकि मूलग्रंथ अधिक प्राचीन है। साथ ही, यह भी स्पष्ट हो गया कि अपराजित सूरिकी टीकाका नाम 'विजयोदया' ही है, जैसा कि मैंने अपने सम्पादकीय नोट में* सूचित किया था 'विनयोदया' नहीं, जिसके होने पर प्रेमीजीने जोर दिया था।

एक विशेष बात और भी ज्ञात हुई है और वह यह कि अपराजित सूरिका दूसरा नाम 'विजय' अथवा 'श्रीविजय' था। पं० आशाधरजी ने जगह जगह उन्हें 'श्रीविजयाचार्य' के नाम से उल्लेखित किया है और प्रायः इसी नामके साथ उनकी उक्त संस्कृत टीकाके वाक्योंको मतभेदादिके प्रदर्शनरूपमें उद्धृत किया है अथवा किसी गाथाकी असामान्यतादि-विषयमें उनके इस नामको पेश किया है। और इसलिये टीकाकारने टीकाको अपने नामाङ्कित किया है, यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वयं 'विजयोदया' के एक स्थल परसे यह भी जान पड़ा है कि अपराजित सूरिने दशवैकालिक सूत्र पर भी कोई टीका लिखी है और उसका भी नाम अपने नामानुकूल 'विजयोदया' दिया है। यथा:—

"दशवैकालिकटीकायां श्रीविजयोदयायां प्रपंचिता उद्गमादिदोषा इति नेह प्रतन्यते।"

—'उग्गमउप्पायणादि' गाथा न. ११९७

*देखो, 'अनेकान्त,' प्रथम वर्ष, किरण ४ पृ० २१०

अर्थात्—दशवैकालिककी 'श्रीविजयोदया' नामकी टीकामें उद्गमादिदोषोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है, इसीसे यहाँ पर उनका विस्तृत कथन नहीं किया जाता।

हाँ, मूलाराधना-दर्पण परसे यह मालूम नहीं होसका कि प्राकृत टीकाके रचयिता कौन आचार्य हुए हैं—प० आशाधरजी ने उनका नाम साथ में नहीं दिया। शायद एक ही प्राकृत टीकाके होने के कारण उसके रचयिताका नाम देनेकी जरूरत न समझी गई हो। परन्तु कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है कि पं० आशाधरजीने प्राकृत टीकाके-रचयिताके विषयमें अपने पाठकोंको अँधेरेमें रक्खा है। दोनों टिप्पणियोंके कर्ताओंका नाम उन्होंने जरूर दिया है, जिनमें से एक हैं 'जयनन्दी' और दूसरे 'श्रीचन्द्र'। श्रीचन्द्राचार्यके दूसरे टिप्पण प्रसिद्ध हैं—एक पुष्पदन्त कविके प्राकृत उत्तरपुराणका टिप्पण है और दूसरा रविषेण के पद्मचरित का। पहला टिप्पण वि० सं० १०८० में और दूसरा वि० स० १०८७ मे बनकर समाप्त हुआ है*। भगवती आराधना का टिप्पण भी संभवतः इन्हीं श्रीचन्द्रका जान पड़ता है, जिनके गुरुका नाम श्रीनन्दी था और जिन्होंने वि० स० १०७० में पुराणसार' नामका ग्रन्थ भी लिखा है †।

जयनन्दी नामके यों तो अनेक मुनि होगये हैं; परन्तु पं० आशाधरजी से जो पहले हुए हैं ऐसे एक ही जयनन्दी मुनिका पता मुझे अभी तक चला है, जोकि कनडी भाषाके प्रधान कवि आदिपम्पसे भी पहले होगये हैं; क्योंकि आदिपम्प ने अपने 'आदिपुराण' और 'भारतचम्पू' मे जिस का रचनाकाल शक सं० ८६३ ( वि० स० ९९८ ) है, उनका स्मरण किया है। बहुत सभव है कि ये ही 'जयनन्दी' मुनि भगवती आराधनाके टिप्पणकार हों। यदि ऐसा हो तो इनका समय वि० की १०वीं शताब्दीके क़रीबका जान पड़ता है; क्योंकि आदिपुराणमें बहुतसे आचार्योंके स्मरणान्तर इनका जिस प्रकारसे स्मरण किया गया है उस परसे ये आदिपम्पके प्रायः समकालीन अथवा थोड़े ही पूर्ववर्ती जान पड़ते हैं। अस्तु। विद्वानोंको विशेष खोज करके इस विषयमें अपना निश्चित मत प्रकट करना चाहिये। जरूरत है, प्राकृतटीका और दोनों टिप्पणों को शास्त्रभण्डारों की कालकोठरियोंसे खोजकर प्रकाशमे लाने की। ये सब ग्रन्थ प० आशाधरजी के अस्तित्वकाल १३वीं-१४वीं शताब्दीमें मौजूद थे और इसलिये पुराने भण्डारोंकी खोज द्वारा इनका पता लगाया

---

* "श्रीविक्रमादित्यसवत्सरे वर्षाणामशीत्यधिकसहस्रे महापुराण-विषमपदविवरण सागरसेनपरिज्ञाय मूलटिप्पण चालोक्य कृतमिदं समुच्चय-टिप्पणं अज्ञपातभीतेन श्रीमद्बलात्कारगण श्री नन्द्याचार्य-सत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना, निजदोर्दण्डाभिभूत-रिपुराज्यविजयिन. श्रीभोजदेवस्य [राज्ये] ॥१०२॥ इति उत्तर-पुराणटिप्पणकम्"।

"बलात्कारगण-श्रीश्रीनन्द्याचार्य सत्कविशिष्येण श्रीचन्द्र-मुनिना, श्रीमद्विक्रमादित्यसंवत्सरे सप्ताशीत्यधिकवर्षसहस्रे श्रीमद्धारायां श्रीमतो राज्ये भोजदेवस्य पद्मचरिते। इति पद्मचरिते १२३

† धारायां पुरि भोजदेवनृपते राज्ये जयात्युच्चकैः
श्रीमत्सागरसेनतो यतिपतेर्ज्ञात्वा पुराण महत्।
मुक्त्यर्थं भवभीतिभीतजगतां श्रीनन्दिशिष्यो बुधो
कुर्वे चारुपुराणसारममलं श्रीचन्द्रनामा मुनि. ॥१॥

श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे सप्तत्यधिकवर्षसहस्रे पुराणसाराभिधानं समाप्तम्।

जा सकता है। देखते हैं, कौन सज्जन इन लुप्तप्राय ग्रन्थोंकी खोजका श्रेय और यश प्राप्त करते हैं।

अब मैं मूलाराधना दर्पणके उन वाक्योंमेंसे कुछको नीचे उद्धृत कर देना चाहता हूँ जिन परसे उक्त टीका-टिप्पण आदि बातोंका पता चलता है:—

## टीका-टिप्पणके उल्लेख—

(१) "षट्त्रिंशद्गुणा यथा—अष्टौ ज्ञानाचारा अष्टौ दर्शनाचाराश्च तपो द्वादशविधं पञ्च समितयस्तिस्रो गुप्तयश्चेति संस्कृतटीकायां, प्राकृतटीकायां तु अष्टाविंशतिमूलगुणाः अचारवत्त्वादयश्चाष्टौ इति षट्त्रिंशत्। यदि वा दश आलोचनागुणा दश प्रायश्चित्तगुणा दशस्थितिकल्पाः षड्जीतगुणाश्चेति षट्त्रिंशत्।"

—आयारवामादीया० गाथा नं० ५२६।

(२) "किमिरागकंबलस्सव (गा० ५३७) कृमिभुक्ताहारवर्णतंतुभिरूतः कंबलः कृमिरागकंबलस्तस्येति संस्कृतटीकायां व्याख्यानं। टिप्पणके तु कृमिरात्यकरक्ताहाररंजितं तु निष्पादितकंबलस्येति। प्राकृत टीकायां पुनरिदमुक्तं—उत्तरापथे चर्मरंगम्लेच्छविषये म्लेच्छा जलौकाभिर्मानुषरुधिरं गृहीत्वा भंडकेषु स्थापयन्ति। ततस्तेन रुधिरेण कतिपयदिवसोत्पन्नविपन्नकृमिकेणोर्णासूत्रं रंजयित्वा कंबलं वयन्ति। सोऽयं कृमिरागकंबल इत्युच्यते। स चातीवरुधिरवर्णो भवति। तस्य हि वन्हिना दग्धस्यापि स कृमिरागो नापगच्छतीति।"

(३) "कूरं भक्तं। श्रीचन्द्रटिप्पणके त्वेवमुक्तं। अत्र कथयार्थप्रतिपत्तिर्यथा—चन्द्रनामा सूपकारः (इत्यादि)।"

—मयतण्ठादो० गा० ५८९

(४) "एवं सति द्वादशसूत्री तेन (संस्कृतटीकाकारेण) नेष्टा ज्ञायते। अस्माभिस्तु प्राकृतटीकाकारादिमतेनैव व्याख्यायते।"

—चमरीबालं०, छगलंमुत्तं० गा० नं० १०५१,१०५२

(५) "कम्मेत्यादि (गा० नं० १६६६) अत्र स कर्ममलः मिथ्यात्वादिस्तोककर्माणि। सिद्धिं सर्वार्थसिद्धिमिति जयनन्दि-टिप्पणे व्याख्या। प्राकृतटीकायां तु कम्ममलविप्पमुक्को कम्ममलेण मेल्लिदो। सिद्धिं णिव्वाणं।"

—कम्ममलविप्पमुक्को सिद्धि० गा० १९९९।

(६) "सम्मि समभूमिदेशस्थिते वाण वानोद्भव इति जयनन्दी। अन्ये तु वाणवितरओ इत्यनेन व्यंतरमात्रमाहुः।"

—वेमाणिओ थलगदो० गाथा नं० २०००

## अपराजितसूरि और श्रीविजयकी एकताके उल्लेख—

(७) श्रीविजयाचार्यस्तु मिथ्यात्व सेवामतिचारं नेच्छति। तथा च तद्ग्रन्थो—"मिथ्यात्वमश्रद्धानं तत्सेवायां मिथ्यादृष्टिरेवासाविति नातिचारिता" इति।

—सम्मत्तादीचारा० गा० ४४

(८) "एतां (णवमम्मिय जं पुव्वं० गा० ५६५) श्रीविजयो नेच्छति।"

(९) एते (सल्लेहणाए० ६८१, एगम्मि भवग्गहणे० ६८२) श्रीविजसाचार्योनेच्छति।"

(१०) "श्रीविचार्योऽत्र आणापायविराग-विचयोनामधर्मध्यानं 'आणापायं' इत्यस्मिन्पाठे स्वपायविचयो नामेति व्याख्यत्।"

—कल्लाणपावगाए० गा० १७१२

(११) "श्रीविजयस्तु 'दिस्सदि दंता व उवरीति' पाठं मन्यमानो ज्ञायते।

—जदि तस्स उत्तमगं० गा० १५९९

उपर्युक्त उल्लेखोंमें विजयाचार्यके नामसे जिन वाक्योंका अथवा विशेषताओंका कथन किया गया है वे सब अपराजितसूरिकी उक्त टीकामें ज्योंकी त्यों पाई जाती हैं। जिन गाथाओं-को अपराजितसूरि (श्रीविजय) ने न मानकर उनकी टीका नहीं दी है उनके विषय में प्रायः इस प्रकार के वाक्य दिये हैं—"अत्रेयं गाथा सूत्रेऽनुश्रयते", अत्रेमे गाथे सूत्रेऽनुश्रूयेते।" ऐसी हालतमें श्रीविजय और अपराजितसूरिकी एकता-में कोई सन्देह नहीं रहता।

आशा है साहित्य-प्रेमी और जिनवाणी के भक्त महाशय शीघ्र ही उक्त प्राकृत टीका और दोनों टिप्पणोंको अपने अपने यहाँके शास्त्र-भंडारोंमें खोजनेका पूरा प्रयत्न करेंगे। जो भाई खोजकर इन ग्रंथोंको देखनेके लिये मेरे पास भेजेंगे उनका मैं बहुत आभारी हूँगा और उन ग्रंथों परसे और नई नई तथा निश्चित बातें खोज करके उनके सामने रक्खूँगा। अपने पुरातन साहित्यकी रक्षा पर सबको ध्यान देना चाहिये। यह इस समय बहुत ही बड़ा पुण्य कार्य है। ग्रंथों-के नष्ट होजाने पर किसी मूल्य पर भी उनकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी और फिर सिवाय पछताने-के और कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहेगा। अतः समय रहते सबको चेत जाना चाहिये।

वीर-सेवा-मंदिर, सरसावा,

ता० १०-८-१९३८

---

## भावना

कुनय कदाग्रह ना रहे, रहे न पापाचार।
अनेकान्त ! तव तेज से हो विरोध परिहार ॥१॥
सूख जायँ दुर्गुण सकल, पोषण मिले अपार–
सद्भावोंको लोक में सुखी बने-संसार ॥२॥

—'युगवीर'

# प्रभाचन्द्रके समयकी सामग्री

( ले०—श्री० पं० महेन्द्रकुमार न्याय-शास्त्री, )

## वाचस्पति और जयन्तका समय

आचार्य प्रभाचन्द्रके समय-निर्णयमे न्याय-मजरीकार भट्ट जयन्त तथा प्रशस्तपाद-भाष्यकी व्योमवती टीकाके रचयिता व्योमशिवाचार्यका समय-निर्णय अत्यंत अपेक्षणीय है; क्योंकि प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचद्र-पर न्यायमजरी और व्योमवतीका स्पष्टतया प्रभाव है*।

जयन्तकी न्यायमजरीका प्रथम सस्करण विजयनगर सिरीजमें सन् १८९५ में प्रकाशित हुआ है। इसके सपादक म० म० गंगाधर शास्त्री मानवल्ली हैं। इन्होंने भूमिकामे लिखा है कि—'जयन्तभट्टका गगेशोपाध्यायने उपमानचिन्तामणि (पृ० ६१) में जरन्नैयायिक करके उल्लेख किया है। जयन्तभट्टने न्यायमंजरी (पृ० ३१२) मे वाचस्पति मिश्रकी तात्पर्य-टीकासे "जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः" यह वाक्य 'आचार्यैः' करके उद्धृत किया है। अतः जयन्तका समय वाचस्पति (841 A D.) से उत्तर तथा गगेश (1175 A. D ) से पूर्व होना चाहिये।'

डा० शतीशचन्द्र विद्याभूषण भी उक्त वाक्य के आधार पर इनका समय ९ वीं से ११ वी शताब्दी तक मानते हैं×। अत जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन माननेकी परम्पराका आधार म० म० गंगाधर शास्त्री-द्वारा "जातं च सम्बद्धं चेत्येकः कालः" इस वाक्यको वाचस्पति मिश्रका लिख देना ही मालूम होता है।

वाचस्पति मिश्रने अपना समय 'न्यायसूचीनिबन्ध' के अन्तमे स्वय दिया है। यथा—

"न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वसुस्वंकवसुवत्सरे॥"

इस में ८९८ वत्सर लिखा है।

म० म० विन्ध्येश्वरीप्रसादजीने 'वत्सर' शब्द से शक संवत् लिया है†। डा० शतीशचन्द्र विद्याभूषण विक्रम सवत लेते हैं‡। म० म० गोपीनाथ कविराज भी लिखते हैं§ कि 'तात्पर्य-टीकाकी परिशुद्धि-टीका बनाने वाले आचार्य उदयनने अपनी 'लक्षणावली' शक सं० ९०६ (984 A. D.) मे समाप्त की है। यदि वाचस्पति-का समय शक सं० ८९८ माना जाता है तो इतनी जल्दी उस पर परिशुद्धि-जैसी टीका बन जाना सभव मालूम नहीं होता।

अतः विक्रम सवत् ८९८ (841 A. D.) यह वाचस्पति मिश्रका समय प्रायः सर्वसम्मत है। वाचस्पति मिश्रने वैशेषिक दर्शनको छोड़कर, प्रायः सभी दर्शनों पर टीकाएँ लिखी हैं। सर्व-

---

* देखो, न्याय कुमुदचन्द्रके फुट नोट्स, तथा प्रमेय कमल मा० की मोक्षचर्चा तथा व्योमवतीकी मोक्ष चर्चा।

× हिस्ट्री ऑफ़ दि इण्डियन लाजिक, पृ० १४६।

† न्यायवार्त्तिक-भूमिका, पृ० १४५।

‡ हिस्ट्री आफ दि इण्डियन लाजिक, पृ० १३३।

§ हिस्ट्री एंड बिब्लोग्राफी आफ दि न्याय-वैशेषिक Vol III, पृ० १०१।

प्रथम इन्होंने मंडन मिश्रके विधिविवेक पर 'न्याय-कणिका' नामकी टीका लिखी है; क्योंकि इनके दूसरे ग्रन्थोंमें प्रायः इसका निर्देश है। उसके बाद मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिकी व्याख्या 'ब्रह्मतत्त्व-समीक्षा' तथा 'तत्वबिन्दु' इन दोनों ग्रन्थोका निर्देश तात्पर्य-टीकामे मिलता है, अतः उनके बाद 'तात्पर्य-टीका' लिख गई। तात्पर्य टीकाके साथही 'न्यायसूची-निबन्ध' लिखा होगा; क्योंकि न्यायसूत्रोका निर्णय तात्पर्य-टीकामे अत्यन्त अपेक्षित है। 'सांख्यतत्वकौमुदी' में तात्पर्य-टीका उद्धृत है, अतः तात्पर्य टीकाके बाद 'सांख्यतत्व-कौमुदी' की रचना हुई। योगभाष्यकी तत्व-वैशारदी टीकामें 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' का निर्देश है, अतः निर्दिष्ट कौमुदीके बाद 'तत्ववैशारदी' रची गई। और इन सभी ग्रन्थोंका 'भामती' टीका में निर्देश होने से 'भामती' टीका सब के अन्त में लिखी गई है।

## जयन्त वाचस्पति मिश्रके समकालीन वृद्ध हैं

वाचस्पति मिश्र अपनी आद्यकृति 'न्याय-कणिका' के मङ्गलाचरणमें न्यामञ्जरीकारको बड़े महत्वपूर्ण शब्दों मे गुरुरूपसे स्मरण करते हैं। यथाः—

**अज्ञानतिमिरशमनीं परदमनीं न्यायमञ्जरींरुचिराम्**
**प्रसवित्रे प्रभवित्रे विद्यातरवे नमो गुरवे ॥**

इस श्लोक में स्मृत 'न्यायमञ्जरी' भट्ट जयन्त-कृत न्यायमञ्जरी-जैसी प्रसिद्ध 'न्यायमञ्जरी' ही होनी चाहिये। अभी तक कोई दूसरी न्यायमञ्जरी सुनने में भी नहीं आई। जब वाचस्पति जयन्तको गुरुरूपसे स्मरण करते हैं तब जयन्तको वाचस्पति के उत्तरकालीन नहीं मान सकते। यद्यपि वाचस्पति-ने तात्पर्य-टीकामे 'त्रिलोचनगुरुन्नीत' इत्यादि पद देकर अपने गुरुरूपसे 'त्रिलोचन' का उल्लेख किया है, फिर भी जयन्तको उनके गुरु अथवा गुरुसम होने में कोई बाधा नहीं है। एक व्यक्तिके अनेक गुरु भी हो सकते हैं।

अभी तक 'जातश्च सम्बद्धं चेत्येकः कालः' इस वचन के आधार पर ही जयन्तको वाचस्पति-का उत्तरकालीन माना जाता है। पर, यह वचन वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीकाका नहीं है, किन्तु न्याय-वार्तिककार श्री उद्योतकरका है (न्यायवार्तिक-पृ० २३६), जिस न्यायवार्तिक पर वाचस्पतिकी तात्पर्यटीका है। इनका समय धर्मकीर्ति (635-650 A. D) से पूर्व होना निर्विवाद है।

म० म० गोपीनाथ कविराज अपनी 'हिस्ट्री एण्ड बिब्लोग्राफी ऑफ न्यायवैशेषिक लिटरेचर' मे लिखते हैं * कि—वाचस्पति और जयन्त समकालीन होने चाहिएँ; क्योंकि जयन्तके ग्रन्थों पर वाचस्पतिका कोई असर देखने में नहीं आता। 'जातश्च' इत्यादि वाक्यके विषय में भी उन्होंने सन्देह प्रकट करते हुए लिखा है कि यह वाक्य किसी पूर्वाचार्य का होना चाहिये। वाचस्पतिके पहले भी शङ्कर स्वामी आदि नैयायिक हुए हैं, जिनका उल्लेख तत्वसग्रह आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने जयन्तको वाच-स्पतिका उत्तरकालीन मानकर न्यायञ्जरी (पृ०

* सरस्वती भवन सेरीज़ III पार्ट।

१२० ) में उद्धृत 'यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः' इस पद्य को टिप्पणीमें 'भामती' टीकाका लिख दिया है। पर वस्तुतः यह पद्य वाक्यपदीय ( १-३४ ) का है और 'न्यायमञ्जरी की तरह भामती टीकामें भी उद्धृत ही है—मूलका नहीं है।

न्यायसूत्रके प्रत्यक्ष-लक्षणसूत्र ( १-१-४ ) की व्याख्यामें वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि—'व्यवसायात्मक' पदसे सविकल्पक प्रत्यक्ष ग्रहण करना चाहिये तथा 'अव्यपदेश्य' पदसे निर्विकल्पक ज्ञान का। संशयज्ञानका निराकरण तो 'अव्यभिचारी' पदसे हो ही जाता है, इसलिये संशयज्ञानका निराकरण करना 'व्यवसायात्मक' पदका मुख्य कार्य नहीं है। यह बात मैं 'गुरून्नीत मार्ग' का अनुगमन करके कहरहा हूँ।'

इसी तरह कोई व्याख्याकार 'अयमश्वः' इत्यादि शब्दसंसृष्ट ज्ञानको उभयजज्ञान कहकर उसकी प्रत्यक्षताका निराकरण करनेके लिए अव्यपदेश्य पदकी सार्थकता बताते हैं। वाचस्पति 'अयमश्वः' इस ज्ञानको उभयजज्ञान न मानकर ऐन्द्रियक कहते हैं। और वह भी अपने गुरुके द्वारा उपदिष्ट इस गाथा के आधार पर—

शब्दजत्वेन शाब्दश्चेत् प्रत्यक्षं चाक्षजत्वतः।
स्पष्टग्रहणरूपत्वात् युक्तमैन्द्रियकं हि तत् ॥

इसलिये 'अव्यपदेश्य' पदका प्रयोजन निर्विकल्पकका संग्रह करना ही बतलाते हैं।

न्यायमञ्जरी (पृ० ७८) में 'उभयजज्ञानका व्यवच्छेद करना अव्यपदेश्यपदका कार्य है' इस मत का 'आचार्याः' इस रूप से उल्लेख किया है। उस पर व्याख्याकारकी अनुपपत्ति दिखाकर न्यायमञ्जरीकारने उभयजज्ञानको स्वीकार नहीं किया है।

म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने इस 'आचार्याः' पदके नीचे 'तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' यह टिप्पणी की है। यहाँ यह विचारणीय है कि—यह मत वाचस्पति मिश्रका है या अन्य किसी पूर्वाचार्यका। तात्पर्य-टीका (पृ० १४८) में तो स्पष्ट ही उभयजज्ञान नहीं मानकर उसे ऐन्द्रियक कहा है। इसलिये वह मत वाचस्पतिका तो नहीं है। व्योमवती टीका ( पृ० ५५५ ) में उभयजज्ञानका स्पष्ट समर्थन है, अतः वह मत व्योमशिवाचार्यका हो सकता है। व्योमवतीमें न केवल उभयजज्ञानका समर्थन ही है किन्तु उसका व्यवच्छेद भी अव्यपदेश्य पदसे किया है। हाँ, उस पर जो व्याख्याकार की अनुपपत्ति है वह कदाचित् वाचस्पतिकी तरफ लग सकती है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि वाचस्पतिने अपने गुरुकी जिस गाथाके अनुसार उभयजज्ञानको ऐन्द्रियक माना है, उससे साफ मालूम होता है कि वाचस्पतिके गुरुके सामने उभयजज्ञानको माननेवाले आचार्य (संभवतः व्योमशिवाचार्य) की परम्परा थी, जिसका खण्डन वाचस्पतिके गुरुने किया। और जिस खण्डनको वाचस्पतिने अपने गुरुकी गाथाका प्रमाण देकर तात्पर्य-टीकामें स्थान दिया।

इसी तरह तात्पर्य-टीकामें ( पृ० १०२ ) 'यदा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलम्' इसका व्याख्यान करते हुए वाचस्पति मिश्रने उपादेयताज्ञानको 'उपादान' पदसे लिया है और उसका क्रम भी 'तोयालोचन, तोयविकल्प, दृष्टतज्जातीयसंस्कारोद्बोध, स्मरण, 'तज्जातीयचेदम्' इत्याकारकपरामर्श, इत्यादि बताया है।

न्यायमंजरी (पृ० ६६) के इसी प्रकरणमें शंका की है कि-'प्रथम आलोचन ज्ञानका फल उपादानादिबुद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि उसमें कई क्षणका व्यवधान पड़ जाता है'? इसका उत्तर देते हुए मंजरीकारने 'आचार्याः' करके उपादेयता ज्ञानको उपादानबुद्धि कहते हैं' इस मतका उल्लेख किया है। इस 'आचार्याः' पद पर भी म० म० गंगाधर शास्त्रीने '**न्यायवार्त्तिक-तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः**' ऐसा टिप्पण किया है। न्यायमंजरीके द्वितीय संस्करणके संपादक सूर्यनारायण जी न्यायाचार्यने भी उन्हींका अनुसरण करके उसे बड़े टाइपमें हेडिंग देकर वाचस्पतिका मत ही छपाया है।

मंजरीकारने इस मतके बाद भी एक व्याख्याताका मत दिया है जो इस परामर्शात्मक उपादेयता ज्ञानको नहीं मानता। यहाँ भी यह विचारणीय है कि—यह मत स्वयं वाचस्पतिका है या उनके पूर्ववर्ती उनके गुरुका? यद्यपि यहाँ उन्होंने अपने गुरुका नाम नहीं लिया है, तथापि व्योमवती जैसी प्रशस्तपादकी प्राचीन टीका (पृ० ५६१) में इसका स्पष्ट समर्थन है, तब इस मतकी परम्परा भी प्राचीन ही मानना होगी। और 'आचार्याः' पदसे वाचस्पति न लिए जाकर व्योमशिव जैसे कोई प्राचीन आचार्य लेना होंगे। मालूम होता है म० म० गंगाधर शास्त्रीने '**जातश्च सम्बद्धश्चेत्येकः कालः**' इस वचनको वाचस्पतिका मानने के कारण ही दो जगह 'आचार्याः' पद पर '**वाचस्पतिमिश्राः**' ऐसी टिप्पणी करदी है, जिसकी परम्परा चलती रही। हाँ, म० म० गोपीनाथ कविराजने अवश्य ही उसे सन्देह-कोटिमें रक्खा है।

भट्ट जयन्तने कारकसाकल्यको प्रमाण माना है तथा प्रत्यक्ष-लक्षणमें इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नत्वादि विशेषणोंसे स्वरूप-सामग्री-विशेषण-पक्ष न मानकर फल-विशेषण-पक्ष स्वीकृत किया है। व्योमवती टीकाके भीतरी पर्यालोचनसे मालूम होता है कि—व्योमशिवाचार्य भी कारकसामग्रीको प्रमाण मानते हैं तथा फलविशेषण-पक्ष भी उन्होंने स्वीकार किया है।

यहाँ यह भी बता देना समुचित होगा कि व्योमवती टीका बहुत पुरानी है। मैं स्वयं इसी लेखमालाके अगले लेखमें व्योमशिवाचार्यके विषयमें लिखूँगा। यहाँ तो अभी तककी सामग्री के आधार पर इतनी प्राक् सूचना की जा सकती है कि जयन्तको व्योमशिवके ग्रन्थोंसे कारकसाकल्य, अनर्थजत्वात् स्मृतिको अप्रमाण मानना, फलविशेषणपक्ष, प्रत्यक्षलक्षण सूत्रमें 'यतः' पदका समावेश आदि विषयोंकी सूचनाएँ मिली हैं।

## भट्ट जयन्तकी समयावधि

जयन्त मंजरीमें धर्मकीर्तिके मतकी समालोचनाके साथ ही साथ उनके टीकाकार धर्मोत्तरकी आदिवाक्यकी चर्चाको स्थान देते हैं। तथा प्रज्ञाकरगुप्त के '**एकमेवेदं हर्षविषादाद्यनेकाकारविवर्त्तं पश्यामः तत्र यथेष्टं संज्ञाः क्रियन्ताम्**' (भिक्षु राहुलजीकी वार्तिकालङ्कारकी प्रेसकापी पृ० ४२९) इस वचनका खंडन करते हैं, (न्यायमंजरी० पृ० ७४)।

भिक्षु राहुलजीने टिबेटियन गुरुपरम्पराके अनुसार धर्मकीर्तिका ६२५, प्रज्ञाकरगुप्तका ७००, धर्मोत्तर और रविगुप्तका ७२५ ईस्वी सन्का समय लिखा है। जयन्तने एक जगह रविगुप्तका भी नाम लिया है। अतः जयन्तकी पूर्वावधि ७२५ A. D. तथा उत्तरावधि ८४१ A. D. होनी चाहिए। यह समय जयन्तके पुत्र अभिनन्द द्वारा दीगई जयन्तकी पूर्वजावलीसे भी संगत बैठता है। अभिनन्द अपने कादम्बरी कथासारमे लिखते है कि—

'भारद्वाज कुलमें शक्ति नामका गौड़ ब्राह्मण था। उसका पुत्र मित्र, मित्रका पुत्र शक्तिस्वामी हुआ। यह शक्तिस्वामी कर्कोटवंशके राजा मुक्तापीड ललितादित्यके मंत्री थे। शक्तिस्वामीके पुत्र कल्याणस्वामी, कल्याणस्वामीके पुत्र चन्द्र तथा चन्द्रके पुत्र जयन्त हुए, जो नववृत्तिकारके नामसे मशहूर थे। जयन्तके अभिनन्द नामका पुत्र हुआ।'

काश्मीरके कर्कोट-वंशीय राजा मुक्तापीड ललितादित्यका राज्य काल ७३३से ७६८ A. D. तक रहा है*। यदि प्रत्येक पीढ़ीका समय २५ वर्ष भी मान लिया जाय तो शक्तिस्वामीके ईस्वी सन् ७३५मे कल्याणस्वामी, कल्याणस्वामीके ७६०में चन्द्र, चन्द्रके ७८५ मे जयन्त उत्पन्न हुए और उन्होंने ईस्वी सन् ८१५ तकमे अपनी 'न्याय मंजरी' बनाई होगी। इसलिये वाचस्पतिके समयमे जयन्त वृद्ध होंगे और वाचस्पति इन्हें आदर की दृष्टिसे देखते होंगे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आद्यकृतिमे न्यायमंजरीकारका स्मरण किया है।

व्योमशिव और जयन्तकी तुलना तथा व्योमशिवका समय एवं उनका जैनग्रंथों पर प्रभाव, ये सब विषय अगले लेखमें लिखे जायँगे।

—):*:(—

# उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी

(ले० श्री स्वामी कर्मानन्द जी जैन)

यह हम दावेके साथ कह सकते हैं कि संसारमे जितने मत-मतान्तर है उन सवका आदि मूल जैन-धर्म्म है। दूसरे सम्पूर्ण धर्म्म जब भारतीय धर्म्मोंके विकृतरूप हैं तब अन्य भारतीय धर्म्म जैन-धर्म्मके रूपान्तर हैं। जैन-धर्म्मका इतिहास अति प्राचीन एवं इसका कथन बहुत ही स्वाभाविक है। आज हम इसके कालवाचक शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करेंगे। अति प्राचीन समयमे भारतीय शास्त्र युगके मुख्य दो भाग

* देखो, संस्कृत साहित्यका इतिहास, परिशिष्ट(ख)पृ० १५।

करते थे, जिनके नाम उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी थे। यथा :—

उत्सर्पिणी युगार्धं च पश्चादवसर्पिणी युगार्धं च।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥
—आर्य सिद्धान्त, ३, ९।

अर्थात्—युगके दो भाग हैं, प्रथम युगार्धका नाम उत्सर्पिणी तथा दूसरेका अवसर्पिणी है। उत्सर्पिणीके मध्यवर्ती ६ विभाग हैं और इसी प्रकार अवसर्पिणीके भी ६ ही विभाग हैं। इन १२ विभागोंके नाम सुषमा-सुषमा आदि तथा दुषमा-दुषमा आदि है—उत्सर्पिणीके ६ विभागोंके नाम सुषमा-सुषमा आदि और अवसर्पिणीके विभागों-के नाम दुषमा-दुषमा आदि हैं।

यदि उपर्युक्त कथनके साथ वैदिक ज्योतिष-ग्रंथ 'आर्य सिद्धान्त' का नाम न रखा जाय तो कोई भी व्यक्ति इसको वैदिक सिद्धान्त कहनेके लिए उद्यत न होगा; क्योंकि मूलरूपमें उपर्युक्त मान्यता शुद्ध जैन-धर्म्म की ही है—वर्त्तमान समय-में जितने भी मत हैं उनमेंसे किसीके भी यहाँ उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि शब्दोंका व्यवहार नहीं है *।

जैन-धर्म्मके सर्वमान्य तत्त्वार्थसूत्रमे इनका स्पष्ट वर्णन है † तथा प्रत्येक बाल-वृद्ध जैन उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीको तथा उनके सुषमा-सुषमादि और दुषमा-दुषमादि विभागोंको जानता ही नहीं किन्तु कंठस्थ तक रखता है। इसी कालचक्रका नाम विकासवाद तथा ह्रासवाद है। डरविनका विकासवाद एवं अन्य विद्वानोका ह्रासवाद एकान्तवाद हैं; परन्तु जैन-धर्म्मने प्रारम्भसे ही वस्तुके वास्तविक-स्वरूप-का कथन किया है। संसारमे हम विकास और ह्रास दोनों ही देखते हैं, इसलिये जैनशास्त्रने दोनों पक्ष माने है। जैनफिलासफीकी तरह वर्त्तमान विज्ञान भी इस बातको स्वीकार करता है कि कभी तो विकासका प्राधान्य होता है और कभी ह्रासका। जब विकासका प्रधान्यत्व होता है तब उत्सर्पिणीकाल कहलाता है और जब ह्रास प्रधान होता है तो उसको अवसर्पिणीकाल कहते हैं। इन दोनोंके जो सुषमा-सुषमा आदि भेद है जैन शास्त्रोंमें उनका नाम आरे है। यह 'आरे' कालचक्रकी संज्ञाभी जैनियोंकी ही परिभाषा है—अन्य मतोंमे इसके लिएभी कोई स्थान नहीं है। हाँ वैदिक साहित्यमे आरोंका कुछ वर्णन जरूर है। यथा—

द्वादशारं न हि तज्जराय।
ऋ० मं० १ सू० १६४ मन्त्र ११

अर्थात्—१२ आरे सूर्यकी वृद्धावस्थाके लिये नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि सूर्य नित्य सनातन है। न कभी उत्पन्न होता है और न कभी नष्ट होता है। अन्य अनेक स्थानोंमें भी इन आरोंका कुछ कथन है। परन्तु संसारके वास्तविक स्वरूप-को तदनुकुल सुन्दर शब्दोंमें वर्णन करनेका श्रेय जैन-धर्म्मको ही प्राप्त है। उत्सर्पिणी और अवस-

* शब्द कल्पद्रुम कोष और आप्टेकी सस्कृत इंगलिश डिकशनरीमे भी इसे जैनियोंकी ही मान्यता बतलाया है।
—सम्पादक

† भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ ३—२७॥

पिंणी जैसे सुन्दर शब्द, जो संसारकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके भावको प्रकट करते है, अन्य शास्त्रों तथा अन्य भाषाओंमे उपलब्ध नहीं हैं। और इसलिये भारतवर्ष इसपर अभिमान भी कर सकता है, क्योकि भारतके सिवा अन्य देशोंमें इतना मौलिक और उपयुक्त नामकरण नहीं पाया जाता है।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि भारतमे साम्प्रदायिक कलहका बीजारोपण हुआ और उसके फल इतने कड़वे एवं भयानक निकले कि उनके स्मरण मात्रसे हृदय काँप उठता है। बस जिस नामको जैन-धर्म्म स्वीकार करता है उसको हम कैसे स्वीकार करें? इस प्रकारकी भावनाएँ आपसके विरोधसे उत्पन्न हो गई। इसीलिये उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके स्थानपर पुराणकारोंने सर्ग और प्रतिसर्ग नामों-की रचना की तथा आरोके स्वाभाविक कथनके स्थानपर मन्वन्तरोंकी कल्पना की गई और कलि-युग आदिकी भद्दी कल्पनाका भी जन्म हुआ।

मन्वन्तरोंकी कल्पना किस प्रकार प्रचलित हुई, इसका वर्णन हम 'भारतका आदि सम्राट्' पुस्तक-में कर चुके हैं। कलियुग आदिकी कल्पना नवी-नतर है, इसको आजकलके प्राय: सभी ऐतिहा-सिकोंने मुक्त कंठसे स्वीकार किया है। वैदिक मूल संहिताओमे कृत, कलि आदि शब्द जूये (द्यूत) के पासोंके अर्थमें ही प्रयुक्त हुए हैं। अत: यह निश्चित है कि वैदिक समयमे कालके विभाग कलियुग आदिके नाममे नहीं थे। उसके पश्चात् 'ब्राह्मण' ग्रन्थोंमे भी कलि आदि शब्द युगके अर्थमें प्रयुक्त हुए नहीं देखे जाते। और इसलिये यह स्पष्ट है कि कलि आदिकी कल्पना नवीनतम तथा अवैदिक है।

इसके अलावा कलियुग कब आरम्भ हुआ, इस विषयमे शास्त्रकारो तथा आधुनिक विद्वानोंमें भयानक मत-भेद पाया जाता है। यथा :—

(१) मदरासके प्रसिद्ध विद्वान् विलएडो०के० अय्यर का मत है कि, कलियुगका आरम्भ ११७६ वर्ष शक पूर्व है।

(२) रमेशचन्द्रदत्त और अन्य अनेक पाश्चात्य पण्डितोंका कथन है कि कलियुगका आरम्भ १३२२ वर्ष शक पूर्व है।

(३) मिश्र-बन्धुओंने सिद्ध किया है कि २०६६ वर्ष शक पूर्व कलिका आरम्भ हुआ।

(४) राज तरंगणीके हिसाबसे २५२६ वर्ष शक पूर्व कलिका आरंभ ठहरता है।

(५) वर्तमान पञ्चांगोंके हिसाबसे तथा लोकमान्य तिलक आदिके मतसे ३१७९ वर्ष शक पूर्वका समय आता है।

(६) कैलाशवासी मौडकके मतसे कलिका आरम्भ समय ५००० वर्ष शक पूर्वका है।

(७) वेदान्तशास्त्री विल्लाजी रघुनाथ लेलेके मत-से ५३०६ वर्ष शक पूर्व कालका प्रारम्भ हुआ।

हमने यहाँ सात मतोंका दिग्-दर्शन कराया है। इसी प्रकार अनेक मत हैं, जिनको स्थाना-भावसे छोड़ दिया गया है। पाठक वृन्द ११००की तथा ५३००की संख्याओंका भेद कितना विशाल है, इसको ज़रा ध्यानसे देखें। इस भारी अन्तरका कारण यह है कि वास्तव में कभी कलियुग आरम्भ ही नहीं हुआ। यह एक निराधार कल्पना है, जिसको विरोधमे उपस्थित किया गया था। इसलिये किसीने कुछ अनुमान लगाया तो किसीने कुछ धारणाकी। इसीप्रकार कलयुगकी समाप्तिके विषयमे भी मतभेद है। नागरी-प्रचारिणीपत्रिका भाग १० अंक १ मे एक लेख भारतके सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् स्वर्गीय श्रीकाशीप्रसादजी

जायसवाल, एम. ए. विद्यामहोदधिने लिखा है। उसमे अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया गया है कि विक्रमादित्यसे पूर्व ही कलियुग समाप्त हो चुका था, उसके पश्चात् विक्रम संवत चला जिसको प्राचीन लेखों में कृत-सवत्के नामसे उल्लेख किया है। इसी भावकी पुष्टि जयचन्द्रजी विद्यालंकारने अपनी 'रूपरेखा'में की है।

इस कल्पनाका कारण यही था कि जब ब्राह्मणोंने देखा कि विक्रमादित्यके राज्यमें सब बातें अच्छी हैं तो उन्होंने कह दिया कि कृत-युग आगया और उनके संवत्का नाम भी कृत-संवत् रखदिया; परन्तु जब उनके पश्चात् फिर भी वही पूर्ववत् अवस्था होगई तो 'कलि-वृद्धि भविष्यति' का शोर मचा दिया और कलियुगकी आयुभी बढ़ादी। इस विषयमें हम भारतके ही नहीं किन्तु ससारके ज्योतिष-विद्याके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् पं० बालकृष्णजी दीक्षितका मत लिख देना परम आवश्यक समझते हैं। आप लिखते है कि ज्योतिष-ग्रथोंके मतसे शकारम्भके पूर्व ३१७६ वर्षमे कलियुग आरम्भ हुआ ऐसा कहते हैं सही, किन्तु जिन ग्रंथोंमे यह वर्णन है वे ग्रन्थ २६०० वर्ष कलि लगनेके बादके हैं। सिवा इन ज्योतिष ग्रन्थोंके प्राचीन ज्योतिष या धर्म्मशास्त्र आदि ग्रन्थोंमें कलियुग आरम्भ कब हुआ यह देखनेमे नहीं आया, न पुराणों मे ही खोजनेसे मिलता है। यदि कहीं होगा भी तो वह प्रसिद्ध नहीं है। हाँ यह बात तो अवश्य है कि कुछ ज्योतिष ग्रन्थोंके कथनानुसार यह वाक्य मिलते हैं कि कलियुग के आरम्भमे सब ग्रह एकत्रित थे, किन्तु गणित से यह सिद्ध नहीं होता कि ये किस समय (एकत्रित) थे। यदि थोड़ी देरके लिये ऐसा मान भी लें कि सब ग्रह अस्तंगत थे किन्तु भारत आदि पुराणों में तो इसका उल्लेख नहीं मिलता। हाँ उल्लेख मिलता है २६०० वर्ष बादके बने सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रंथोंमे'।

—भारतीय ज्योतिःशास्त्र, पृ०१४१।

इसीप्रकार कृतयुग आरम्भकी बात है। इसके विषयमे भी शास्त्रोंका मत है कि जब सूर्य, चंद्रमा, तथा वृहस्पति एक राशीमें आवेंगे तब कृतयुगका आरम्भ होगा, परंतु ज्योतिर्विद् जानते हैं कि इनका एक राशीमे आना असंभव है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि कलियुग आदिकी कल्पना एक निराधार कल्पना है तथा नवीन कल्पना है। इस कल्पनाका मुख्य कारण सृष्टिकी रचनाका सिद्धान्त है। जब यह माना जाने लगा कि सम्पूर्ण जगत् एक समय उत्पन्न हुआ है तो उसकी आयुका प्रश्न उपस्थित होना भी स्वाभाविक ही था। बस इसी प्रश्नको हल करनेके लिये उपयुक्त कल्पना की गई है। इस कल्पनाका एक अन्य भी कारण ऐतिहासिकोने लिखा और वह यह है कि खालडियन लोगोंमें एक युग अथवा सृष्टिसंवत् ४३२००० वर्षका था, उसीके आधारपर इस कल्पनाको जन्म दिया गया। और उसमें ४३२००० के स्थान पर चार बिन्दु बढ़ाकर चार अरब बत्तीस करोड़ ४३२००००००की संख्या करदी गई। सारांश यह है कि कालके प्राचीन और वास्तविक भेद उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ही हैं, जोकि जैन-शास्त्र की मान्यता है। यही मान्यता प्राचीन वैदिक आर्यों की मान्यता थी। वास्तव मे जैन-धर्म्म और प्राचीन वैदिक-धर्म्म एक ही वस्तु थी—बादमे उसके रूपान्तर होकर अनेक मत मतान्तरोंकी सृष्टि हुई है। नवीन वैदिक धर्म्मी अपने प्राचीन वास्तविक धर्म्मको भूलकर नई नई कल्पनाएँ करते हैं जैन-धर्म्म ही प्राचीन वैदिक धर्म्म है, इस विषयका सविस्तार और सप्रमाण विवेचन हम 'धर्म्मके आदि प्रवर्तक' ग्रंथ में करेंगे।

# भक्तामर स्तोत्र

(ले० श्री० प० अजितकुमार जैन शास्त्री)

कर्मबन्धनसे स्वतन्त्र होनेके लिये यद्यपि मुख्य साधन ध्यान है—क्योंकि आत्म-ध्यान द्वारा ही सविशेषरूपसे कर्म-राशि क्षय होकर आत्मा शुद्ध होता है—किन्तु आत्मध्यान सतत सर्वदा नहीं हो सकता और न आत्मध्यानका असली उच्चरूप (शुक्लध्यान) सर्वसाधारणको प्राप्त ही होता है अत. आत्मशुद्धिके लिये अनेक प्रकार-के व्रत, नियम, समिति, गुप्ति, भावना, धर्म आदि क्रियाकलापभी नियत किये गये हैं। उनमें छह आवश्यक भी एक गणणीय साधन हैं। मुनि-मार्ग पर चलने वाले वीरात्माओंके लिये सामायिक, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक कर्म बतलाये हैं और गृहस्थाश्रममें रहकर धर्मसाधन करने वालोंके लिये प्रायः देवपूजन, गुरूउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये छह आवश्यक कर्तव्य निर्दिष्ट किये हैं।

मुनिमार्ग तथा गृहस्थमार्गके इन जुदे-जुदे आवश्यकोंमे भक्ति-विषयक वंदना, स्तुति तथा देवपूजन, गुरूपासना ये आवश्यक मिलते जुलते हैं। मुनि भी स्तुति, वंदना-द्वारा परमेष्ठियोकी भक्ति करते हैं, गृहस्थ भी स्तुति-वंदना-द्वारा पंच-परमेष्ठीकी भक्ति करते हैं। यद्यपि भक्तिको कुछ प्रबल बनानेकेलिये गृहस्थ अष्ट द्रव्य, गीत, नृत्य, वादित्र आदि अन्य बाह्य साधनोंका भी अवलंबन लेता है; जब कि मुनि इन बाह्य साधनोंको दूर छोड़कर भक्तिपूर्ण अपने भावोंका ही अवलंबन लेते हैं। परन्तु अर्हन्तपद पानेकेलिये 'वीतरागता प्राप्तकरना' यह उद्देश्य दोनोंका एक ही जैसा होता है, जिसे सिद्ध करनेकी मुनि तथा गृहस्थ दोनोंही प्रतिदिन चेष्टा करते है। अस्तु।

अर्हन्त-भक्तिकेलिये मुख्यरूपसे स्तोत्रोंका सहारा लेना पड़ता है। स्तोत्रोंके द्वारा चित्त भक्तिकी ओर अधिक आकर्षित होता है। अतः स्तोत्र-द्वारा भक्ति करनेकी पद्धति मुनि तथा गृहस्थोंमें सदासे चली आरही है। इसी कारण जबसे शास्त्रनिर्माण प्रारम्भ हुआ मंगलाचरण आदि अनेक रूपमे स्तुति रचना भी प्रारम्भ हुई है। जिन ग्रन्थकारोंने ग्रन्थ रचनाकी उन्होंने प्रायः सबसे पहले अर्हन्त भगवान्‌की स्तुतिपर लेखनी चलाई—पीछे अन्य विषयपर कलम उठाई।

स्तुतियोंका आकर्षक सुन्दर रूप स्वामी समन्तभद्राचार्यके समयसे प्रारम्भ होता है। भक्त-की सच्ची भक्तिमे कितनी प्रबलदिव्य-शक्ति है, इस बातका उदाहरण सबसे पहले स्वामी समन्तभद्रने काशी या काञ्ची नगरमें महादेवकी पिण्डीके समक्ष स्वयम्भूस्तोत्र पढ़कर संसारके सामने रक्खा। उपस्थित जनताको समन्तभद्राचार्यने दिखला दिया कि मेरा इष्ट भगवान् मुझसे दूर नहीं है, मेरी हार्दिक भक्ति उसे मेरे सामने ला खड़ा करती है। तदनुसार उपास्य अर्हन्त-प्रतिमा (चन्द्रप्रभु) महादेवकी मूर्तिमेसे प्रकट हुई।

स्वयम्भूस्तोत्र की रचना है भी अनुपम। समन्तभद्राचार्यका तत्वविवेचन एव तार्किक ढंग जिस प्रकार अद्भुत है उसी प्रकार उनकी स्तुतिरचना भी अद्‌भुत है—उस शैलीकी तुलना अन्य किसी स्तुतिसे नहीं की जासकती।

समन्तभद्राचार्यके पीछे अनेक गणनीय साधु तथा गृहस्थ स्तुतिकार हुए हैं, जिनकी बनाई हुई स्तुतियोंमें भी बहुत भक्तिरस भरा हुआ है—किसी किसीमें तो इतना इतना गूढ़भाव भरा हुआ है जिसका पूर्ण-रहस्य स्वयं उस रचयिताको ही ज्ञात होगा। विषापहार-स्तोत्रमें पंडित धनञ्जयजीने इस बातमे कमाल किया है। कुछ स्तोत्रोंमे मांत्रिक शक्ति अद्भुतरूपसे रक्खी गई है, किसीमे मनोमोहक शाब्दिक लहर लहरा रही है, किसीमे सुन्दर छन्दों द्वारा लालित्य लाया गया है, इत्यादि अनेक रूपमे स्तोत्र दीख पड़ते हैं।

इनमेंसे कुछ स्तोत्र ऐसे भी हैं जिनको दिगम्बर, श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय आम तौरपर समान आदर भावसे अपनाते हैं। श्रीमान तुगाचार्यके रचे हुए भक्तामरस्तोत्रको तथा कुमुदचन्द्राचार्यके बनाये हुए कल्याणमन्दिरको दोनों सम्प्रदाय बड़े आदरभावसे अपनाते हैं। ये दोनों स्तोत्र सचमुच हैं भी ऐसे ही, जिनको सब कोई अपना सकता है। इस बातमें हमको प्रसन्नता होनी चाहिये कि तत्वार्थसूत्रके समान हमारे दो स्तोत्र भी ऐसे हैं जिनमें दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय समानरूपसे साझीदार हैं। दोनों स्तोत्रोंमें भक्तामरस्तोत्रकी प्रसिद्धि अधिक है। मानतुंगाचार्य दिगम्बर थे या श्वेताम्बर यह बात अभी इतिहाससे ठीक ज्ञात नहीं होपाई है; क्योंकि न तो उनकी और कोई निर्विवाद रचना पाई जाती है, जिससे इस बातका निर्णय होसके और न भक्तामरस्तोत्रमें ही कहीं कुछ ऐसा शब्द-प्रयोग पाया जाता है, जिससे उनका श्वेताम्बरत्व या दिगम्बरत्व निर्णय किया जासके।

श्रीमान् पं० जिनदासजी न्यायतीर्थ शोलापुरने एक बार किसी आधारसे लिखा था कि "मानतुङ्गाचार्य पहले श्वेताम्बर थे किन्तु एक किसी भयानक व्याधिसे छुटकारा पाने पर दिगम्बर साधु हो गये थे।" इस कथानकमें कितना तथ्य है, यह कुछ ज्ञात नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि भक्तामरस्तोत्रमें कोई शब्द ऐसा नहीं पाया जाता जो दिगम्बरीय सिद्धान्तके प्रतिकूल हो। अस्तु।

उपलब्ध भक्तामर स्तोत्रको यद्यपि दिगम्बर, श्वेताम्बर उभय सम्प्रदाय मानते हैं किन्तु वे दोनों श्लोकसंख्यामें एकमत नहीं हैं। यों तो दिगम्बर सम्प्रदायमें भी भक्तामर स्तोत्रकी श्लोकसंख्याके लिये दो मत पाये जाते हैं। प्राय: सर्व साधारण लोग ४८ श्लोक ही भक्तामरमें मानते हैं और उन्हीं ४८ श्लोकोंका भक्तामरस्तोत्र अनेक रूपमे प्रकाशित हो चुका है। इनकी कई टीकाएँ, कई अनुवाद भी छप चुके हैं। अभी श्रीमान् पं० लालारामजी शास्त्रीने, भक्तामरस्तोत्रके प्रत्येक पद्यके प्रत्येक पादको लेकर और समस्यापूर्तिके रूपमें तीन तीन पाद अपने नये बनाकर, २०४ श्लोकोंका भक्तामर-'शतद्वयी' नामक सुन्दर स्तोत्र-निर्माण किया है। प्रत्येक श्लोक केवल एक-एक पादकी समस्यापूर्ति करते हुए ४८ पद्योंका एक, सुन्दर राजीमती-नेमिनाथ-विषयक 'प्राणप्रिय' काव्य भी प्रकाशित हो चुका है। यंत्र-मंत्र-सहित जो भक्तामरस्तोत्र प्रकाशित हुआ है वह भी ४८ पद्योंका ही है।

किन्तु कुछ महानुभावोंका ख्याल है कि भक्तामरस्तोत्रमें ५२ श्लोक थे, प्रचलित भक्तामरस्तोत्रमें ४ श्लोक कम पाये जाते हैं। वे निम्न लिखित ४ श्लोक और बतलाते हैं—

"नातः परः परमवचोभिधेयो,
लोकभयेऽपि सकलार्थविदस्ति सार्वः ।
उच्चैरितीव भवतःपरिघोषयन्त-,
स्ते दुर्गभीरसुरदुन्दुभयः सभायाम् ।३२।
वृष्टिर्दिवःसुमनसां परितःपपात,
प्रीतिप्रदा सुमनसां च मधुव्रतानाम् ।
राजीवसा सुमनसा सुकुमारसारा,
सामोदसम्पदमदाज्जिन ते सुदृश्यः ।३३।
पूष्मामनुष्य सहसामपि कोटिसंख्या,
भाजां प्रभाः प्रसरमन्वहया वहन्ति ।
अन्तस्तमः पटलभेदमशक्तिहीनं,
जैनी तनुद्युतिरशेपतमोऽपि हन्ति ।३४।
देव त्वदीय सकलामलकेवलाय,
बोधातिगाधनिरुपप्लवरत्नराशेः ।
घोषःस एव इति सज्जनतानुमेते,
गम्भीरभारभरितं तव दिव्यघोषः ।३५।

ये ४ श्लोक, जोकि भक्तामरस्तोत्रमें और अधिक बतलाये जाते हैं, जिस रूपमे प्राप्त हुए हैं उसी रूपमे यहाँ रक्खे हैं।

इन श्लोकोंके विषयमे यदि क्षणभरभी विचार किया जाये तो ये चारों श्लोक भक्तामर-स्तोत्रके लिये व्यर्थ ठहरते हैं; क्योंकि इन श्लोकोंमे क्रमशः दुन्दुभि, पुष्पवर्षा, भामंडल तथा दिव्य-ध्वनि इन चार प्रातिहार्योंको रक्खा गया है और ये चारों प्रातिहार्य इन श्लोकोंके विना ४८ श्लोक वाले भक्तामरस्तोत्रमे भी ठीक उसी ३२-३३-३४-३५ वीं सख्याके पद्योंमे यथाक्रम विद्यमान हैं। अत: ये चारों श्लोक भक्तामरस्तोत्रके लिये पुनरुक्तिके रूपमे व्यर्थ ठहरते हैं तथा इनकी कविता-शैली भी भक्तामरस्तोत्रकी कविताशैलीके साथ जोड़ नहीं खाती। अत. ५२ श्लोक वाले भक्तामरस्तोत्रकी तो कल्पना निःसार है और न अभी तक किसी विद्वानने समर्थन ही किया है।

अब श्वेताम्बर सम्प्रदायकी मान्यता पर विचार कीजिये। श्वेताम्बर सम्प्रदायमे कल्याण-मंदिर स्तोत्र तो दिगम्बर सम्प्रदायके समान ४४ श्लोक वालाही माना जाता है किंतु भक्तामर-स्तोत्रको श्वेताम्बर सम्प्रदाय ४८ श्लोक वाला न मानकर ४४ पद्यों वाला ही मानता है। ३२-३३-३४-३५ नम्बर के चार पद्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने अपने भक्तामरस्तोत्रमें से निकाल दिये हैं। इसीसे प्रचलित भक्तामरस्तोत्र साम्प्रदायिक भेदसे दो रूपमे पाया जाता है।

भक्तामरस्तोत्रमे दिगम्बर सम्प्रदायकी मान्यतानुसार ४८ श्लोक ही क्यों नहीं हैं ?-इसका उत्तर तीन प्रकारसे प्राप्त हुआ। एक तो यह कि जब कल्याणमंदिरस्तोत्र ४४ श्लोकोंका है, तब उसकी जोड़का भक्तामरस्तोत्र भी ४४ श्लोकोंका ही होना चाहिये—वह ४८ श्लोकोंका कैसे हो ?

दूसरे, भरतक्षेत्रके २४ तीर्थंकर और विदेह क्षेत्रोंके २० वर्तमान तीर्थंकर इनकी कुल संख्या ४४ हुई, इस संख्याके अनुसार भक्तामर-स्तोत्रके श्लोकोंकी सख्या भी ४४ ही होनी चाहिये।

तीसरे, श्वेताम्बर जैन गुरुकुलके एक स्नातकसे यह उत्तर प्राप्त हुआ कि भक्तामरस्तोत्र एक मंत्रशक्ति से पूर्ण स्तोत्र है। उसके मन्त्रोंको सिद्ध करके मनुष्य उन मन्त्रोंके आधीन देवोंको बुला २ कर तंग करते थे। देवोंने अपनी व्यथा मानतुगाचार्यको सुनाई कि महाराज! आपने भक्तामर स्तोत्र बनाकर हमारी अच्छी आफ़त लें डाली। मंत्रसिद्ध करके लोग हमको चैनसे नहीं बैठने देते—हर समय मंत्रशक्तिसे बुलाबुलाकर हमें परेशान करते हैं। मानतुंगाचार्यने देवोंपर दया करके भक्तामरस्तोत्रमेसे चार श्लोक निकाल दिये। अत भक्तामर ४४ श्लोकोंवाला ही होना चाहिये।

यदि इन समाधानोंपर विचार किया जाय तो तीनों ही समाधान नि.सार जान पड़ते हैं। मानतुगाचर्य और कुमदचन्द्राचार्यका आपसमे यह कोई समझौता नहीं था कि हम दोनों एक-सी ही संख्याके स्तोत्र बनावें। हरएक कवि अपने अपने स्तोत्रकी पद्यसंख्या रखनेमे स्वतन्त्र है। दूसरे मानतुगाचार्य कुमुदचन्द्राचार्यसे बहुत पहले हुए हैं। अतः पहली बातके अनुसार भक्तामरके श्लोकोंकी संख्या ४४ सिद्ध नहीं होती।

दूसरा समाधान भी उपहासजनक है। भिन्न भिन्न दृष्टिसे तीर्थंकरोंकी संख्या २४-४८-७२-२४०आदि अनेक बतलाई जासकती है। भरत-क्षेत्रके २४ तीर्थकर हैं तो उनके साथ समस्त विदेहोंके बीस तीर्थंकर ही क्यों मिलाये जाते हैं। ऐरावतक्षेत्रके २४ तीर्थंकर अथवा ढाई-द्वीपके समस्त भरतक्षेत्रोंके तीर्थकरोंकी सख्या क्यों नहीं लीजाती ?तीर्थंकरोकी संख्याके अनुसार स्तोत्रोंकी पद्य संख्याका हीन मानना नितान्त भोलापन है और वह दूसरे स्तोत्रोकी पद्यसंख्याको भी दूषित कर देगा। अतः दूसरी बात भी व्यर्थ है।

अब रही तीसरी बात, उसमे भी कुछ सार प्रतीत नहीं होता; क्योंकि भक्तामरस्तोत्रका प्रत्येक श्लोक जब मंत्र-शक्तिसे पूर्ण है और प्रत्येक श्लोक मंत्ररूपसे कार्यमें लिया जासकता है। तब देवों-का संकट हटानेके लिये मानतुगाचार्य सिर्फ चार श्लोकोंको ही क्यों हटाते? सबको क्यों नहीं? क्योंकि यदि सचमुच ही भक्तामरस्तोत्रके मंत्रा-राधनसे देव तंग होते थे और मानतुंगाचार्यको उन पर दया करना इष्ट था तो उन्होंने शेष ४४ श्लोकोको देवोंकी आफत लेनेके लिये क्यों छोड़ दिया? इसका कोई भी समुचित उत्तर नहीं हो सकता।

अतः इन समाधानोंसे तो भक्तामरस्तोत्रके श्लोकोंकी संख्या ४४ सिद्ध नहीं होती।

हाँ इतना जरूर है कि भक्तामर स्तोत्रको ४४ श्लोको वाला मान लेने पर भक्तामरस्तोत्र अधूरा अवश्य रहजाता है। क्योंकि तीर्थकरोंके प्रातिहार्य जिस प्रकार दिगम्बर सम्प्रदायने माने हैं उसी प्रकारके श्वेताम्बर सम्प्रदायमे भी माने गये हैं। इन आठ प्रातिहार्योका वर्णन जिस प्रकार कल्याणमंदिर-स्तोत्रमे है, जिसको कि श्वेताम्बर सम्प्रदायभी मानता है, उसी प्रकार भक्तामरस्तोत्रमे भी रक्खा गया है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके भक्तामरस्तोत्रमे जिन ३२,३३, ३४, ३५ नम्बरके चार श्लोकोंको नहीं रक्खा गया है उनमे क्रमसे दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, भामण्डल, और दिव्यध्वनि इन चार प्रातिहार्योंका वर्णन है। उक्त चार श्लोकोको न मानने पर ये चारों प्रातिहार्य छूट जाते हैं। अतः कहना पड़ेगा कि श्वेताम्बरीय भक्तामरस्तोत्रमे सिर्फ चार ही प्रातिहार्य बतलाये हैं, जबकि श्वेताम्बरीय सिद्धान्तानुसार प्रातिहार्य आठ होते हैं, और उन छोड़े हुए चार प्रातिहार्यो को कल्याणमंदिर-स्तोत्रमे क्रमशः २५, २०, २४ तथा २१ नम्बरके श्लोकोंमे गुम्फित किया गया है।

अतः श्वेताम्बर सम्प्रदायके सामने दो समस्याएँ हैं। एक तो यह कि, यदि कल्याणमदिर को वह पूर्णतया अपनाता है तो कल्याणमदिर की तरह तथा अपने-सिद्धान्तानुसार भक्तामरस्तोत्रमें भी आठों प्रातिहार्योंका वर्णन माने, तब उसे भक्तामरस्तोत्रके ४८ श्लोक मानने होंगे।

दूसरी यह कि, यदि भक्तामरस्तोत्रमे अपनी मान्यतानुसार चार प्रातिहार्य ही मानता है तो कल्याणमदिरसे भी २०, २६, २४ तथा २५ नम्बरके श्लोकोंको निकाल कर दोनों स्तोत्रोंको समान बना देवें।

इन दोनों समस्याओंमे से पहली समस्या ही श्वेताम्बर समाजको अपनानी होगी; क्योंकि वैसा करने पर ही भक्तामरस्तोत्रका पूर्णरूप उनके पास रहेगा। और उस दशामे दिगम्बर श्वेताम्बर-सम्प्रदायके भक्तामरस्तोत्रमें कुछभी अन्तर नहीं रहेगा।

सामाजिक प्रगति

# जैन-समाज क्यों मिट रहा है?

लेखक:— अयोध्याप्रसाद गोयलीय

जैन-समाज अपनेको उस पवित्र एवं शक्तिशाली धर्मका अनुयायी बतलाता है जो धर्म भूले-भटके पथिकों-दुराचारियों तथा कुमार्ग-रतोंका सन्मार्ग-प्रदर्शक था, पतित-पावन था, जिस धर्ममें धार्मिक-सङ्कीर्णता और अनुदारताके लिये स्थान नहीं था, जिस धर्मने समूचे मानव-समाजको धर्म और राजनीतिके समान अधिकार दिये थे, जिस धर्मने पशु-पक्षियों और कीट-पतगों तकके उद्धारके उपाय बताये थे, जिस धर्मका अस्तित्व ही पतितोद्धार एवं लोकसेवा पर निर्भर था, जिस धर्मके अनुयायी चक्रवर्तियों, सम्राटों और आचार्योंने करोड़ों म्लेच्छ अनार्य तथा असभ्य कहेजाने वाले प्राणियोंको जैनधर्ममें दीक्षित करके निरामिष-भोजी, धार्मिक तथा सभ्य बनाया था, जिस धर्मके प्रसार करनेमे मौर्य, ऐल, राष्ट्रकूट, चाल्युक्य, चोल, होयसल और गंगवंशी राजाओंने कोई प्रयत्न उठा न रक्खा था और जो धर्म भारतमे ही नहीं किन्तु भारतके बाहर भी फैल चुका था। उस विश्व-व्यापी जैन-धर्मके अनुयायी वे करोड़ों लाल आज कहाँ चले गये? उन्हें कौनसा दरिया बहा ले गया? अथवा कौनसे भूकम्पसे वे एकदम पृथ्वीके गर्भमें समा गये?

जो गायक अपनी स्वर-लहरीसे मृतकोंमे जीवन डाल देता था, वह, आज स्वयं मृत-प्राय क्यों है? जो सरोवर पतितों-कुष्ठियोंको पवित्र बना सकता था, आज वह दुर्गन्धित और मलीन क्यों है? जो समाज सूर्यके समान अपनी प्रखर किरणोंके तेजसे संसारको तेजोमय कर रहा था, आज वह स्वयं तेजहीन क्यों है? उसे कौनसे राहूने ग्रस लिया है? और जो समाज अपनी कल्पतरु-शाखाओंके नीचे सबको शरण देता था, वही जैन-समाज आज अपनी कल्पतरु-शाखा काटकर बचे खुचे शरणागतोंको भी कुचलनेके लिये क्यों लालायित हो रहा है?

यही एक प्रश्न है जो समाज-हितैषियोके हृदयको खुरच-खुरचकर खाये जारहा है। दुनियाँ द्वितीयाके चन्द्रमाके समान बढ़ती जारही है, मगर जैन-समाज पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान घटता जारहा है। आवश्यकतासे अधिक बढ़ती हुई संसारकी जन-संख्यासे घबड़ाकर अर्थ-शास्त्रियोंने घोषणा की है कि "अब भविष्यमें और सन्तान उत्पन्न करना दुख दारिद्र्यको निमंत्रण देना है।" इतने ही मानव-समूहके लिये स्थान तथा भोज्य-पदार्थका मिलना दूभर हो रहा है, इन्हींकी पूर्ति-

के लिये आज संसारमें संघर्ष मचा हुआ है और मनुष्य-मनुष्यके रक्तका प्यासा बना हुआ है। यदि इसी तेजीसे संसारकी जन-संख्या बढ़ती रही तो, प्रलयके आनेमें कुछ भी विलम्ब न होगा। अर्थशास्त्रियोंको संसारकी इस बढ़ती हुई जन-संख्यासे जितनी चिन्ता हो रही है, उतनी ही हमें घटती हुई जैन-जन-संख्यासे निराशा उत्पन्न हो रही है। भारतवर्षकी जन-संख्याके निम्न अंक इस बातके साक्षी हैं :——

| | भारतवर्षकी सम्पूर्ण जन-संख्या | केवल जैन जन-संख्या |
|---|---|---|
| सन् १८८१ | २८ करोड़ | १५००००० |
| सन् १८९१ | २९ करोड़ | १४१६६३८ |
| सन् १९०१ | ३० करोड़ | १३३४१४० |
| सन् १९११ | ३१ करोड़ | १२४८१८२ |
| सन् १९२१ | ३३ करोड़ | ११७८५९६ |
| सन् १९३१ | ३५ करोड़ | १२५१३४० |

उक्त अंकोंसे प्रकट होता है कि ४० वर्षोंमें भारतकी जन-संख्या ७ करोड़ बढ़ी। जब कि इन्ही ४० वर्षोंमें ब्रिटिश-जर्मन युद्ध, प्लेग, इन्फ्लुएंज़ा, तूफान, भूकम्प-जलजले, बाढ़ वगैरहमें ७-८ करोड़ भारतवासी स्वर्गस्थ होगये, तब भी उनकी जन-संख्या ७ करोड़ और बढ़ी। यदि इन मृतकों की संख्या भी जोड़ली जाय तो ४० वर्षमें भारतवर्ष-की जन-संख्या ड्योढ़ी और इसी हिसाबसे जैन-जन संख्या भी २२ लाख होनी चाहिये थी। किन्तु वह ड्योढ़ी होना तो दूर, घटकर पौनी रह गई।

तब क्या जैनी ही सबके सब लामपर चले गये थे? इन्हींको चुन-चुनकर प्लेग आदि बीमारियोंने चट कर लिया? इन्हीको बाढ़ बहा ले गई? और भूकम्पके धक्कोंसे भी ये ही रसातलमें समा गये? यदि नहीं तो ६ लाख बढ़नेके बजाय ये तीन लाख घटे क्यों?

इस 'क्यों' के कई कारण हैं। सबसे पहले जैन-समाजकी उत्पादनशक्तिकी परीक्षा करें तो सन् १९३१ की मर्दमशुमारीके अंकोंसे प्रकट होगा कि जैन-समाज में :—

| | |
|---|---|
| विधवा ... .. .. | १३४२४५ |
| विधुर ... . . | ५२६०३ |
| १ वर्षसे १५ वर्ष तक के कारे लड़के | १६६२३५ |
| १५ वर्षसे ४० " " " . . | ८६२७५ |
| ४० वर्षसे ७० " " " .. | ९८६४ |
| १ वर्षसे १५ वर्ष तककी कारी लड़कियाँ | १६४८७२ |
| १५ वर्षसे ४० " " " | ९८६४ |
| ४० वर्षसे ७० " " " | ७८७ |
| १ वर्षसे १५ वर्ष तकके विवाहित स्त्री-पुरुष | ३६७१७ |
| १५ वर्षसे ४० " " " " | ४२०२९४ |
| ४० वर्षसे ७० " " " " | १३६२२४ |
| कुल योग | १२५१३४० |

१२५१३४० स्त्री-पुरुषोंमे १५ वर्षकी आयुसे लेकर ४० वर्षकी आयुके केवल ४२०२९४ विवाहित स्त्री-पुरुष हैं, जो सन्तान उत्पादन योग्य कहे जासकते हैं। उनमें भी अशक्त, निर्बल और रुग्ण चौथाईके लगभग अवश्य होंगे, जो सन्तानोत्पत्ति-का कार्य नहीं कर सकते। इस तरह तीन लाख-को छोड़कर ९५१३४० जैनोंकी ऐसी संख्या है, जो वैधव्य, कुमारावस्था, बाल्य और वृद्धावस्थाके

कारण सन्तानोत्पादन शक्तिसे वंचित है। अर्थात् समाजका पौन भाग सन्तान उत्पन्न नहीं कररहा है।

यदि थोड़ी देरको यह मान लिया जाय कि १५ वर्षकी आयुसे कमके ३६७१७ विवाहित दुधमुँहे बच्चे बच्चियाँ कभी तो सन्तान-उत्पादन योग्य होंगे ही, तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि जब ये इस योग्य होंगे तब ३० से ४० की आयु वाले विवाहित स्त्री-पुरुष, जो इस समय सन्तानोत्पादन-का कार्य कर रहे हैं, वे बड़ी आयु होजानेके कारण उस समय अशक्त हो जायँगे। अत· लेखा ज्यों का त्यो रहता है। और इस पर भी कहा नहीं जा-सकता कि इन अबोध दूल्हा-दुल्हिनोंमें कितने विधुर तथा वैधव्य जीवनको प्राप्त होंगे।

जैन-समाज मे ४० वर्षसे कमकी आयु वाले विवाह योग्य २५५५१० क्वारे लड़के और इसी आयुकी २०४७५६ क्वारी लड़कियाँ हैं। अर्थात् लड़कोसे ५०७५४ लड़कियाँ कम हैं। यदि सब लड़कियाँ क्वारे लड़कोंसे ही विवाही जाँय तोभी उक्त संख्या क्वारे लड़कों की बचती है। और इसपर भी तुर्रा यह है कि इनमेंसे आधीसे भी अधिक लड़कियाँ दुबारा तिबारा शादी करनेवाले अधेड़ और वृद्ध हड़प करजाँयगे। तब उतने ही लड़के क्वारे और रहजायेंगे। अत. ४० वर्षकी आयुसे कमके ५०७५४ बचे हुये क्वारे लड़के और ४० वर्षकी आयुसे ७० वर्ष तककी आयुके १२४५५ बचे हुये क्वारे लड़के लड़कियोंका विवाह तो इस जन्ममें न होकर कभी अगले ही जन्मोंमें होगा।

अब प्रश्न होता है कि इस मुट्ठीभर जैन-समाजमें इतना बड़ा भाग क्वारा क्यों है ? इसका स्पष्टीकरण सन् १९ १४ की दि० जैन डिरेक्टरी के निम्न अंकोंसे हो जाता है :—

| दि०जैन समाज अन्तर्गत जातियाँ। | कुल संख्या। |
|---|---|
| १ अग्रवाल | ६७१२१ |
| २ खण्डेलवाल | ६४७२६ |
| ३ जैसवाल | १०६६५ |
| जैसवालदसा | ६४ |
| ४ परवार | ४१९९६ |
| ५ पद्मावती पुरवाल | ११५६१ |
| ६ परवार-दसा | ९ |
| ७ परवार-चौसके | १२७७ |
| ८ पल्लीवाल | ४२७२ |
| ९ गोलालारे | ५५८२ |
| १० विनैक्या | ३६८५ |
| ११ गान्धीजैन | २० |
| १२ ओसवाल | ७०२ |
| १३ ओसवाल-बीसा | ३५ |
| १४ गंगेलवाल | ७७२ |
| १५ बड़ेले | १६ |
| १६ बरैया | १५८४ |
| १७ फतहपुरिया | १३५ |
| १८ उपाध्याय | १२१६ |
| १९ पोरवाल | ११५ |
| २० बुढ़ेले | ५६६ |
| २१ लोहिया | ६०२ |
| २२ गोलसिंघारे | ६२९ |
| २३ खरौआ | १७५० |
| २४ लमेचु | १९७७ |
| २५ गोलापूरब | १०६४० |
| २६ गोलापूरब पचविसे | १९४ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७ चरनागेर | १६८७ | ५७ नागदा (वीसा) | २६५४ |
| २८ धाकड़ | १२७२ | ५८ नागदा (दसा) | ८६७ |
| २६ कठनेरा | ६६६ | ५६ चित्तौड़ा (दसा) | ३०६ |
| ३० पोरवाड़ | २८५ | ६० चित्तौड़ा (वीसा) | ५५१ |
| ३१ पोरवाड़ जाँगड़ा | १७५६ | ६१ श्रीमाल | ७३८ |
| ३२ पोरवाड़जाँगड़ विसा | ५४० | ६२ श्रीमाल-दसा | ४२ |
| ३३ धवल जैन | ३३ | ६३ सेलवार | ४३३ |
| ३४ कासार | ६६८७ | ६४ श्रावक | ८४६७ |
| ३५ बघेरवाल | ४३२४ | ६५ सादर(जैन) | ११२४१ |
| ३६ अयोध्यावासी (तारनपंथ) | २६६ | ६६ बोगार | २४३१ |
| ३७ अयोध्यावासी | २६३ | ६७ वैश्य (जैन) | २४२ |
| ३८ लाड-जैन | ३८५ | ६८ इन्द्र (जैन) | ११ |
| ३६ कृष्णपक्षी | ६२ | ६६ पुरोहित | १५ |
| ४० काम्भोज | ७०५ | ७० क्षत्रिय (जैन) | ८७ |
| ४१ समैय्या | ११०७ | ७१ जैन दिगम्बर | १०६३६ |
| ४२ असाटी | ४६७ | ७२ तगर | ८ |
| ४३ दशा-हूमड़ | १८०७६ | ७३ चौघले | १६० |
| ४४ बिसा हूमड़ | २५५५ | ७४ मिश्रजैन | २५ |
| ४५ पंचम | ३२५५६ | ७५ संकवाल | ५० |
| ४६ चतुर्थ | ६६२८५ | ७६ खुरसाले | २४० |
| ४७ वदनेरे | ५०१ | ७७ हरदर | २३६ |
| ४७ पापड़ीवाल | ८ | ७८ ठगर बोगार | ५३ |
| ४६ भवसागर | ८० | ७६ बाह्मणजैन | ७०४ |
| ५० नेमा | २८३ | ८० नाई-जैन | ४ |
| ५१ नारसिंहपुरा(वीसा) | ४४७२ | ८१ वढ़ई-जैन | ३ |
| ५२ नरसिंहपुरा (दस्सा) | २५६३ | ८२ पोकरा-जैन | २ |
| ५३ गुर्जर | १५ | ८३ सुकर जैन | ८ |
| ५४ सैतलाल | २०८८६ | ८४ महेश्री जैन | १६ |
| ५५ मेवाड़ा | २१५८ | ८५ अन्यधर्मी जैन | ७३ |
| ४६ मेवाड़ा (दसा) | २ | | ४५०५८४ |

उक्त कोष्टकके अंक केवल दिगम्बरजैन सम्प्रदायकी उपजातियो और सख्याका दिग्दर्शन कराते हैं। दिगम्बर-जैनसमाजकी तरह श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी अनेक जाति-उपजातियाँ है। जिनके उल्लेखकी यहाँ आवश्यक्ता नहीं। कुल १२ लाख-की अल्पसंख्या वाले जैनसमाजमे यह सैकड़ो उपजातियाँ कोढ़मे खाजका काम दे रही हैं। एक जाति दूसरी जातिसे रोटी-बेटी व्यवहार न करनेके कारण निरन्तर घटती जारही है।

उक्त कोष्ठकके अंक हमारी आँखोंमे ऊँगली डालकर बतला रहे है कि नाई, बढ़ई, पोकरा, सुकर, महेश्री और अन्य धर्मी नवदीक्षित-जैनोंको छोड़कर दि० जैनसमाजमे ६४० तो ऐसे जैन कुलोत्पन्न स्त्री-पुरुष बालकोंकी संख्या है जो १८ जातियोंमें विभक्त है, जिनकी जाति-सख्या घटते-घटते १०० से कम २०, ११, ८ तथा २ तक रह गई है। और ३८५६ ऐसे स्त्री-पुरुष-बालकोंकी संख्या है जो १४ जातियोंमें विभक्त है। और जिनकी जाति-संख्या घटते-घटते ५०० से भी कम १०० तक रह गई है।

भला जिन जातियोंके व्यक्तियोंकी संख्या समस्त दुनियामे २, ८, २०, ५०, १००, २०० रह गई हो, उन जातियोंके लड़के लड़कियोंका उसी जातिमें विवाह कैसे हो सकता है? कितनी ही जातियोंमें लड़के अधिक और कितनी ही जातियोंमें लड़कियाँ अधिक हैं। योग्य सम्बन्ध तलाश करनेमे कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित होती है, इसे वे ही जान सकते है जिन्हे कभी ऐसे सम्बन्धोंसे पाला पड़ा हो। यही कारण है कि जैनसमाजमे १२४५५ लड़के लड़कियाँ तो ४० वर्षकी आयुसे ७० वर्ष तककी आयुके क्वारे है। जिनका विवाह शायद अब परलोकमे ही हो सकेगा।

जिस समाजके सीने पर इतनी बड़ी आयुके अविवाहित अपनी दारुण कथाएँ लिये बैठे हों, जिस समाजने विवाह-क्षेत्रको इतना संकीर्ण और संकुचित बना लिया हो कि उसमें जन्म लेने वाले अभागोंका विवाह होना ही असम्भव बन गया हो, उस समाजकी उत्पादन-शक्तिका निरन्तर ह्रास होते रहनेमे आश्चर्य ही क्या है? जिस धर्मने विवाहके लिये एक विशाल क्षेत्र निर्धारित किया था उसी धर्मके अनुयायी आज अज्ञानवश अनुचित सीमाओंके बन्धनोंमे जकड़े पड़े है, यह कितने दुःखकी बात है!! क्या यही कलियुगका चमत्कार है?

जैनशास्त्रोंमें वैवाहिक उदारताके सैंकड़ों स्पष्ट प्रमाण पाये जाते है। यहाँ पं० परमेष्ठी-दासजी न्यायतीर्थ कृत "जैनधर्मकी उदारता" नामक पुस्तकसे कुछ अवतरण दिये जाते हैं, जो हमारी आखें खोलनेके लिये पर्याप्त है:—

भगवज्जिनसेनाचार्यने आदिपुराणमें लिखा है कि—

**शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तांच नैगमः।**
**वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः**

अर्थात्—शूद्रको शूद्रकी कन्यासे विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्यकी तथा शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्णकी

तथा वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्णकी तथा शेष तीन वर्णोंकी कन्याओंसे भी विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियोंमे (अन्तर्जातीय) विवाह करनेमे धर्म-कर्मकी हानि समझते हैं उनके लिये क्या कहा जाय? जैनग्रंथोंने तो जाति कल्पनाकी धज्जियाँ उड़ादी हैं। यथा—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना॥

अर्थात्—इस अनादि संसारमें कामदेव सदासे दुर्निवार चला आरहा है। तथा कुलका मूल कामनी है। तब इसके आधार पर जाति कल्पना करना कहाँ तक ठीक है? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेव की चपेट में आगया होगा। तब जाति या उसकी उच्चता नीचताका अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्यने उत्तरपुराणके पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्रौद्यर्गर्भाधानप्रवर्तनात्॥४६१॥

अर्थात्—इस शरीरमें वर्ण या आकारसे कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें शूद्रोंके द्वाराभी गर्भाधानकी प्रवृति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्णका अभिमान कैसे कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमानमे सदाचारी है वह उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इसप्रकार जाति और वर्णकी कल्पनाको महत्व न देकर जैनाचार्योंने आचरण पर जोर दिया है।

जैनशास्त्रों, कथा-ग्रंथों या प्रथमानुयोगको उठाकर देखनेपर, उनमें पद-पद पर वैवाहिक उदारता नजर आएगी। पहले स्वयंवर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुलकी परवाह न करके गुणका ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसीभी छोटे या बड़े कुलवालेको गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश-पुराणमे इस सम्बन्धमें स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयंवरे॥
११–७१॥

अर्थात्—स्वयंवरगत कन्या अपने पसन्द-वरको स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयंवरमें कुलीनता अकुलीनताका कोई नियम नहीं होता है। जैनशास्त्रोंमें विजातीय विवाहके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। नमूनेके तौरपर कुछका उल्लेख इस प्रकार है

१—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय)ने ब्राह्मण-कन्या नन्दश्रीसे विवाह किया था और उससे अभय-कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ था। (भवतो विप्रकन्यां सुतोऽभूदभयाह्वयः) बादमें विजातीय माता-पिता से उत्पन्न अभयकुमार-मोक्ष गया। (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक-४२३ से २६ तक)

२—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री

धन्यकुमार 'वैश्य' को दी थी। (पुण्याश्रव कथाकोष)

३—राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर (वैश्य) को दी थी। इनके ३६ वैश्य पत्नियाँ थीं और एक पत्नी राजकुमारी वसुन्धरा भी क्षत्रिया थी। फिर भी वे मोक्ष गये। (उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४७)

४—कुवेरप्रिय सेठ (वैश्य) ने अपनी पुत्री क्षत्रियकुमारको दी थी।

५—क्षत्रिय राजा लोकपालकी रानी वैश्य थी।

६—भविष्यदत्त (वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजाकी पुत्री भविष्यानुरूपासे विवाह किया था तथा हस्तिनापुरके राजा भूपालकी कन्या स्वरूपा (क्षत्रिय) को भी विवाहा था। (पुण्याश्रव कथा)

७—भगवान् नेमिनाथके काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने म्लेच्छ कन्या जरासे विवाह किया था। उससे जरत्कुमार उत्पन्न होकर मोक्ष गया था। (हरिवंश-पुराण)

८—चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थी। (हरि०)

९—उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेव कुमार (क्षत्रिय) को विवाहीं थीं। (हरि०)

१०—ब्राह्मण कुलमें क्षत्रिय मातासे उत्पन्न हुई कन्या सोमश्रीको वसुदेवने विवाहा था। (हरिवंश-पुराण सर्ग २३ श्लोक ४९-५१)

११—सेठ कामदत्त 'वैश्य' ने अपनी पुत्री बंधुमतीका विवाह वसुदेव क्षत्रियसे किया था। (हरि०)

१२—महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भील-कन्या तिलकवतीसे विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र चिलाती राज्याधिकारी हुआ। (श्रेणिकचरित्र)

१३—जयकुमारका सुलोचनासे विवाह हुआ था। मगर इन दोनोंकी एक जाति नहीं थी।

१४—शालिभद्र सेठने विदेशमे जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओंसे विवाह किया था।

१५—अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और एक वैश्य थी।

(उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७१-७२)

१६—अग्निभूतकी वैश्य पत्नीसे चित्रसेना कन्या हुई और वह देवशर्मा ब्राह्मणको विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७३)

१७—तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरतने ३२ हज़ार म्लेच्छ कन्याओंसे विवाह किया था।

१८—श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने भाई गज-कुमारका विवाह क्षत्रिय-कन्याओंके अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री सोमासे भी किया था। (हरिवंशपुराण ब्र० जिनदास ३४-२६ तथा हरिवंश पुराण जिनसेनाचार्य कृत)

१९—मदनवेगा 'गौरिक' जातिकी थी। वसुदेवजीकी जाति 'गौरिक' नहीं थी। फिर भी इन दोनोंका विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाहका अच्छा उदाहरण है। (हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्य कृत)

२०—सिंहक नामके वैश्यका विवाह एक कौशिक-वंशीय क्षत्रिय कन्यासे हुआ था।

२१—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिरभी राजा गयेन्द्र (क्षत्रिय) की कन्या रत्नवतीसे विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक ६४६-५१)

२२—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्माको जीवंधरकुमार [वैश्य]ने विवाहा था। (क्षत्रचूड़ामणि लम्ब५ श्लोक ४२-४६)

२३—भगवान् शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवे तीर्थंकर हुये है। उनकी कई हजार पत्नियाँ तो म्लेच्छ कन्यायें थी। (शान्तिनाथपुराण)

२४—गोपेन्द्र ग्वालाकी कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दाके साथ विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२५—नागकुमारने तो वेश्या पुत्रियोंसे भी विवाह किया था। फिरभी उसने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ग्रहणकी थी। (नागकुमार चरित्र) इतना होनेपर भी वे जैनियोंके पूज्य रह सके।

जैनशास्त्रोंमे जब इसप्रकारके सैंकड़ो उदाहरण मिलते है जिनमें विवाह सम्बन्धके लिये किसी वर्ण जाति या, धर्म तकका विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करनेवाले स्वर्ग, मुक्ति और सद्गतिको प्राप्त हुये है तब एक ही वर्ण, एक ही धर्म और एक ही प्रकारके जैनियोंमे पारस्परिक सम्बन्ध करनेमे कौनसी हानि है, यह समझमें नहीं आता।

इन शास्त्रीय प्रमाणोंके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं। यथा—

१—सम्राट चन्द्रगुप्तने ग्रीक देशके (म्लेच्छ) राजा सैल्यूकसकी कन्यासे विवाह किया था। और फिर भद्रबाहु स्वामीके निकट दिगम्बर मुनिदीक्षा लेली थी।

२—आबू मन्दिरके निर्माता तेजपाल प्राग्वाट (पोरवाल) जातिके थे, और उनकी पत्नी मोढ़ जातिकी थी। फिरभी वे बड़े धर्मात्मा थे। २१ हजार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बरोंने मिलकर उन्हें 'सघपति' पदसे विभूषित किया था। यह संवत् १२२०की बात है।

३—मथुराके एक प्रतिमा लेखसे विदित है कि उसके प्रतिष्ठाकारक वैश्य थे। और उनकी धर्मपत्नी क्षत्रिया थी।

४—जोधपुरके पास घटियाला ग्रामसे संवत् ६१८ का एक शिलालेख मिला है। कक्कुक नामके व्यक्तिके जैन मन्दिर, स्तम्भादि बनवाने का उल्लेख है। यह कक्कुक उस वंशका था जिसके पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और जिन्होंने क्षत्रिय कन्यासे शादीकी थी। (प्राचीन जैन लेख संग्रह)

५—पद्मावती पुरवालों (वैश्यों) का पाँडो (ब्राह्मणों) के साथ अभी भी कई जगह विवाह सम्बन्ध होता है। यह पाँडे लोग ब्राह्मण है और पद्मावती पुरवालोंमे विवाह संस्कारादि कराते थे। बादमें इनका भी परस्पर बेटी व्यवहार चालू हो गया।

६—करीब १५० वर्ष पूर्व जब बीजावर्गी जातिके लोगोंने खंडेलवालोके समागमसे जैन-धर्म धारण करलिया तब जैनेतर बीजावर्गियोंने उनका बहिष्कार करदिया और बेटी व्यवहारकी कठिनता दिखाई देने लगी। तब जैन बीजावर्गी लोग घबड़ाने लगे। उस समय दूरदर्शी खंडेलवालोंने

उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा कि "जिसे धर्म-बन्धु कहते हैं उसे जाति-बन्धु कहनेमे हमें कुछभी संकोच नही होता है। आजहीसे हम तुम्हे अपनी जातिके गर्भमे डालकर एक रूप किये देते हैं।" इस प्रकार खंडेलवालोंने बीजावर्गियोंको मिलाकर बेटी-व्यवहार चालू कर दिया। (स्याद्वादकेसरी गुरु गोपालदासजी बरैया द्वारा संपादित जैनमित्र वर्ष ६ अङ्क १ पृष्ठ १२ का एक अंश।)

७—जोधपुरके पाससे संवत् ६०० का एक शिलालेख मिला है। जिससे प्रगट है कि सरदारने जैन-मन्दिर बनवाया था। उसका पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मणी थी।

८—राजा अमोघवर्पने अपनी कन्या विजातीय राजा राजमल्ल सत्तवादको विवाही थी"॥।

वि० सं० ४०० वर्ष पूर्व ओसियां नगर (राजपूताना) मे पमार राजपूत और अन्य वर्णके मनुष्य भी रहते थे। सब वाममार्गी थे और मॉस मदिरा खाते थे उन सबको लाखोंकी संख्यामें श्री० रत्नप्रभुसूरिने जैन-धर्ममे दीक्षित किया। ओसिया नगर निवासी होनेके कारण वह सब ओसवाल कहलाये। फिर राजपूतानेमे जितने भी जैन-धर्ममें दीक्षित हुये, वह सब ओसवालोंमे सम्मलित होते गये।

संवत् ६५४ में श्री० उद्योतसूरिने उज्जैनके राजा भोजकी सन्तानको (जो अब मथुरामे रहने लगे थे और माथुर कहलाते थे) जैन बनाया और महाजनोंमे उनका रोटी-बेटी सम्बन्ध स्थापित किया।

सं० १२०६ में श्री० वर्द्धमानसूरिने चौहानोंको और सं० ११७६ मे जिनवल्लभसूरिने परिहार राजपूत राजाको और उसके कायस्थ मन्त्रीको जैन धर्ममें दीक्षित किया और लूटमार करनेवाले खीची राजपूतोको जैन बनाकर सन्मार्ग बताया।

जिनभद्रसूरिने राठौड़ राजपूतों और परमार राजपूतोंको संवत् ११६७ में जैन बनाया।

संवत् ११६६ में जिनदत्तसूरिने एक यदुवंशी राजाको जैन बनाया। ११६८ में एक भाटी राजपूत राजाको जैन बनाया।

श्री जिनसेनाचार्यने तोमर, चौहान, साम, चदला, ठीमर, गौड़, सूर्य, हेम, कछवाहा, सोलकी, कुरु, गहलोत, साठा, मोहिल, आदि वंशके राजपूतों को जैन-धर्ममे दीक्षित किया। जो सब खंडेलवाल जैन कहलाये और परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार स्थापित हुआ।

श्री० लोहचार्यके उपदेशसे लाखो अग्रवाल फिरसे जैन-धर्मी हुये।

इस प्रकार १६ वीं शताब्दीतक जैनाचार्यों द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमे करोड़ोंकी संख्यामें जैन-धर्ममें दीक्षित किये गये।

इन नवदीक्षितोंमें सभी वर्णोंके और सभी श्रेणी-के राजा-रंक सदाचारी दुराचारी मानव-वर्ग था। दीक्षित होनेके बाद कोई भेद-भाव नहीं रहता था।

जिस धर्ममे विवाहके लिये इतना विशाल क्षेत्र था, आज उसके अनुयायी सकुचित दायरेमे फॅसकर मिटते जारहे हैं। जैनधर्मको मानने वाली कितनी ही वैभवशाली जातियाँ, जो कभी लाखों

॥(जैनधर्मकी उदारता पृ० ६३—७१)

की संख्यामें थीं, आज अपना आस्तित्व खो बैठी हैं, कितनी ही जैन-समाजसे प्रथक हो गई हैं और कितनी ही जातियोंमें केवल दस-दस पाँच-पाँच प्राणी ही बचे रहकर अपने समाजकी इस हीन-अवस्थापर आँसू बहा रहे हैं।

भला जिन बच्चोंके मुँहका दूध नहीं सूख पाया, दान्त नहीं निकलपाये, तुतलाहट नहीं छूटी, जिन्हें धोती बान्धनेकी तमीज नहीं, खड़े होनेका शऊर नहीं और जो यह भी नहीं जानते कि ब्याह है क्या बला? उन अबोध बालक-बालिकाओंको वज्र हृदय माता-पिताओंने क्या सोचकर विवाह-बन्धन में जकड़ दिया! यदि उन्हें समाजके मरनेकी चिन्ता नहीं थी, तब भी अपने लाड़ले बच्चोंपर तो तरस खाना था। हा! जिस समाजने ३६७१७ दुध-मुँहे बच्चे-बच्चियोंको विवाह बन्धनमें बाँध दिया हो, जिस समाजने १८७१४८ स्त्री-पुरुषोंको अधिकाँशमें बाल-विवाह वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाह करके वैधव्य-जीवन व्यतीत करनेके लिये मजबूर करदिया हो और जिस समाजका एक बहुत बड़ा भाग संकुचित-क्षेत्र होनेके कारण अविवाहितही मर रहा हो, उस समाजकी उत्पादन-शक्ति कितनी क्षीण दशाको पहुँच सकती है, यह सहजमें ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उत्पादन-शक्तिका विकास करनेके लिये हमें सबसे प्रथम अनमेल तथा वृद्ध विवाहोंको बड़ी सतर्कतासे रोकना चाहिये। क्योंकि ऐसे विवाहों द्वारा विवाहित दम्पत्ति प्रथम तो जनन शक्ति रखते हुये भी सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते, दूसरे उनमेंसे अधिकाँश विधवा और विधुर होजानेके कारण भी सन्तान उत्पादन कार्यसे वंचित हो जाते हैं। साथ ही कितने ही विधवा विधुर बहकाये जानेपर जैन-समाजको छोड़जाते हैं।

अतः अनमेल और वृद्धविवाहका शीघ्रसे शीघ्र जनाजा निकाल देना चाहिये और ऐसे विवाहोंके इच्छुक भले मानसोंका तीव्र विरोध करना चाहिये। साथही जैनकुलोत्पन्न अन्तरजातियोंमें विवाहका प्रचार बड़े वेगसे करना चाहिये जिससे विवाह योग्य क्वारे लड़के लड़कियाँ क्वारे न रहने पायें।

जब जैन समाजका बहुभाग विवाहित होकर सन्तान उत्पादन कार्य करेगा और योग्य सम्बन्ध होनेसे युवतियाँ विधवा न होकर प्रसूता होंगी, तब निश्चय ही समाज की जन-संख्या बढ़ेगी।

—क्रमशः

---

'सार्वजनिक प्रेम, सलज्जताका भाव, सबके प्रति सद्व्यवहार, दूसरोंके दोषोंकी पर्दादारी और सत्य-प्रियता—ये पाँच स्तम्भ हैं जिनपर शुभ आचरणकी इमारतका अस्तित्व होता है।'

'अनन्त उत्साह—बस यही तो शक्ति है; जिसमें उत्साह नहीं है, वे और कुछ नहीं, केवल काठ के पुतले हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि उनका शरीर मनुष्योंकासा है।'

—तिरुवल्लुवर

# शिलालेखोंसे जैन-धर्मकी उदारता

लेखक—
श्री० बाबू कामताप्रसाद जैन साहित्यमनीषी

'विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः ।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः ॥'

जैनशास्त्रोंमे मनुष्योंकी मूलतः एक जाति घोषित की गई है—मनुष्योंमें घोड़े और बैल जैसा मौलिकभेद जैनशास्त्रोंने कहीं नहीं बताया है। लौकिक अथवा जीवन-व्यवहारकी सुविधाके लिये जैनाचार्योंने कर्मकी अपेक्षा मनुष्योंको ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-वर्गोंमे विभक्त करनेकी कल्पना मात्र की है। यही कारण है कि प्राचीन कालसे लोग अपनी आजीविकाको बदल कर वर्ण-परिवर्तन करते आये हैं। आजकल उत्तर भारतके जैनियोंमें अधिकाँश वैश्य-जातियाँ अपने पूर्वजोंको क्षत्रिय बताती हैं,—वर्ण परिवर्तन-के ये प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अग्रवाल, ओसवाल लम्बकञ्चुक आदि जातियोंके पूर्वज क्षत्रिय ही थे, परंतु आज उनकी ही सन्तान वणिक्-वृत्ति करने के कारण वैश्य होगई है। दक्षिण-भारतके होयसल वंशके राजत्वकालमें वर्ण-परिवर्तन होनेके उल्लेख मिलते हैं। हस्सन तालुकके एल्कोटिजिनालयके शिलालेख (नं० १३० सन् ११४७ ई०)से स्पष्ट है कि होयसलनरेश विष्णु-वर्द्धनके एक सरदार पेरम्माडि नामक थे, जो श्रीअजितसेनाचार्यजीके शिष्य थे; किन्तु इन्हीं पेरम्माडि सरदारके पौत्र मसणि और मारि श्रेष्ठीपदके अधिकारी हुए थे, अर्थात वे शासनकर्मके स्थान पर वणिक्कर्म करने लगे थे। शिलालेखमें इसी कारण वह सरदार (शासक) न कहे जाकर श्रेष्ठी कहे गये हैं। वेलूरतालुकके शिलालेख नं० ८६ (सन् ११७७) से स्पष्ट है कि होयसल-नरेश वीर बल्लालदेव के महादंडनायक तंत्रपाल पेम्माडि थे, जिनके पूर्वज चूड़ीके व्यापारी (Bangle sellers) मारिसेट्टी थे। मारिसेट्टी एक दफा व्यापारके लिये दक्षिण भारतको आये और वहाँ उनकी भेंट पोयसल-देवसे हो गई। होयसलनरेश उनसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें एक महान् शासक (Great Chief) नियुक्त किया। इन्हींके पौत्र तंत्रपाल हेम्माडियण थे। बल्लालदेवने बाकायदा दरबार बुलाकर उनके शीशपर राजपट्ट बाँधा था*। इस शिलालेखीय साक्षीसे वर्ण-परिवर्तन की वार्ता स्पष्ट होजाती है। इसीलिये जैनाचार्य वर्णभेद की अपेक्षा मनुष्योंमे कोई मौलिक भेद स्थापित

*इपीग्रेफिया कर्नाटिका, भा० ५ पृष्ठ ३६ व ६७
"....होयसल श्री वीर बल्लालदेवरु श्रीमान्-महा-राजधानि-दोरासमुद्रद नेलेविदिनोलु सुख-संकथा-विनोददिं पृथिवी-राज्यं गेय्युत्तम् इरे तत्पाद-पद्मोपजीवि श्रीमान् महाप्रधान-तंत्रपाल-पेम्माडियू-अन्वयवू एन्ते-न्दडे अय्यावले-बलेगार-मारिसेट्टी तेन्कलु-व्यवहारदिं बन्दु पोयसलदेवर्न कन्डु कारुण्यं बडदु हडदु महाप्रभुवागू इरलातम ..तंत्रपालहेम्माडियरणम् . साम्राज्य-पट्टमं कट्टिसि.. "इत्यादि।

नहीं करते, बल्कि वह घोषित करते हैं कि जैनधर्म-की शरणमें आकर मनुष्यमात्र भ्रातृभावको प्राप्त होते हैं—जैनी परस्पर भाई-भाई है। कमसे कम जैनधर्मायतनोंमें प्रत्येक वर्ण और जातिके मनुष्यके साथ समानताका व्यवहार जैनसंघमें किया जाता रहा है। इस अपने कथनकी पुष्टि मे हम पाठकोंके समक्ष निम्नलिखित शिलालेखीय साक्षी उपस्थित करते है।

इस्वी सन्के प्रारंभ होनेसे पहलेकी बात है। मध्य ऐशिया से शक जातिके लोगोंने भारतपर आक्रमण किया और यहाँ वे शासनाधिकारी होगये। पंजाब और गुजरातमें उनका राज्य स्थापित हुआ था। जैनशास्त्रोकी अपेक्षा देखा जाय तो इन शकादि लोगोंकी गणना म्लेच्छोमें करनी चाहिये परंतु इतिहास बताता है कि तत्कालीन भारतीयोंने इन म्लेच्छ शासकोंको जो 'छत्रप' कहलाते थे, अपना राजा स्वीकार किया था—यही नहीं, उन्हें भारतीय मतोंमे दीक्षित भी किया था। इन राजाओंके समयमें जैन धर्मके केन्द्रस्थान (१) मथुरा (२) उज्जैनी और (३) गिरि नगर थे। इन स्थानोंके आसपास जैन-धर्मका बहु प्रचार था। मथुरासे मिले हुये शिला-लेखों से स्पष्ट है कि उस समय वहाँके जैनसंघ मे सब ही जातियोंके लोग—देशी एवं विदेशी—राजा और रंक सम्मिलित थे। नागवंशी लोग जो मूलमें मध्य ऐशियाके निवासी थे और वहाँ से भारतमें आये थे, मथुराके पुरातत्वमें जैन गुरुओंके भक्त दर्शाये गये हैं। मथुराके पुरातत्वमे ऐसी बहुतसी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई—हैं जिन्हें नीच कही जानेवाली जातिके लोगोंने निर्माण कराया था। नर्तकी शिवयशाने आयागपट बनवाया था। जिसपर जैनस्तूप अंकित है और निम्नलिखित लेखभी है

"नमो अर्हतानं फगुयशस नतकस भयाये शिव-यशे…३……आ…आ…काये आयागपटो कारितो अरहत पूजाये"।

अर्थात्—"अर्हतोंको नमस्कार! नर्तक फगु-यशा की स्त्री शिवयशाने……अर्हतों की पूजाके लिये आयागपट बनवाया।" (प्लेट नं० १२) इसी-तरह मथुराके होली दरवाजेसे मिले हुये स्तूप वाले आयागपट पर एक प्राकृत-भाषाका लेख निम्न प्रकार है:—

"नमो अर्हतों वर्धमानस आराये गणिकायं लोणशोभिकाये धितु समण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल, आयागसभा, प्रपाशिल (।) प (रो) पतिस्ट (।) पितो निगंथानं अर्ह(ता) यतने स (हा) म (।) तरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पूजाये।"

अर्थात्—अर्हत् वर्द्धमान्को नमस्कार! श्रमणों-की श्राविका आरायगणिका लोणशोभिका की पुत्री नादाय गणिका वसुने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत्का एक मंदिर, एक आयाग सभा, ताल, और एक शिला निग्रंथ अर्हतोके पवित्र स्थान पर बनवाये।

इन दोनो शिलालेखों से स्पष्ट है कि आजसे लगभग दो हजार वर्ष पहले जैनसंघमें 'नटी' और 'वेश्यायें' भी सम्मिलित होकर धर्माराधनकी पूर्ण अधिकारी थीं। उनका जैनधर्ममें गाढ़ श्रद्धान और अटूट भक्ति थी। वे एक भक्तवत्सल जैनी की भाँति जिनमंदिरादि बनवातीं मिलतीं हैं। यही जैनधर्मकी उदारता है।

मथुराके जैन पुरातत्वकी दो जिन-मूर्तियों परके लेखोंसे प्रकट है कि ईस्वी पूर्व सन् ३ में

एक रंगरेजकी स्त्रीने* और सन् २६ ई०-मे गंधी व्यासकी स्त्री जिनदासी ने अर्हत् भगवान्की मूर्तियाँ बनवाई थीं ! † निस्सन्देह उस समय जैनधर्मका उदार-रूप दिखाई पड़ता था ।

गिरिनगर (काठियावाड़) के एक शिलालेख-से भी जैन-धर्मका उदाररूप स्पष्ट होता है। यह शिलालेख क्षत्रपनरेश रुद्रसिंह का है और इससे स्पष्ट है कि उस शकराजाने जैन-मुनियोंके लिये गुफायें बनवाई थीं I। इसी उल्लेखसे स्पष्ट है कि वह राजा जैन-गुरुओंका भक्त था—जैनाचार्योंने इन विदेशियोंसे घृणा नहीं की थी।

उत्तर-भारतके समान ही दक्षिण-भारतके शिलालेखोंसे भी जैन-धर्मके उदार-स्वरूपके दर्शन होते हैं। श्रवणबेलगोलेके एक शिलालेखमे एक सुनारके समाधिमरण करनेका उल्लेख है। वहीं एक अन्य शिलालेखमे 'गणित' (तेली) जातिकी आर्यिकाओंका उल्लेख हुआ है‡। शिलालेख नं० ६६ (२२७ सन् १५३६) मे माली हुविडके दानका वर्णन है एवं शिलालेख नं० १४५ (३३६ सन् १३२५) मे लिखा हुआ है कि बेल्गोलकी नर्तकी मंगायीने 'त्रिभुवनचूड़ामणि जिनालय' निर्माण कराया था। वेल्लूरतालुकके शिलालेख नं० १२४ (सन ११३३ ई०) के लेखसे प्रगट है कि तेलीदास गौंडने जिन मन्दिरके लिये जैन-गुरु शान्तिदेवको भूमि का दान दिया था। उनके साथ २ रामगौंडने भगवान् पार्श्वकी अष्टप्रकारी पूजाके लिये भी दान दिया थाII। बेलूरके शिलालेख नं० १३८ (सन् १२४८) से विदित होता है कि आदि गौंडने एक जिनमन्दिर निर्माण कराया था और उसकी पूजा, ऋषियोंके आहारदान और जीर्णोद्धारके लिए भूमि का दान दिया थाIII। विजयनगर-मे एक तेलिनका बनवाया हुआ जिनमन्दिर 'गाणगित्ति जिनभवन' नामसे प्रसिद्ध है। चालुक्य-नरेश अमभद्वितियके एक लेखसे स्पष्ट है कि उनकी प्रेयसी चामेक वेश्या जैन-धर्मकी परम उपासिका थी। उसने 'सर्वलोकाश्रयजिनालय' निर्माण कराया था और उसके लिये दान दिया था IV। सारांशत: यह स्पष्ट है कि दक्षिण-भारतके जैन-संघमे भी शूद्र और ब्राह्मण—उच्च और नीच—सबही प्रकारके मनुष्योंको आत्मकल्याण करनेका समान अवसर प्राप्त हुआ था।

राजपूतानामे बीजोल्या-पार्श्वनाथ एक प्रसिद्ध अतिशयक्षेत्र है। वहाँके एक शिलालेखसे स्पष्ट है कि उस तीर्थकी वन्दना करने ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्य-शूद्र-सभी आते थे और मनोकामना पूरी करनेके लिए वहाँके रेवतीकुंडमे सभी स्नान करते थेV। गर्ज यह कि शिलालेखीय साक्षी जैन-धर्मकी उदारताको मुक्त कण्ठसे स्वीकार करती है। क्या वर्तमानके जैनी इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे और प्रत्येकको मन्दिरोंमें पूजा-प्रक्षाल और दान देनेका अवसर प्रदान करेंगे ?

---

* इपीग्रेफिका इंडिका, १।३८४.

† जर्नल आव दी रॉयल ऐशिया. सो०, भा० ५ पृष्ट १८४

I रिपोर्ट आन दी एंटीक्वटीज़ आव काठियावाड़ एन्ड कच्छ, पृष्ट १४५-१४६।

‡ पतितोद्धारक जैनधर्म, पृष्ट ३५।

II इपीग्रेफिया कर्नाटिका, भा० ५ पृ० ८३ ।

III इपी० कर्ना०, भा० ५ पृ० ९२ ।

IV इपीग्रेफिया इंडिका, भा० ७ पृ १८२।

V "रेवतीतीरकुंडेन या नारी स्नानमाचरेत् ।
सा पुत्र भर्तृ सौभाग्यं लक्ष्मी च लभते स्थिराम् ॥
ब्राह्मण: क्षत्रियो वापि वैश्यो वा शूद्रो जोऽपिवा।
.... स्नानकर्त्ता स प्राप्नोत्युत्तमो गतिम् ॥७६॥
जैन सिद्धान्तभास्कर, भा० २ पृष्ट ५६ ।

# SIX DRAVYAS

—By—

*(K. B. Jinaraja Hegde, B. Sc., LL. B., M. L A.)*

According to Jain Metaphysics there are only six elements in the Universe. By the word 'element' I mean a thing which cannot be further divided or destroyed or added to or subtracted from They are independent things And whatever one sees in this universe are either chemical compounds or mixtures of all or some of these six dravyas

They are (1) JIVA (2) PUDGALA (3) DHARMA (4) ADHARMA (5) KALA & (6) AKASA

## 1. *JIVA*

Jiva is Atma, a conscious element which we see in human beings, animals, plants and trees The proof of the existence of this Atma in the Universe consists more in the experience of people who have genuinely felt of its existence than in several arguments that are advanced I will only attempt to draw an inference of its existence Many people must have heard of some people stating the experience of their previous life Recently there was a case of a girl near about Delhi which was reported in the papers, who suddenly started relating the scenes of her past life and even named her relations in her past life, whom later on she identified. Taking this to be true how was it possible for the girl to relate any thing of her past life unless that there was something common and continuing conscious element in her, between her present and past life. And it is this common element Jainism calls as Atma or Jiva which is indestructible. A similar case was reported from Jhansi in Hindustan times in its issue dated 16/9/1938

## 2. *PUDGALA*

Pudgala is matter, it is a substance which could be percieved unlike Atma by all the five or by any one of the senses. Pudgala is a common and indestructible element that is present in all substances like earth, wood, human body, metal, air, gas, water, fire. light, sound, electricity, x-ray etc. In this connection it must be said that the 'element' once thought by the scientists as final indestructible substance is no more found to be true Every 'element' known to chemistry is no more a final thing that cannot be further divided or destroyed. It is found by scientists that every atom of an element consists of two or more packets of forces (Shakti) which they have called proton and electron identifi-

ed as positive and negative electricity respectively. The different properties of the elements of gold, iron, oxygen, hydrogen etc, they have proved, consists in the different numbers of electrons each element is made up of. According to this theory one element could be converted into another. Lead could be converted into gold or into any other element. This theory establishes the truth of Jaina Metaphysics beyond any doubt. Therefore one can say a table is pudgala, gold is pudgala, iron is pudgala, but pudgala is not only gold iron and table, because pudgala is a common substance (perceivable by all or any one of the senses) that is found in table, iron and gold Sound cannot be produced without air or gas i e., pudgala Sound cannot exist without pudgala in some form or other, so much so, it is a character or property of pudgala and of pudgala alone and of nothing else in the universe. The property of a substance cannot exist independently of the substance of which it is the property. a substance could be known or recognised by its properties alone Therefore, we say sound is pudgala but pudgala is not always sound, because sound is only one of the properties of pudgala

### 3 *DHARMA*

Dharma according to Jainism is a medium of motion We know sound cannot travel without the medium of air. Fish cannot float without the medium of liquid Birds cannot fly without the medium of air. It is found magnetic waves travel long distances, even in areas where there is no air, it travels through water, mountains, metal screens and even up to stars and sun Air is not a medium for those magnetic waves The scientists could not explain what that medium was, but they were definite that there must be a medium. It is this medium which the scientists have called it as ether (ether—something that cannot be known) They know that without this ether medium magnetic waves cannot travel. It is by these waves we hear the radio. This ether satisfies all the attributes of Dharma as explained by Jain Metaphysicists.

### (4) *ADHARMA*

Adharma is another medium which has exactly the opposite character of Dharma While Dharma is a necessary medium for motion, Adharma is a medium necessary for things to remain at rest or static. It is not character of anything in this universe to remain either in static or in motion If there should be a medium for motion we could easily conceive that there may be a medium for rest It is found that the magnetic waves though unaffected by air, mountains water etc, do lose their intensity and finally they fail Why? Ether does not give any resistance, because there is no substance, no strength either The only conclusion we can come to is, that Adharma and Dharma are like light and darkness Wherever there is light there is darkness.

We cannot conceive of light without darkness The character of light is exactly reverse that of darkness Therefore if there is a medium for motion there must be medium for rest also This is also an established truth not beyond the imagination of scientists

### 5. *KALA*

Kala is time According to Jain Metaphysics it is an element that marks, registers or roughly brings about change in everything we see and even among things beyond our vision It may be admitted that there is nothing in this universe that is always at rest, that does not change Sun, stars, earth, vegetation, human beings, animals all undergo change every second or even every thousand millionth part of a second. Without cause there is no effect. Then what is the cause or what is behind all these changes It may be said, it is the very nature of things. But that answer will be only begging a question What is that nature, what is the cause of such a nature? The cause of such a nature that brings changes in things is called by Jain Metaphysicists as 'Kala' Properly conceived it is not the character of Pudgala, Dharma, Adharma or Jiva It is independent of them and one additional element among them. Its function in the universe is different and it has independent properties uncommon with any other thing in the universe

### 6 *AKASA*

Akasa is Space It gives room for all other five elements named above, It could not be confused with the sky we see. Akasa according to Jain meta-physicists exists even inside liquid, earth, and metals. In 10 c.c of water you drop 1 gram of salt or sugar, it dissolves, but the volume of the liquid remains the same Where has the extra volume of 1 gram of salt disappeared? The answer is, it has occupied the space inherent in the liquid That space is Akasa. It pervades the whole of the universe Its character is to provide room for all things in the universe Without Akasa nothing can exist independently of one another It is due to Akasa that everything finds its own place Can anyone imagine a 7th element?

It is rather difficult to explain in a short article of this size, the six dravyas contemplated by the Jain metaphysicists and remove all doubts and answer all counter arguments. The main idea of this article is to prove that the conception of Jain metaphysicists is not opposed to the present-day scientific theories On the other hand, the development of material science has made it easier to understand and appreciate the worth of Jain Metaphysicists written or told more than thousand years ago

# अहिंसाधर्म और धार्मिक निर्दयता

लेखकः—

श्री चन्द्रशेखर शास्त्री M O Ph, H M D काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य, प्राच्यविद्यावारिधि।

अब इस बातको सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रह गई है, कि प्रत्येक जीवकी रक्षा करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। मनुष्य आधुनिक विज्ञानके द्वारा उन्नति करता हुआ अपने जीवनको जितना ही अधिकसे अधिक सुखी बनाता जाता है, उतना ही पशु-पक्षियोंका भार हल्का होता जाता है। वैज्ञानिक खेतीने बैलो और घोड़ोंके हल चलाने के गुरुतर कार्यको बहुत हल्का कर दिया है। रेल, मोटरकार आदि वैज्ञानिक यानोंने बोझ ढोनेके कार्यसे अनेक पशुओंको बचा लिया है। वैज्ञानिक लोगोंकी शोधका कार्य अभी तक बराबर जारी है। उनको अपनी शोधके विषयमे बड़ी बड़ी आशाएँ है। उनको विश्वास है कि एक दिन वे विज्ञानको इतना ऊँचा पहुँचा देंगे कि संसारका प्रत्येक कार्य बिना हाथ लगाये केवल बिजलीका एक बटन दबानेसे ही होजाया करेगा। भोजनके विषयमे उनको आशा है कि वह किसी ऐसे भोजनका आविष्कार कर सकेंगे, जो अत्यन्त अल्पमात्रामें खाए जानेपर भी क्षुधाशान्तिके अतिरिक्त शरीरमें पर्याप्त मात्रामे रक्त आदि धातुओंको भी उत्पन्न करेगा। तिसपर भी यह भोजन यंत्रों द्वारा उत्पन्न बिल्कुल निरामिष होगा। इसप्रकार वैज्ञानिक लोग मनुष्य-पशु और पक्षी सभीके बोझको कम करनेके लिये बराबर यत्न कर रहे है।

यद्यपि हम भारतवासी यह दावा करते हैं कि ससारके सबसे बड़े धर्मोंकी जन्मभूमि भारतवर्ष है, किन्तु अत्यन्त दयावान् जैन और बौद्ध धर्मोंकी जन्मभूमि होते हुए भी जीवरक्षाके लिये जो कुछ विदेशोंमें किया जारहा है, भारतमें अभी उसकी छाया भी देखनेको नहीं मिलती। हम समझते है कि विदेशी लोग म्लेच्छ खंडके निवासी एवं मांसभक्षी होनेके कारण हिंसाप्रिय होते हैं, किन्तु तथ्य इसके बिलकुल विपरीत है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यूरोप और अमेरिकाके अधिकांश निवासी मांसभक्षी है, किन्तु वे पशुओंके प्रति इतने निर्दय नहीं है। आप उनकी इस मनोवृत्तिपर आश्चर्य करसकते हैं, क्योंकि प्राणघात और दयाका आपसमें कोई मेल नहीं हो सकता। किन्तु पाश्चात्य देशोमे आजकल निरामिष भोजन और प्राणियोंके प्रति दयाका बड़ा भारी आन्दोलन चल रहा है। जिस प्रकार प्राचीन भार-

तीय क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंके सहयोगसे हिंसामई यज्ञ-याज्ञ करते करते हिंसासे इतने ऊब गयेथे कि उन्होने भगवान् महावीर तथा गौतमबुद्ध जैसे अहिंसा प्रचारकोंको उत्पन्न किया उसी प्रकार आजकल पाश्चात्य देशवासी भी व्यर्थकी हिंसा और निर्दयतासे ऊब गये हैं। वहाँ प्रत्येक देशमे निरामिष भोजनका प्रचार करने वाली सभाएँ है। आपको यूरोप तथा अमेरिकाके प्रत्येक देशमें शाकाहारी होटल तक मिलेंगे। अब वह ज़माना टल गया, जब पाश्चात्य देशोंमे जानेपर बिना मांस खाए काम नहीं चलता था।

निरामिष भोजनके प्रचारके अतिरिक्त वहाँ प्राणियोंके साथ निर्दयताका व्यवहार न करनेका आन्दोलन भी प्रत्येक देशमे किया जारहा है। इस समय यूरोपके प्रत्येक देश तथा अमेरिकामे जीवदयाप्रचारिणी सभाएँ (Humanitarian Leagues)
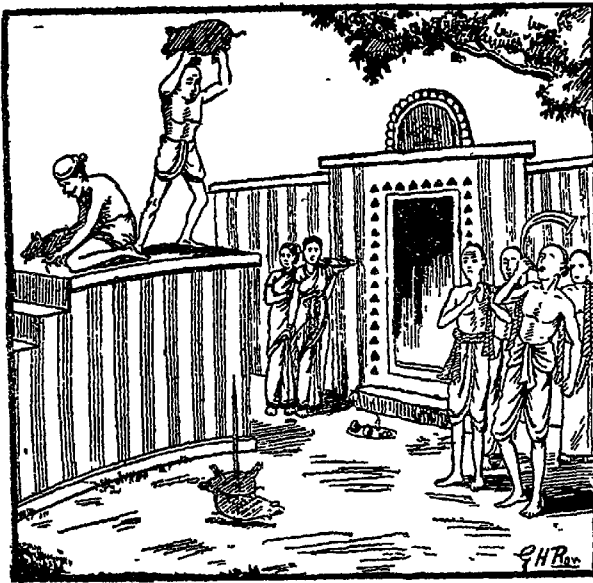
टिन्नेवेली ज़िलेके कई स्थानों में पृथ्वीपर तेज़ नोक वाले भाले या बड़े कीले सीधे गाडकर उनके ऊपर बड़ी भारी ऊँचाईसे कई सूअर एक-एक करके इस प्रकार फेंके जाते है कि वे उस में बिंधकर भालेके नीचे पहुंच जावे। इस प्रकार एक-एक भालेमे एकके ऊपर कई एक सूअर जीवित ही बिंध जाते हैं। बादमें उन मूक प्राणियोंकी बलि दी जाती है।

काम कर रही हैं। जीवदयाप्रचारिणी सभाएँ प्राणियोंपर निर्दयता न करनेका प्रचार केवल ट्रेक्टों, व्याख्यानों और मैजिक लालटैनों-द्वारा ही नहीं करतीं, बल्कि वे अपने अपने देशोंमे पशु-निर्दयता-निवारक कानून (Prevention of Cruelty to Animals Act) भी बनवाती हैं। इसके अतिरिक्त वे जिस देशमे प्राणियोंके प्रति सामूहिक अन्याय किये जानेकी बात सुनती हैं उसका खुला विरोध भी करती हैं। पिछले दिनों अमेरिकाकी जीवदया-सभाने भारतसरकारके बिना किसी प्रतिबन्धके अमेरिकामे बंदर भेजनेके कार्यका कठोर शब्दोमें विरोध किया था। उन्होंने १ सितम्बर १९३७ से ३१ मार्च १९३८ तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके पास भी अनेक पत्र भेजकर उससे

अनुरोध किया था कि वह भारतसरकारकी इस प्रवृत्तिको वन्द करनेमें सहायता दें। अमरीकामें अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें जीवित पशुओं-की चीरफाड़ करके अथवा उनका ऑपरेशन करके वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं। इन बंदरों-को भारतवर्षसे उन्हीं प्रयोगशालाओंके लिये भेजा जाता था, वहाँ उनको अनेक प्रकारके काटने-फाड़ने चीरने, छेदने. आदिके कष्ट दिये जाते थे। इस कार्यका चिकित्सकों, पादरियों, जीवित प्राणियोंके ऑपरेशनका विरोध करने वाली सभाओं तथा अन्य भी अनेक व्यक्तियोंने घोर विरोध किया।

एक अमेरिका निवासीका कहना है कि वहाँ प्रतिवर्ष साठ लाख प्राणियोका प्रयोगशालाओंमे बलिदान किया जाता है। उनमें से केवल पाँच प्रति शतको ही वेहोश करके उनकी चीर-फाड़-की जाती है। शेष सब बिना बेहोश किये ही,

चिंगलेपट ज़िलेके मादमवक्कम नामक स्थानमें जीवित भेड़-बकरीके पेटको थोड़ा काटकर उसकी आँतें खींचली जाती हैं और उन्हें सेल्लीयम्मन् देवीके सामने गलेमें हारकी तरह पहिना जाता है।

चीरे-फाड़े जाते हैं। इन प्रयोगशालाओं पर किसी प्रकारका निरीक्षण नहीं हैं। इनमें निर्दयता पूर्ण सभी कार्य प्रयोग करने वालोकी पूर्ण सहमतिसे किये जाते हैं। उन प्रयोगोमें पशुओंकी रीढ़की हड्डीके ऊपरसे खाल और मांसको हटाकर उनकी नाड़ियोंको उत्तेजित करके उनको फासफोरससे जलाया जाता है। फिर उनको उवलते हुए पानीमें डाल दिया जाता है यह सब कुछ उन मूक पशुओं-को वेहोश किये विना किया जाता है।

इन प्रयोगोंके चिकित्सामें उपयोगके विषयमे भी निश्चयसे कुछ नहीं कहा जा सकता। इन बंदरों के खूनमे से इसप्रकार निर्दयता-पूर्वक निकाले हुए पानी (Serum) को शिशु-पक्षाघातमे दिया

जाता है। इस औषधिके विषयमे खूब बढ़ाचढ़ा कर विज्ञापन निकाले जाते हैं। किन्तु संयुक्तराज्य अमेरिकामे स्वाध्य-विभागका कहना है कि इस प्रकार निर्दयता-पूर्वक निकाले हुए किसी भी सीरम ने शिशु-पक्षाघातको अच्छा नहीं किया।

प्राणियों पर दया तथा अव्यर्थ महौषधि न होनेके कारण बंदरोंके ऊपर इस निर्दय तथा व्यर्थ प्रयोगका विरोध बड़े प्रभाव शाली शब्दोंमें किया गया। इस विषयमे कैलिफोर्नियाकी पशुरक्षा समिति तथा जिवित-प्राणि-शल्य विरोधी समितिके प्रधानने लिखा है—"भारतके तीर्थस्थान आध्यात्मिक सौन्दर्य और उन्नतिके भंडार हैं। वह मनुष्योंके अतिरिक्त पशुओंको भी प्रेमभावसे रहनेकी शिक्षा देते हैं, अतएव ऐसी शिक्षा देने वाला भारत पवित्र नियमका
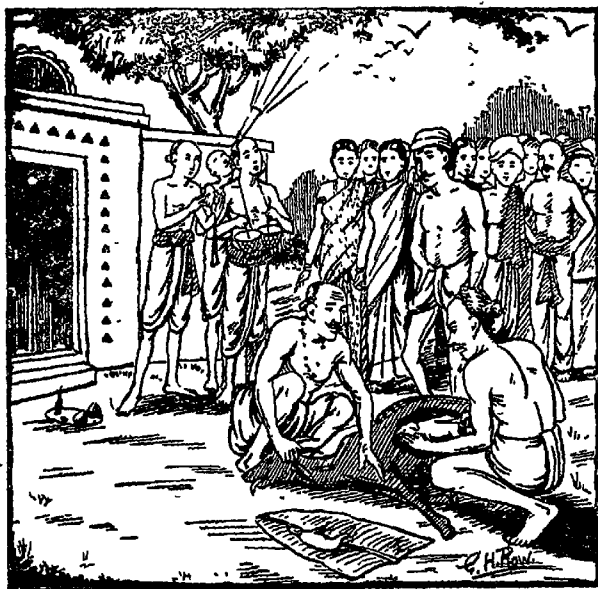
टिन्नेवली ज़िलेमें तो इतनी अमानुषिकता की जाती है, कि वहाँ एक गर्भवती भेड़के गर्भाशयको फाड़कर उसमेंसे बच्चोंको इस लिये निकाल लिया जाता है कि उन्हें देव-कोट्टामें कोटयम्मापर मायावरममें मरियम्मापर और पालमकोट्टामें अयिरथम्मेनपर बलि चढाया जाता है।

उल्लंघन कुत्सित और नीच विदेशी पैसेके लिये नहीं कर सकता। हम संसारके सभी धर्मोंके नाम पर आपसे दया, सत्य और न्यायके लिये अपील करते हैं।" उन सब लोगों की यह बड़ी भारी अभिलाषा है कि भारतवर्षके बन्दरोंका बाहिर भेजा जाना एक दम बंद होजावे।

यद्यपि आज स्पेन आंतरिक युद्धके कष्टसे जीवन और मृत्युके सन्धि-स्थल पर खड़ा है, किन्तु उन मूक प्राणियों के कष्टसे उसका हृदय भी पिघल गया है। उसकी जीवदया सभाके सितम्बर १९३७ के एक पत्रमें स्पेन के उन पशुओं की रक्षा करनेकी अपील की गई है, जो अपने

मालिकोंके स्पेन युद्धमे मारे जाने अथवा लगे होनेके कारण स्पेनके नगरोंकी सुनसान गलियों में खाना ढूंढते हुए घूम रहे हैं। खाना न मिलने के कारण उक्त पशुओंके पंजर निकल आए हैं। उन पशुओंमे अनेक उच्च नस्लके कुत्तेभी हैं, जो स्पेनकी बमवर्षामे अनाथ होगए हैं।

माड्रिड़में केवल एक समिति पशुरक्षाका कार्य करती थी, किन्तु वह अत्यन्त यत्नशील होती हुई भी उनकी वढ़ी हुई संख्याके कारण उनकी आवश्यकताकी पूर्ति करनेमे असमर्थ है। इसलिये उक्त समितिने संसार भरके दयालु पुरुषोसे अपीलकी है कि वह अपनी चंचल

दक्षिणी अरकाट ज़िलेके पूवानूर नामक स्थानमें बकरेके गलेको नेहानी वा छीनी से धीरे-धीरे काटकर उसको असीम वेदना पहुंचाई जाती है। बलिदानका यह कार्य संभवतः कसाईके हलाल करनेसे भी अधिक निरदयतापूर्ण है।

लक्ष्मीका कुछ भाग स्पेन भेजकर उन पशुओंकी रक्षाके कार्यमे सहायता दें।

कनाडामे भी पशुओंके प्रति निर्दयता पूर्ण व्यवहारके विरुद्ध घोर आंदोलन किया जारहा है। टोरैंटो ह्यूमेन सोसाइटीके मैनेजिंग डाइरेक्टर मिस्टर जान मैकनलने पशुओंके ऊपर वैज्ञानिक प्रयोग किये जानेका विरोध जोरदार शब्दोंमें किया है। कनाडाकी पशुरक्षा-समिति जीवित प्राणियोंका ऑपरेशन करनेके विरुद्ध घोर आंदोलन कर रही है, कनाडाकी पशु-निर्दयता निवारक समिति (Society for the Prevention of Cruelty to Animals) की रिपोर्टको देखने पर पता चलता है कि समिति के पास आर्थिक साधनोंकी कमी नही है। उस वर्ष उसको अकेली ए० क्राव्ट जर्विस स्टेटसे ही दस सहस्र डालर मिले थे, इसके पदाधिकारी नगरसे वाहिर १४५ मौकों पर गए। उन्होंने १८०५ पशु निर्दयताकी शिकायतें सुनीं, जिनमे से उन्होंने १३६८ को चेतावनी देकर छोड दिया और ८२ मामलोंमे सजा कराई। उसने

१४५, ५८० बाड़ोंमें पशुओंका निरीक्षण किया।

पशुओंकी अपेक्षा हमारा पक्षियोंके प्रति भी कम उत्तरदायित्व नहीं है। जैन मंदिरों में प्रायः कबूतरोंको चारा डाला जाता है। वास्तव में हमारा उनके प्रति एक विशेष कर्तव्य है। जिन पक्षियोंको मनुष्य अपने प्रेमवश किसी स्थान विशेषमे लाता है, उनके प्रति तो उसका विशेष कर्तव्य होता जाता है। हमलोग अपने अनाजपातको साफ करके धड़ियों गेगल आदि कूड़ियों पर फेंक देते है, किन्तु यदि हम उसको किसी सार्वजनिक स्थान पर डलवादिया करें तो, उससे अनेक पक्षियोंको लाभ हो सकता है। अनेक लोगो की ऐसी बुरी आदत होती है कि वह उन प्रकृतिके संगीतग्राहकों को लोहेके पिंजरेमे बंद करदेते हैं; अनेक व्यक्ति तोते, मैना, आदि अनेक प्रकार के पक्षियोंको पिंजरेमे बन्द रखते हैं; किन्तु वह
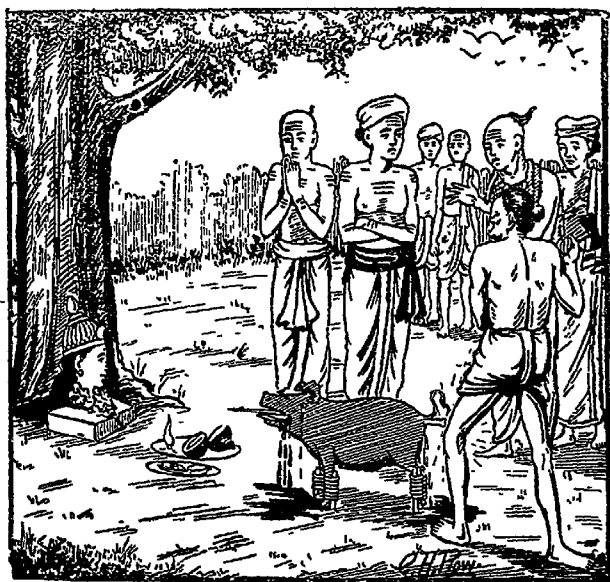
विज़गापट्टम ज़िलेके अनाकवल्ली नामक स्थानमें एक ऐसा बलिदान किया जाता है जिसमें भाले जैसी एक तेज़ नोकदार छुरीको सूअरके गुदास्थानमें डाल कर इतने ज़ोरसे दबाया जाता है कि वह अंदरके भागोंको फाड़तीहुई उसके मुंहमें से निकल आती है

यह नहीं समझते कि प्रत्येक पक्षि जितना सुन्दर खुली वायुमें स्वतन्त्रता पूर्वक श्वास लेकर गाता है उतना पिंजरे के अंदर बन्द रह कर कभी नही गा सकता। वास्तवमें हरे हरे खेतोंसे उड़ कर नीले आकाशमें गाते हुए जाने वाले पक्षियोंको देखकर कितना आनन्द होता है? इस गीतको सुनकर कभीभी मन नहीं भरता। किन्तु स्वार्थी मनुष्य उनको पिंजरेमे बन्द करके ही संतुष्ट नहीं होता, वह उनको पकड़ता है उनका शिकार करता है और उनपर अनेक प्रकारके अत्याचार करता है। कई एक व्यक्ति तो इन, निर्बल प्राणियों को मारकाट कर बड़ी शानसे कहा करते हैं, कि आज हमने इतने पक्षियोंका शिकार किया। शिकारियोंकी अपेक्षा बहेलिये या चिड़ीमार लोग

इनपर अधिक अत्याचार करते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व कनाडाके क्वेबेक नामक नगरमे एक बहेलियेने एक छोटी लोमड़ीको जीवित ही जालमे पकड़ लिया। उसने उसको अपने घर लेजाकर उस स्थानपर टांग दिया जहाँ अनेक खालें टगी हुई थीं। उस समय वहाँ एक फोटोग्राफर भी था। वह उन खालोका फोटो लेना चाहता था। किन्तु उसने लोमड़ीको छटपटाते देखकर बहेलियेके निर्दयतापूर्ण कार्यका विरोध किया और कहा कि लोमड़ीके इधर-उधर हिलते समय फोटो किस प्रकार लिया जासकता है। इसपर बहेलियेने लोमड़ीको उतारनेके स्थानमे उसकी अगली टांगोंको एक रस्सीमे बाँधकर आगेको इस प्रकार खींच कर बाँध दिया कि वह हिलडुल भी न सके। इसके बाद फोटोग्राफरने फोटो ले लिया। वह इस फोटोको पशुनिर्दयता-निवारक सभामें भेजने
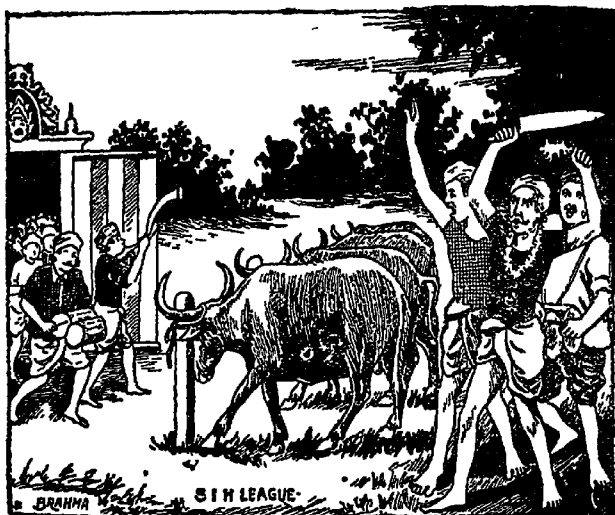
दक्षिणी अरकाटके विरुधचलम् तालुकके मदुवेत्तिमगलम् मंदिरमें एक साथ सात भैसोंको काटकर उनकी बलि दी जाती है!! और यह पूजोत्सवका वहाँ एक साधारण रूप है।

वाला था। सारांश यह है कि पशुनिर्दयता-निवारक कानूनके अनुसार अनेक व्यक्तियोंको छोटे छोटे अपराधोंमें दंड दिया जाता है, किन्तु बहेलियों और शिकारियोंपर उक्त कानून लागू नहीं होता। किसी बच्चेके हाथमे तो जब कभी कोई कुत्ते या बिल्लीका बच्चा पड़ जाता है, उसकी आफत ही आ जाती है।

उन्नीसवीं शताब्दीमे बड़े-बड़े चिकित्सकोंने रोग और मृत्युमें कष्ट कम करनेका बड़ा भारी उद्योग किया है। एडिनबरोके डाक्टर सिम्पसनको ऑपरेशनके समय रोगियोका तड़पना और चिल्लाना देखकर बड़ी दया आई। अतएव उसने बेहोश करनेकी औषधिको खोज निकाला।

अमेरिकामे पशुओंके प्रति दयाभाव प्रदर्शित करनेका प्रचार रेडियो, समाचारपत्र और व्याख्यानों द्वारा किया जाता है। वहाँ अनेक समितियाँ जीवदयाका प्रचार कर रही हैं। इस विषयमे वहाँ प्रतिवर्ष सैकड़ों ट्रैक्ट निकलते हैं।

रेवरेंड डाक्टर हान पेनहाल रीसने तो जीवदयाके विषयमें एक सहस्रसे भी अधिक कविताएँ लिखी हैं।

टोरोंटोकी ह्यूमेन सोसाइटी तथा इसीप्रकारकी अन्य संस्थाएं वहाँ इस विषयमे अत्यंत उपयोगी कार्य कर रही हैं। इस विषयमे डाक्टर ऐलेन भी बड़ा भारी कार्य कर रहे हैं।

उपर्युक्त वर्णनसे प्रगट है कि यद्यपि भारतवर्षमे शेष संसारकी अपेक्षा मांसाहारका प्रचार कम है, तथापि वह जीव दयाके कार्यमें उससे बहुत पीछे है। इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन और अमेरिका मांसाहारी देश होते हुये भी जीवदयाके सम्बन्धमें भारतसे बहुत आगे हैं। भारतवर्षका दावा है कि वह कई ऐसे विश्वधर्मोंकी जन्मभूमि

ट्रिचनापलीके पास पुत्तुरके कुलुमियायी मन्दिरमें दो तीन माहके मेड़के बच्चोंकी गर्दनें दाँतोंसे काट कर अथवा छुरीसे छेद करके देवीके सामने उनका रक्त चूसा जाता है!! इस घोर राक्षसी कृत्यने तो खूख्वार जंगली जानवरोंको भी मात कर दिया है।

है, जिसका आधार प्रेम और अहिंसा है, तो भी यह अत्यन्त खेदकी बात है कि वह जीवदया और प्राणिरक्षाके विषयमे संसारके अन्य देशोंसे बहुत पीछे है। संसारका एक बहुत पिछड़ा हुआ देश है।

भारतवर्षमे अभी तक परमात्मा और धर्मके नामपर बड़े बड़े अत्याचार करके प्राणियोंको प्राणांतक कष्ट दिया जाता है। दक्षिण भारत इस विषयमें शेष भारतसे भी बाजी मार ले गया है। वहाँ मूक पशुओंपर धर्मके नामपर बड़े-बड़े अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं। जिन्हें देख-सुनकर रोंगटे खड़े होते हैं और दिमाग चकरा जाता है। लेखमें दिये गये कुछ चित्रोंसे इन अत्याचारोंका आभास मिलता है। उनके यहाँ पुनः उल्लेख करनेकी आवश्यक्ता प्रतीत नहीं होती।

इनके अतिरिक्त दक्षिणके अनेक जिलोंमे यज्ञके लिये बकरोंके मारनेकी यह प्रथा बहुत जोरों पर है कि बकरोंके अंडकोषोंको किसी भारी वस्तुसे दबाकर कुचलने आदिके अमानुषिक कर्म द्वारा उन मूक पशुओंको मरणान्तिक वेदना पहुँचाई जाती है।

इस प्रकार पशुओंको धर्मके नाम पर असह्य यंत्रणा पहुँचाने वाले कुकृत्योंके, अथवा धार्मिक निर्दयताके ये कुछ उदाहरण हैं, जो प्रायः तिलक-छाप धारी हिन्दुओंके द्वारा किये जाते हैं, और किये जाते हैं खूब गा बजाकर—हिंसानन्दी रौद्र ध्यानमे मग्न होकर !! संसारके और भी भागोंमें इनके जैसे अन्य अनेक ऐसे कुकर्म किये जाते हैं, जिनको सुनकर हृदय कॉप उठता है और समझमें नहीं आता कि ऐसे क्रूर कर्मोंके करने वाले मनुष्य हैं या राक्षस अथवा जंगली जानवर !!

नेलोर ज़िलेके मोपेडू नामक स्थानपर देवीके मदिरके सामने एक चार फ़ुट गहरा गढा खोदकर उसमें एक भैंसेको उतार कर मज़बूतीसे बाध दिया जाता है। इसके पश्चात् कुछ लोग उसको भालेसे छेदकर जानसे मार डालते हैं। ये लोग पहलेसे उसको इस प्रकार मारनेकी शपथ लेते हैं।

पाश्चात्य देश यद्यपि मांसाहारी हैं किन्तु वहाँ प्रयोग शालाओंको छोड़कर अन्यत्र पशुओं को यंत्रणा पहुँचाकर नहीं मारा जाता। वहाँ पशुओंके ऊपर निर्दयतापूर्ण व्यवहार करनेके विरुद्धकानून बने हुए हैं, जिनका उल्लघन करने पर जुर्माने से लेकर जेल तकका दंड दिया जाता है। पशुओंको गाड़ीमे जोत कर अधिक चलाना, उन पर अधिक बोझा लादना, उनको पेटसे कम चारा देना, निर्दयतापूर्वक पीटना और पैर बांधकर लेजाना आदि कार्य पाश्चात्य देशोंमे कानून विरुद्ध घोषित करदिये गये हैं। सन् १८९० मे माननीय मिस्टर हचिनसनने भारतीय कौंसिलमें भी 'पशु निर्दयता निवारक' बिल उपस्थित किया था। यद्यपि इस ऐक्टके अनुसार पशुओंके साथ

किये जाने वाले अनेक निर्दयतापूर्ण कार्योंको अवैध करार देदिया गया था, किन्तु धर्मके नामपर कीजानेवाली निर्दयताका इसमें भी अन्तर्भाव नहीं किया गया। इस बातको प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है कि मारने, पीटने, अधिक बोझा लादने आदिमे पशुओंको इतना दुःख नहीं होता, जितना बांध-जूड़कर भालोंसे छेदने, ऊपरसे बर्छी भाले पर डालने, गुदाके मार्गमें लकड़ी डालकर मुँहमें से निकालने, आन्तोंको खींचने और अण्डकोषोंको कुचलने आदिमें होता है। परंतु खेद है कि कानून निर्माताओंने इन कार्योंको निर्दयतापूर्ण मानते हुए भी धर्ममें हस्ताक्षेप करनेके भयसे नहीं रोका !!

सितम्बर १६३८ में भारतीय व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly)ने अपने शिमला-सेशन (Session) में 'पशु निर्दयता निवारक क़ानून' में कुछ और संशोधन किये हैं, किन्तु धर्मके नाम पर की जाने वाली निर्दयताको उसमे भी अवैध नहीं किया गया, यह खेदका विषय है।

दक्षिणी अर्काट ज़िले के विरुधचलम् ताल्लुकके मदुवेत्तिमंगलम् नामक स्थानमे सूअरके छोटे छोटे जीवित बच्चोंको भालेसे बीधकर और उसे बिंधे रूपमे ही भालोंपर उठाए हुए आम सड़कोंपर जलूस बनाकर चलते हैं

हॉं इस विषयमें ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा देशीराज्योने कुछ अधिक कार्य किया है निज़ाम हैदराबादने जून१६३८ से अपने राज्यमे गऊ और ऊँटकी क़ुरबानी करना कानून द्वारा बन्द कर दिया है। मैसूर, ट्रावनकोर तथा उत्तरी भारतके अनेक राज्योंने भी अपने यहाँ बलि-विरोधी कुछ क़ानून बनाए हैं।

पाठकोसे यह छिपा नही है कि लोकमतके प्रबल विरोधके कारण ही भारत सरकारने सती

प्रथाको बन्द किया है, बालविवाहोंमें कुछ रुकावट डाली है, लाहौरमें बूचड़खाना बनानेके विचारका परित्याग किया है और बंगाल सरकारने अभी-अभी एक कानून बनाकर प्रांतकी फूका प्रथाको बन्द किया है।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि सरकार लोकमत प्रबलताको देखकर धर्ममें भी हस्ताक्षेप करती है। अतः हमको भारतके कोने कोनेमें आन्दोलन करके धर्मके नामपर पशुओंपर किये जाने वाले इन घोर अत्याचारोंको एकदम बंद करा देना चाहिये। इस समय महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू तक पशुबलिको जंगली

उयनपल्ली जैसे स्थानोंमें जीवित पशुकी बली देते समय उसकी गर्दनको थोड़ासा काट लिया जाता है फिर उस टपकते हुए रक्तको कटोरेसे देवीके सामने पियाजाता है। बेचारा पशु महावेदना भोगता हुआ तड़प २ कर प्राण दे देता है।

प्रथा बतला कर उसका विरोध कर रहे हैं। और भी कुछ सज्जन प्राणोकी बाजी लगाकर पशुबलिके विरोधमें उठे हुए हैं। अतः यह अवसर आन्दोलनके लिये बहुत अनुकूल है *।

—:*:—

* इस लेखके लिखनेमें मद्रासकी साउथ इण्डियन ह्युमेनिटेरियन लीगकी ओरसे हालमें प्रकाशित (Humanitarian Outlook) नामक पुस्तकका पूरा उपयोग किया गया है—चित्रभी उसी परसे लिये गये हैं। इसके लिये हम उक्त लीगका हृदयसे आभार मानते हैं और साथ ही उसके संचालकों तथा कार्यकर्ताओंका खुला धन्यवाद करते हैं, जो मानव समाजके कलंकरूप ऐसे निर्दय एवं क्रूर बलिविधानों की रोकके लिये प्रयत्नशील हैं।

—लेखक
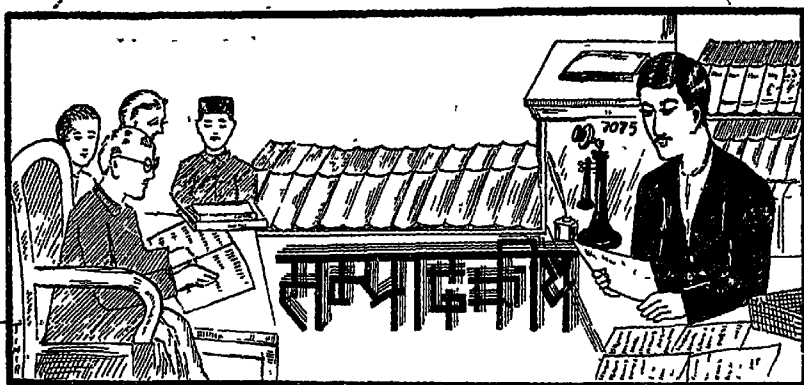
# १ प्रास्ताविक निवेदन

वीरनिर्वाण संवत् २४५७ के प्रारम्भ होते ही कार्तिक सुदिमें, 'अनेकान्त' के प्रथम वर्षकी १२ वीं किरणको प्रकाशित करते हुए, अगले वर्षकी जो सूचना निकाली गई थी उसमें समन्तभद्राश्रमका स्थान परिवर्तन, नया डिक्लेरेशन, नया प्रेस-प्रबन्ध और पोस्ट ऑफिसकी नई रजिस्टरी आदि कुछ कारणोंके वश दूसरे वर्षकी प्रथम किरणको विशेषाङ्क रूपसे चैत्रमें निकालनेकी सूचनाकी गई थी। उस समय किसीको स्वप्नमें भी यह ख़याल नहीं था कि उक्त १२ वीं किरण और इस प्रथम किरणके मध्यमें पूरा आठ वर्षका अन्तराल होगा और मुझे इतने लम्बे समय तक अपने पाठकोंकी सेवासे वंचित रहना पड़ेगा—श्रीकेवली भगवान् ही जानते होंगे कि इस किरणके उदयमें उस समय ठीक आठ वर्षका आबाधा-काल पड़ा हुआ है। यही वजह है जो इस बीचमें किये गये प्रयत्न सफल नहीं हो सके और यदि एक महान् सुवर्ण अवसर प्राप्त भी हुआ तो, उस समय मैं स्वयं पत्रका सम्पादनभार उठानेके लिये तय्यार न हो सका।

पाठकोंको मालूम है कि 'अनेकान्त' को उसके प्रथम वर्षमें ९००) रु० के करीबका घाटा उठाना पड़ा था *। इस घाटेको प्रदर्शित और उसकी पूर्तिके लिये अपील करते हुये मैंने उस समय लिखा था—

"यह घाटा बजटके भीतर ही रहा, इतनी तो सन्तोषकी बात है। और यह भी ठीक है कि समाजके प्रायः सभी पत्र घाटेसे चल रहे हैं और उनकी स्थिति आदिकी दृष्टिसे यह घाटा कुछ अधिक नहीं है। ऐसे पत्रोंको तो शुरू-शुरूमें और भी अधिक घाटा उठाना पड़ता है; क्योंकि समाजमें ऐसे ऊँचे गंभीर तथा ठोस साहित्यको पढ़नेवालोंकी संख्या बहुत कम होती है—जैनसमाजमें तो वह और भी कम है। ऐसे पाठक तो वास्तवमें पैदा किये जाते हैं और वे तभी पैदा हो सकते हैं जब इस प्रकारके साहित्यका जनतामें अनेक युक्तियोंसे अधिकाधिक प्रचार किया जाय—प्रचारकार्यमें बड़ी शक्ति है, वह लोकरुचिको बदल देता है। परन्तु वह प्रचारकार्य तभी बन सकता है जब कि कुछ उदार महानुभाव ऐसे कार्यकी पीठ पर हों और उसकी सहायतामें उनका खास हाथ हो। जितने हिन्दी-पत्र आज उन्नत दीख पड़ते हैं, उनकी उन्नतिके इतिहासमें यही रहस्य संनिहित है कि उन्होंने

* देखो प्रथम वर्षकी किरण १२, पृ० ६६८-६९

शुरू शुरूमे खूब घाटे उठाएँ हैं, परन्तु उन्हें उन घाटोंको पूरा करने वाले मिलते रहे है और इसलिये वे उत्साहके साथ बराबर आगे बढ़ते रहे है। उदाहरणके लिये 'त्यागभूमि' को लीजिये, जिसे शुरू-शुरूमे आठ-आठ नौ-नौ हजारके करीब तक प्रतिवर्ष घाटा उठाना पड़ा है, परन्तु उसके सिर पर बिडलाजी तथा जमनालालजी बजाज जैसे समयानुकूल उत्तम दानी महानुभावोंका हाथ है, जो उसके घाटोंको पूरा करते रहते हैं, इसलिये वह बराबर उन्नति करती जाती है तथा अपने साहित्यके प्रचारद्वारा लोकरुचिको बदल कर नित्य नये पाठक उत्पन्न करती रहती है और वह दिन अब दूर नहीं है जब उसके घाटेका शब्द भी सुनाई नहीं पड़ेगा किन्तु लाभ ही लाभ रहेगा। 'अनेकान्त' को अभी तक ऐसे किसी सहायक महानुभावका सहयोग प्राप्त नहीं है। यदि किसी उदार महानुभावने इसकी उपयोगिता और महत्ताको समझकर किसी समय इसको अपनाया और इसके सिरपर अपना हाथ रक्खा तो यह भी व्यवस्थित रूपसे अपना प्रचारकार्य कर सकेगा और अपनेको अधिकाधिक लोकप्रिय बनाता हुआ घाटेसे सदाके लिये मुक्त होजायगा। जैनसमाज का यदि अच्छा होना है तो जरूर किसी-न-किसी महानुभावके हृदयमे इसकी ठोस सहायताका भाव उदित होगा, ऐसा मेरा अतःकरण कहता है। देखता हूँ इस घाटेको पूरा करनेके लिये कौन-कौन उदार महाशय अपना हाथ बढ़ाते हैं और मुझे उत्साहित करते है। यदि ६ सज्जन सौ-सौ रुपये भी देवें तो यह घाटा सहज ही मे पूरा हो सकता है।"

मेरी इस अपील एव सामयिक निवेदन पर प्राय. कोई ध्यान नहीं दिया गया—सौ-सौ रुपयेकी सहायता देनेवाले ६ सज्जन भी आगे नहीं आए। मैं चाहता था कि या तो यह घाटा पूरा कर दिया जाय और या आगे को कोई सज्जन घाटा उठानेके लिये तय्यार हो जायँ तभी 'अनेकान्त' निकाला जाय। परन्तु दोनोंमें से एक भी बात न हो सकी। इस विषयमे लिखा पढ़ी आदिका जितना परिश्रम किया गया उसका तात्कालिक कोई विशेष फल न निकला। हाँ कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यापारी, एवं प्रतिष्ठित सज्जन बाबू छोटेलालजी के हृदयमे उसने स्थान जाकर बनाया, उन्होंने कुछ सहायता भी भेजी और वे अच्छी सहायताके लिये व्यापारादिकी अनुकूल परिस्थितिका अवसर देखने लगे।

जनवरी सन् १९३४ में 'जयधवलाका प्रकाशन' नामका मेरा एक लेख प्रकट हुआ, जिसे पढ़कर उक्त बाबू साहब बहुत ही प्रभावित हुए, उन्होंने 'अनेकान्त' को पुनः प्रकाशित कराकर मेरे पासका सब धन ले लेनेकी इच्छा व्यक्त की और पत्रद्वारा अपने हृद्गत भावकी सूचना देते हुए लिखा कि, व्यापारकी अनुकूल परिस्थिति न होते हुए भी मैं अनेकान्तके तीन सालके घाटेके लिये इस समय ३६००) रु० एक मुश्त आपको भेंट करनेके लिये प्रोत्साहित हूँ, आप उसे अब शीघ्र ही निकाले। उत्तरमे मैंने लिख दिया कि मैं इस समय वीरसेवामन्दिरके निर्माण कार्यमे लगा हुआ हूँ—जरा भी अवकाश नहीं है—बिल्डिंगकी समाप्ति और उसका उद्घाटन-मुहूर्त हो जानेके बाद 'अनेकान्त' को निकालनेका यत्न बन सकेगा, आप अपना वचन धरोहर रक्खें। चुनाँचे वीरसेवामन्दिरके उद्घाटनके बाद सितम्बर सन् १९३६ मे, 'जैनलक्षणावली' के कार्यको हाथमें लेते हुए जो सूचना निकाली गई थी उसमे यह भी सूचित कर दिया गया था कि—"अनेकान्तको भी निकालनेका विचार चल रहा है। यदि वह धरोहर सुरक्षित हुई और वीरसेवामन्दिरको समाजके कुछ विद्वानोंका यथेष्ट सहयोग प्राप्त हो सका तो, आश्चर्य नहीं कि 'अनेकान्त' के पुनः प्रकाशनकी योजना शीघ्र ही प्रकट कर दी जाय।"

परन्तु वह धरोहर सुरक्षित नहीं रही। बाबू साहब धर्मकार्यके लिये सकल्पकी हुई अपनी उस

रकमको अधिक समय तक अपने पास नहीं रख सके और इसलिये उन्होंने उसे दूसरे धर्मकार्योंमें दे डाला। बाद को यह स्थिर हुआ कि चूंकि 'जैन-लक्षणावली' और 'धवलादिश्रुत-परिचय' जैसे ग्रन्थोंके कार्यको हाथमें लिया जारहा है, इसलिये 'अनेकान्त' के प्रकाशनको कुछ समयके लिये और स्थगित रक्खा जाय। तदनुसार २८ जून सन् १९३७ को प्रकट होनेवाली 'वीरसेवामन्दिर-विज्ञप्ति' में भी इस बातकी सूचना निकाल दी गई थी।

सालभरमें जैनलक्षणावली आदिके कामपर कुछ काबू पानेके बाद मैं चाहता था कि गत'वीर-शासनजयन्ती'के अवसरपर 'अनेकान्त'को पुनः प्रकाशित करदिया जावे और उसका पहला अंक 'वीरशासनाङ्क' के नामसे विशेषाङ्क रहे, जिससे वीर-सेवामंदिरमें होने वाले अनुसन्धान (रिसर्च) तथा साहित्यनिर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्योंका जनताको परिचय मिलता रहे, परन्तु योग न भिड़ा! इस-तरह 'अनेकान्त'को फिरसे निकालनेका विचार मेरा उसी समयसे चल रहा है—मैं उससे ज़राभी ग़ाफिल नहीं हुआ हूँ।

हर्षका विषय है कि उक्त वीरशासनजयन्तीके शुभअवसरपर ही श्रीमान् लाला तनसुखरायजी (मैनेजिंग डायरेक्टर तिलक बीमा कम्पनी) देहलीका, भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय सहित, उत्सवके प्रधानकी हैसियतसे वीरसेवामन्दिरमें पधारना हुआ। आपने वीरसेवामन्दिरके कार्योंको देखकर 'अनेकान्तके' पुनः प्रकाशनकी आवश्यक्ताको महसूस किया, और गोयलीयजीको तो उसका बन्द रहना पहलेसे ही खटक रहा था—वे उसके प्रकाशक थे और उनकी देशहितार्थ जेलयात्राके बाद ही वह बन्द हुआ था। अतः दोनोंका अनु-रोध हुआ कि 'अनेकान्त' को अब शीघ्रही निका-लना चाहिये। लालाजीने घाटेके भारको अपने ऊपर लेकर मुझे आर्थिक चिंतासे मुक्त रहनेका वचन दिया—और भी कितना ही आश्वासन दिया साथ ही, उदारतापूर्वक यह भी कहा कि यदि पत्र-को लाभ रहेगा तो उस सबका मालिक वीरसेवा-मन्दिर होगा। और गोयलीयजीने पूर्ववत् प्रकाशक के भारको अपने ऊपर लेकर मेरी प्रकाशन तथा व्यवस्था संबन्धी चिन्ताओंका मार्ग साफ करदिया। ऐसी हालतमें दीपमालिकासे—नये वीरनिर्वाण संवत्के प्रारम्भ होते ही—अनेकान्तको फिरसे निकालनेका विचार सुनिश्चित होगया। उसीके फलस्वरूप यह पहली किरण पाठकोंके सामने उपस्थित है और इस तरह मुझे अपने पाठकोंकी पुनः सेवाका अवसर प्राप्त हुआ है। प्रसन्नताकी बात है कि यह किरण आठ वर्ष पहलेकी सूचना अनुसार विशेषाङ्कके रूपमें ही निकाली जारही है। इसका सारा श्रेय उक्त लालाजी तथा गोयलीयजीको प्राप्त है—खासकर अनेकान्तके पुनः प्रकाशनका सेहरा तो लालाजीके सरपर ही बँधना चाहिये, जिन्होंने उस अर्गलाको हटाकर मुझे इस पत्रकी गति देनेके लिये प्रोत्साहित किया, जो अबतक इसके मार्गमें बाधक बनी हुई थी।

इसप्रकार जब अनेकान्तके पुनः प्रकाशनका सेहरा ला० तनसुखरायजीके सिरपर बँधना था, तब इससे पहले उसका प्रकाशन कैसे हो सकता था? ऐसा विचारकर हमें संतोष धारण करना चाहिये और वर्तमानके साथ बर्तते हुए लेखकों पाठकों तथा दूसरे सहयोगियों को पत्रके साथ सहयोग-विषयमें अपना-अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिये तथा उसके पालनमें दृढ़संकल्प होकर मेरा उत्साह बढ़ाना चाहिये।

यह ठीक है कि आठ वर्षके भीतर मेरा अनुभव कुछ बढ़ा ज़रूर है और इससे मैं पाठकोंको पहले से भी कहीं अधिक अच्छी २ बातें दे सकूंगा, परन्तु साथही यहभी सत्य है कि मेरी शारीरिक शक्ति पहलेसे अधिक जीर्ण होगई है, और इसलिये मुझे सहयोगकी अब अधिक आवश्यक्ता है। सुलेखकों और सच्चे सहायकोंका

यथेष्ट सहयोग मुझे मिलना चाहिये और उन्हें 'अनेकान्त'को एक आदर्श पत्र बनानेका ध्येय अपने सामने रखना चाहिये। एक अच्छे योग्य क्लर्ककी भी मुझे कितनेही दिनसे जरूरत है, यदि उसकी सम्प्राप्ति होजाय तो मेरी कितनी ही शक्तियों को संरक्षण मिले और फिर बहुतसा कार्य सहज हीमे निकाला जा सकता है। मेरे सामने जैनलक्षणावली, धवलादिश्रुतपरिचय और ऐतिहासिक जैनव्यक्तिकोष—जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथोंके निर्माणका भी ढेरकाढेर काम सामने पड़ा हुआ है, समाज मेरी शक्तिको जितना ही सुरक्षित रक्खेगा—उसका अनावश्क व्यय नहीं होने देगा—उतना ही वह मुझसे अधिक सेवाकार्य ले सकेगा। मेरा तो अब सर्वस्व ही समाजके लिये अर्पण है।

यहाँपर किसीको यह न समझलेना चाहिये कि जब ला० तनसुखरायजी ने सारा आर्थिक भार अपने ऊपर ले लिया है तब चिन्ताकी कौन बात है! अर्थाधारपर तो अच्छेसे अच्छे योग्य क्लर्क की योजनाकी जासकती है और चाहे जैसे सुलेखकोसे लेख प्राप्त किये जासकते है। परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है। ला० तनसुखरायजी की शक्ति परिमित है और वे अपनी उस शक्तिके अनुसार ही आर्थिक सहयोग प्रदान कर सकते है; परन्तु समाजकी शक्ति अपरिमित है और 'अनेकान्त' को जिस रूपमें ऊँचा उठाने तथा व्यापक-रूप देनेका विचार है उसके लिये अपरिमित शक्ति ही अधिक अपेक्षित है। अतः समाजको लालाजीके आर्थिक आश्वासनके कारण अपने कर्तव्यसे विमुख न होना चाहिये, प्रत्युत, अपने सहयोग-द्वारा लालाजी को उनके कर्तव्यपालनमे बराबर प्रोत्साहित करते रहना चाहिये।

अन्तमे मैं अपने पाठकोंसे इतना और भी निवेदन करदेना चाहता हूँ कि इस पत्रकी नीति बदस्तूर अपने नामानुकूल वही 'अनेकान्त नीति' है जिसे 'जैनी नीति' भी कहते हैं, जिसका उल्लेख प्रथम वर्षकी पहली किरणके पृष्ठ ५६, ५७ पर किया गया था और जो स्वरूपसे ही सौम्य, उदार, शान्तिप्रिय, विरोधका मथन करने वाली, लोक-व्यवहारको सम्यक् वर्तावने वाली, वस्तुतत्त्वकी प्रकाशक, लोकहितकी साधक, एवं सिद्धिकी दाता है, और इसलिये जिसमे सर्वथा एकान्तता, निरपेक्ष-नय वादता, असत्यता, अनुदारता अथवा किसी सम्प्रदाय-विशेषके अनुचित पक्षपातके लिये कोई स्थान नहीं है। इस नीतिका अनुसरण करके लोकहितकी दृष्टिसे लिखे गये प्रायः उन सभी लेखोंको इस पत्रमे स्थान दिया जासकेगा, जो युक्तिपुरस्सर हों, शिष्ट तथा सौम्य भाषामे लिखे गये हों, व्यक्तिगत आक्षेपोंसे दूर हों और जिनका लक्ष्य किसी धर्म विशेषकी तौहीन करना न हो।

## २ लुप्तप्राय जैन-ग्रंथोंकी खोज

'अनेकान्त' के प्रथम वर्षकी पहली किरणमें लुप्तप्राय जैनग्रन्थोंकी खोजके लिये एक विज्ञप्ति (नं० ३) निकाली गई थी, जिसमें २७ ऐसे ग्रन्थोंके नामादि दिये गये थे और उनकी खोजकी प्रेरणा की गई थी। बादको उन ग्रन्थोंकी खोजके लिये वृहत्पारितोषिककी योजना करके एक दूसरी विज्ञप्ति (नं० ४) चौथी किरणमें प्रकट की गई थी और उसमे उन ग्रन्थोके उल्लेखवाक्यादि-विषयका कुछ विशेष परिचय भी दिया गया था। यद्यपि समाजने उन ग्रन्थोंकी खोजके लिये कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, फिर भी यह खुशीकी बात है कि उस आन्दोलनके फलस्वरूप तीन ग्रन्थोंका पता चलगया है, जिसमें एक तो है न्यायविनिश्चय मूल, दूसरा प्रमाणसंग्रह, स्वोपज्ञ भाष्यसहित (ये दोनों ग्रन्थ अककलंकदेवके है) और तीसरा वराङ्गचरित। वराङ्गचरितका पता प्रोफेसर ए० एन० उपाध्याय-

जीने कोल्हापुरके लक्ष्मीसेन-मठसे लगाया है, जहाँ वह ताड़पत्रों पर लिखा हुआ है। साथ ही, यह भी खोज की है कि वह वास्तवमें रविषेणाचार्यका बनाया हुआ नहीं है—जिनसेनकृत हरिवंश-पुराणके उल्लेख परसे विद्वानोंको उसे रविषेणाचार्यका समझनेमे भूल हुई है—किन्तु जटाचार्य अथवा जटासिंहनन्दि आचार्यका बनाया हुआ है, जिन्हें धवलकविने अपने हरिवंशपुराणमें 'जटिल-मुनि' लिखा है। यह ग्रन्थ प्रोफेसरसाहबके उद्योगसे-उन्हींके द्वारा सम्पादित होकर—माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामे छप भी गया है और अब जल्दी ही प्रकाशित होने वाला है।

स्वोपज्ञ भाष्यसहित प्रमाणसंग्रह ग्रन्थ पाटन (गुजरात) के श्वेताम्बर भण्डारसे मिला है और उसकी सम्प्राप्तिका मुख्यश्रेय मुनि पुण्यविजय तथा पं० सुखलालजी को है। यह ग्रन्थ सिंघी जैन ग्रन्थमालामे छप गया है और जल्दी ही प्रकट होने वाला है।

न्यायविनिश्चय मूलकी टीकापरसे उद्धृत करनेका सबसे पहला प्रयत्न शोलापुरके पं० जिनदासपार्श्वनाथजी फडकुलेने किया। उन्होंने उसकी वह कापी मेरे पास भेजी। जाँचनेपर मुझे वह बहुतकुछ त्रुटिपूर्ण जान पड़ी। उसमे मूलके कितने ही श्लोकों तथा श्लोकार्धोंको छोड़ दिया था और कितने ही ऐसे श्लोकों तथा श्लोकार्धोंको मूल में शामिल कर लिया था, जो मूलके न होकर टीकासे सम्बन्ध रखते थे—और भी कितनी ही अशुद्धियाँ थीं। मैंने उन त्रुटियोंकी एक बृहत सूची तय्यारकी और उसे पं० जिनदासजीके पास फिरसे जाँचने आदिके लिये भेजा; परन्तु उन्होंने जाँचनेका वह परिश्रम करना स्वीकार नहीं किया और इसतरह अपने कर्तव्य पालनमें लापर्वाहीसे काम लिया। इसके बाद मैंने उस त्रुटिसूचीको न्यायाचार्य पं० मणिचन्द्रजीको दिखलाया और कई बार सहारनपुर जाकर आराकी टीका-प्रतिपरसे जाँच कराई। जाँचसे न्यायाचार्यजीने उस त्रुटि-सूचीको ठीक पाया और उसपर यह नोट दिया:—

"श्रीपंडित जुगलकिशोरजी साहिबने भारी परिश्रम करके इस 'न्यायविनिश्चय' के उद्धारका सशोधन किया है। यदि इतने परिश्रमके साथ यह त्रुटि-सूची तय्यार न कीजाती तो उद्धृत प्रति बहुत कुछ अशुद्ध और अधूरी ही नहीं किन्तु अतिरिक्त और असम्बद्ध भी रहती। त्रुटि-सूची स्वबुद्धानुसार ठीक पाई गयी।"

(ता० १०-११-१९३१)

इसके बाद मैंने मूलग्रंथकी एक अच्छी साफ कापी अपने हाथसे लिखी और विचार था कि उसे फुटनोटोसे अलंकृत करके छपवाऊँगा। परन्तु पं० सुखलालजीने उसे जल्दी ही प्रमाणसंग्रहके साथ निकालना चाहा और मेरी वह कापी मुझसे मंगाली। चुनाचे यह ग्रंथ भी अब प्रमाणसंग्रहके साथ सिंघीजैनग्रंथमालामे छप गया है और भूमिकादिसे सुसज्जित होकर प्रगट होने वाला है।

मेरे उठाए हुए इस आन्दोलनमे जिन सज्जनोंने भाग लिया है और इन तीन बहुमूल्य ग्रंथोंके उद्धारकार्य में परिश्रम किया है उन सबका मैं हृदयसे आभारी हूँ। आशा है दूसरे ग्रंथोकी खोजका भी प्रयत्न किया जायगा। अभी तो और भी कितने ही ग्रंथ लुप्त, हैं कुछका परिचय इस किरण में अन्यत्र दिया है और शेषका अगली किरणमें दिया जायगा।

:——:0:——:
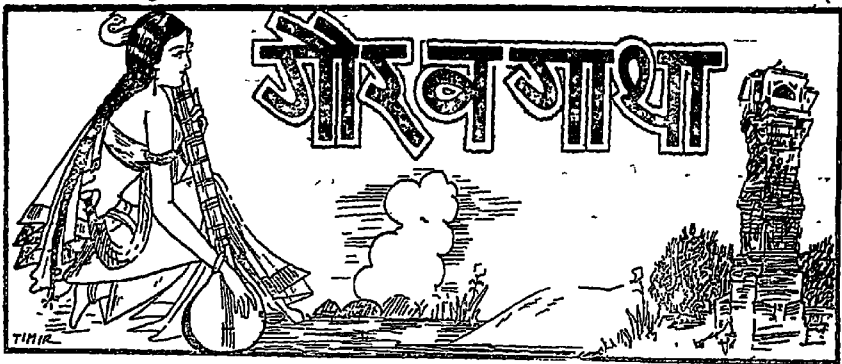
# चाणक्य और उसका धर्म

[ लेखक—मुनि श्रीन्यायविजयजी ]

मौर्यसाम्राज्यके संस्थापक, उद्धारक तथा भारतीय साम्राज्यको विस्तृत एवं व्यापक रूप देनेवाले मन्त्रीश्वर चाणक्यके नामसे शायदही कोई भारतीय विद्वान अपरिचित होगा। चाणक्य प्रखर विद्वान, महामुत्सद्दी, राजकुशल और अद्वितीय सेनाधिपतिथे। मौर्यसाम्राज्यकी स्थापनाके बाद, बड़े बड़े राजा-महाराजाओंको युद्ध में पछाड़कर, मौर्यसम्राट्के आधीन बनानेकी कुशलता आपमें ही थी। उस समयके विदेशी आक्रमणकार सिकन्दर, सेल्युकस, युडीमोर आदि शत्रुओंके हमलोंसे मौर्यसाम्राज्य और समस्त भारतकी रक्षाका मुख्य श्रेय आपको तथा आपके सैनिकोंको प्राप्त था। नन्दवंशके राजाओंके अत्याचार और धनपिपासा से प्रजाकी रक्षा तथा उस अत्याचारी नृपवंश का नाश करनेका श्रेयभी आप को ही था *।

> इस लेखके लेखक मुनि श्री न्यायविजयजी श्वेताम्बर जैनसमाजके एक प्रसिद्ध लेखक हैं। आप बहुधा गुजराती भाषा में और गुजराती पत्रों में लिखा करते हैं। शोध-खोज से आपको अच्छा प्रेम है और आपकी रुचि ऐतिहासिक अनुसन्धान की ओर विशेष रहती है। यह लेख आपकी उसी रुचिका एक नमूना है। इसमें चाणक्य के धर्म-विषयकी एक नई बात ऐतिहासिक विद्वानोंके सामने विचारके लिये प्रस्तुत कीगई है और उसके लिये कितनी ही सामग्री का संकलन किया गया है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के बहुत ही कुशाग्रबुद्धि चाणक्य जैसे प्रधान मन्त्री के धर्म तथा अन्तिम जीवन के विषय में वर्त्तमानके ऐतिहासिक विद्वानों ने अब तक कोई ख़ास प्रकाश नहीं डाला, यह निःसन्देह ही आश्चर्य का विषय है। आशा है अब उनका मौन भंग होगा और वे गम्भीर गवेषणा-द्वारा सत्य का पता लगा कर उसके प्रकट करने मे संकोच नहीं करेंगे। —सम्पादक।

* मंत्रीश्वर चाणक्यने मौर्य-साम्राज्यकी स्थापनामें कितना महान् कार्य कियाथा, इस सम्बन्धमें 'मौर्य-साम्राज्यके इतिहास'-नामक अपनी पुस्तक (पृ० ८१) में गुरुकुलकाँगड़ी के इतिहासके प्रोफेसर श्री० सत्यकेतु विद्यालंकारजी लिखते हैं —"अब चन्द्रगुप्तका समय आता है, इस वीरने आकर सारे भारतमें एक साम्राज्यकी स्थापनाकी। पहले सिकन्दर द्वारा अधीन किए गए प्रदेशोंको स्वाधीन किया। फिर मगधकेविस्तृतराज्यको अपने आधीन करके सारे भारतको राजनीतिकदृष्टि से भी एक किया। चन्द्रगुप्तने सब विविध राष्ट्रोंको नष्टकर एक साम्राज्य स्थापित किया। चन्द्रगुप्त मौर्य्यही भारतका पहला ऐतिहासिक सम्राट् है। इस बड़े भारी काममें उसकी सहायता करनेवाला आचार्य चाणक्यथा। वास्तवमें सब कुछ करनेवाला चाणक्यही था"।

अब यहाँ विचारणीय विषय यह है कि इतनी सामर्थ्य रखनेवाले महामन्त्रीश्वर किस धर्मके उपासक एव अनुयायी थे ? इनके जीवनके विषय में अनेक भारतीय और पाश्चात्य विद्वानोंने बहुत कुछ लिखाहै—जैन, बौद्ध और वैदिकधर्मके अनुयायियोंनेभी लिखा है। किन्तु एक को छोड़ कर अन्य सब धर्मावलम्बियोंने चाणक्यके धर्मके विषयमे मौनही धारण किया है। हाँ, सम्राट् चन्द्रगुप्त जैनथे, इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला जाचुका है और अनेक विद्वानोंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार भी किया है कि मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त जैन-धर्मानुयायी थे। लेकिन सम्राट् चन्द्रगुप्तको जैनधर्म के उपासक बनानेवाले कौन थे, इसके विपयमे जैन-ग्रंथोंके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन प्राय: सभी ग्रन्थकारोंने मौनका ही अवलम्बन लिया है। जैनग्रन्थोंमें मन्त्रीश्वर चाणक्यके धर्मका उल्लेख ही नहीं किया गया, अपितु उनके सम्पूर्ण जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। आवश्यक-निर्युक्ति और पयन्नासग्रह जैसे प्राचीन ग्रन्थो तक मे मत्रीश्वर चाणक्य के जैन होनेका प्रमाण मिलताहै।

प्रथमही अजैन साहित्यकारोंने चाणक्यके विषयमें जो कुछ लिखाहै उसका संक्षेपमे परि-चय देकर, मै जैनसाहित्यमें आयाहुआ मत्रीश्वर का जीवन-चरित्र उद्धृत करूँगा। पुराणोंमे प्राय: इतनाही मिलताहै कि 'नवनन्दोंका चाणक्य ब्राह्मण नाश करेगा और वही मौर्यचन्द्रगुप्तको राज्य देगा"।

विष्णुपुराण में लिखा है कि "उसके अनन्तर चाणक्य ब्राह्मण इन नवनन्दोंका नाश करेगा। नन्दोंके नष्ट होजानेपर मौर्य्यलोग पृथ्वी पर शासन करेंगे। कौटिल्यही उत्पन्न चन्द्रगुप्तको राज्यगद्दी पर बिठावेगा"।

मुद्रा राक्षस नाटकके टीकाकार ढूंढीराज चाणक्यका परिचय देते हुए लिखते हैं "××× इस ब्राह्मणका नाम विष्णुगुप्तथा। यह दण्ड-नीतिका बड़ा पंडित और सब विद्याओंमे पारंगत था। नीतिशास्त्रको तो यह आचार्य ही था।"

कथासरित्सागरमे चाणक्यके विषयमे लिखा है कि ××× "चाणक्यने निमन्त्रण स्वीकार किया और मुख्य होता बनकर श्राद्धमे बैठ गया। एक और ब्राह्मण सुबधु नामक था। वह चाहताथा कि मैं श्राद्धमे मुख्य होता बनूँ। शकटार ने जाकर मामला नन्द के सामने पेश किया। नन्दने कहा सुबन्धु मुख्य होता बने। दूसरा योग्य नहीं है। भयसे काँपता हुआ शकटार चाणक्य के पास गया। सब बात कहसुनाई। यह सुननाथा कि चाणक्य क्रोधसे जल उठा और शिखा खोलकर प्रतिज्ञा की—अब इस नन्द का सात दिनके अन्दरही नाश करके छोडूँगा और तभी मेरी यह खुली शिखा बँधेगी।" ( मौर्य्य सा० इ० पृ० ९६ )

प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ महावश मे लिखा है कि—"चणक्क ( चाणक्य ) नामक ब्राह्मणने इस धन-नन्दका प्रचण्ड क्रोधावेशसे विनाश किया और मोरियों के वशागत चन्दगुत्त ( चन्द्रगुप्त ) को सकल जम्बुद्वीपका राजा बनाया"। और इस

ग्रन्थके टीकाकारने चाणक्य परिचय इस प्रकार दिया है—"यह उचित है कि इस स्थान पर हम इन दो व्यक्तियो के विषयोंमे लिखे। यदि मुझसे पूछा जाय कि यह चणक कहाँ रहताथा और यह किसका पुत्रथा ? तो मैं उत्तर दूँगा कि वह तक्षशिलाके ही निवासी एक ब्राह्मणका पुत्रथा। वह तीन वेदोंका ज्ञाता, शास्त्रों मे पारंगत, मत्र विद्या मे निपुण और नीति शास्त्रका आचार्यथा"।

सुज्ञ वाचक ! इन प्रमाणों से समझ गए होगे कि चाणक्य जाति का ब्राह्मण थो, वेदशास्त्र, नीति-शास्त्र और राज्य-शास्त्र का महान् आचार्य था और सम्राट् चन्द्रगुप्त बौद्धग्रन्थ की मान्यतानुसार सारे जम्बुद्वीपका राजा बना, यह भी उसी चाणक्य का प्रताप था।

अब जैनग्रन्थकारोंने मन्त्रीश्वर चाणक्यको जो जैन मानाहै उसके कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं:—

(१) आवश्यक सूत्रकी निर्युक्तिमे चाणक्य की परिणामिकी बुद्धिके विषयमे दृष्टान्तरूप नाम आताहै। यथा—

"खमए १० अमच्चपुत्ते ११ चाणक्के १२ चेव थूलभद्देच"

आवश्यक० भा ३ पृ० ५२७

(२) आवश्यक सूत्रकी चूर्णिमे उक्त गाथाका खुलासा करतेहुए लिखाहै:—

"चाणकेति, गोल्लविसए, चणयग्गामो, तत्थचणि तो माहणो, सो अवगयसावगो, तस्य घरे साहूठिया, पुत्तो से जातो सह दाढाहिं, साहूण पाएसु पाडितो, कहियं च, साहूहिं भणियं—रायाभविस्सह, ततो मादुग्गंति जाहितीति दंता घंसिया पुणोवि आयरियाणा कहियं, भणांति कज्जउ एत्ताहे विंवंतरियो राया भविस्सह अम्मुक बालभावेण चोद्दसवि, विज्जाठाणाणि आगमियाणि सोत्थ सावगो संतुट्ठो"

भावर्थ—गोल्ल देशमे चणिक नामका गाँव था। उसमे चणित नामको ब्राह्मण रहताथा। वह श्रावकोंके गुण से सम्पन्नथा। उसके घर पर जैन श्रमण ठहरे हुएथे। उसके घरमे दाढ़ सहित एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उस लड़के को गुरुके चरणोंमें नमस्कार कराया और गुरुजी को कहा कि यह बालक जन्मसे दाढ़ सहित उत्पन्न क्यों हुआहै। साधुओंने प्रत्युत्तर दियाकि यह बालक राजा होगा'। यह सुन कर पिताने सोचा कि राजा बननेसे दुर्गतिमे जायेगा, यह दुर्गतिमें न जाय, ऐसा सोचकर पिताने उस पुत्रके दाढ़ों को घिस डाला और फिर आचार्यसे निवेदन किया। आचार्यने उत्तर दिया कि अब यह बालक राज्यका अधिकारी तो नहीं रहा, लेकिन राज्यका सचालक अवश्य बनेगा। अनुक्रम से बाल्यावस्था व्यतीत होनेके बाद वह १४ विद्या का पारगामी हुआ। और सतुष्ट चित्त वाला श्रावक बना। (आवश्यक सूत्र, मलयागिरि टीका सहित, भाग ३, दे० ला० पु० तरफ से प्रकाशित)

इसी सूत्रमे आगे चाणक्यकी बुद्धिका, नन्दराज्यके नाशका और चन्द्रगुप्तको राजा बनानेका विस्तार से विवेचन किया है। लेकिन

विस्तार के भय से मैं यहाँ उसका उल्लेख नहीं करूँगा। ऐसाही उल्लेख तथा विवेचन नन्दिसूत्र और उसकी टीकामे और उत्तराध्यन सूत्रकी टीकामे भी पाया जाताहै। सुज्ञ वाचक वहाँसे देख सकते हैं।

(३) पयरणासंग्रहके अन्तर्गत 'संथारापयरणा' मे, जो कि जैनधर्मके महान् उपासकोंकी समाधि पूर्वक मृत्युके उल्लेखोको लिये हुए है, तीन गाथाएँ निम्न प्रकारसे पाई जाती हैं, जिनसे मन्त्रीश्वर चाणक्यका परमहितोपासक जैन होना स्पष्ट है—

पाडलिपुत्तंमि पुरे, चाणक्को णाम विस्सुओ आसी।
सव्वारंभणिअत्तो, इंगिठीमरणं अह णिवण्णो ॥७३॥
अणुलोमपूअणाए, अह से सत्तू जओ डहइ देहं।
सो तहवी डज्झमाणो, पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥७४॥
गुट्ठयपाओवगओ, सुबंधुणा गोव्वरे पलिवियम्मि।
डज्झंतो चाणक्को, पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं* ॥७५॥

इनमे बतलाया है कि :—पाटलीपुत्र नगरमे चाणक्य नामका प्रसिद्ध (विश्रुत) विद्वान (मंत्री) हुआ। जिसनेसब सावद्यकर्मका त्याग करके जैनधर्म सम्मत इङ्गिणी मरणका साधन किया। अनुकूल पूजाके पहाने से उसके शत्रु ( सुबन्धु ) ने उसका शरीर जलाया। शरीरके जलते हुएभी चाणक्यने उत्तमार्थको—अपने अभिमत समाधिमरणको—प्राप्त किया। (समभाव होनेसे) गोबाडामें प्रायोपगमन से न्यास (अनशन) लेकर बैठे हुए चाणक्य को सुबन्धुने उपलोंके ढेरमे आग लगाकर जला दिया। जलता हुआ चाणक्य (समभाव होने से) उत्तमार्थको प्राप्त हुआ।

(४) मरणसमाहि ग्रथमे पृ० १२९ पर लिखा है:—

गुव्वर पाओ वगओ सुबुद्धिना णिऽघिणेण चाणक्को।
दड्ढोणय संचलिओ साहुधिई चिंतणिज्जाउ ॥४७८॥

अर्थात्—चाणक्य उपलोंके ढेर पर प्रायोपगमन सन्यास ( अनशन ) लेकर बैठा हुआथा उसे निर्दयी सुबुद्धि ( सुबन्धु ) ने आग लगाकर जला दिया। जलता हुआभी चाणक्य अपने व्रतसे चलायमान न हुआ। उसने समभाव नहीं छोड़ा। ऐसी धीरता जीवन मे उतारनी चाहिये।

(५) तेरहवीं शताब्दी के महाविद्वान और प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीहेमचन्द्राचार्यजी अपने 'परिशिष्टपर्व' के आठवें सर्गमें चाणक्यका परिचय इस प्रकार देते हैं:—

"इधर गोल्लदेश मे एक 'चणक' नामका गाँव था, उस गाँव मे चणी नामका एक ब्राह्मण रहता था और चणेश्वरी नामकी उसकी पत्नी थी, चणी और चणेश्वरी दोनों ही जन्मसे श्रावक (जैनी) थे। एक समय जबकि अतिशय ज्ञानवान् जैन मुनि उनके घर पर आकर ठहरे हुएथे, 'चणेश्वरी' ने एक दाँतों-सहित पुत्रको जन्म दिया। उस बालक को लेकर चणी साधुओंके पास आया और उस बालकसे साधुओ को नमस्कार कराकर उसके दन्त-सहित पैदा होनेका हाल कह सुनाया। ज्ञानी मुनि बोले-भविष्य में यह लड़का राजा होगा। राज्य जनित आरम्भसे मेरा पुत्र

---

* गाथा नं० ७३ की मौजूदगीमें इस गाथा की स्थिति कुछ संदिग्ध जान पड़ती है; क्योंकि इसमें उत्तमार्थ प्राप्तिकी उसी बातको व्यर्थ दोहराया गया है। हो सकता है कि नं० ७४ की गाथा प्रक्षिप्तहो। यह गाथा दिगम्बरीय प्राचीन ग्रन्थ 'भगवती आराधना' में 'गुट्ठय' की जगह 'गोट्ठे' पाठभेदके साथ ज्यों की त्यों पाई जाती है। —सम्पादक

नरक का अतिथि न बने, इस विचारको लेकर चणीने पीडा का खयाल न करते हुए लड़के के दाँतों को रगड़ दिया और यह समाचार भी उसने साधुओंको कह सुनाया। इस पर वे बोले—दाँतो के रगड़ देनेसे अब यह बालक बिम्बान्तरित राजा होगा। अर्थात् दूसरेको राज्यगद्दी पर बैठा कर राज्य-ऋद्धि भोगेगा। चणी ने उस बालकका नाम 'चाणक्य' रक्खा। चाणक्य' भी विद्या समुद्रका पारगामी श्रावक हुआ और वह श्रमणोपासक होनेके कारण बडा सन्तोषी था। एक कुलीन ब्राह्मणकी कन्याके साथ उसका विवाह हुआ था" *।

चाणक्यने नदवंशका नाश क्यों किया? कैसे किया? किन उपायोंसे चन्द्रगुप्तको राजा बनाकर मगधके साम्राज्यको विस्तृत बनाया? और किन-किन तरीक़ोंसे साम्राज्यका शासन-सूत्र संचालित किया? इन सब बातोंका भी अच्छा वर्णन श्री हेमचन्द्राचार्यने अपने उक्त परिशिष्ट पर्व में किया है। उसी समय बारह वर्षका एक बडा भारी अकाल भी पड़ा था। अकालमें प्रजाको ही खानेके लिए अच्छी तरह नहीं मिलता, तब साधुओंकी भी भिक्षामें कठिनताका होना स्वाभाविक है। इस प्रसगका वर्णन करते हुए सूरिजी महाराज लिखते हैं:—

"इधर जब वह बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़ने लगा तब सुस्थित नामके एक आचार्य अपने शिष्य परिवार के साथ चन्द्रगुप्तके नगरमें रहते थे। दुष्कालकी वजह से वहाँ पर जब साधुओंको भिक्षा दुर्लभ होने लगी—निर्वाह न होसका—तब आचार्य महाराजने अपने शिष्य समुदायको वहाँ से सुभिक्ष वाले देशमें भेज दिया और आप वहीं पर रहे। उनमें से दो क्षुल्लक साधु गुरुभक्तिवशात् वापिस लौट आये और गुरु सेवामें रहते रहे। इनको भी जब भिक्षा दुर्लभ हो गई और गुरुभक्ति में बाधा पड़ने लगी, तब ये दिव्यांजनके प्रयोग द्वारा अदृश्य करके सम्राट् चन्द्रगुप्तकी भोजन थालीमें से आहार लेआते थे और गुरु-भक्ति करते थे। इसप्रकार कुछ दिन व्यतीत होगए। एक दिन चाणक्यने चन्द्रगुप्तको दुबला देखकर सोचा कि क्या कारण है जिससे चन्द्रगुप्त दुबला होता जाता है। साथही यह भी सोचा इनकी थाली में से रोज आहारका लोप होजाता है, उसका भी क्या कारण है? अन्तको उन्होने अपनी तरकीब से जान लिया कि यहाँ दो क्षुल्लक जैन साधु आते हैं, और वे थाली में से भोजन ले जाते हैं। उस समय जैनधर्मके प्रति भक्ति होनेके कारण चाणक्य उनका बचाव करते हुए चन्द्रगुप्त से कहते हैं:—

"ओहो, ये तो आप के पितृगण हैं। आपके ऊपर इनकी बड़ी कृपा है, जो ये ऋषिवेश धारण कर आपके पास आते हैं, ऐसा कह चाणक्यने उन साधुओ को वहाँ से विदा किया।"

"बाद में चाणक्य आचार्य महाराजके पास आकर उन क्षुल्लक साधुओंके अन्यायको प्रगट करता हुआ आचार्यको उपालम्भ देने लगा। सब वार्ता सुनकर आचार्य महाराज ने प्रत्युत्तर दिया:—

* मूल श्लोक इस लेखके परिशिष्टमें दे दिये हैं। वहाँ देखो श्लोक नं॰ १९४ से २०१ तक।

"इन बेचारे क्षुल्लकोंका क्या दोष है ? जब तुम्हारे जैसे श्री सघके अग्रणी भी स्वोदर-पोषक हो गए। आचार्य महाराजके इन वचनोंको सुनकर चाणक्यने अत्यन्त नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर सविनय निवेदन किया "भगवान्! आपने मुझ प्रमादीको भले प्रकार शिक्षादी है। आज से जिस किसी भी साधुको अशन-पानादिकी आवश्यकता होवे मेरे घर आएँ और आहार ग्रहण करें"। इस प्रकार का अभिग्रह करके तथा आचार्य महाराज को भक्ति पूर्वक नमस्कार करके 'चाणक्य' अपने गृह-वास में चले गए* ।"

इस प्रसंग परसे पाठक भली भाँति समझ जायँगे कि चाणक्यकी जैनधर्मके प्रति कितनी भक्ति प्रेम, एवं श्रद्धाथी। चाणक्य ने राजा को भी जैनधर्मका उपासक एव श्रद्धालु जैन-श्रावक बनाने में भरसक प्रयत्न कियाथा। उसी समयके विद्यमान अनेक दर्शनोंके आचार्यों तथा साधुओं से चन्द्रगुप्तको परिचय कराया था। चन्द्रगुप्तने अन्य धर्मावलंबी साधुओंको अपने दरबारमे निमन्त्रण भी दिया था। चाणक्यने उन साधुओं-की असच्चरित्रता दिखाकर राजाको कहा, अब आप जैन श्रमण निर्ग्रन्थोंके दर्शन करें। चाणक्यके आग्रह से राजाने जैन मुनियोंको निमन्त्रण दिया। जैन साधु अपने आचारके मुताबिक इर्या समिति को सशोधन करते हुए शान्तमुद्रासे आकर अपने आसनों पर बैठ गये। राजा और मन्त्रीने आकर देखा कि मुनिमहाराज अपने आसनों पर शांति से बैठे हुए हैं। उसी समय साधुओंकी प्रशंसा करते हुए कहा कि:—"जैन महात्मा बड़े जितेंद्रिय और अपने समयको व्यर्थ नष्ट नहीं करने वाले होते हैं" जैन साधुओंने राजाको प्रतिबोध देकर,—धर्मतत्व सुनाकर और खासकर साधुधर्म पर प्रकाश डालते हुए ईर्व्यासमिति शोधते हुए अपने स्थान पर चले आए। तब चन्द्रगुप्तको चाणक्यने कहा "देख बेटा! धर्म-गुरु ऐसे होते हैं। इन महात्माओका आना और जाना किस प्रकारका होता है ? और जब तक अपन लोग वहां पर नहीं आए तब तक किस प्रकार उन्होंने अपने समयको निकाला ? ये महात्मा अपने आसनको छोड़कर कही भी इधर उधर नहीं भटकते। क्योंकि ये महात्मा यहाँ पर इधर उधर फिरते तो, अवश्य-मेव इस चिकनी और कोमल मिट्टीमे इनकी पद-पंक्ति † भी प्रतिबिम्बित होजाती। इसप्रकार जैनमहात्माओंकी सुशीलता और जितेन्द्रियता देखकर चन्द्रगुप्तको जैन साधुओं पर श्रद्धा होगई और दूसरे पाखण्डी साधुओसे विरक्ति होगई जैसे योगियोंको विषयोंसे होती है* ।"

आचार्य श्री हेमचन्द्रजीने मन्त्रीश्वर चाणक्य को जैनधर्मका परम उपासक लिखा है। और

* दुष्काल और साधुओंके इस वर्णनके मूल श्लोक लेखके 'परिशिष्टमें दिये हैं, वहाँ देखो, श्लोक नं० ३७७ से ४१३ तक।

† अजैन साधुओंकी परीक्षाभी उसी तरहसे कीगई थी। अजैन साधु जब तक राजा नहीं आए थे तब तक इधर उधर घूमते रहे थे और ठेठ अन्तःपुर तक देखने लगे थे। जब कि जैन साधुओं की परीक्षाके लिए सूक्ष्म चिकनी मिट्टी बिछाई गई थी लेकिन जैन साधु तो इधर उधर भटके बिना अपने स्थान पर बैठे रहे और जब राजा और मंत्री आए तब धर्म-तत्व सुनाकर अपने स्थान पर गए।

* मूल श्लोकोंके लिये देखो, लेखका 'परिशिष्ट' श्लोक ४३० से ४३५ तक।

पाठकोंने ऊपर पढ़भी लियाहै कि चाणक्यने चन्द्रगुप्तको भी जैन बनाया था। आगे चन्द्रगुप्तके पुत्र बिन्दुसारको भी चाणक्यने उनके पिताके समान जैनधर्मका उपासक बनायाथा। मन्त्रीश्वर चाणक्य जैन था, किन्तु सामान्य जैन नहीं, दृढ़ताके साथ पक्का जैनधर्मका उपासक था—परम आर्हतोपासक एवं परम श्रमणोपासक था। इसका प्रबल प्रमाण उनकी मृत्युकी घटनासे प्रत्यक्ष मिलता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्तकी मृत्युके बाद उनका पुत्र बिन्दुसार भारतका सम्राट् बना। चाणक्य उनका भी मत्री हुआ, और जैसे सम्राट् चन्द्रगुप्त चाणक्य की बुद्धि अनुसार राज्य-कार्य संचालन करतेथे और धर्मका पालन करतेथे वैसे ही बिन्दुसार भी चाणक्यकी आज्ञाका पालन करता था। किन्तु नीति शास्त्रका यह वाक्य ठीक है। "राजा मित्रं न कस्यचित्" कुछ समय बाद ऐसा बना कि सुबन्धु नामका एक दूसरा मंत्री, जिसे चाणक्यने ही इस महत्वपूर्ण स्थानपर बैठायाथा, चाणक्यको हटानेके लिए षड्यन्त्र रचने लगा। भोला राजा इसमें फँस गया और अपने पिता तुल्य मन्त्रीश्वर चाणक्य के प्रति उसको वहम होगया, और उसने उनकी अवज्ञा का भाव प्रदर्शित किया। महानीति विशारद चाणक्यको सारा मामला समझते देर न लगी। आखिरमे उन्होंने सोचाकि—"मैंने ही तो इस दुष्टको इस इस पद पर आरूढ़ किया और उसने मेरे उस उपकारका यह बदला दिया? खैर, इसके कुलके उचित यही बदला युक्त था। अब थोड़े दिनकी जिन्दगी रही है, मुझे राज्य-चिन्तासे भी क्या काम? अब तो समाधि मरण से अपना परलोक सुधारूँगा"।

इसके बाद चाणक्य मंत्रीश्वरने मृत्युकी तैयारीकी। और जैनधर्मके नियमानुसार सब जीवोंके साथमे क्षमायाचना करके, खानपीनादि सब छोड़ करके, साधु जैसी त्याग दशा स्वीकार करके तथा जीवन से भी निस्पृह बनकर अनशन स्वीकार किया।

परिशिष्ठ पर्वमे आचार्य श्री हेमचन्द्रजी इस विषयमे लिखते हैं कि—"चाणक्यने दीन-दुःखी अर्थी जनोंको दान देना शुरू कर दिया। जितना नकद माल था उस सबको दान करके चाणक्यने नगरके बाहर समीपमें ही सूखे आरनोंके ढेर पर बैठकर कर्मनिर्जराके लिये चतुर्विधि आहारका त्याग कर अनशन धारण कर लिया। बिन्दुसार को जब अपनी धायमातासे अपनी माताकी मृत्यु का यथार्थ पता मिला तब वह पश्चाताप करता हुआ वहाँ आया जहाँ पर 'चाणक्य' ध्यानारूढ़ था। उसने चाणक्यसे माफी मांगते हुए कहा :—"मेरी भूल पर आप कुछ ख्याल न करके मेरे राज्यकी सारसंभाल पूर्ववत् ही करो। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूंगा"। चाणक्य बोला—"राजन्! इस वक्त तो मैं अपने शरीर पर भी निस्पृह हूँ अब मुझे आपसे क्या और आपके राज्यसे क्या"? जैसे समुद्र अपनी मर्यादामें दृढ़ रहता है वैसेही चाणक्यको उसकी प्रतिज्ञामे निश्चल देखकर 'बिन्दुसार' निराश होकर अपने घर चला आया"।

मंत्रीश्वर चाणक्य अनशन लेकर ध्यानमें बैठे हुए हैं, जीवनके अन्तिम क्षण व्यतीत हो रहे हैं। उस समय भी दुष्ट सुबन्धु अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता है। उसने सोचा कि राजा मन्त्रीश्वर चाणक्यके पास होकर आए हैं, और मेरे सारे षड्यन्त्रका भडाफोड़ होचुका है, अब राजा मुझे दंड देंगे। अतः वह राजाके पास आया और अपने षड्यन्त्रकी क्षमा-याचना करने लगा तथा कहने लगा कि मै अब उन मंत्रीजीसे भी जाकर क्षमा याचना करता हूँ। इसके बाद वह चाणक्य के पास जाकर मायाचार पूर्वक अपने अपराधों की क्षमा-याचना करने लगा। ऐसा करते हुए उसे विचार आया कि कहीं यह नगरको वापिस न चला आवे, और इस कुविकल्पमे पड़कर उसने उनकी विधिपूर्वक पूजाके लिये राजासे अनुमति मांगी जो मिलगई। इसके बाद श्री हेमचन्द्राचार्य सुबन्धुकी दुष्टताका निम्न प्रकारसे वर्णन करते हैं—राजाकी आज्ञा पाकर सुबन्धुने चाणक्यकी पूजाका बड़ा ही सुन्दर मालूम देने वाला ढोंग रचा और उस तरह पूजोपचार करते हुए उसने चुपकेसे सूखे धूपाग्निकी एक चिंगारी उस आरनों ( उपलो ) के ढेर पर गिरादी, जिसपर चाणक्य ध्यानारूढ़ थे। इससे आरने ( उपलों ) का वह ढेर अनुकूल पवन को पाकर एकदम दहक उठा, और उसमें चाणक्य काठकी तरह जलने लगे!! चाणक्य तो पहलेसे ही चतुर्विध आहारका त्यागकर अनशन करके बैठे थे, अतएव उन्होने निष्प्रकंप होकर उस दहकती हुई ज्वालामें अपने प्राणोको समर्पण करके देव-गतिको प्राप्त किया * "।

यह प्रसंग बहुतही करुण है। जिसका क्रोध साम्राज्यको नष्ट करनेमें भी नहीं हिचकताथा। वही पुरुष जैनधर्म के प्रतापसे कितना शान्त, कितना गम्भीर, कितना सहनशील और कितना क्षमावान एवं उदार बना, इसका यह एक आदर्श नमूना है। जिसने शत्रु-सैन्यके सामने युद्धस्थल पर भयङ्कर रण-गर्जना की थी और जिसकी गर्जनाको सुन कर विदेशी आक्रमणकारियोंके सर चक्कर खाने लगते थे, वही पुरुष मृत्युके समय कितना शान्त एव गम्भीर होता है, शत्रुओंके प्रति कितनी उदारता तथा सहानुभूतिका परिचय देता है और कितने आनन्दसे अपने आपको कालके गालमें डाल देता है! यह दृश्य सचमुच ही अनुपम और अभूतपूर्व है। "मृत्युरपि महोत्सवायते" इसीका नाम है। जैनग्रन्थोंके अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थकारने मौर्यसाम्राज्यके महान् निर्माता मन्त्रीश्वर चाणक्यकी मृत्युके समयका किञ्चितभी ठीक वृत्तान्त नहीं दिया है। मालूम होता है इसमें जरूर कुछ न कुछ रहस्य छुपा हुआ है।

अनशन स्वीकार करके स्वेच्छासे और सहर्ष मृत्यु प्राप्त करनेका जैनधर्म बहुत महत्व मानता है। मन्त्रीश्वर चाणक्य सामान्य जैन नही, अपितु एक महान् आर्हतोपासक एव श्रमणोपासक थे। मृत्यु के समय वीतरागदेवको ध्यान करना, अपने जीवनके किए हुए पापोंकी आलोचना करना, शत्रुओंके प्रति भी समानभाव तथा क्षमाभाव रखना, मन-वचन-कायसे शुद्ध बनकर संसारसे

* चाणक्यके अनशनादि मृत्यु पर्यन्त वर्णनके मूल श्लोकोंके लिये देखो, लेखका 'परिशिष्ट' श्लोक नं० ४५७ से ४६९।

निस्पृहता प्राप्त करना सांसारिक सभी कार्योंका त्याग करना एवं अशनपानादि त्याग करके सम-भाव पूर्वक मृत्युकी गोदमें सोना इसीका नाम है, अनशन पूर्वक समाधिमरण इसमें क्रोधका, दीनता का, अनाथताका भाव नही होता। ऐसा महान् वीर मरण सम्प्राप्त करके मंत्रीश्वरने सद्गतिका मार्ग पकड़ा है। जैन-दर्शनने इसका नाम "पंडित मरण" रक्खा है। धन्य है ऐसे वीर पुरुषोंको जिन्होंने अपना जीवन भारतमाताकी सेवामें लगाया, पापियोंका नाशकर धर्मका राज्य चलाया और अन्तमें श्री जिनेन्द्रदेवकी शरण स्वीकार कर आत्म-कल्याण किया।

दिगम्बर ग्रन्थकारोंने भी मन्त्रीश्वर चाणक्य के विषयमें खूब ही लिखा है। भगवती आराधना पुण्याश्रव कथाकोष और आराधना कथाकोषमें इनका उल्लेख मिलता है।

(६) भगवती आराधनामें, जोकि बहुत प्राचीन ग्रन्थ है, एक गाथा निम्नप्रकारसे पाई जाती है—

"गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोब्बरे पलियदम्मि। डज्झन्तो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठम्॥१५५६॥

इसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि—गोवाडाके स्थान पर चाणक्य प्रायोपगमन संन्यास लिए हुए बैठा था, सुबन्धुने उपलोंके ढेरमें आग लगाकर उसे जलाया और वह जलता हुआ (समभावके कारण) उत्तमार्थको अपने अभिमतसमाधिमरणको प्राप्त हुआ। इस कथनके द्वारा सूत्ररूपसे चाणक्यके जैनविधिसे अनशन लेने आदिकी वह सब सूचना कीगई है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

(७) पुण्याश्रव कथाकोषमें (नन्दिमित्रकी कथाके अन्तर्गत) नन्दराज द्वारा चाणक्यके वृत्त-वर्णन करनेके अनन्तर लिखा है:—

"अब चाणक्यको क्रोध आया और वह नगरसे निकलकर बाहर जाने लगा। मार्गमें चाणक्यने चिल्लाकर कहा—"जो कोई मेरे परम शत्रु राजा नन्दका राज्य लेना चाहता हो, वह मेरे पीछे पीछे चला आवे"। चाणक्यके ऐसे वाक्य सुनकर एक चन्द्रगुप्त नामका क्षत्रिय, जोकि अत्यन्त निर्धन था यह विचार कर कि इसमें मेरा क्या बिगड़ता है? चाणक्यके पीछे होलिया। चाणक्य चन्द्रगुप्तको लेकर नन्दके किसी प्रबल शत्रुसे जा मिला और किसी उपायसे नन्दका सकुटुम्ब नाश करके उसने चन्द्रगुप्तको वहाँका राजा बनाया। चन्द्रगुप्तने बहुत कालतक राज्य करके अपने पुत्र बिन्दुसारको राज्य दे, चाणक्य के साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। (पृष्ठ १५७)

(८) आराधना कथाकोषके तृतीय भागमें, जोकि जैनमित्रके १७वें वर्षके उपहाररूपमें प्रकट हुआ था, चाणक्यके पिताका नाम कपिल पुरोहित माताका नाम देविला दिया है और लिखा है कि उस समय पाटलीपुत्रके नन्दराज्यके तीन मन्त्री थे—कावि, सुबन्धु और शकटाल। शेष चाणक्य की जो कथा दी है उसका संक्षिप्तसार इस प्रकार है—

"कावि मन्त्रीने एक समय शत्रु राजाको राजा नन्दके कहनेसे धन देकर वापिस लौटा दिया था। पीछेसे धन कमती होजानेसे राजाने कावि मन्त्रीको उनके कुटुम्ब सहित जेलमें डाल दिया।

काविको इससे बहुत गुस्सा आया। थोड़े समय बाद दूसरा शत्रुराजा युद्धके लिए चढ़ा। इस समय राजाको कावि मन्त्रीकी याद आई। राजाने मंत्री को जेलसे बाहर निकाला और राज्यकी रक्षाके लिए कोई तरकीब निकालनेको कहा। काविने अपने बुद्धिबलसे शत्रु राजाको तो वापिस लौटा दिया, किन्तु प्रतिहिंसाकी भावनासे प्रेरित होकर चाणक्यको राज्यके विरुद्ध उकसाया। चाणक्यने नन्द राजाको मार दिया और खुद राजा बन बैठा बहुत वर्षों तक राज्य चलाकर संसार छोड़कर दिगम्बर धर्मके महिधर आचार्यके पासमें दिगम्बर दीक्षा स्वीकार की। चाणक्य मुनि बड़े भारी विद्वन् और तेजस्वी थे। इसलिये थोड़े ही समय में उन्हें आचार्यपद मिल गया। चाणक्य मुनि ५०० शिष्योंके साथमें भूतल पर विचरने लगे।

नन्दराजा का दूसरा मन्त्री सुबन्धु था। नन्दराजकी मृत्युके बाद सुबन्धु क्रौंचपुरके राजा का मन्त्री बना। चाणक्य मुनि विहार करते करते क्रौंचपुरमें आए। मन्त्री सुबन्धुको चाणक्य मुनि के प्रति द्वेष प्रकट हुआ। नन्द राजाका बदला लेनेके लिये मुनि संघके चारों तरफ घास डलवा कर (?) उनको जिन्दा जलवाने के लिए आग लगादी गई। चौतरफसे आग जलने लगी मुनि संघ ध्यानमें रहा। चाणक्य मुनि भी शुक्ल ध्यान ध्याते-ध्याते कर्मोंको क्षय कर मोक्षमें पहुँचे (?) इस कथनके पिछले दो श्लोक इस प्रकार हैं—

पापी सुबन्धु नामा च मंत्री मिथ्यात्वदूषितः।
समीपे तन्मुनीन्द्राणां कारीषाग्निं कुधीर्ददौ ॥४१॥

तदा ते मुनयो धीरा, शुक्ल ध्यानेन संस्थिताः।
हत्वाकर्माणि निःशेषं, प्राप्ताः सिद्धिं जगद् हिताम् ॥४२॥

( हिन्दी अनुवाद पृ० ४६-५३, मूलकथा पृ० ३१० )

यद्यपि इस कथामें भद्रबाहु और चन्द्रगुप्तका उल्लेख नहीं है। तबभी चाणक्यका चरित्र तो अपने को अच्छी तरहसे मिलता है। दिगम्बर ग्रन्थकारों ने मन्त्रीश्वर चाणक्यको सामान्य श्रावक नहीं, सामान्य साधु नहीं, किन्तु महान् आचार्य मानाहै। इतना ही नहीं किन्तु, इस कलिकालमें—पञ्चम युग में—भी इनको अपने शिष्यों सहित मोक्षमें जाने तकका उल्लेख किया है*। लेकिन अपनेको इसमेसे इतना ही फलितार्थ निकालना है कि मन्त्रीश्वर चाणक्य जैनधर्मी था।

अब जरा इतिहासकी तरफभी नजर डालिये। मन्त्री चाणक्य सम्राट् बिन्दुसारके समयमे भी विद्यमानथे और सम्राट् बिन्दुसारने उनकी ही सहायतासे राज्य विस्तृत कियाथा यह बात वर्तमान समयके इतिहासज्ञोंको भी मान्य है। देखिये, मौर्य्य साम्राज्यके इतिहासमें विद्वान् लेखक लिखते हैं कि "१६ वीं शताब्दिके प्रसिद्ध तिब्बती लेखक तारानाथने लिखा है कि "बिन्दुसारने चाणक्यकी सहायतासे सोलह राज्यो पर विजय प्राप्तकी"। फिर आगे लिखा है कि "यह बात असभव नहीं

* कथाकारका यह उल्लेख निरा भूलभरा जान पड़ता है। दूसरे किसी भी मान्य दिगम्बर ग्रन्थसे इसका समर्थन नहीं होता। ऐसा मालूम होता है कि 'पडिवाणो उत्तमं अट्ठं' जैसे वाक्यमें प्रयुक्त हुए 'उत्तमार्थं' शब्दका अर्थ उसने मोक्ष समझ लिया है; जबकि पुराने अपराजितसूरि जैसे टीकाकार उसका अर्थ 'रत्नत्रय' देते हैं और प्रसगसे भी वह बोधि-समाधिका सूचक जान पड़ता है। —सम्पादक।

है कि चाणक्य सम्राट् बिन्दुसारके समय तक विद्यमानहो और मौर्य्य-साम्राज्यको सुदृढ़ करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा हो। वस्तुतः आचार्य चाणक्य भारतके इतिहासमें ही नहीं, अपितु संसारके इतिहासमें एक अद्वितीय और अपूर्व महापुरुष है। मौर्य्य-साम्राज्यके रूपमें सम्पूर्ण भारतको संगठित करना तथा भारतको इतना शक्तिशाली बनाना आचार्य चाणक्यका ही कार्य है"।

सुज्ञ वाचक! ऊपरके वाक्योंसे समझ गए होंगे कि मन्त्रीश्वर चाणक्यने ही भारतीय महा-साम्राज्यका सर्जन किया था। मन्त्रीश्वर चाणक्य जातिके ब्राह्मण थे लेकिन धर्मसे दृढ़ जैनीथे। मुझे ख्याल है कि पू० पा० आचार्य श्रीविजयेन्द्रसूरि जी महाराजने 'प्राचीन भारतवर्षका सिंहावलोकन' नामक अपनी पुस्तकके पृ० २६ में लिखा है कि "तेओ चाणक्यने पण जैन गणावे छे पठा शास्त्रकारो एम कहे छे के चाणक्य जैन न हता"। अब मुझे विश्वास है कि पू० पा० आचार्य महाराज मेरे दिए हुए उपर्युक्त प्रमाणोंसे अपने विचारोंमे अवश्य परिवर्तन करेंगे। मंत्रीश्वर चाणक्य जैन थे, इसके विषयमे श्वेताम्बर और दिगम्बरके प्राचीन-अर्वाचीन सभी साहित्यका एक मत है।

चाणक्यके कौटिल्य, चाणक्य और विष्णुगुप्त ये तीन नाम तो प्रसिद्ध हैं, किन्तु आचार्य श्री हेमचन्द्रजीने अपने अभिधान चिन्तामणि नामक सुप्रसिद्ध कोश ग्रन्थमे चाणक्यके आठ नाम दिए हैं। यथा—

वात्स्यायनो मल्लिनागः कुटिलश्चणकात्मजः।
द्रामिलः पक्षिल स्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः।

अर्थात्-वात्स्यायन, मल्लिनाग, कुटिल(कौटिल्य), चाणक्य (पालीभाषामें 'चणक' और प्राकृतमे चाणक्क होता है) द्रामिल, पक्षिलस्वामी, विष्णुगुप्त और अगुल, ये चाणक्यके नाम हैं।

यद्यपि अजैन ग्रन्थकारोंने मंत्रीश्वर चाणक्य के विषयमे बहुत कुछ लिखा है, परन्तु इनके धर्मके विषयमें किसीने इशारा तक भी नहीं किया; जब कि *सभी जैन ग्रन्थकारोंने एक मत होकर मुक्तकंठ* से स्वीकार किया है कि मन्त्रीश्वर चाणक्य जैन थे। भारतीय ऐतिहासिक साहित्यमे जैन साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा है। इस तरफ हम उपेक्षा नहीं कर सकते। साहित्य व इतिहासप्रेमी विद्वानो को मेरा सादर निमन्त्रण है कि वे मंत्रीश्वर चाणक्यके धर्मके विषयमें मैंने जो प्रमाण दिए हैं उनको ध्यानसे पढ़े, विचारविनिमय तथा चर्चा करे और सत्य बातको स्वीकार करें। यही मेरी शुभेच्छा है।

# परिशिष्ट

( श्री हेमचन्द्राचार्य-विरचित परिशिष्ट पर्व के ८वें सर्ग के—चाणक्य-विषयक कुछ अंश )

"इतश्च गोल्ल विषये ग्रामे चणकनामनि । ब्राह्मणोऽभूच्चणी नाम तद् भार्या च चणेश्वरी ॥१९४॥
बभूव जन्म प्रभृति श्रावकत्व चणश्चणी । ज्ञानिनो जैन मुनयः पर्यवात्सुश्च तद् गृहे ॥१९५॥
अन्यदा तूद्गतैर्दन्तैश्चणेश्वर्या सुतोऽजनि । जातं च तेभ्यः साधुभ्यस्तं नमोऽकारयच्चणी ॥१९६॥
तं जातदन्तं जातं च मुनिभ्योऽकथयच्चणी । ज्ञानिनो मुनयोऽप्याख्यन्भावी राजैष बालकः ॥१९७॥
राज्यारम्भेण मत्पुत्रो मा भून्नरकभागिति । अघर्षयत्तस्य दन्तान्पीडामगणयंश्चणी ॥१९८॥
स मुनिभ्यस्तदप्याख्यन्मुनयोऽप्येवमूचिरे । भाव्येष बिम्बान्तरितो राजा रदनघर्षणात् ॥१९९॥
चणी चाणक्य इत्याख्यां ददौ तस्याङ्ग जन्मनः । चाणक्योऽपिश्रावकोऽभूत्सर्व विद्याब्धि पारगः २००॥
श्रमणोपासकत्वेन स सन्तोषधनः सदा । कुलीन ब्राह्मणस्यै कामेव कन्यामुपायत ॥२०१॥

× × ×

इतश्चतस्मिन्दुष्काले कराले द्वादशाब्दके । आचार्यः सुस्थितो नाम चन्द्रगुप्त पुरेऽवसत् ॥३७७॥
अन्नदौःस्थ्येन निर्वाहाभावान्नि जगणं स तु । देशान्तराय व्यसृजत्तत्रैवास्थात्स्वयं पुनः ॥३७८॥
व्याघुट्यक्षुल्लकौ द्वौ तु तत्रैवाजग्मतुःपुनः । आचार्यैश्च किमाया ताविति पृष्टा वशंसताम् ॥३७९॥
वियोगं गुरु पादानां न ह्यावां सो ढुमीश्वहे । तद्वः पार्श्वे जीवितं वा मरणं वावयोः शुभम् ॥३८०॥
आचार्यः स्माह न कृतं युवाभ्यां साध्वमुत्रहि । अगाधे क्लेश जलधौ युवां मुग्धौ प्रतिष्यथः ३८१॥
इत्युक्त्वा तावनुज्ञातौ गुरुणा तत्र तस्थतुः । भक्त्या शुश्रूषमाणौ तं तत्पदाम्भोजषट पदौ ३८२॥
ततो दुर्भिक्ष माहात्म्यद्भिक्षयात्यल्प लब्धया । सारयित्वा गुरूणां तौ भुञ्जानावत्यसीदताम् ३८३॥
अदृश्यीभूय सम्भूय तौ द्वौ तत्रैव वासरे । भोजनावसरे चन्द्रगुप्तस्याभ्यर्णमीयतुः ॥३८७॥
अदृश्यमानौ तौ क्षुल्लौ चन्द्रगुप्तस्य भाजने । बुभुजाते यथाकामं बन्धू प्राण प्रियाविवा ॥३८८।
एवं दिने दिने ताभ्यां भुञ्जानांभ्यां महीपतिः । ऊनोदरत्वे नोदस्थात्तपस्वीव जितेन्द्रियः ॥३८९॥
कृष्णपक्षक्षपाजापानिखिक्षामः शनैः शनैः । चन्द्रगुप्तनरेन्द्रोऽभूताभ्यामाच्छिन्नभोजनः ॥३९०॥
इतिद्वितीय दिवसे चाणक्यो भोजनौकसि । भोजनावसरे धूमंसूचिभेद्यमकारयत् ॥४०१॥
अनञ्जनदृशौ तौ तु भुञ्जानौ तत्र भाजने । दृष्टौ नरेन्द्र लोकेन कोपाद्भृकुटि कारिणा ॥४०४ ॥
पितिराष्ट्रषिरूपेण युवां हि परमेश्वरौ । कृत्वा प्रसाद मस्मासु स्वस्मै स्थानाय गच्छतम् ॥४०६॥

एवं च मौर्यं सम्बोध्याचार्याणांश्चैमेत्यरच । चाणक्यौऽदादुपालम्भ चुल्लान्यायं प्रकाशयन् ॥४१०॥
आचार्यः स्माहको दोष चुल्लयो रनयोर्ननु । स्वकुक्षिम्भरयः सङ्कपुरुषायद्भवादृशाः ॥४११॥
चाणक्योऽपितमाचार्यं मिथ्या दुष्कृत पूर्वकम् । वन्दित्वाभिदधे साधु शिक्षितोऽस्मि प्रमद्वरः ४१२॥
अद्यप्रभृति यद्भक्त पानोपकरणादिकम् । साधूनामुपकुरुते तदादेयं मदोकसि ॥४१३॥

× × ×

सञ्जातप्रत्यये राज्ञि द्वितीयेऽहनि तद्गुरुः । धर्ममाख्यातुमाह्वास्त तत्र जैन मुनीनपि ॥४३०॥
निषेदुस्ते प्रथमतोऽप्यासनेष्वेव साधवः । स्वाध्यायावश्यके नाथ नृपागमम् पालयन् ॥४३१॥
ततश्च धर्ममाख्याय साधवो वसतिंययुः । इर्यासमितिलीन त्वात्पश्यन्तो भुवमेवते ॥४३२॥
गवाक्षविवराधस्ताल्लोप चूर्णं समीक्ष्यतम् । चाणक्यश्चन्द्रगुप्ताय तद्यथायस्थमदर्शयत् ॥४३३॥
ऊचे च नैते मुनयः पापपिण्डव दिहाययुः । तत्पाद प्रतिबिम्बानि न दृश्यन्ते कुतोऽन्यथा ॥४३४॥
उत्पन्न प्रत्ययः साधून गुरून्मेनेऽथ पर्थिवः । पापपिण्डषु विरक्तौऽभूद्विपयेष्विव योगवित् ॥४३५॥

× × ×

गेहान्तर्न्यस्य तां गेहसर्वं स्वमिव पेटिकाम् । दीनानाथादि पात्रेभ्यश्चाणक्यो न्यददाद्धम् ॥४५७॥
ततश्च नगरा सन्न करीपस्थल मूर्धनि । निषद्यानशनं चक्रे चाणक्यो निर्जरोद्यतः ॥४५८॥
यथा विपन्न जननी वृत्तान्तं धात्रिका मुखात् । विज्ञाय बिन्दुसारोऽनुशयानस्तत्र चाययो ॥४५९॥
उवाच क्षमयित्वा च चाणक्यं चन्द्रगुप्तसुः । पुनर्वर्तय मे राज्यं तवादेश कृत्स्यहम् ॥४६०॥
मौर्याचार्योऽभ्यधाद्रा जन्कृतं प्रार्थनयानया । शरीरेऽपि निरीहोऽस्मि साम्प्रतं किं त्वयामम् ४६१॥
अचलन्तं प्रतिज्ञाया मर्यादाय इवार्णवम् । चन्द्रगुप्तगुरुं ज्ञात्वा बिन्दुसारौ ययौ गृहम् ॥४६२॥
चुकोप गत् मात्रोऽपि बिन्दुसारः सुबन्धवे । सुबन्धुरपि शीतार्त इवोचे कम्पमुद्वहन् ॥४६३॥
देव सम्यग विज्ञाय चाणक्यो दूषितो मया । गत्वा तं क्षमयाम्यद्य यावत्तावत्प्रसीदमे ॥४६४॥
इति गत्वासुबन्धुस्तं क्षमयामास मायया । अचिन्तयच्च मा भूयोऽप्यसौ व्रजतु पत्तने ॥४६५॥
अमुना कुवि कल्पेन स राजानं व्यजिज्ञपत । चाणक्यं पूजयिष्यामि तस्यापकृति कार्यहम् ॥४६६॥
अनुज्ञातस्ततो राज्ञा सुबन्धुश्चार्णो जन्मनः । पूजामनशनस्थस्य विधातुमुपचक्रमे ॥ ४६७ ॥
पूजां सुबन्धुरापातबन्धुरां विरचय्य च । धूपाङ्गारं करीपान्तश्चिक्षेपान्यैर लक्षितः ॥४६८॥

धूपाङ्गारेणानिस्फालितेन प्रोद्यज्ज्वाले द्राकरीपस्थले तु ।
दारुप्रायो दह्यमानोऽप्यकम्पो मौर्याचार्योदेव्यभूतत्र मृत्वा ॥४६९॥

## सेवा-धर्म

[ लेखक—श्री डा० भैयालाल जैन, पी-एच० डी०, साहित्यरत्न ]

( १ )

सरला—पतिहीना, गृह-हीना, आश्रयहीना सरला—संसारके कड़ुवे अनुभवोंसे घबराकर, उसमें सारका लेश भी न देखकर, आज हिमालय की किसी निर्जन कंदरामें, अपने जीवनके शेष दिन बितानेकी इच्छासे निकल पड़ी है। उसका मन एकबारगी ही विरक्त होगया है। क्या यह संसार रहनेके योग्य है? क्या यहाँ की विकार-युक्त दूषित वायु साँस लेने के उपयुक्त है? यहाँका दुर्गन्धमय घृणित जीवन क्या कोई जीवन है? इसमें कौनसी सार्थकता है? छल, प्रपंच, धोका, स्वार्थ; ऐसी सृष्टिकी रचना करके, हे परमात्मा! तू कौनसी अक्षय कीर्ति कमाना चाहता है? क्या इसमें भी कुछ रहस्य है?

सरला चली। सुकुमार शरीर आगे नहीं जाना चाहता था; पर उसमें जो बलिष्ट आत्मा था, वह उसे बलपूर्वक घसीटे लिए जाता था। अपने भविष्य जीवनकी सुखमयी कल्पना करती हुई, सरला आगे बढ़ती ही जा रही थी। एक चट्टानसे दूसरी चट्टान पर होती हुई, एक झाड़ीसे निकलकर, दूसरीमें उलझती हुई, वह जैसे-तैसे एक सुरम्य स्थल पर पहुँच गई। अहा! कैसा मनोरम स्थान है! कैसी पवित्र भूमि है! प्रकृति की कैसी अनुपम शोभा है! संसारके ईर्षा-द्वेष की लपटें, वहाँका अन्याय और पापाचार क्या यहाँ प्रवेश कर सकता है? कदापि नहीं। बस, यही स्थान मेरे अनुकूल है। वन्यवृक्षोंके मधुर फलोंका स्वास्थ्यकर भोजन, सुविस्तृत झीलका निर्मल जल, सुकोमल तृणाच्छादित भूमि पर शयन, नम्र प्रकृतिके पशु-पक्षियोंका संग, इससे अधिक मुझे और क्या चाहिए? जीवनकी समस्त आवश्यक वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हैं। सरलाने मन-

ही-मन ईश्वरको नमन किया। हे परमात्मन! तूने अपनी सृष्टिमें सब कुछ सिरजा है। मनुष्यकी रुचिका ही दोष है। थोड़ा कष्ट सहन करनेसे जब कि वह सुरक्षित और स्वर्गीय आनन्ददायक महल मे पहुँच सकता है, तब वह अन्धा बनकर खाईमें क्यों गिर पड़ता है?

( २ )

अचानक सरला चौंकी। मनके विचार मनही में लीन हो गये। जहाँ की तहाँ रुककर खड़ी हो गई। घूमकर देखा। विस्मय बढ़ा। आगन्तुक ज्यों-ज्यों पास आता गया, त्यो त्यों सरलाके नेत्र आश्चर्यसे अधिकाधिक विस्फरित होते गये। पहिचान लेने पर, वह सहसा चिल्ला उठी—भैया!

विस्मय आनन्दमें परिणत होगया। द्रुत गति से सरला झपटी। हाँपती हुई जाकर, भाईके कन्धेका सहारा लेकर खड़ी होगई। दोनोंके मन-मोर हर्षसे नृत्य करने लगे, मुख कमल खिल गये।

मन्द-मन्द मुसकराती हुई सरला बोली—भैया!

देवेन्द्रकुमारने विस्मित दृष्टिसे देखा। क्या यह वही दुखिया सरला है? कैसा अद्भुत आकस्मिक परिवर्तन है? मुख पर की चिरस्थायी शोक-छाया विलीन होगई है। उसके स्थान पर विमल कान्ति, अपूर्व शोभा और मूर्तिमान तेज विराज रहा है। कृशांग कैसे पुष्ट दीखते हैं!

सरला सुमधुर हास्यके साथ बोली—भैया! किन विचारोंमें तन्मय हो रहे हो?

देवेन्द्र—मैं सोच रहा हूँ कि इस समय तुम्हारा रूप अचानक कैसा निखर गया है! स्वर्ग से उतरकर आई हुई जैसे कोई देव-कन्या हो। बहिन सरला, तुम मुझे इस क्षण साक्षात देवी ही जान पड़ती हो। देवी, तुम्हारे तेजस्वी रूपका संसारके प्राणियों पर कितना गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ सकता है?

सरलाने मुस्कराते हुए कहा—और क्या सोचते हो, भैया?

देवेन्द्र—और सोच रहा हूँ कि यदि तुम घर लौट चलो तो कैसा अच्छा हो!

सरलाने एकाएक गम्भीरभाव धारण करलिया। फिर उस ऊँचे टीले पर घूमकर चारों ओर अगुँलीके संकेतसे दिखाया और बोली, कहाँ लौट चलनेको कहते हो, भैया? देखते हो ससार में क्या हो रहा है? एक दूसरेको खाये जाता है। कोई अपनेको अपना नहीं समझता। स्वार्थान्ध होकर लोग कैसे कैसे पापपूर्ण आचार कर रहे हैं? स्वर्गके द्वार तक आकर फिर नरक-कुण्डकी ओर लौट चलूँ भैया? क्या यह बुद्धिमानीका काम होगा?

देवेन्द्रकुमार ओजस्वी वाणी में बोले—बहिन, क्षमा करना, स्वार्थान्ध कौन है, उसे तुमने ठीकसे नही पहिचाना। जो इन दीन-दुखियोंको तुम दिखा रही हो, वे घोर, अज्ञानान्धकारमे पड़े हुए हैं। अपने-पराये, भले-बुरे और स्वार्थ-परमार्थका ज्ञान उन्हें नही है। वे जो कुछ करते हैं, समझ-बूझकर नही करते। उनकी बुद्धि लोप हो गई है। माया-मोहमे फँसे हुए हैं। पर बहिन! तुमतो वैसी नहीं हो। फिर उन आपत्तिग्रस्त दुखियोंको अकेला छोड़कर, किनारा क्यों काट रही हो? अपना

जीवन आनन्दसे व्यतीत करनेके लिए—अपने स्वार्थसाधनके हेतु—तुम इन निर्बलोंकी—अनाथों की अवहेलना क्यों कर रही हो ? बोलो, बहिन, उत्तर दो। इन बेचारे दीनोंकी सहायता न करके, तुम अपने एक अलग ही मार्ग पर जा रही हो। क्या यह स्वार्थपरता नहीं है ?

सरलाका हृदय हिल उठा। नेत्रोंमे अश्रु छल-छला आये। हाथ जोड़कर, उसने भाईके सम्मुख घुटने टेक दिये। बोली—भैया, सचमुच ही मैं अत्यन्त स्वार्थी और पामर हूँ। मुझे सुमार्ग दिखाओ।

देवेन्द्रकुमार भी अपने अश्रु-प्रवाहको न रोक सके। देर तक दोनों एक दूसरेके मुखकी ओर देखकर, रुदन करते रहे! कैसा हृदय-द्रावक दृश्य था! शान्त होने पर देवेन्द्रने सरलाका हाथ पकड़ कर उठाया और कहा, बहिन, मैं तुम्हे सुमार्ग क्या दिखा सकता हूँ ? मैं भी सबके जैसा क्षुद्र और तुच्छ हूँ। तब चलो, हम दोनों ही मिलकर, जगत के हितके लिए कुछ करे। हम लोगोंके लिए सब कार्योंसे उत्तम एक सेवा-मार्ग है। आओ, उसी पर दृढ़ रहकर, दीन-दुखियोंकी विपत्तिमें हाथ बटावे। अपने ही करोडो अछूत कहे जाने वाले भाइयोंको ऊँचा उठाकर, गले, लगावें और उन्हें दुरदुराते रहने तथा उनसे घृणा करनेके कारण, समाजके माथे जो कलङ्कका टीका लग गया है, उसे सदाके लिए धो डालें।

हिमालयसे लौटकर, देवेन्द्रकुमार और सरला देवी दोनों सेवा-क्षेत्रमें अवतीर्ण हो गये हैं। त्राहि त्राहि करते हुए, प्राणियोंने अब शरण पाई। दुःखी जनोंको जिस प्रकारकी सेवाकी आवश्यक्ता होती है, वह देवेन्द्र और सरलाके द्वारा तुरन्तकी जाती है। अनाथ बालकोंके लिए, भोजन-वस्त्र तथा शिक्षा-दीक्षाका सुप्रबन्ध किया जाता है। छुआ-छूतका भूत सदाके लिए, देशसे निकाल बाहर कर दिया गया है। अब कोई अछूत नहीं है। जो पहिले अछूत कहे जाते थे वे अब हरिजन के नामसे पुकारे जाते हैं। अब उन्हें सर्वसाधारण कुओं पर जल भरनेकी कोई रोक-टोक नहीं है। मन्दिरोंमे जाकर प्रसन्नतासे देव-दर्शन करते हैं। अब वे बडी सफाईसे रहते हैं। राभा-सुसायटी तथा प्रीति-भोजोंमें सब लोगोंके साथ सम्मिलित होते हैं। विद्या पढ़ते हैं। ईति-भीति कोसों दूर भाग गई। सर्वत्र सुराज हो गया।

---

# अधिकार

निरीह पक्षीको मारकर घातकने उसे नीचे गिरा दिया, दयालु-हृदय महात्मा बुद्धने दौड़कर उसे उठाया और वे अपने कोमल हाथ उसके शरीर पर फेरने लगे। घातकने कहा, "तुमने मेरा शिकार क्यों ले लिया" ? बुद्धने कहा—"भाई, तुझे वनके एक निरीह पक्षीको बाण मारकर गिरानेका अधिकार है तो, क्या मुझे उसे उठाकर पुचकारनेका भी अधिकार नहीं है" ? (कल्याण)

प्राकृत—

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा ।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥

—कुन्दकुन्दाचार्य ।

'जो रागी है--विषयादिकमें आसक्त है—वह निश्चयसे कर्मका बन्धन करता है, और जो राग रहित है—अनासक्त चित्त है—वह कर्मोंके बन्धन-से छूटता है—उसे कर्मका बन्धन नही होता तथा पूर्व बँधे कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। इस प्रकार जीवोंके बन्ध-मोक्षका यह संक्षेपमें रहस्य है।'

वउ तव संजमु सीलु जिय ए सव्वइँ अकयत्थु ।
जाव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥

—योगीन्दुदेव ।

'व्रत, तप, संयम और शीलका अनुष्ठान उस वक्त तक निरर्थक है जब तक इस जीवको अपने परम पवित्र एक शुद्ध रूपका बोध नही होता है।'

मूढा देवलि देउ णवि णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देह-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहिं समचित्ति ॥

—योगीन्दुदेव ।

'हे मूढ़ देवालय में देव नहीं, पत्थर-शिला, लेप तथा चित्र मे भी देव नहीं है। जिन-देवतो देह-देवालय में रहते हैं, इस बातको तू सम-चित्त होकर अनुभव कर—अर्थात् समचित्त होकर विचार करेगा, तो तुझे मालूम पड़ेगा कि शरीरमे रहने वाला आत्माही शुद्ध निश्चय नयकी दृष्टिसे देव है—आराध्य है। और इस तरह कोईभी देहधारी तिरस्कारके योग्य नहीं है।'

णिस्संगो चेव सदा कसायसल्लेहणं कुणदि भिक्खू ।
संगा हु उदीरंति कसाए अग्गीव कट्ठाणि ॥

—शिवार्य ।

'परिग्रह-रहित साधुही सदा कषायोंके कृश करनेमे समर्थ होता है-परिग्रही नहीं, क्योंकि परिग्रह ही वास्तव में कषायोको उत्पन्न करते तथा बढ़ाते हैं, जैसे कि सूखी लकड़ियाँ अग्निकी उत्पत्ति एव वृद्धि में सहायक होती हैं।'

जो अहिलसेदि पुण्णं सकसाओ विसयसोक्खतण्हाए ।
दूरे तस्स विसोही विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ॥

—स्वामिकार्तिकेय ।

'जो मनुष्य कपायवशवर्ती हुआ विषय-सौख्य की तृष्णा से—अधिकाधिक विषय—सुख की प्राप्तिके लिये— पुण्य कर्म करना चाहता है उसके विशुद्ध-चित्त की शुद्धि-नही बनती और जब विशुद्धही नही बनती तब पुण्य-कर्म कहाँ से बन सकता है? क्योंकि पुण्य कर्मों का मूल कारण चित्त शुद्धि है।'

संस्कृत—

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥

—पूज्यपादाचार्य।

'यह अज्ञ जगत जो मुझे—मेरे शुद्ध स्वरूप को—देखता जानता ही नही, मेरा शत्रु नही है और न मित्र है—अपरिचित व्यक्ति के साथ शत्रुता-मित्रता बन नहीं सकती। और यह ज्ञानी लोक जो मुझे—मेरे आत्मस्वरूप को—भले प्रकार देखता-जानता है, मेरा शत्रु नहीं है और न मित्र है— हो नहीं सकता; क्योकि आत्मा का दर्शन होने पर राग द्वेषादिका नाश होजाता है और राग द्वेषादिके अभाव मे शत्रुता-मित्रता बनती नहीं। इस तरह न मैं किसीका शत्रु-मित्र हूँ और न मेरा कोई शत्रु-मित्र है।

कियतो मारयिष्यामि दुर्जनान् गगनोपमान्।
मारिते क्रोधचित्ते तु मारिताः सर्वशत्रवः॥

—बोधिचर्यावतार।

'अपकार करनेवाले कितने दुर्जनोंको मैं मार सकूँगा? दुर्जन तो अनन्त आकाशकी तरह सर्वत्र व्याप्त हो रहे है। हाँ, यदि मै अपने चित्त की क्रोध परिणतिको मार डालूँ—क्रोध शत्रु पर विजय प्राप्त करलूँ—तो सारे शत्रु स्वयमेव ही मर जायेंगे—; क्योंकि उनके अपकारकी गणना न करते हुये क्षमा धारण करने से बैर असभव हो जायगा, बैर के असम्भव हो जाने से शत्रुता नहीं रहेगी और शत्रुता का न रहना ही शत्रुओं का मरण है।'

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एवधीराः।"

—कालिदास।

'विकार का कारण उपस्थित होने पर, जिनके चित्तों मे विकार नही आता—जो राग, द्वेष, मोह और शोकादिके वशीभूत नहीं होते—वे ही वास्तव मे धीर-वीर है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्च रति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

—भगवद्गीता।

'जो मनुष्य सर्व कामनाओं का परित्याग कर निःस्पृह-निरिच्छ होकर रहता है और अहकार ममकार जिसके पास नहीं फटकते, वही सुख-शान्तिको प्राप्त करता है—शेष सब अशान्तिके ही शिकार बने रहते हैं।'

हेयोपादेयविज्ञानं नोचेद् व्यर्थः श्रमः श्रुतौ।

—वादीभसिंहाचार्य।

'यदि शास्त्रों को पढ़कर हेयोपादेय का विज्ञान प्राप्त नहीं हुआ—यह भले प्रकार समझ नही पड़ा कि किसमे 'आत्माका हित है और किसमे अहित है—तो उस सारे ही सुताभ्यास के परिश्रमको व्यर्थ समझना चाहिये।'

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को वधिरो यः श्रृणोति न हितानि।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति॥

—अमोघवर्ष।

'अन्धा कौन है? जो न करने योग्य बुरे कामोंके करनेमे लीन रहता है। बहरा कौन है? जो हितकी बाते नही सुनता। और गूंगा कौन है? जो समय पर मधुर भाषण करना—प्रिय वचन बोलना—नही जानता।'
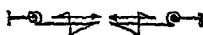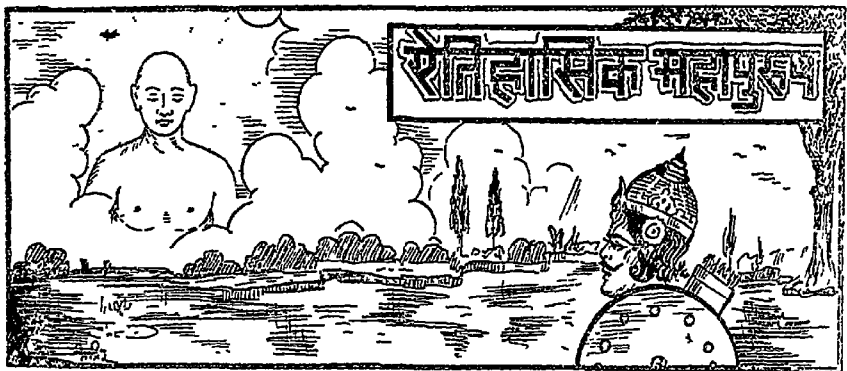
## भगवान् महावीरका सेवामय जीवन और

# सर्वोपयोगी मिशन

[ ले० स्वर्गीय श्री० वाड़ीलाल मोतीलाल शाह ]

[ भ० महावीर का निर्वाण हुये २४६५ वर्ष बीत गये। उस वक्त से बराबर ही हम हरसाल दीपावली पर उनका निर्वाणोत्सव मनाते आरहे है। इस अवसर पर हम केवल पूजा करके जय जयकार बोलकर और लड्डू चढ़ाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते है, और इस बात की ज़रूरत नहीं देखते कि भगवान् के जीवन पर कुछ गहरा विचार करें और उससे कोई शिक्षा भी ग्रहण करें! इसीसे हमारे जीवन में कोई प्रगति नहीं हो रही है और हम जहाँ के तहाँ ही नहीं पड़े है बल्कि यांत्रिकचरित्रके अधिक अभ्यास द्वारा अथवा जड़ मशीनों की तरह कार्य करते रहनेमे जड़ और पतित तक होते जारहे हैं। जरूरत है ऐसे अवसरों पर खास तौर से भ० महावीर के सेवामय जीवन और सर्वोपकारी मिशन पर विचार करने की तथा उसे अपने जीवनमे उतारनेकी। ऐसा करकेही हम भ० महावीर के सच्चे भक्त कहला सकते हैं और अपना तथा लोक का हित साधन कर सकते हैं। इस संबन्धमे अर्सा हुआ श्रीयुत स्वर्गीय भाई वाडीलाल मोतीलालजी शाह ने एक महत्वका भाषण प्रार्थना समाज बंबई के वार्षिकोत्सव पर दिया था और वह उस समय जैनकान्फ्रेन्स हेरल्ड तथा जैनहितैषी मे प्रकट हुआ था। इस अवसर के लिये उसे बहुत ही उपयुक्त समझ कर यहाँ उद्धृत किया जाता है। आशा है पाठक जन इससे यथेष्ट लाभ उठायेंगे।

—सम्पादक ]

जातिभेद, अज्ञानमूलक, क्रियाओं और वहमोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए जिस महावीर नामक महान् सुधारक और विचारकने तीस वर्ष तक उपदेश दिया था वह उपदेश प्रत्येक देश, प्रत्येक समाज और प्रत्येक व्यक्तिका उद्धार करनेके लिए समर्थ है। परन्तु धर्मगुरुओं या पण्डितोंकी अज्ञानता और श्रावकोंकी अन्धश्रद्धाके कारण आज वे महावीर और वह जैनधर्म अनादृत हो रहा है। सायस का हिमायती, सामान्यबुद्धि (Common Sense) को विकसित करनेवाला, अन्तःशक्ति को प्रकाशित करनेकी चाबी देने वाला, प्राणिमात्रको बन्धुत्व) की साँकलसे जोड़नेवाला, आत्मबल अथवा स्वात्मसश्रयका पाठ सिखला कर रोवनी और कर्मवादिनी दुनिया को जवाँमर्द तथा कर्मवीर बनानेवाला, एक नहीं किन्तु पचीस दृष्टियों से प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना पर विचार करनेकी विशाल-

दृष्टि अर्पण करनेवाला और अपने लाभको छोड़कर दूसरोंका हित साधन करनेकी प्रेरणा करनेवाला—इस तरहका अतिशय उपकारी व्यावहारिक (Practical) और सीधासादा महावीरका उपदेश भले ही आज जैनसमुदाय समझने का प्रयत्न न करे, परन्तु ऐसा समय आरहा है कि वह प्रार्थनासमाज, ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सुसाइटी और यूरोप अमेरिकाके सशोधकोंके मस्तक में अवश्य निवास करेगा।

सारे ससारको अपना कुटुम्ब माननेवाले महावीर गुरुका उपदेश न पक्षपाती है और न किसी ख़ास समूहके लिए है। उनके धर्मको 'जैनधर्म' कहते हैं, परन्तु इसमे 'जैन' शब्द केवल 'धर्म' का विशेषण है। जड़भाव, स्वार्थबुद्धि, सकुचित दृष्टि, इन्द्रियपरता, आदि पर जय प्राप्त करानेकी चाबी देनेवाला और इस तरह ससारमें रहते हुए भी अमर और आनन्दस्वरूप तत्त्वका स्वाद चखानेवाला जो उपदेश है उसीको जैनधर्म कहते हैं और यही महावीरोपदेशित धर्म है। तत्त्ववेत्ता महावीर इस रहस्यसे अपरिचित नहीं थे कि वास्तविक धर्म, तत्त्व, सत्य अथवा आत्मा काल, क्षेत्र, नाम आदिके बन्धन या मर्यादाको कभी सहन नहीं कर सकता और इसीलिए उन्होंने कहा था कि "धर्म उत्कृष्ट मगल है और धर्म और कुछ नहीं, अहिंसा, सयम और तपका एकत्र समावेश है।" उन्होने यह नहीं कहा कि 'जैनधर्म ही उत्कृष्ट मङ्गल है' अथवा 'मै जो उपदेश देता हूँ वही उत्कृष्ट मगल है।' किन्तु अहिंसा (जिसमें दया, निर्मल प्रेम, भ्रातृभावका समावेश होता है) सयम (जिससे मन और इन्द्रियोको वशमे रख कर आत्मरमणता प्राप्त की जाती है) और तप (जिसमे परसेवाजन्य श्रम, ध्यान और अध्ययनका समावेश होता है) इन तत्त्वोका एकत्र समावेश ही धर्म अथवा जैनधर्म है और वही मेरे शिष्योंको तथा सारे संसारको ग्रहण करना चाहिए, यह जताकर उन्होने इन तीनो तत्त्वोका उपदेश विद्वानोकी संस्कृत भाषामें नहीं; परन्तु उस समय की जनसाधारणकी भाषामें प्रत्येकवर्णके स्त्री पुरुषोंके सामने दिया था और जातिभेदको तोड़कर क्षत्रिय महाराजाओ, ब्राह्मण पण्डितों और अधमसे अधम गिने जानेवाले मनुष्योंको भी जैन बनाया था तथा स्त्रियोंके दर्जेको भी ऊँचा उठाकर वास्तविक सुधार की नींव डाली थी। उनके 'मिशन' अथवा 'सघ' मे पुरुष और स्त्रियाँ दोनो हैं और स्त्री-उपदेशिकायें पुरुषोंके सामने भी उपदेश देतीं हैं। इन बातोंसे साफ मालूम होता है कि महावीर किसी एक समूह के गुरु नहीं, किन्तु सारे मनुष्य समाज के सार्वकालिक गुरु हैं और उनके उपदेशों में से वास्तविक सुधार और देशोन्नति हो सकती है। इसलिए इस सुधारमार्गके शोधक समय को और देशको तो यह धर्म बहुत ही उपयोगी और उपकारी है। इसलिए केवल श्रावक कुल मे जन्मे हुए लोगो मे ही छुपे हुए इस धर्म रत्नको यत्नपूर्वक प्रकाश मे लानेकी बहुतही आवश्यकता है।

प्राचीन समय में इतिहास इतिहासकी दृष्टि से शायद ही लिखे जाते थे। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय के जुदा-जुदा ग्रन्थो से, पाश्चात्य विद्वानों की पुस्तकों से तथा अन्यान्य साधनो से महावीर-चरित्र तैयार करना पड़ेगा। किसी

भी सूत्र में या ग्रन्थ मे महावीर भगवान् का पूरा जीवन चरित नही है और जुदा-जुदा ग्रन्थकारो का मतभेद भी है। उस समय दन्त कथाये, अतिशयोक्तियुक्त चरित और सूक्ष्म बातो को स्थूल रूप मे बतलानेके लिये उपमामय वर्णन लिखने की अधिक पद्धति थी और यह पद्धति केवल जैनोमे ही नही, किन्तु ब्राह्मण, ईसाई आदि के सभी ग्रन्थों मे दिखलाई देती है। इसलिए यदि आज कोई पुरुष पूर्वके किसी महापुरुषका बुद्धिगम्य चरित लिखना चाहे तो उसके लिए उपयुक्त स्थूल वर्णनो, दन्तकथाओ और भक्तिवश लिखी हुई आश्चर्यजनक बातो में से खोज करके वास्तविक मनुष्य-चरित लिखनेका—यह बतलाने का कि अमुक महात्मा किस प्रकार और कैसे कामोसे उत्क्रान्त होते गये और उनकी उत्क्रान्ति जगत् को कितनी लाभदायक हुई—काम बहुत ही जोखिमका है।

मगध देशके कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके गर्भसे महावीरका जन्म ई० स० से ५२८ वर्ष (?) पहले हुआ। श्वेताम्बर ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि पहले वे एक ब्राह्मणी के गर्भ मे आयेथे, परन्तु पीछे देवताने उन्हे त्रिशला क्षत्रियाणीके गर्भमे लादिया! इस बातको दिगम्बरग्रन्थकर्ता स्वीकार नही करते। ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणो और जैनोके बीच जो पारस्परिक स्पर्धा बढ़ रही थी, उसके कारण बहुत से ब्राह्मण विद्वानोने जैनोको और बहुत से जैनाचार्योने ब्राह्मणोको अपने अपने ग्रन्थो मे अपमानित करनेके प्रयत्न किये है। यह गर्भसक्रमण की कथा भी उन्ही प्रयत्नोंमें का एक उदाहरण जान पड़ता है। इससे यह सिद्ध किया गया है कि ब्राह्मणकुल महापुरुषो के जन्म लेने के योग्य नही है। इस कथा का अभिप्राय यह भी हो सकता है कि महावीर पहले ब्राह्मण और पीछे क्षत्रिय बने, अर्थात पहले ब्रह्मचर्यकी रक्षापूर्वक शक्तिशाली विचारक (Thinker) बने, पूर्व भवो मे धीरे-धीरे विचार-बलको बढ़ाया-ज्ञानयोगी बने और फिर क्षत्रिय अथवा कर्मयोगी—ससार के हित के लिए स्वार्थ त्याग करनेवाले वीर बने।

बालक महावीर के पालन पोषण के लिये पाँच प्रवीण धायें रक्खी गई थीं और उनके द्वारा उन्हे बचपन से वीररस के काव्यो का शौक लगाया गया था। दिगम्बरो की मानता के अनुसार उन्होंने आठवे वर्ष श्रावकके बारह व्रत अगीकार किये और जगत् के उद्धार के लिये दीक्षा लेने के पहले उद्धार की योजना हृदयगत करने का प्रारम्भ इतनी ही उम्र से कर दिया। अभिप्राय यह कि वे बाल ब्रह्मचारी रहे। श्वेताम्बरी कहते हैं कि उन्होने ३२ वर्ष की अवस्था तक इन्द्रियो के विषय भोगे—ब्याह किया, पिता बने और उत्तम प्रकार का गृहवास (जलकमलवत्) किस प्रकार से किया जाता है इसका एक उदाहरण वे जगतके समक्ष उपस्थित कर गये। जब दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकटकी तब माता-पिता को दुःख हुआ, इससे वे उनके स्वर्गवास तक गृहस्थाश्रम मे रहे। २८ वे वर्ष दीक्षा की तैयारी की गई किन्तु बड़े भाईने रोक दिया। तब दो वर्ष तक और भी गृहस्थाश्रम में ही ध्यान तप आदि करते हुए रहे। अन्तिम वर्षमें श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार करोड़ो रुपयो का दान दिया। महावीर भगवान् का दान और दीक्षा में विलम्ब ये दो बातें बहुत विचारणीय हैं। दान, शील, तप और भावना इन चार मार्गों मे से पहला मार्ग सबसे सहज है। अँगुलियो के निर्जीव नखों के काट डालने के समान ही 'दान' करना सहज है। कच्चे नख के काटनेके समान 'शील' पालना है। अँगुली काटने के समान 'तप' है और सारे शरीर पर से स्वत्व उठाकर आत्माको उसके प्रेक्षकके समान तटस्थ बना देना 'भावना' है। यह सबसे कठिन है। इन चारो का क्रमिक रहस्य अपने दृष्टान्त से स्पष्ट कर देने के लिए भगवान्ने पहले दान किया, फिर सयम अङ्गीकार किया और

संयम की ओर लौ लग गई थी, तो भी गुरुजनों की आज्ञा जब तक न मिली, तब तक बाह्य त्याग नही लिया। वर्तमान जैनसमाज इस पद्धति का अनुकरण करे तो बहुत लाभहो।

३० वर्षकी उम्रमे भगवान् ने जगदुद्धार की दीक्षा ली और अपने हाथसे केशलोच किया। अपने हाथोसे अपने बाल उखाड़नेकी क्रिया आत्माभिमुखी दृष्टि की एक कसौटी है। प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका मेरी कोरलीके 'टेम्पोरलपावर' नामक रसिकग्रन्थ में जुल्मी राजाको सुधारनेके लिए स्थापितकी हुई एक गुप्तमण्डलीका एक नियम यह बतलाया गया है कि मण्डली का सदस्य एक गुप्त स्थान मे जाकर अपने हाथ की नसमे तलवार के द्वारा खून निकालता था और फिर उस खून से वह एक प्रतिज्ञापत्र मे हस्ताक्षर करता था! जो मनुष्य जरासा खून गिराने मे डरता हो वह देश रक्षा के महान् कार्य के लिये अपना शरीर अर्पण कदापि नही कर सकता। इसी तरह जो पुरुष विश्वोद्धार के 'मिशन' मे योग देना चाहता हो उसे आत्मा और शरीर का भिन्नत्व इतनी स्पष्टता के साथ अनुभव करना चाहिये कि बाल उखाडते समय जरा भी कष्ट न हो। जब तक मनोबलका इतना विकास न हो जाय, तब तक दीक्षा लेने से जगत का शायद ही कुछ उपकार होसके।

महावीर भगवान् पहले १२ वर्ष तक तप और ध्यान ही मे निमग्न रहे। उनके किये हुये तप उनके आत्मबलका परिचय देते हैं। यह एक विचारणीय बात है कि उन्होने तप और ध्यान के द्वारा विशेष योग्यता प्राप्त करनेके बाद ही उपदेश का कार्य हाथ मे लिया। जो लोग केवल 'सेवा करो,—'सेवा करो' की पुकार मचाते हैं उनसे जगत् का कल्याण नही हो सकता। सेवा का रहस्य क्या है, सेवा कैसे करना चाहिये, जगत् के कौन-कौन कामो मे सहायता की आवश्यकता है, थोड़े समय और थोड़े परिश्रम से अधिक सेवा कैसे हो सकती है, इन सब बातो का जिन्होने ज्ञान प्राप्त नही किया—अभ्यास नही किया, वे लोग सम्भव है कि लाभ के बदले हानि करनेवाले हो जॉय। 'पहले ज्ञान और शक्ति प्राप्त करो, पीछे सेवा के लिए तत्पर होओ' तथा 'पहले योग्यता और पीछे सार्वजनिक कार्य' ये अमूल्य सिद्धान्त भगवान् के चरित से प्राप्त होते हैं। इन्हे प्रत्येक पुरुष को सीखना चाहिए।

योग्यता सम्पादन करनेके बाद भगवान्ने लगातार ३० वर्षो तक परिश्रम करके अपना 'मिशन' चलाया। इस 'मिशन' को चिरस्थायी बनानेके लिए उन्होने 'श्रावक-श्राविका' और 'साधु-साध्वियो' का सघ या स्वयसेवक मण्डल बनाया। क्राइस्ट के जैसे १२ एपॉस्टल्स थे, वैसे उन्होने ११ गणधर बनाये और उन्हे गण अथवा गुरुकुलो की रक्षाका भार दिया। इन गुरुकुलो मे ४२०० मुनि, १० हजार उम्मेदवार मुनि और ३६ हजार आर्यायें शिक्षा लेती थीं। उनके सघ मे १५९००० श्रावक और ३००००० श्राविकायें थीं। रेल, तार, पोस्ट आदि साधनो के बिना तीस वर्ष मे जिस पुरुषने प्रचार का कार्य इतना अधिक बढ़ाया था, उसके उत्साह, धैर्य, सहन शीलता, ज्ञान, वीर्य, तेज कितनी उच्चकोटि के होगे इसका अनुमान सहज ही हो सकता है।

पहले पहल भगवान्ने मगधमे उपदेश दिया। फिर ब्रह्मदेश मे हिमालय तक और पश्चिम प्रान्तो मे उग्र विहार करके लोगोके वहमोंको, अन्धश्रद्धा को, अज्ञानतिमिरको, इन्द्रियलोलुपताको और जड़वादको दूर किया। विदेहके राजा चेटक, अंगदेशके राजा शतानीक, राजगृहके राजा श्रेणिक और प्रसन्नचन्द्र आदि राजाओके तथा बड़े बड़े धनिकों को अपना भक्त बनाया। जातिभेद और लिंगभेद का उन्होने बहिष्कार किया। जगली जातियोके उद्धार के लिए भी उन्होने उद्योग किया और उसमे अनेक कष्ट सहे।

महावीर भगवान् ओटोमेटिक(Automatic) उपदेशक न थे, अर्थात् किसी गुरु की बतलाई

बातो या विधियो को पकड़े रहनेवाले (Conservative) कन्सरवेटिव पुरुष नही थे; किन्तु स्वतंत्र विचारक बनकर देशकाल के अनुरूप स्वांग मे सत्य का बोध करनेवाले थे। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के उत्तराध्ययन सूत्र में जो केशी स्वामी और गौतम स्वामी की शान्त-कान्फरेंसका वर्णन दिया है, उससे मालूम होता है कि उन्होंने पहले तीर्थंकरकी बाँधी हुई विधिव्यवस्था मे फेरफार करके उसे नया स्वरूप दिया था। इतना ही नही, उन्होंने उच्च श्रेणीके लोगो मे बोली जानेवाली संस्कृत भाषा मे नही, किन्तु साधारण जनता की मागधी भाषा मे अपना उपदेश दिया था। इस बातसे हम लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमे अपने शास्त्र, पूजा पाठ, सामायिकादि क पाठ, पुरानी, साधारण लोगो के लिये दुर्बोध भाषा मे नही किन्तु उनके रूपान्तर, मूलभाव कायम रखके वर्तमान बोलचाल की भाषाओ में, देशकालानुरूप कर डालना चाहिए।

महावीर भगवान् का ज्ञान बहुत ही विशाल था। उन्होंने षड्द्रव्यक स्वरूपमे सारे विश्वकी व्यवस्था बतला दी है। शब्दका वेग लोकके अन्त तक जाता है, इसमें उन्होंने बिना कहे ही टेलीग्राफी समझा दी है। भाषा पुद्गलात्मका होती है, यह कह कर टेलीफोन और फोनोग्राफ के आविष्कारकी नीव डाली है। मल, मूत्र आदि १४ स्थानो में सूक्ष्मजीव उत्पन्न हुआ करते हैं, इसमे छूत के रोगो का सिद्धान्त बतलाया है। पृथ्वी, वनस्पति आदिमे जीव है, उनके इस सिद्धान्तको आज डाक्टर वसुने सिद्ध कर दिया है। उनका अध्यात्मवाद और स्याद्वाद वर्तमान के विचारकों के लिए पथप्रदर्शक का काम देनेवाला है। उनका बतलाया हुआ लेश्याओ का और लब्धियो का स्वरूप वर्तमान थिओसोफिस्टो की शोधो से सत्य सिद्ध होता है। पदार्थविज्ञान, मानसशास्त्र और अध्यात्मके विषयमे भी अढाई हजार वर्ष पहले हुए महावीर भगवान् कुशल थे। वे पदार्थविज्ञान को मानसशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के ही समान धर्मप्रभावनाका अंग मानते थे। क्योंकि उन्होंने जो आठ प्रकारके प्रभावक बतलाये हैं उनमें विद्या-प्रभावको का अर्थात् साइन्सके ज्ञान से धर्मकी प्रभावना करनेवालोका भी समावेश होता है।

भगवान्का उपदेश बहुत ही व्यवहारी (प्राक्टिकल) है और वह आज कलके लोगों की शारीरिक, नैतिक, हार्दिक, राजकीय और सामाजिक उन्नतिके लिये बहुत ही अनिवार्य जान पड़ता है। जो महावीर स्वामीके उपदेशो का रहस्य समझता है वह इस वितंडावाद में नहीं पड़ सकता कि अमुक धर्म सच्चा है और दूसरे सब झूठे हैं। क्योंकि उन्होंने स्याद्वादशैली बतलाकर नयनिक्षेपादि २५ दृष्टियोसे विचार करने की शिक्षा दी है। उन्होंने द्रव्य (पदार्थ प्रकृति) क्षेत्र (देश), काल (जमाना) और भाव इन चारोका अपने उपदेशमें आदर किया है। ऐसा नही कहा कि 'हमेशा ऐसा ही करना, दूसरी तरहसे नही।' मनुष्यात्मा स्वतंत्र है, उसे स्वतंत्र रहने देना—केवल मार्गसूचन करके और अमुक देश कालमे अमुक रीतिसे चलना अच्छा होगा, यह बतलाकर उसे अपने देश कालादि संयोगोमें किस रीतिसे बर्ताव करना चाहिये, यह सोच लेनेकी स्वतंत्रता दे देना—यही स्याद्वादशैलीके उपदेशकका कर्तव्य है। भगवान्ने दशवैकालिक सूत्रमें सिखलाया है कि खाते-पीते, चलते, काम करते, सोते हुए हर समय यत्नाचार पालो, अर्थात् "Work with attentiveness or balanced mind" प्रत्येक कार्यको चित्तकी एकाग्रता पूर्वक—समतोलवृत्तिपूर्वक करो। कार्यकी सफलताके लिए इससे अच्छा नियम कोई भी मानसतत्त्वज्ञ नही बतला सकता। उन्होंने पवित्र और उच्च जीवनकी पहली सीढ़ी न्यायोपार्जित द्रव्य प्राप्त करनेकी शक्ति को बतलाया है और इस शक्तिसे युक्त जीवको

'मार्गानुसारी' कहा है। इसके आगे 'श्रावक' वर्ग बतलाया है, जिसे बारह व्रत पालन करने पड़ते हैं और उससे अधिक उत्क्रान्त—उन्नत हुए लोगों के लिए सम्पूर्ण त्यागवाला "—आश्रम' बतलाया है। देखिए, कैसी सुगम स्वाभाविक और प्राक्टिकल योजना है। श्रावक के बारह व्रतों में सादा, मितव्ययी और संयमी जीवन व्यतीत करने की आज्ञा दी है। एक व्रत में स्वदेशरक्षाका गुप्त मन्त्र भी समाया हुआ है, एक व्रत में सबसे बन्धुत्व रखनेकी आज्ञा है, एक व्रतमें ब्रह्मचर्यपालन (स्वस्त्रीसन्तोष) का नियम है, जो शरीरबल की रक्षा करताहै,एक व्रत बालविवाह, वृद्धविवाह और पुनर्विवाहके लिए खड़े होनेको स्थान नहीं देता है, एक व्रत जिससे आर्थिक, आत्मिक या राष्ट्रीय हित न होता हो ऐसे किसी भी काम में, तर्क वितर्क में, अपध्यान मे, चिन्ता उद्वेग और शोक में, समय और शरीरबलके खोनेका निषेध करता है और एक व्रत आत्मा में स्थिर रहने का अभ्यास डालने के लिए कहता है। इन सब व्रतोका पालन करनेवाला श्रावक अपनी उत्क्रान्ति और समाज तथा देशकी सेवा बहुत अच्छी तरह कर सकता है।

जब भगवान् की आयु में ७ दिन शेष थे तब उन्होंने अपने समीप उपस्थित हुए बड़े भारी जन समूह के सामने लगातार ६ दिन तक उपदेश की अखण्डधारा बहाई और सातवे दिन अपने मुख्य शिष्य गोतम ऋषि को जान बूझकर आज्ञा दी कि तुम समीप के गाँवो में धर्मप्रचारके लिए जाओ, जब महावीर का मोक्ष हो गया, तब गौतम ऋषि लौटकर आये। उन्हें गुरु-वियोग से शोक होने लगा। पीछे उन्हे विचार हुआ कि "अहा मेरी यह कितनी बड़ी भूल है! भला, महावीर भगवान् को ज्ञान और मोक्ष किसने दिया था? मेरा मोक्ष भी मेरे ही हाथ में है। फिर उसके लिए व्यर्थ ही क्यों अशान्ति भोगूं?" इस पौरुष या मर्दानगी से भरे हुये विचार से—इस स्वावलम्बन की भावनासे उन्हे कैवल्य प्राप्त हो गया और देवदुन्दुभि बज उठे। "तुम अपने पैरो पर खड़े रहना सीखो, तुम्हे कोई दूसरा सामाजिक, राजकीय या आत्मिक मोक्ष नहीं दे सकता, तुम्हारा हर तरहका मोक्ष तुम्हारे ही हाथमें है।" यह महामन्त्र महावीर भगवान् अपने शिष्य गौतमको शब्दोंसे नहीं, किन्तु बिना कहे सिखला गये और इसी लिए उन्होंने गौतमको बाहर भेज दिया था। समाजसुधारकोंको, देशभक्तों और आत्ममोक्षके अभिलाषियोंको यह मन्त्र अपने प्रत्येक रक्तबिन्दुके साथ प्रवाहित करना चाहिए।

महावीर भगवानके उपदेशोंका विस्तृत विवरण करनेके लिए महीनों चाहिए। उन्होंने प्रत्येक विषयका प्रत्यक्ष और परोक्षरीतिसे विवेचन किया है। उनके उपदेशोंका संग्रह उनके बहुत पीछे देवर्धिगणिने—जो उनके २७ वे पट्टमे हुए हैं—किया है और उसमें भी देशकाल लोगोंकी शक्ति वगैरहका विचार करके कितनी ही तात्त्विक बातों पर स्थूल अलंकारोंकी पोशाक चढ़ा दी है जिससे इस समय उनका गुप्त भाव अथवा Mysticism समझनेवाले पुरुष बहुत ही थोड़े है। इन गुप्त भावोंका प्रकाश उसी समय होगा जब कुशाग्रबुद्धिवाले और आत्मिक आनन्दके अभिलाषी सैकड़ो विद्वान् साइन्स, मानसशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदिकी सहायतासे जैनशास्त्रोंका अभ्यास करेंगे और उनके छुपे हुए तत्त्वोंकी खोज करेंगे। जैनधर्म किसी एक वर्ण या किसी एक देशका धर्म नहीं; किन्तु सारी दुनियाके सारे लोगोंके लिए स्पष्ट किये हुए सत्योंका संग्रह है। जिस समय देशविदेशोंके स्वतन्त्र विचारशाली पुरुषोंके मस्तक इसकी ओर लगेंगे, उसी समय इस पवित्र जैनधर्मकी जो इसके जन्मसिद्ध ठेकेदार बने हुए लोगोंके हाथसे मिट्टी पलीद हो रही है वह बन्द होगी और तभी यह विश्वका धर्म बनेगा।

# अनेकान्त के नियम

१. अनेकान्तका वार्षिक मूल्य २॥) रु० पेशगी है। वी० पी० से मंगाने पर तीन आने रजिस्ट्रीके अधिक देने पड़ते हैं। साधारण १ प्रतिका मूल्य चार आना और इस नव-वर्षाङ्कका मूल्य बारह आना है।

२. अनेकान्त प्रत्येक इंग्रेजी माहकी प्रथम तारीखको प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अनेकान्तके एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम किरणसे १२ वीं किरण तकके ही बनाये जाते हैं। एक वर्षके बीचकी किसी किरणसे दूसरे वर्षकी उस किरण तक नहीं बनाये जाते। अनेकान्तका नवीन वर्ष दीपावलीसे प्रारम्भ होता है।

४. पता बदलनेकी सूचना ता० २० तक कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। महिने-दो महिनेके लिये पता बदलवाना हो तो अपने यहाँके डाकघरको ही लिखकर प्रबन्ध करलेना चाहिये। ग्राहकोंको पत्र व्यवहार करते समय उत्तरके लिये पोस्टेज खर्च भेजना चाहिये। साथ ही अपना ग्राहक नम्बर और पता भी स्पष्ट लिखना चाहिये, अन्यथा उत्तरके लिये कोई भरोसा नहीं रखना चाहिये।

५. कार्यालयसे अनेकान्त अच्छी तरह जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अनेकान्त ठीक समय पर न मिले तो, अपने डाकघरसे लिखा पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगली किरण प्रकाशित होनेसे सात रोज पूर्व तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे, डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे, दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन पड़ेगी।

६. अनेकान्तका मूल्य और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र किसी व्यक्ति विशेपका नाम न लिखकर निम्न पतेसे भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक "अनेकान्त"
कनॉट सर्कस पो० ब० नं० ४८ न्यू देहली

# प्रार्थनाएँ

१. "अनेकान्त" किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर अथवा आर्थिक उद्देश्यको लेकर नहीं निकाला जाता है, किन्तु वीरसेवामन्दिरके महान् उद्देश्योंको सफल बनाते हुए लोकहितको साधना तथा सच्ची सेवा बजाना ही इस पत्रका एक मात्र ध्येय है। अत: सभी सज्जनोंको इसकी उन्नतिमें सहायक होना चाहिये।

२. जिन सज्जनोंको अनेकान्तके जो लेख पसन्द आयें, उन्हें चाहिये कि वे जितने भी अधिक भाइयोंको उसका परिचय करा सकें जरूर करायें।

३. यदि कोई लेख अथवा लेखका अंश ठीक मालूम न हो, अथवा धर्मविरुद्ध दिखाई दे, तो महज़ उसीकी वजहसे किसीको लेखक या सम्पादकसे द्वेष-भाव न धारण करना चाहिये, किन्तु अनेकान्त-नीतिकी उदारतासे काम लेना चाहिये और हो सके तो युक्ति-पुरस्सर सयत भाषामें लेखकको उसकी भूल सुझानी चाहिये।

४. "अनेकान्त" की नीति और उद्देश्यके अनुसार लेख लिखकर भेजनेके लिये देश तथा समाजके सभी सुलेखोंको आमन्त्रण है।

५. "अनेकान्त" को भेजे जाने वाले लेखादिक कागज की एक ओर हाशिया छोड़कर सुवाच्य अक्षरोंमें लिखे होने चाहियें। लेखोंको घटाने, बढ़ाने, प्रकाशित करने न करने, लौटाने न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख वापिस मँगानेके लिये पोस्टेज खर्च भेजना आवश्यक है। लेख निम्न पतेसे भेजना चाहिये :—

जुगलकिशोर मुख्तार
सम्पादक अनेकान्त
सरसावा जि० सहारनपुर

Regd. No. L. 4328

* ॐ अर्हम् *
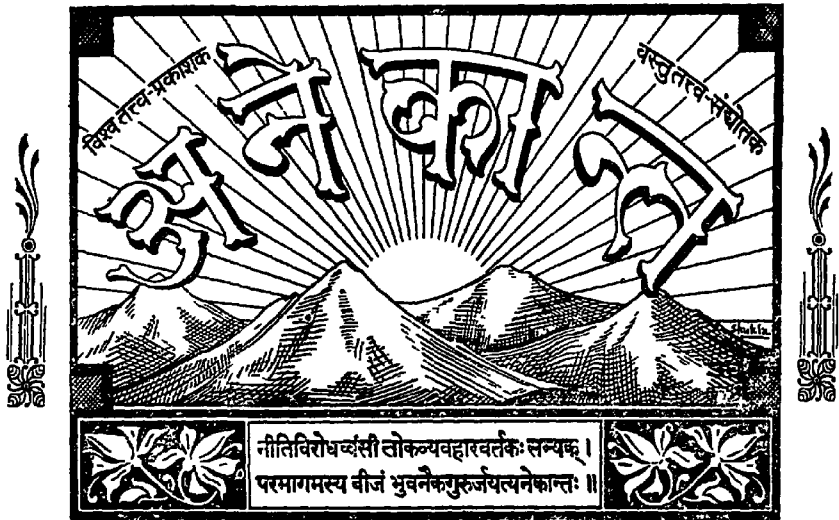
| वर्ष ४<br>किरण १ | वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम) सरसावा जिला सहारनपुर<br>फाल्गुन, वीर निर्वाण सं० २४६७, विक्रम सं० १९९७ | फरवरी<br>१९४१ |
|---|---|---|


# सत्साधु-वन्दन

**जियभय-जियउवसग्गे जियइंदिय-परिसहे जियकसाए ।**
**जियराय-दोस-मोहे जियसुह-दुक्खे णमंसामि ॥**

— योगिभक्ति

जिन्होंने भयोंको जीत लिया—जो इस लोक, परलोक तथा आकस्मिकादि किसी भी प्रकारके भयके वशवर्ती होकर अपने पदसे, कर्तव्यसे, व्रतोंसे, न्याय्य नियमोंसे च्युत नहीं होते, न अन्याय-अत्याचार तथा परपीड़नमें प्रवृत्त होते हैं और न किसी तरहकी दीनता ही प्रदर्शित करते हैं—, जिन्होंने उपसर्गोंको जीत लिया—जो चेतन-अचेतन-कृत उपसर्गों-उपद्रवोंके उपस्थित होनेपर समताभाव धारण करते हैं, अपने चित्तको कलुषित अथवा शत्रुतादिके भावरूप परिणत नहीं होने देते—, जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया—जो स्पर्शनादि पंचेन्द्रिय-विषयोंके वशीभूत (गुलाम) न होकर उन्हें स्वाधीन किए हुए हैं— जिन्होंने परीषहोंको जीत लिया—भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, विष-कण्टक, वध-बन्धन, अलाभ और रोगादिककी परीषहों-बाधाओंको समभावसे सह लिया है— जिन्होंने कषायोंको जीत लिया—जो क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, शोक और कामादिकसे अभिभूत होकर कोई काम नहीं करते—, जिन्होंने राग, द्वेष और मोहपर विजय प्राप्त किया है—उनकी अधीनता छोड़कर जो स्वाधीन बने हैं—और जिन्होंने सुख-दुःख को भी जीत लिया है—सुखके उपस्थित होनेपर जो हर्ष नहीं मनाते और न दुःखके उपस्थित होनेपर चित्तमें किसी प्रकारका उद्वेग, संक्लेश अथवा विकार ही लाते हैं, उन सभी सत्साधुओंको मैं नमस्कार करता हूँ—उनकी वन्दना-उपासना-आराधना करता हूं फिर वे चाहे कोई भी, कहीं भी और किसी नामसे भी क्यों न हों।

# चित्रमय जैनी नीति

अनेकान्तके मुखपृष्ठपर पाठक जिस चित्रका अवलोकन कर रहे हैं वह 'जैनीनीति' का भव्य चित्र है। जिनेन्द्रदेवकी अथवा जैनधर्मकी जो मुख्य नीति है और जिस पर जिनेन्द्र देवके उपासकों, जैनधर्मके अनुयायियों तथा अपना हित चाहनेवाले सभी सज्जनोंको चलना चाहिये, उसे 'जैनी नीति' कहते हैं। वह जैनी नीति क्या है अथवा उसका क्या स्वरूप और व्यवहार है, इस बातको कुशल चित्रकारने दो प्राचीन पद्योंके आधार पर चित्रित किया है और उन्हें चित्रमें ऊपर नीचे अंकित भी कर दिया है। उनमेंसे पहला पद्य श्रीअमृत-चन्द्राचार्यकी और दूसरा स्वामी समन्तभद्रकी पुण्यकृति है।

पहले पद्य 'एकेनाकर्षन्ती' में, जैनी नीतिको दूध-दही बिलोने वाली गोपी (ग्वालिनी) की उपमा देते हुए बतलाया है कि—जिस प्रकार ग्वालिनी बिलोते समय मथानीकी रस्सी को दोनों हाथोंमें पकड़कर एक सिरे (अन्त) को एक हाथसे अपनी ओर खींचती और दूसरे हाथसे पकडे हुए सिरेको ढीला करती जाती है, एकको खींचने पर दूसरेको बिलकुल छोड़ नहीं देती किन्तु पकडे रहती है, और इस तरह बिलोने की क्रियाका ठीक सम्पादन करके मक्खन निकालनेरूप अपना कार्य सिद्ध कर लेती है। ठीक उसी प्रकार जैनी नीति का व्यवहार है। वह जिस समय अनेकान्तात्मक वस्तुके द्रव्य-पर्याय या सामान्य-विशेषादिरूप एक अन्तको—धर्म या अंशको—अपनी ओर खींचती है—अपनाती है—उसी समय उसके दूसरे अन्त (धर्म या अंश) को ढीला कर देती है—अर्थात्, उसके विषयमें उपेक्षाभाव धारण कर लेती है। फिर दूसरे समय उस उपेक्षित अन्तको अपनाती और पहलेसे अपनाए हुए अन्तके साथ उपेक्षाका व्यवहार करती है—एकको अपनाते हुए दूसरेका सर्वथा त्याग नहीं करती, उसे भी प्रकारान्तरसे ग्रहण किये रहती है। और इस तरह मुख्य-गौणकी व्यवस्थारूप निर्णय-क्रियाको सम्यक् संचालित करके वस्तु-तत्वको निकाल लेती है—उसे प्राप्त कर लेती है। किसी एक ही अन्त पर उसका एकान्त आग्रह अथवा कदाग्रह नहीं रहता—वैसा होने पर वस्तुकी स्वरूपसिद्धि ही नहीं बनती। वह वस्तुके प्रधान-अप्रधान सब अन्तों पर समान दृष्टि रखती है—उनकी पारस्परिक अपेक्षाको जानती है—और इसलिये उसे पूर्णरूपमें पहचानती है तथा उसके साथ पूरा न्याय करती है। उसकी दृष्टिमें एक वस्तु द्रव्यकी अपेक्षासे यद नित्य है तो पर्यायकी अपेक्षासे वही अनित्य भी है, एक गुणके कारण जो वस्तु बुरी है दूसरे गुणके कारण वह वस्तु अच्छी भी है, एक वक्तमें जो वस्तु लाभदायक है दूसरे वक्तमें वही हानिकारक भी है, एक स्थान पर जो वस्तु शुभरूप है दूसरे स्थान पर वही अशुभरूप भी है और एकके लिये जो हेय है दूसरेके लिये वही उपादेय भी है। वह विषको मारने वाला ही नहीं किन्तु जीवनप्रद भी जानती है, और इस लिये उसे सर्वथा हेय नहीं समझती।

दूसरे पद्य 'विधेयं वार्यं' में उस अनेकान्तात्मक वस्तु-तत्त्वका निर्देश है जो जैनी नीतिरूप गोपीके मन्थनका विषय है। वह तत्त्व अनेक नयोंकी विवक्षा-अविवक्षाके वशसे विधेय, निषेध्य, उभय, अनुभय, विधेयाऽनुभय, निषेध्याऽनुभय और उभयाऽनुभयके भेदसे सात भंगरूप है और ये सातों भंग सदा ही एक दूसरेकी अपेक्षाको लिये रहते हैं। प्रत्येक वस्तुतत्त्व इन्हीं सात भेदोंमें विभक्त है, अथवा यों कहिये कि वस्तु अनेकान्तात्मक होनेसे उसमें अपरिमित धर्म अथवा विशेष संभव हैं और वे सब धर्म अथवा विशेष उस वस्तुके वस्तुतत्त्व हैं। ऐसे प्रत्येक वस्तुतत्त्वके 'विधेय' आदि

के भेदसे सात भेद हैं। इन सातसे अधिक उसके और भेद नहीं बन सकते और इस लिये ये विशेष (त्रिकालधर्म) सात की सख्याके नियमको लिये हुए हैं। इन तत्त्वविशेषोंका मन्थन करते समय जैनी नीतिरूप गोपीकी दृष्टि जिस समय जिस तत्त्वको निकालनेकी होती है उस समय वह उसी रूपसे परिणत और उसी नामसे उल्लिखित होती है, इसीसे चित्रमें विधिदृष्टि, निषेधदृष्टि आदि सात नामोंके साथ उसके सात रूप दिये हैं और उसे 'सप्तभगरूपा' लिखा है। साथ ही उसके दधिपात्र पर 'विधेय' आदि रूपसे वह तत्त्वविशेष अंकित कर दिया है जिसे वह निकालना चाहती है और जिस मध्यस्थित बड़े पात्रमेंसे वह तत्त्व आरहा है उसपर 'अनेकान्तात्मक वस्तुतत्त्व' दर्ज किया है तथा जिस नलके द्वारा वह आरहा है उसपर 'स्यात्' शब्द लिखा है, क्योंकि स्वामी समन्तभद्रके "त्रयो विकल्पास्तव सप्तधाऽमी स्याच्छब्द-नेयाः सकलेऽर्थभेदे" इस वाक्यके अनुसार सपूर्ण वस्तुभेदोंमें 'स्यात्' शब्द ही इन सातों भगों अथवा तत्त्वविशेषोंका नेता है, और इसीसे वह सातों नलों पर अंकित किया गया है। 'स्यात्' शब्द कथंचित् अर्थका वाचक, सर्वथा-नियका त्यागी और यथादृष्टकी अपेक्षा रखने वाला है।

इसके सिवाय, गोपीके 'उभयदृष्टि' तथा 'अनुभयदृष्टि' नामोंके साथमें क्रमशः क्रमार्पिता' और 'सहार्पिता' विशेषण लगाकर यह सूचित किया गया है कि उभयदृष्टि विधि-निषेध रूप दोनों तत्त्वोंको मुख्य-गौण करके क्रमशः अपनाती है; और अनुभयदृष्टि 'सहार्पिता' होनेसे किसीको भी मुख्य-गौण नहीं करती और वचनमें विधि-निषेधको युगपत् प्रतिपादन करनेकी शक्ति नहीं, इससे वह किसीको भी नहीं अपनाती— मथानीकी रस्सीके दोनों सिरोंको समानरूपसे दोनों हाथोंमें थामे हुए संचालन-क्रियासे रहित होकर स्थित है—और इसलिये उसका विषय 'अवक्तव्य' रूप है। आगेके तीनों संयोगी (मिश्र) भंगोंमें भी 'उभय' और 'अनुभय' का यही आशय संनिहित है। विधेयतत्त्व स्वरूपादि चतुष्टयकी— स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी और निषेध्यतत्त्व पररूपादि चतु-ष्टयकी—परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी—अपेक्षाको लिये हुए है।

चित्रमें गोपीका दाहिना हाथ 'विधि' का और बायाँ हाथ 'निषेध' का निदर्शक है। साथ ही, मथानीकी रस्सीको खींचनेवाला हाथ 'मुख्य' और ढीला करनेवाला हाथ 'गौण' है। और इससे यह भी स्पष्ट है कि विधिका निषेधके साथ और निषेधका विधिके साथ तथा मुख्यका गौणके साथ और गौणका मुख्यके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है—एकके विना दूसरेका अस्तित्व बन नहीं सकता। जिस प्रकार सम तुलाका एक पल्ला ऊँचा होनेपर दूसरा पल्ला स्वयमेव नीचा होजाता है—ऊँचा पल्ला नीचेके विना और नीचा पल्ला ऊँचे के विना बन नहीं सकता और न कहला सकता है, उसी प्रकार विधि-निषेधकी और मुख्य-गौणकी यह सारी व्यवस्था सापेक्ष है—सापेक्षनयवादका विषय है। और इसलिये जो निरपेक्षनयवादका आश्रय लेती है और वस्तुत्त्वका सर्वथा एकरूपसे प्रतिपादन करती है वह जैनी नीति अथवा सम्यक् नीति न होकर मिथ्या नीति है। उसके द्वारा वस्तुतत्त्वका सम्यग्ग्रहण और प्रतिपादन नहीं हो सकता। अस्तु।

जैनी नीतिका ऐसा स्वरूप होनेसे चित्रमें उसके लिये जो अनेकान्तात्मिका, गुण-मुख्यकल्पा, स्याद्वादरूपिणी, सापेक्षवादिनी, विविधनयापेक्षा, सप्तभंगरूपा, सम्यग्वस्तुग्रा-हिका और यथातत्त्वप्ररूपिका ऐसे आठ विशेषण दिये गये हैं वे सब बिल्कुल सार्थक और उसके स्वरूपके सद्योतक हैं। इनमेंसे पिछले दो विशेषण इस बातको प्रकट करते हैं कि वस्तु अथवा वस्तुतत्त्वका सम्यग्ग्रहण और प्रतिपादन इसी नीतिके द्वारा होती है। इस नीतिका विशेष विकसित स्वरूप पाठकोंको 'समन्तभद्र-विचारमाला' के लेखोंमें देखनेको मिलेगा, जो इसी विशेषाङ्कसे प्रारम्भ की गई है।

इस प्रकार जैनी नीतिके इस चित्रमें जैनधर्मकी सारी फिलोसोफीका मूलाधार चित्रित है। जैनी नीतिका ही दूसरा नाम 'अनेकान्तनीति' है और उसे 'स्याद्वादनीति' भी कहते हैं। यह नीति अपने स्वरूपसे ही सौम्य, उदार, शान्तिप्रिय, विरोध का मथन करने वाली वस्तुतत्त्वकी प्रकाशक और सिद्धि की दाता है। खेद है, जैनियोंने अपने इस आराध्य देवताको बिल्कुल भुला दिया है और वे आज एकान्त नीतिके अनन्य उपासक बने हुए हैं! उसीका परिणाम उनका मौजूदा सर्वतोमुखी पतन है, जिसने उनकी सारी विशेषताओंपर पानी फेरकर उन्हें नगण्य बना दिया है!! जैनियोंको फिरसे अपने इस आराध्य देवताका स्मरण कराते हुए उनके जीवनमें इस सन्नीतिकी प्राणप्रतिष्ठा कराने और संसारको भी इस नीति का परिचय देने तथा इसकी उपयोगिता बतलानेके लिये ही इस बार अनेकान्त पत्रने अपने मुखपृष्ठ पर 'जैनी नीति' का यह सुन्दर भावपूर्ण चित्र धारण किया है। लोकको इससे सत्प्रेरणा मिले और यह उसके हितसाधन में सहायक होवे, ऐसी शुभ भावना है।

सम्पादक

# अनेकान्तके सहायक

जिन सज्जनोंने अनेकान्तकी ठोस सेवाओंके प्रति अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए, उसे घाटेकी चिन्तासे मुक्त रहकर निराकुलतापूर्वक अपने कार्यमें प्रगति करने और अधिकाधिकरूपसे समाजसेवामें अग्रसर होनेके लिये सहायताका वचन दिया है और इस प्रकार अनेकान्तकी सहायकश्रेणीमें अपना नाम लिखाकर अनेकान्तके संचालकोंको प्रोत्साहित किया है उनके शुभ नाम सहायताकी रक़म - सहित इस प्रकार हैं:—

१२५) बा० छोटेलालजी जैन रईस, कलकत्ता।
१०१) बा० अजितप्रसादजी जैन, एडवोकेट, लखनऊ।
१००) साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन, लाहौर।
१००) साहू शान्तिप्रसादजी जैन, डालमियानगर।
१००) ला० तनसुखरायजी जैन, न्यू देहली।
१००) बा० लालचन्दजी जैन, एडवोकेट, रोहतक।
१००) बा० जयभगवानजी वकील और उनकी मार्फत, पानीपत।
५०) ला० दलीपसिंहजी काग़ज़ी और उनकी मार्फत, देहली।
२५) पं० नाथूरामजी प्रेमी, बम्बई।
२५) ला० रूड़ामलजी जैन, शामियाने वाले सहारनपुर।

आशा है अनेकान्तके प्रेमी दूसरे सज्जन भी आपका अनुकरण करेंगे और शीघ्र ही सहायक-स्कीमको सफल बनानेमें अपना पूरा सहयोग प्रदान करके यशके भागी बनेंगे।

**व्यवस्थापक 'अनेकान्त'**
वीरसेवामन्दिर, सरसावा

# समन्तभद्र-विचारमाला

[ सम्पादकीय ]

श्रीवर्द्धमानमभिनम्य समन्तभद्रं
सद्बोध-चारुचरिताऽनघवाक्स्वरूपम् ।
तच्छास्त्रवाक्यगतभद्रविचारमालां
व्याख्यामि लोक-हित-शान्ति-विवेकवृद्ध्यै ॥ १ ॥

इस मंगलपद्यके साथ मैंने जिस लेखमालाका प्रारम्भ किया है वह उन स्वामी समन्तभद्र के विचारोंकी—उन्हींके शास्त्रोंपरसे लिये हुए उनके सिद्धान्तसूत्रों, सूक्तों अथवा अभिमतोंकी—व्याख्या होगी जो सद्बोधकी मूर्ति थे—जिनके अन्तःकरणमें देदीप्यमान किरणोंके साथ निर्मल ज्ञान-सूर्य स्फुरायमान था—, सुन्दर सदाचार अथवा सच्चारित्र ही जिनका एक भूषण था, और जिनका वचनकलाप सदा ही निष्पाप तथा बाधारहित था, और इसीलिये जो लोकमें श्रीवर्द्धमान थे—बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मीसे वृद्धिको प्राप्त थे—और आज भी जिनके वचनोंका सिक्का बड़े बड़े विद्वानोंके हृदयोंपर अंकित है ❀।

वास्तवमें स्वामी समन्तभद्रकी जो कुछ भी वचन प्रवृत्ति होती थी वह सब लोककी हितकामना—लोक में विवेककी जाग्रति, शान्तिकी स्थापना और सुख-वृद्धिकी शुभभावनाको लिये हुए होती थी। यह व्याख्या भी उसी उद्देश्यको लेकर—लोकमें हितकी, विवेककी और सुखशान्तिकी एकमात्र वृद्धिके लिये—लिखी जाती है। अथवा यों कहिये कि जगतको स्वामीजीके विचारोंका परिचय कराने और उनसे यथेष्ट लाभ उठानेका अवसर देनेके लिये ही यह सब कुछ प्रयत्न किया जाता है। मैं इस प्रयत्नमें कहाँतक सफल हो सकूँगा, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। स्वामीजी का पवित्र ध्यान, चिन्तन और आराधन ही मेरे लिये एक आधार होगा—प्रायः वे ही इस विषय में मेरे मुख्यसहायक—मददगार अथवा पथप्रदर्शक होंगे।

यह मैं जानता हूँ कि भगवान समन्तभद्रस्वामी के वचनोंका पूरा रहस्य समझने और उनके विचारोंका पूरा माहात्म्य प्रकट करनेके लिये व्यक्तित्व रूपसे मैं असमर्थ हूं, फिर भी "अशेष माहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्शमिवामृताम्बुधेः"— 'अमृत समुद्रके अशेषमाहात्म्यको न जानते और न कथन करते हुए भी उसका संस्पर्श कल्याणकारक होता है' स्वामीजीकी इस सूक्तिके अनुसार ही मैंने यह सब प्रयत्न किया है। आशा है मेरी यह व्याख्या आचार्य महोदयके विचारों और उनके वचनोंके पूरे माहात्म्य को प्रकट न करती हुई भी लोकके लिये कल्याणरूप होगी और इसे स्वामीजीके विचाररूप-अमृतसमुद्रका केवल संस्पर्श ही समझा जायगा।

मेरे लिये यह बड़ी ही प्रसन्नताका विषय होगा,

❀ स्वामी समन्तभद्रका विशेष परिचय पानेके लिये देखो, लेखकका लिखा हुआ 'स्वामी समन्तभद्र' इतिहास।

यदि व्याख्यामें होने वाली किसी भी त्रुटि अथवा भूलका स्पष्टीकरण करते हुए विद्वान भाई मुझे सद्भाव-पूर्वक उससे सूचित करनेकी कृपा करेंगे। इससे भूल का संशोधन हो सकेगा और क्रमदेकर पुस्तकाकार छपानेके समय यह लेखमाला और भी अधिक उप-योगी बनाई जा सकेगी। साथ ही, जो विद्वान् महानुभाव स्वामीजीके किसी भी विचारपर कोई अच्छी व्याख्या लिखकर भेजनेकी कृपा करेंगे उसे भी, उन्हींके नामसे, इस लेखमालामें सहर्ष स्थान दिया जा सकेगा।

# १

# स्व-पर-वैरी कौन

स्व-पर-वैरी—अपना और दूसरोका शत्रु—कौन? इस प्रश्नका उत्तर संसारमें अनेक प्रकारसे दिया जाता है और दिया जा सकता है। उदाहरणके लिये—

१ स्वपरवैरी वह है जो अपने बालकोंको शिक्षा नहीं देता, जिससे उनका जीवन खराब होता है, और उनके जीवनकी खराबीसे उसको भी दुःख—कष्ट उठाना पड़ता है, अपमान-तिरस्कार भोगना पड़ता है और सत्संततिके लाभोंसे भी वंचित रहना होता है।

२ स्वपरवैरी वह है जो अपने बच्चोंकी छोटी उम्र में शादी करता है, जिससे उनकी शिक्षामें बाधा पड़ती है और वे सदा ही दुर्बल, रोगी तथा पुरुषार्थहीन—उत्साहविहीन बने रहते हैं अथवा अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं। और उनकी इन अवस्थाओंसे उसको भी बराबर दुःख-कष्ट भोगना पड़ता है।

३ स्वपरवैरी वह है जो धनका ठीक साधन पासमें न होनेपर भी प्रमादादिके वशीभूत हुआ रोजगार-धंधा छोड़ बैठता है—कुटुम्बके प्रति अपनी जिम्मे-दारीको भुलाकर आजीविकाके लिये कोई पुरुषार्थ नहीं करता; और इस तरह अपनेको चिन्ताओंमें डालकर दुःखित रखता है और अपने आश्रितजनों-बालबच्चो आदिको भी, उनकी आवश्यकताएँ पूरी न न करके, कष्ट पहुँचाता है।

४ स्वपरवैरी वह है जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलादि दुष्कर्म करता है; क्योंकि ऐसे आचरणोंके द्वारा वह दूसरोंको ही कष्ट तथा हानि नहीं पहुँचाता बल्कि अपने आत्माको भी पतित करता है और पापोंसे बाँधता है, जिनका दुखदाई अशुभ फल उसे इसी जन्म अथवा अगले जन्ममें भोगना पड़ता है।

इसी तरहके और भी बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु स्वामी समन्तभद्र इस प्रश्नपर एक दूसरे ही ढंगसे विचार करते हैं और वह ऐसा व्यापक विचार है जिसमें दूसरे सब विचार समा जाते हैं। आपकी दृष्टिमें वे सभी जन स्व-पर-वैरी हैं जो 'एकान्तग्रहरक्त' हैं (एकान्तग्रहरक्ताः स्वपरवैरिणः)। अर्थात् जो लोग एकान्तके ग्रहणमें आसक्त हैं—सर्वथा एकान्तपक्षके पक्षपाती अथवा उपासक हैं—और अनेकान्तको नहीं मानते—वस्तुमें अनेक गुण-धर्मोंके होते हुए भी उसे एक ही गुणधर्मरूप अंगीकार करते हैं वे अपने और परके वैरी हैं। आपका यह विचार देवागमकी निम्नकारिकाके 'एकान्तग्रहरक्तेषु' 'स्वपरवैरिषु' इन दो पदोंपरसे उपलब्ध होता है—

> कुशलाऽकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
> एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥ ८ ॥

इस कारिकामें इतना और भी बतलाया गया है कि ऐसी एकान्त मान्यतावाले व्यक्तियोंमेंसे किसीके यहां भी—किसीके भी मतमें—शुभअशुभकर्मकी,

अन्य जन्मकी और 'चकार' से इस जन्मकी, कर्मफल की तथा बन्ध-मोक्षादिककी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। और यह सब इसकारिकाका सामान्य अर्थ है। विशेष अर्थकी दृष्टिसे इसमें सांकेतिकरूपसे यह भी संनिहित है कि ऐसे एकान्त—पक्षपातीजन स्वपर-वैरी कैसे हैं और क्योंकर उनके शुभाशुभकर्मों, लोक-परलोक तथा बन्ध-मोक्षादिकी व्यवस्था नहीं बन सकती। इस अर्थको अष्टसहस्री—जैसे टीका ग्रन्थोमें कुछ विस्तारके साथ खोला गया है। बाकी एकान्त-वादियोंकी मुख्य मुख्य कोटयोंका वर्णन करते हुए उनके सिद्धान्तोंको दूषित ठहराकर उन्हे स्वपरवैरी सिद्ध करने और अनेकान्तको स्वपर हितकारी सम्यक् सिद्धान्तके रूपमे प्रतिष्ठित करनेका कार्य स्वयं स्वामी समन्तभद्रने ग्रन्थकी अगली कारिकाओंमे सूत्ररूपसे किया है। ग्रन्थकी कुल कारिकाएँ ( श्लोक ) ११४ हैं, जिनपर श्री अकलंकदेवने 'अष्टशती' नामकी आठसौ श्लोक-जितनी वृत्ति लिखी है, जो बहुत ही गूढ सूत्रोंमें है, और फिर इस वृत्तिको साथमें लेकर श्री विद्या-नन्दाचार्यने 'अष्टसहस्री' टीका लिखी है, जो आठ हजार श्लोक—परिमाण है और जिसमें मूलग्रन्थके आशयको खोलनेका भारी प्रयत्न किया गया है। यह अष्टसहस्री भी बहुत कठिन है, इसके कठिन पदोंको समझनेके लिये इसपर आठ हजार श्लोक-जितना एक संस्कृत टिप्पण भी बना हुआ है; फिर भी अपने विषयको पूरी तौरसे समझनेके लिये यह अभीतक 'कष्टसहस्री' ही बनी हुई है। और शायद यही वजह है कि इसका अबतक हिन्दी अनुवाद नहीं हो सका। ऐसी हालतमें पाठक समझ सकते हैं कि स्वामी समन्तभद्रका मूल 'देवागम' ग्रन्थ कितना अधिक अर्थगौरवको लिये हुए है। अकलंकदेवने तो उसे 'सम्पूर्ण पदार्थतत्त्वोको अपना विषय करने वाला स्याद्वादरूपी पुण्योदधितीर्थ' लिखा है। इस लिये मेरे जैसे अल्पज्ञोंद्वारा समन्तभद्रके विचारोंकी व्याख्या उनको स्पर्श करनेके सिवाय और क्या हो सकती है ? इसीसे मेरा यह प्रयत्न भी साधारण पाठकोके लिये है—विशेषज्ञोंके लिये नहीं। अस्तु; इस प्रासंगिक निवेदनके बाद अब मैं पुनः प्रकृत विषयपर आता हूँ और उसको संक्षेपमें ही साधारण जनताके लिये कुछ स्पष्ट करदेना चाहता हूं।

वास्तवमे प्रत्येक वस्तु अनेकान्तात्मक है—उसमे अनेक अन्त-धर्म-गुण-स्वभाव-अंग अथवा अंश हैं। जो मनुष्य किसी भी वस्तुको एक तरफसे देखता है—उसके एक ही अन्त-धर्म अथवा गुण-स्वभाव पर दृष्टि डालता है—वह उसका सम्यग्दृष्टा (उसे ठीक तौर से देखने—पहिचानने वाला) नहीं कहला सकता। सम्यग्दृष्टा होनेके लिये उसे उस वस्तुको सब ओरसे देखना चाहिये और उसके सब अन्तों, अंगों-धर्मों अथवा स्वभावोंपर नजर डालनी चाहिये। सिक्केके एक ही मुखको देखकर सिक्केका निर्णय करने वाला उस सिक्केको दूसरे मुखसे पड़ा देखकर वह सिक्का नही समझता और इस लिये धोखा खाता है। इसीसे अनेकान्तदृष्टिको सम्यग्दृष्टि और एकान्तदृष्टिको मिथ्यादृष्टि कहा है *।

जो मनुष्य किसी वस्तुके एक ही अन्त-अंग-धर्म अथवा गुणस्वभावको देखकर उसे उस ही स्वरूप मानता है—दूसरे रूप स्वीकार नहीं करता—और इस तरह अपनी एकान्त धारणा बना लेता है और

* अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वंमृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः॥
—स्वयम्भूस्तोत्रे, समन्तभद्रः।

उसे ही जैसे तैसे पुष्ट किया करता है, उसको 'एकान्त-ग्रहरक्त', एकान्तपक्षपाती अथवा सर्वथा एकान्तवादी कहते हैं। ऐसे मनुष्य हाथी के स्वरूपका विधान करने वाले जन्मान्ध पुरुषोंकी तरह आपसमें लड़ते झगड़ते हैं और एक दूसरेसे शत्रुता धारण करके जहाँ परके वैरी बनते हैं वहाँ, अपनेको हाथीके विषयमें अज्ञानी रखकर अपना भी अहित साधन करने वाले तथा कभी भी हाथीसे हाथीका काम लेनेमें समर्थ न हो सकने वाले उन जन्मान्धोंकी तरह, अपनेको वस्तु-स्वरूपसे अनभिज्ञ रखकर अपना भी अहित साधन करते हैं और अपनी मान्यताको छोड़े अथवा उसकी उपेक्षा किये बिना कभी भी उस वस्तुसे उस वस्तुका ठीक काम लेनेमें समर्थ नहीं हो सकते, और ठीक काम लेनेके लिये मान्यताको छोड़ने अथवा उसकी उपेक्षा करनेपर स्वसिद्धान्त विरोधी ठहरते हैं, इस तरह दोनों ही प्रकारसे वे अपने भी वैरी होते हैं। नीचे एक उदाहरणद्वारा इस बातको और भी स्पष्ट करके बतलाया जाता है—

एक मनुष्य किसी वैद्यको एक रोगीपर कुचलेका प्रयोग करता हुआ देखता है और यह कहते हुए भी सुनता है कि 'कुचला जीवनदाता है, रोगको नशाता है और जीवनी शक्तिको बढ़ाता है।' साथ ही, वह यह भी अनुभव करता है कि वह रोगी कुचलेके खाने से अच्छा तन्दुरुस्त तथा हृष्टपुष्ट होगया। इसपरसे वह अपनी यह एकान्त धारणा बना लेता है कि 'कुचला जीवनदाता है, रोग नशाता है और जीवनी शक्तिको बढ़ाकर मनुष्यको हृष्टपुष्ट बनाता है'। उसे मालूम नहीं कि कुचलेमें मारनेका—जीवनको नष्ट करदेनेका भी गुण है, और उसका प्रयोग सब रोगों तथा सब अवस्थाओंमें समानरूपसे नहीं किया जा सकता; न उसे मात्राकी ठीक खबर है, और न यही पता है कि वह वैद्य भी कुचलेके दूसरे मारकगुणसे परिचित था, और इस लिये जब वह उसे जीवनी शक्तिको बढ़ानेके काममें लाता था तब वह दूसरी दवाइयोंके साथमें उसका प्रयोग करके उसकी मारक शक्तिको दबा देता था अथवा उसे उन जीवजन्तुओंके घातके काममें लेता था जो रोगीके शरीरमें जीवनी शक्तिको नष्ट कर रहे हों। और इस लिये वह मनुष्य अपनी उस एकान्तधारणाके अनुसार अनेक रोगियों-को कुचला देता है तथा जल्दी अच्छा करनेकी धुनमें अधिक मात्रामें भी देदेता है। नतीजा यह होता है कि वे रोगी मरजाते हैं या अधिक कष्ट तथा वेदना उठाते हैं और वह मनुष्य कुचलेका ठीक प्रयोग न जानकर उसका मिथ्या प्रयोग करनेके कारण दण्ड पाता है, तथा कभी स्वयं कुचला खाकर अपनी प्राण-हानि भी कर डालता है। इस तरह कुचलेके विषयमें एकान्त आग्रह रखने वाला जिस प्रकार स्वपरवैरी होता है उसी प्रकार दूसरी वस्तुओंके विषयमें भी एकान्त हठ पकड़ने वालोंको स्वपरवैरी समझना चाहिये।

सच पूछिये तो जो अनेकान्तके द्वेषी हैं वे अपने एकान्तके भी द्वेषी हैं; क्योंकि अनेकान्तके बिना वे एकान्तको प्रतिष्ठित नहीं कर सकते—अनेकान्तके बिना एकान्तका अस्तित्व उसी तरह नहीं बन सकता जिस तरह कि सामान्यके बिना विशेषका अस्तित्व नहीं बनता। सामान्य और विशेष, अस्तित्व और नास्तित्व तथा नित्यत्व और अनित्यत्व धर्म जिस प्रकार परस्परमें अविनाभावसम्बन्धको लिये हुए हैं—एकके बिना दूसरेका सद्भाव नहीं बनता—उसी प्रकार एकान्त और अनेकान्तमें भी परस्पर अविना-

भावसम्बन्ध है। ये सब सप्रतिपक्षधर्म एक ही वस्तुमें परस्पर अपेक्षाको लिये हुए होते हैं। उदाहरणके तौरपर अनामिका अंगुली छोटी भी है और बड़ी भी—कनिष्ठासे वह बड़ी है और मध्यमासे छोटी है। इस तरह अनामिकामें छोटापन और बड़ापन दोनों धर्म सापेक्ष हैं, अथवा छोटी है और छोटी नहीं है ऐसे छोटेपनके अस्तित्व और नास्तित्वरूप दो अविनाभावी धर्म भी उसमें सापेक्षरूपसे पाये जाते हैं—अपेक्षाको छोड़ देनेपर दोनोंमेंसे कोई भी धर्म नहीं बनता। इसी प्रकार नदीके प्रत्येक तटमें इस पारपन और उस पारपनके दोनों धर्म होते हैं और वे सापेक्ष होनेसे ही अविरोधरूप रहते हैं।

जो धर्म एक ही वस्तुमें परस्पर अपेक्षाको लिये हुए होते हैं, वे अपने और दूसरेके उपकारी (मित्र) होते हैं और अपनी तथा दूसरेकी सत्ताको बनाये रखते हैं। और जो परस्पर अपेक्षाको लिये हुए नहीं होते वे अपने और दूसरेके अपकारी (शत्रु) होते हैं—स्वपरप्रणाशक होते हैं, और इसलिये न अपनी सत्ताको कायम रख सकते हैं और न दूसरेकी। इसीसे स्वामी समन्तभद्रने अपने स्वयंभूस्तोत्रमें भी "मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः" "परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः" इन वाक्योंके द्वारा इसी सिद्धान्तकी स्पष्ट घोषणा की है। आप निरपेक्षनयोंको मिथ्या और सापेक्षनयोंको सम्यक् बतलाते हैं। आपके विचारसे निरपेक्षनयोंका विषय अर्थक्रियाकारी न होनेसे अवस्तु है और सापेक्षनयोंका विषय अर्थकृत् (प्रयोजनसाधक) होनेसे वस्तुतत्त्व है*। इस विषयकी विशेष चर्चा एवं व्याख्या इसी लेखमालामें अन्यत्र की जायगी। यहाँपर सिर्फ इतना ही जानलेना चाहिये कि निरपेक्षनयोंका विषय 'मिथ्या एकान्त' और सापेक्षनयोंका विषय 'सम्यक् एकान्त' है। और यह सम्यक् एकान्त ही प्रस्तुत अनेकान्तके साथ अविनाभावसम्बन्धको लिये हुए है। जो मिथ्या एकान्तके उपासक होते हैं उन्हें ही 'एकान्तग्रहरक्त' कहा गया है, वेही 'सर्वथा एकान्तवादी' कहलाते हैं और उन्हे ही यहाँ 'स्वपरवैरी' समझना चाहिये। जो सम्यक् एकान्तके उपासक होते हैं उन्हे 'एकान्तग्रहरक्त' नहीं कहते, उनका नेता 'स्यात्' पद होता है, वे उस एकान्तको कथंचित् रूपसे स्वीकार करते हैं; इस लिये उसमें सर्वथा आसक्त नहीं होते और न प्रतिपक्ष धर्मका विरोध अथवा निराकरण ही करते हैं—सापेक्षावस्थामें विचारके समय प्रतिपक्ष धर्मकी अपेक्षा न होनेसे उसके प्रति एक प्रकारकी उपेक्षा तो होती है किन्तु उसका विरोध अथवा निराकरण नहीं होता। और इसीसे वे 'स्वपरवैरी' नहीं कहे जा सकते। अतः स्वामी समन्तभद्रका यह कहना बिल्कुल ठीक है कि 'जो एकान्तग्रहरक्त होते हैं वे स्वपरवैरी होते हैं।'

अब देखना यह है कि ऐसे स्वपरवैरी एकान्तवादियोंके मतमें शुभअशुभकर्म, कर्मफल, सुखदुःख, जन्मजन्मान्तर (लोकपरलोक) और बन्धमोक्षादिकी व्यवस्था कैसे नहीं बन सकती। बात बिल्कुल स्पष्ट है, ये सब अवस्थाएँ चूँकि अनेकान्ताश्रित हैं—अनेकान्तके आश्रय बिना इन परस्पर विरुद्ध मालूम पड़ने वाली सापेक्ष अवस्थाओंकी कोई स्वतन्त्र सत्ता अथवा व्यवस्था नहीं बन सकती—, इस लिये जो अनेकान्तके वैरी हैं—अनेकान्तसिद्धान्तसे द्वेष रखते हैं—उनके यहाँ ये सब व्यवस्थाएँ सुघटित नहीं हो सकतीं। अनेकान्तके प्रतिषेधसे क्रम-अक्रमका प्रतिषेध हो जाता है, क्योंकि क्रम-अक्रमकी अनेकान्तके साथ व्याप्ति है, जब अनेकान्त ही नहीं तब क्रम-

* निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥ १०८ ॥
—देवागम

अक्रमकी व्यवस्था कैसे बन सकती है ? अर्थात् द्रव्यके अभावमें जिसप्रकार गुणपर्यायकी और वृक्षके अभावमें शीशीम, जामन, नीम आम्रादिकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती उसी प्रकार अनेकान्तके अभावमें क्रम-अक्रमकी भी व्यवस्था नहीं बन सकती। क्रम-अक्रमकी व्यवस्था न बननेसे अर्थक्रियाका निषेध हो जाता है; क्योंकि अर्थक्रियाकी क्रम-अक्रमके साथ व्याप्ति है। और अर्थक्रियाके अभाव में कर्मादिक नहीं बन सकते—कर्मादिककी अर्थक्रिया के साथ व्याप्ति है। जब शुभ-अशुभकर्म ही नहीं बन सकते तब उनका फल सुख-दुख, फलभोगका क्षेत्र जन्म-जन्मान्तर (लोक-परलोक) और कर्मोंसे बँधने तथा छूटनेकी बात तो कैसे बन सकती है ? सारांश यह कि अनेकान्तके आश्रय विना ये सब शुभाशुभ कर्मादिक निराश्रित होजाते हैं, और इसलिये सर्वथा नित्यादि एकान्तवादियोंके मतमें इनकी कोई ठीक व्यवस्था नहीं बन सकती। वे यदि इन्हें मानते हैं और तपश्चरणादि अनुष्ठान-द्वारा सत्कर्मोंका अर्जन करके उनका सत्फल लेना चाहते हैं अथवा कर्मोंसे मुक्त होना चाहते हैं तो वे अपने इस इष्टको अनेकान्तका विरोध करके बाधा पहुँचाते हैं, और इस तरह भी अपनेको स्व-पर-वैरी सिद्ध करते हैं।

वस्तुतः अनेकान्त, भाव-अभाव, नित्य-अनित्य, भेद-अभेद आदि एकान्तनयोंके विरोधको मिटाकर, वस्तुतत्त्वकी सम्यग्व्यवस्था करने वाला है; इसीसे लोक-व्यवहारका सम्यक् प्रवर्तक है—विना अनेकान्तका आश्रय लिये लोकका व्यवहार ठीक बनता ही नहीं, और न परस्परका वैर-विरोध ही मिट सकता है। इसीलिये अनेकान्तको परमागमका बीज और लोकका अद्वितीय गुरु कहा गया है—वह सबोंके लिये सन्मार्ग प्रदर्शक है *। जैनी नीतिका भी वही मूलाधार है। जो लोग अनेकान्तका आश्रय लेते हैं वे कभी स्व-पर-वैरी नहीं होते, उनसे पाप नहीं बनते, उन्हें आपदाएँ नहीं सताती, और वे लोकमें सदा ही उन्नत, उदार तथा जयशील बने रहते हैं।

वीरसेवामन्दिर, सरसावा, ता० ५-११-९४१

* नीति-विरोध-ध्वंसी लोकव्यवहारवर्तकः सम्यक्।
परमागमस्य बीजं भुवनैकगुरुर्जयत्यनेकान्त ॥

---

# आवश्यकता

वीरसेवामन्दिरको 'जैनलक्षणावली' के हिन्दीसार तथा अनुवाद और प्रेसकापी आदि कार्योंके लिये दो-एक ऐसे विद्वानोंकी शीघ्र आवश्यकता है जो सेवाभावी हों और अपने कार्यको मुस्तैदी तथा प्रामाणिकताके साथ करने वाले हों। वेतन योग्यतानुसार दीजाएगी। जो सज्जन आना चाहें वे अपनी योग्यता और कृतकार्यके परिचयादि-सहित नीचे लिखे पते पर शीघ्र पत्रव्यवहार करें, और साथ ही यह स्पष्ट लिखनेकी कृपा करें कि वे कमसे कम किस वेतन पर आसकेंगे, जिससे चुनावमें सुविधा रहे और अधिक पत्रव्यवहारकी नौबत न आए।

**जुगलकिशोर मुख्तार**
अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर' सरसावा जिं० सहारनपुर

स्व० श्रीमती मूंगाबाई जैन

( धर्मपत्नी बा० छोटेलालजी जैन कलकत्ता )

# एक आदर्श जैन महिलाका वियोग !

[ सम्पादकीय ]

पाठक जिस महिला-रत्नका सौम्य चित्र अपने सामने अवलोकन कर रहे हैं वह आज अपने इस भौतिक शरीरमें विद्यमान नहीं है—कई महीने हुए वह इस नश्वर शरीरको जीर्ण-शीर्ण होता देखकर बड़े ही निर्ममलभावसे छोड़गई है—छोड़नेके बाद इसका कहीं पता भी नहीं रहा ! कोई भी स्नेही इसे रख नहीं सका !! और यह अन्तको सबोंके देखते देखते शून्यमें विलीन होगया !!! हां, विलीन होते समय मोही जीवोंको इतना पाठ ज़रूर पढा गया कि जिस शरीरको आत्मा समझा जाता है, अपना जानकर तथा स्थिर मानकर जिस पर अनुराग किया जाता है वह अपना नहीं पर है, स्थिर नहीं नश्वर है, आत्मा नहीं मिट्टीका पुतला है—पानीका बुलबुला है, बिजलीकी चमक है, तीव्र पवनसे प्रताडित हुआ मेघपटल है अथवा पर्वतके शिखरपर झंझावातके समक्ष स्थित दीपकके समान है, अपना उसपर कोई विशेष अधिकार नहीं, और इस लिये वह अनुरागका पात्र नहीं, प्रेमकी वस्तु नहीं, उसे आत्मा समझना, अपना जानना तथा स्थिर मानना भ्रम था मोहका विलास था और कोरा बहिरात्मत्व था। उसका निधन प्रकृतिके नियमानुसार अथवा 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' इस धर्मघोषणाके अनुसार हुआ है। अतः शोक व्यर्थ है। अस्तु, यह देवी हमसे वियुक्त होकर इस समय अपने यश शरीरसे स्थित है और हमारे पास इसकी केवल स्मृति स्मृति ही अवशिष्ट है। यों तो संसारमें अनेक प्राणी जन्म लेते हैं और मर जाते हैं—कोई जानता भी नहीं; परन्तु जन्म लेना उन्हीं का सफल है, वे ही जीवित रहते हैं और वे ही स्मरण किये जाते हैं, जो कोई चिरस्मरणीय कार्य कर जाते हैं। यह देवी भी ऐसी ही कुछ स्मृति छोड़ गई है और मर कर भी अपने को अमर कर गई है; इसीसे अनेकान्तके कालमोंमें आज इसकी चर्चा है।

चित्र परसे पाठकोंको इतना जाननेमें तो देर नहीं लगेगी कि इस देवीका नाम श्रीमती 'मूंगाबाई' था और यह कलकत्ताके सुप्रसिद्ध धनिक व्यापारी बाबू छोटेलालजी जैनकी धर्मपत्नी थी—ये दोनों ही बातें चित्रके नीचे अंकित हैं। साथ ही, देवीजीके चेहरेकी सारल्य-सूचक रेखाओं और शरीर के वेष-भूषा परसे कुछ अंशोंमें यह भी समझ सकेंगे कि यह देवी सरल स्वभावकी, निष्कपट व्यवहारकी एवं भोली-भाली प्रकृतिकी महिला थीं और इसे बहुत कुछ सादा जीवन पसंद था। इससे अधिकके लिये चित्र एकदम मौन है—जीवनकी विशेष घटनाओं तथा व्यक्तिके गुणविशेषोंका उससे कोई परिचय नहीं मिलता और इसलिये स्वभावसे ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि देवीजीका विशेष परिचय क्या है ? उनका जीवन कैसे व्यतीत हुआ ? उसमें उन्होंने क्या क्या आदर्श उपस्थित किया ? और अन्तको वे ऐसा कौनसा स्मरणीय कार्य कर गई हैं जिस से मरकर भी अमर होगई हैं ? इन सब बातोंका उत्तर पाठकों को देवीजीकी निम्न जीवनीसे मिलेगा जो विश्वस्तसूत्रसे प्राप्त हुई घटनाओं तथा मुद्दोंके आधार पर संक्षेपमें संकलित की गई है :—

## पितृगृह और श्वशुरगृह

श्रीमती मूंगाबाईका जन्म अग्रवाल वंशमें, बिहार प्रान्त के बढैया नामके नगरमें हुआ था। आपके पिता सेठ खेतसी दासजी अग्रवाल ( कलकत्ताकी सुप्रसिद्ध फर्म 'सेठ गोपचन्द मंगनीराम' के मालिक ) वहांके अग्रगण्य व्यवसायी और ज़मींदार थे, जिनका परिवार बहुत बडा था—इस समय भी उसकी जनसंख्या सवासौ वा डेढसौसे कम नहीं है। भाई

बहनोंमें आप सबसे छोटी और माताकी लाडली पुत्री थीं। बाल्यावस्थासे ही सीधे, सरल और कोमल स्वभावकी होनेके कारण सभी परिजन आपसे बडा स्नेह रखते थे और आपको बडी आदरकी दृष्टिसे देखते थे। पितृगृहमें आपको सब सुख-सामग्री सुलभ थी—कोई बातकी कमी नहीं थी—और आप अच्छे लाडप्यारमें पली थीं।

आपका विवाह संस्कार कलकत्ता दिगम्बर जैन-समाजके सुप्रसिद्ध सेठ रामजीवनदास सरावगीके पाचवें पुत्र बाबू छोटेलालजी के साथ हुआ था। ससुरालका परिवार भी आपको बहुत बडा प्राप्त हुआ। यहां भी आपको अपने गुणों के कारण यथेष्ट आदर-सत्कार मिला और किसी बातकी कोई कमी नहीं रही। यद्यपि आपके कोई संतान नहीं हुई, फिर भी आप सासकी सब बहुओंमें लाडली बहू बनी हुई थीं—सासको आपसे इतना अधिक प्रेम था कि उसे अपने मनकी दो बात इस बहूसे कहे विना कभी चैन ही नहीं पडती थी। आपने संतानके अभाव पर कभी भी दुःख अथवा खेद प्रकट नहीं किया और आपका हृदय इतना उदार एवं विशाल था कि उसमें अदेखसकाभावका नाम नहीं था। आप जेठ-देवरोंकी संतानको अपनी ही संतान समझती थीं और उसी दृष्टिसे उनके बालकोंका लालन-पोषण तथा प्रेमालिंगन किया करती थीं। इसीसे वे बालक भी आपसे बहुत अधिक संतुष्ट रहते और प्रेम रखते थे। परिवारके सभी जन आपसे खुश थे।

## धर्मसंस्कार और आचार-विचार

बाल्यावस्थामें आपके धर्मसंस्कार कुछ ही क्यों न रहे परन्तु श्वशुरगृह (सुसराल) में आते ही जैनधर्मके प्रति आपका गाढ अनुराग होगया, यहांके धार्मिक वातावरणसे आप बहुत प्रभावित हुईं और पूर्णरूपसे जैनधर्मका पालन करने लगीं। नित्य श्रीजैनमन्दिरको जाना, वहां जिनप्रतिमाके सम्मुख स्थिर होकर भक्तिभावसे स्तुतिपाठ पढना—दर्शन पूजन करना, शास्त्र सुनना, दोनों वक्त सामायिक करना, तत्त्वार्थसूत्र तथा भक्तामरादि अनेक स्तोत्रोंका पाठ करते रहना यह सब आपका दैनिक कार्य था। अष्टमी, चतुर्दशीको उपवास रखना, पर्युषणादि दूसरे पर्वदिनोंमें एकाशन करना, रात्रिमें भोजन नहीं करना और तीर्थवन्दना आदि धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान आप बडे प्रेमके साथ करती थीं। कई बडे बडे व्रतोंका अनुष्ठान भी आपने किया, जो अनेक वर्षोंमें पूरे हुए, व्रतोंकी पूर्तिपर उनका उद्यापन भी किया। उद्यापन के समय गिनतीके कुछ उपकरणोंको ज़रूरत न होनेपर भी रूढिके तौरपर मन्दिरजीमें चढाना आपको इष्ट नहीं था, इस लिये आप अपने संकल्पितद्रव्यको आवश्यक कार्योंमें लगा देती थी और जहां उपकरणोंका अभाव देखती थीं वहां ही उन्हें देती थीं। आपकी यह मनःपरिणति उपयोगितावादको दृष्टिमें रखने वाले विवेकको सूचित करती थी।

आपका आचार-विचार, आहार-विहार और रहन-सहन अन्य महिलाओंसे बहुत कुछ भिन्न था। खानपान, वस्त्राभूषण राग-रंग आदि किसी भी इन्द्रियविषयमें आपकी लालसा नहीं थी। समयपर जैसा भोजन मिल जाता उसीमें सन्तोष मानती, वस्त्राभूषणके लिये कोई खास आग्रह करते हुए कभी किसीने नहीं देखा, विलासितासे आप कोसों दूर रहती थीं। बाग़-बगीचों, खेल-तमाशों, सिनेमा-थियेटरोंमें जाना भी आप को पसन्द नहीं था—पसन्द था आपको सादगीके साथ जीवन व्यतीत करना और अपने धार्मिकादि कर्तव्योंके पालन की ओर सदा सावधान रहना। इसीसे आप प्रायः घरपर रहकर ही सन्तुष्ट रहती और आनन्द मानती थीं। आपका हृदय बडा ही सरल, दयालु, नम्र और उदार था। छल-कपट, मिथ्याभाषण और विश्वासघात जैसे पाप आपके पास तक नहीं फटकते थे। क्रोध करना, कठोर वचन बोलना और दूसरोंको दोष देना, यह सब आपकी प्रकृतिमें ही नहीं था। जिसका पालन-पोषण विशेष लाड-प्यारमें हुआ हो उसके लिये थोडेसे भी अप्रिय शब्द क्रोध उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु हृदयमें घाव कर देने वाले कठोरसे कठोर शब्दोंको

सुनकर भी आप कभी किसी पर क्रोध नहीं करती थीं। सदा ही हँसमुख तथा प्रसन्नवदन रहती थीं, और इससे आपकी चित्तशुद्धि एवं हृदयकी विशालता स्पष्ट जान पडती थी।

यद्यपि आप पढ़ी लिखी बहुत कम थीं, परन्तु विवेककी आपमें कोई कमी नहीं थी। और यह इस विवेकका ही परिणाम है जो इतने बडे कुटुम्बके छोटे बडे सभी जन आप पर प्रसन्न थे—२५ वर्षके गृहस्थ जीवनमें आपका अपनी दस देवरानियों-जिठानियों और दो ननदोंके साथ कभी कोई मन-मुटाव या लडाई-झगडा नहीं हुआ। कुटुम्बी जनोंमें परस्पर किसी भी प्रकारका कोई कलह, विसंवाद या मन-मुटाव न होजाय, इसके लिये आप अपने पतिको भी सदा सावधान रखती थीं। और आपके इस विवेकका सबसे बडा परिचायक तो आपका धर्माचरण एवं सदाचार है जो उत्तरोत्तर बढता ही गया और अन्तमें अपनी चरम सीमाको पहुँच गया।

## पतिभक्ति और आज्ञापालन

पतिभक्ति आपमें कूट कूटकर भरी हुई थी। हिन्दूधर्मकी आख्याओंके अनुसार आप पतिव्रतधर्मका पूरी तरहसे पालन करती थीं—पतिको हर्षित देखकर हर्षित रहतीं, दुःखितमन देखकर दुःख मानतीं और यदि वे कुपित होते तो आप मृदुभाषिणी बनजातीं तथा बेकसूर होते हुए भी क्षमा-याचना कर लेतीं। पतिकी आज्ञा आपके लिये सर्वोपरि थी, आप बडे ही प्रेम तथा आदरके साथ उसका पालन करती थीं और पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके कोई भी काम करना नहीं चाहती थीं। आज्ञापालन आपके जीवनका प्रधान लक्ष्य था और पतिपर आपका अगाध प्रेम तथा विश्वास था। इसीसे आप दिन-रात पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती थीं और इस बातका बडा ध्यान रखती थीं कि कोई ऐसी बात न की जाय और न कही जाय जिससे पतिको कष्ट पहुँचे। आप स्वयं कष्टमें रहना पसन्द करतीं परन्तु पतिको कष्ट देना नहीं चाहती थीं।

## गृहकार्योंमें योगदान और अतिथिसेवा

पतिकी सेवा-शुश्रूषाके अतिरिक्त गृहशोधन, रन्धन और अतिथिसेवादि-जैसे गृहकार्योंमें भी आप सदा ही पूरा योगदान करती थीं। श्रीमान्‌की पुत्री और श्रीमान्‌से विवाहित हूं, इस अभिमानसे आपने कभी भी इन गृहस्थोचित सांसारिक कार्योंको तुच्छ नहीं समझा। अतिथि-सेवामें आप बहुत दक्ष थीं और उसे करके बडा आनन्द मानती थीं। आपके पति बाबू छोटेलालजीका प्रेम भारतके प्राय सभी प्रान्तोंके अनेक जैन अजैन बन्धुओंसे होनेके कारण आपके घर पर अतिथियोंकी—मेहमानोंकी—कोई कमी नहीं रहती थी, बारहों महीने कुछ न कुछ अतिथि बने ही रहते थे, और उनके आतिथ्य-सम्बन्धी कुल इन्तज़ामका भार आप पर ही रहता था। जिन लोगोंने आपका आतिथ्य स्वीकार किया है वे आपके सत्कार और आत्मीयताके भावोंसे भले प्रकार परिचित हैं।

जीवनकी इन सब बातों, आचार-विचारों एवं प्रवृत्तियोंसे स्पष्ट है कि आप एक महिलारत्न ही नहीं, किन्तु आदर्श जैनमहिला थीं। अब आपके अन्तिम जीवनकी भी दो बातें लीजिये।

## रुग्णावस्था, परिचर्या और समाधिपूर्वक जीवन-लीलाकी समाप्ति

यों तो कुछ अर्सेसे आपका स्वास्थ्य कुछ-न-कुछ खराब रहने लगा था पर दिसम्बर सन् १६३६ से वह कुछ विशेष खराब हो गया था। चूँकि पतिका स्वास्थ्य कई वर्षसे संतोषप्रद नहीं था, इससे अपनी तकलीफको आप मामूली बताती रहतीं और मामूली ही उपचार करती रहती थीं।

अप्रेल सन् १९४० में एक दिन पतिने कहा—'तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक मालूम नहीं होता, जान पड़ता है तुम भले प्रकार इलाज नहीं करवाती, क्या बात है ? तब आपने उत्तर दिया कि—'वैद्यकी दवाई तो लेती ही हूं पर लाभ नहीं होरहा है।' इस पर पतिने कहा—'तो मुझसे कहा क्यों नहीं ?' तब आप कहने लगीं कि—'आपकी तबीयत ठीक नहीं रहती है, आप का चित्त यों ही किसी परिजनकी बीमारीसे उद्विग्न हो उठता है और विशेष चिन्तित हो जाता है, ऐसी हालतमें मैं आप को विशेष कष्ट कैसे देती ? मुझे तो ज्वर बना ही रहता है। इतना कहना था कि बाबू छोटेलालजी का मन घबरा उठा। दूसरे ही दिन डाक्टरी परीक्षा हुई और ऐक्सरेमें यक्ष्मा (थाइसिस) की आशंका होनेपर कलेजेमें गैस भरनेका इलाज चालू किया गया। क्योंकि डाक्टरी दवाईका आपने त्याग कर रक्खा था, उसे खाती नहीं थीं। डाक्टरीके बाद हकीमी, फिर कविराजी और पुन. डाक्टरी (इन्जेकशन) का इलाज होता रहा, पर रोग काबूमें नहीं आया।

एक दिन आप पतिसे कहने लगीं कि—'मैं अच्छी तो होनेकी नहीं व्यर्थ ही आपको कष्ट उठाना पड़ रहा है, इससे तो शीघ्र अन्त होजाय तो अच्छा हो।' यह कहते हुए उसके अभ्यन्तरका दर्द दोनों नेत्रों में दीप्त हो उठा। पतिने कहा—'देखो, तुमने कभी भी मेरेसे कोई सेवा नहीं ली और जिस दिनसे तुम मेरे पास आई हो मेरे लिये कष्ट ही कष्ट सहती रही हो और अब भी जहां तक बनता है मुझसे किसी प्रकार की सेवा नहीं लेती हो, तुम्हारी यह धारणा कि "भारतीय स्त्रियोंका जन्म ही इसलिये होता है कि वे जीवनपर्यंत पतिकी सेवा करती रहें और कष्ट होनेपर भी उनसे किसी प्रकारकी सेवा न करावें, पतिसे सेवा लेनेका अधिकार स्त्रियोंको नहीं है" आज इतने कष्ट और असमर्थताके समयमें भी जागृत है, यह देखकर आश्चर्य होता है! मैंने कितनी बार तुम्हें समझाया है कि पति-पत्नी दोनोंका परस्पर समअधिकार है—एक दूसरेसे अधिक अधिकार नहीं रखता। स्वयं ज्वरपीडित अवस्था तकमें तुम मेरी सेवा करती रही हो—मैं तुम्हारे ऋण से किस प्रकार ऊऋण होऊंगा।' इस पर वह अपनी तुच्छता प्रकट करती हुई अपने जीवनकी कई बातोंको दुहराते हुए कहने लगी कि—"मैंने तो आपका कुछ किया नहीं और न अपने कर्तव्य तक को ही पूरा किया है, उसपर भी अब आप से सेवा करवाकर क्या 'पापन' बनूं ?"

बीमारीमें जितना कष्ट आपको था उतना कष्ट यदि और किसीको होता तो न जाने परिजनोंकी कितनी आफत होती, पर आप बड़े ही धैर्य, संतोष एवं सहिष्णुताके साथ उसे सहन करती रहती थीं और कभी भी किसी पर क्रोध प्रकट नहीं करती थीं। पलंगपर पड़ी पड़ी भी नित्य भगवत भक्ति में लीन रहती थीं। मृत्युसे प्राय. १४।१५ दिन पहले आपने समाधिमरण सुननेकी इच्छा प्रकट की। उसी दिनसे अन्त तक नित्य दोनों समय समाधिमरणका पाठ सुनती रहीं और उसके प्रत्येक वाक्यका अर्थ समझती रहीं।

पतिको यह विश्वास होचुका था कि रोग असाध्य है, इससे आपके धार्मिक भावोंको बनाये रखनेका पूर्ण प्रयत्न होता रहा और धीरे धीरे आपकी इच्छानुसार सब परिग्रहका त्याग और चार प्रकारके दानोंका करवाना बड़ी सावधानीसे तथा मृत्युके अनेक दिन पूर्व ही प्रारम्भ होचुका था।

आप पतिसे एक दिन कहने लगीं कि—'मुझे और किसी बातकी चिन्ता नहीं है किन्तु आपकी तबियत अच्छी नहीं रहती है और मैं सेवासे वंचित हूं, आपकी सेवा कौन करेगा ?' पतिने कहा—'भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, मुझे अब तुमसे कोई सेवा नहीं चाहिये। मेरी मनोकामना यही है कि तुम भले ही पूर्ण अच्छी न होवो पर तुम किसी भी प्रकार जीती रहो—मुझे इसीमें संतोष है। आजसे हम दोनों मित्रताका—भाई बहनका—सम्बन्ध रक्खेंगे, भगवान तुम्हें

शीघ्र आरोग्य करें।' पर दुःखकातर, स्नेह-कोमल-नारीचित्त पतिके मनोभावको समझ गया—मुंहपर अचल दबाकर उच्छ्वसित रुलाईको रोकने लगी, पर रोक न सकी और रोपड़ीं! तथा अत्यन्त अधीर भावसे अपने अश्रुक्लान्त मुख-मण्डलको घूंघटसे छिपाकर चुप होगई!!

मृत्युके पहले दिन आपने पतिसे कह दिया था कि—'मैं कल संध्या तक ख़तम होजाऊंगी।'

मृत्युके दिन बाबू छोटेलालजी से आपने बड़ी नम्रता और अनुनय-विनयके साथ कहा—"देखिये जी, अब मुझे आप और औषध और पथ्य न देवें, मुझे तो केवल अब पानी ही देते रहें और केवल यह दो साड़ियां और एक सलूकाको छोड़कर अवशिष्ट परिग्रह का त्याग करवा देवें।" बा० छोटेलालजी ने कहा—'तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही करो पर इतना कहना मेरा मानलो कि तीन साड़िया दो सलूके और दो गमछे रखलो, बाकी सब परिग्रहका त्याग करदो, कारण वर्षाऋतुका समय है यदि कपड़ा न सूखा तो तुम नंगी पड़ी रहोगी।' आपने स्वीकृति दे दी और औषधादि बन्द कर दिये गये।

मृत्युके एक घण्टा पहले ब्र० प्यारेलालजी ( भगतजी ) वहां आगये थे (आप बीमारीमें कई बार आ आकर धर्मचर्चा आदि श्रवण कराते रहते थे और आपसे ही बीमारीमें समाधिमरण सुननेका प्रथम प्रस्ताव श्रीमतीजी ने किया था)। उन्होंने पहले भजन सुनाया फिर बड़ा समाधिमरण। आपने भगतजी से कई धार्मिक प्रश्न किये। उस दिन आपने जितनी बातें कीं और कहीं वे बड़ी ही मार्मिक थीं—आपके उस दिनके शब्द पवित्र और उज्ज्वलहृदयके अन्तस्तलके वाक्य थे। आपको यह पूर्णविश्वास होगया था कि अब मेरा अन्त होनेवाला है। भगतजीसे पूछा कि "मुनि लोग किस प्रकार रहते हैं?" भगतजीने कहा 'वे नग्न रहते हैं और ज़मीन पर सोते हैं।' फिर पूछा 'तो स्त्रियां?' उत्तर—'स्त्रियां तो नग्न नहीं रह सकतीं।' इन प्रश्नोंसे आपका तात्पर्य यह था कि समाधिमरण की ओर सब बातें तो होचुकीं, ये दो बातें और बाकी हैं सो भी किसी प्रकार पूरी हो जायें। यह पहले ही बताया जाचुका है कि आप बिना आज्ञाके कुछ न करती थीं—अस्तु, आप चाहती थीं कि यदि भगतजी कह देवें तो बा० छोटेलाल स्वीकार कर लेवेंगे।

ता० १६ अगस्त सोमवार सन् १६४० को यद्यपि आप की सर्वप्रकारकी वेदनाएँ बढ़ी हुई थीं और श्वांस भी बढ रहा था तो भी आप विचलित न हुईं और न मनको दुःखित किया। इसीसे घरवालोंको यह विश्वास न हुआ कि आप आज ही सिधार जायेंगी। भगतजी बैठे हुए थे तब बा० छोटेलाल चन्द मिनटोंके लिये दूसरे कमरेमें चले गये थे, लौटने पर उनसे कहा कि—"अब आप मेरे पास बैठे रहें।" इन शब्दोंसे बा० छोटेलालका हृदय कुछ विचलित हुआ पर उन्होंने अपनेको सम्हाल लिया। भगतजी चले गये थे; क्योंकि यह किसीको विश्वास नहीं था कि अब आप अपनी जीवनलीला समाप्त करना चाहती हैं। बस आपका श्वांस बढ़ा और दो तीन मिनटके अन्दर ही 'अरहंत-सिद्ध'का उच्चारण करते तथा 'णमोकार' मंत्र सुनते हुए संध्या ६।४० पर—ठीक उसी समय जिसकी पिछले दिन भविष्यवाणी की थी—आप स्वर्ग सिधार गईं!! और परिजनोंको शोकसागरमें निमग्न करगईं!!!

## सर्वसम्पत्तिका दान

स्वर्ग सिधारनेसे पहिले आप अपनी सर्वसम्पत्तिको औषध, शास्त्र, अभय और आहार, इन चार प्रकारके दानोंमें अर्पण कर गई हैं। इस दानका संकल्प तो मृत्युके कोई एक मास पूर्व ही होगया था, पर मृत्युके चार दिन पूर्वसे दृढ होता और बढ़ता हुआ मृत्युके दिन पूरी सावधानीके साथ पूर्ण

हुआ। दानका परिमाण करीब २५ हजार रुपये का है, जिस में दस हज़ार रुपये नकद और पंद्रह हज़ारकी मालियतका आपका जेवर शामिल है। पतिके तथा विशाल कुटुम्बके मौजूद होते हुए अपने सारे स्त्रीधनको इस तरहसे दान कर जाना स्वर्गीया श्रीमतीकी भारी वीरता और गहरी धार्मिक भावनाका द्योतक है, और इसके द्वारा आपने एक अच्छा आदर्श स्थापित किया है।

बाबू छोटेलालजीने इस रकमके लिये जिस प्रकार स्वर्गीया श्रीमतीजीसे परामर्श कर लिया था उसके अनुसार ही वे उसका व्यय कर रहे हैं, जिन संस्थाओंको जो देना था वह दे दिया गया है—कुछको भेजा जाचुका है और कुछको भेजा जारहा है।

## उपसंहार

ऐसी सुशीला, धर्मप्राण, सेवापरायण और आज्ञावशवर्तिनी धर्मपत्नीके इस दुःसह वियोगसे सुहृद्वर बाबू छोटेलालजीके हृदयको जो गहरी चोट लगी है और जो अपार दुःख तथा कष्ट पहुँचा है उसका वर्णन कौन कर सकता है ? निःसन्देह आपके जीवनका एक ज़बर्दस्त सहारा ही टूट गया है और इसीसे आपको संसार–यात्राके इस दुर्गम पथमें इस समय अपना कोई सहायक तथा सहयोगी नज़र नहीं आता। इस अवसर पर सद्विवेक ही आपको धैर्य बँधा सकता है और वही आपको मार्ग दिखा सकता है। हार्दिक भावना है कि वह सद्विवेक जो दुःख-संतापकी अचूक औषध है आपके आत्मामें शीघ्र जागृत हो और आप उसके बलपर अपने आत्माको उत्तरोत्तर अधिक उन्नत बनाने और उसका पूर्ण उत्थान करनेमें समर्थ होवें।

जिस विवेकका परिचय आपने श्रीमतीजीकी धार्मिक भावनाओंको बनाये रखने और उनके समाधिमरण एवं दानकार्य में सब तरहसे सहायक होनेमें दिया उससे भी अधिक विवेक की आवश्यकता आपको इस समय अपनेको संभालने और अपने आत्माका उत्थान करनेके लिये है, और वह विवेक वस्तु-स्वरूपके गंभीरचिन्तन तथा सत्संगतिके प्रतापसे सहज ही सिद्ध हो सकता है। आशा है वह आपको ज़रूर प्राप्त होगा।

श्रीमतीजीके दान-द्रव्यमेंसे आपने वीरसेवामन्दिरको, उस की ग्रन्थमालाके लिये, जो पाँच हज़ारकी रकम प्रदान की है, इसके लिये मैं और यह संस्था दोनों ही आपके बहुत आभारी हैं। आपकी इस सहायतासे 'जैनलक्षणावली' का काम जो कुछ समयसे सहयोगके अभावमें बन्द पडा था वह अब तेज़ी से चलाया जायगा, और आपकी इच्छानुसार लक्षणावलीमें लक्षणोंका हिन्दी सार अथवा अनुवाद भी लगाया जाकर उसे शीघ्र प्रकाशित किया जायगा।

अन्तमें सद्गत आत्माके लिये श्रद्धांजलि अर्पण करता हुआ मैं यह दृढ भावना करता हूं कि श्रीमतीजीका सद्धर्म खूब फले और उन्हें परलोकमें यथेष्ट सुख-शान्तिकी प्राप्ति होवे।

**जुगलकिशोर मुख्तार**

# तत्त्वार्थसूत्रके बीजोंकी खोज

( लेखक—पं० परमानन्द जैन शास्त्री )

तत्त्वार्थसूत्र जैनसमाजका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें थोड़े थोड़ेसे पाठ-भेदके साथ समान रूपसे माना जाता है। इसके कर्त्ता आचार्य उमास्वाति अपने समयके एक बहुत ही बड़े विद्वान् हो गये हैं, जिन्हे कुछ शिलालेखोंमें 'तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी' और 'श्रुतकेवलिदेशीय' तक लिखा है। दिग० सम्प्रदायमें आप 'उमास्वामी' और 'गृद्धपिच्छाचार्य' नामोंसे भी प्रसिद्ध हैं। तत्त्वार्थसूत्रकी अधिकांश प्रतियोंमें कर्ताविषयक जो एक प्रशस्ति-पद्य लिखा मिलता है उसमे उमास्वातिको 'गृद्धपिच्छोपलक्षित' लिखा है †। 'गृद्धपिच्छ' आपका उपनाम था, जो किसी समय गृद्ध के पंखोंकी पीछी धारण करनेके कारण प्रसिद्ध हुआ था। गृद्धपिच्छाचार्य नामका उल्लेख श्रीविद्यानंद आचार्यने अपने 'श्लोकवार्तिक' में और श्री वीरसेनाचार्यने अपनी 'धवला' टीकामें किया है ❀। इनके अतिरिक्त श्रवण बेलगोलके अनेक शिलालेखोंमे उमास्वाति नामके साथ गृद्धपिच्छाचार्य नामका भी स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है और एक शिलालेखमें उनके इस नामका उक्त कारण भी बतलाया है ‡। इन शिलालेखोंमें उमास्वातिको 'तदन्वये' और 'तदीये वंशे' जैसे पदोंके द्वारा श्री कुन्दकुन्दाचार्यका वंशज सूचित किया है और नन्दी संघकी पट्टावलिमें उन्हे कुन्दकुन्दका पट्टशिष्य लिखा है ❀। इससे प्रकट रूपमें उमास्वाति दिगम्बर आचार्य जान पड़ते हैं। दिगम्बर समाजमें आपके तत्त्वार्थसूत्र का प्रचार भी सबसे अधिक है और सबसे अधिक टीकाएँ भी इसपर दिगम्बर विद्वानों द्वारा ही लिखी गई है।

लेखक

श्वेताम्बर सम्प्रदायमे उमास्वाति

---

† तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामि(ति)मुनीश्वरम्॥

❀ एतेन गृध्रपिच्छाचार्यपर्यन्तमुनिसूत्रेण व्यभिचारिता निरस्ताप्रकृतसूत्रे। —श्लोकवार्तिक

तह गिद्धपिच्छाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि—"वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य" इदि दव्वकालो परूविदो। —धवला, जीवट्ठाण, अनु० ४

‡ श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा
ह्याचार्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्य-
च्चरित्रसंजातसुचारणर्द्धिः॥
अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोसावाचार्यशब्दोत्तरगृध्रपिच्छः।
तदन्वयेतत्सदृशोस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी॥
—शिलालेख नं० ४०,४२,४३,४७,५०

बभूव यदन्तर्म्मणिवन्मुनीन्द्रस्सकोण्डकुन्दोदित-चण्डदण्डः॥१०
अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुङ्गवेन॥११॥
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृध्रपक्षान्।
तदाप्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्यशब्दोत्तरगृध्रपिच्छं॥१२॥
—शिलालेख नं० १०८

❀ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, प्रथमभाग, किरण ३-४, पृ०७८

को श्वेताम्बराचार्य माना जाता है और तत्त्वार्थसूत्र पर पाये जाने वाले एक भाष्यको उन्हींका स्वोपज्ञ भाष्य बतलाया जाता है। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध माननीय विद्वान् पं० सुखलालजी, भाष्यको स्वोपज्ञ मानते हुए भी, तत्त्वार्थसूत्रके अपने गुजराती अनुवादको प्रकाशित करनेके समय तक और उसके बाद भी कुछ अर्से तक उमास्वातिको दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदायी न मानकर जैनसमाजका एक तटस्थ विद्वान् मानते थे और उनकी इस तटस्थताके कारण ही दोनो सम्प्रदायों द्वारा उनकी कृतिका अपनाया जाना बतलाते थे। लेकिन हालमें उन्होंने उक्त सूत्रका जो अपना हिन्दी-विवेचन प्रकाशित कराया है उसके साथके वक्तव्यमें, यह सूचना करते हुए कि—"पहले के कुछ विचार जो बादमें विशेष आधार वाले नही जान पड़े उन्हें निकालकर उनके स्थानमें नये प्रमाणो और नये अध्ययनके आधार पर खास महत्वकी बातें लिखदी हैं।" स्पष्ट घोषणा की है कि—"उमास्वाति श्वेताम्बर परम्पराके थे (दिगम्बरके नहीं) और उनका सभाष्यतत्त्वार्थ (सूत्र) सचेल पक्षके श्रुतके आधार पर ही बना है।" पं० जीके इस विचार-परिवर्तनका प्रधान कारण स्थानकवासी मुनि उपाध्याय आत्माराम जीकी लिखी हुई 'तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय' नाम की पुस्तक जान पड़ती है, जिसमे श्वेताम्बर और स्थानकवासी दोनो सम्प्रदायोंके द्वारा मान्य ३२ आगम-ग्रन्थो परसे तत्त्वार्थसूत्रकी तुलना करके यह सूचित किया गया है कि 'इन ग्रन्थों परसे आवश्यक विषयोंका संग्रह करके तत्त्वार्थसूत्र बनाया गया है', और जिसे देखकर पं० सुखलालजी 'हर्षोत्फुल्ल' हो उठे हैं और उन्होंने उसमें तत्त्वार्थसूत्रकी प्राचीन आधार-विषयक अपनी विचारणाका मूर्तरूपमें दर्शन होना लिखा है। अस्तु; तुलना कैसी की गई, यह विचार यहां अप्रस्तुत है और वह एक स्वतन्त्र लेख का ही विषय है। यहाँ पर मैं सिर्फ इतना ही बतला देना चाहता हूं कि जिन श्वेताम्बर आगमोंपरसे उक्त 'समन्वय' मे तुलना की गई है वे अपने वर्तमानरूप के लिये श्रीदेवर्द्धिगणी क्षमाश्रमणके आभारी हैं—देवर्द्धिगणीने ही उनका इधर उधर से संकलन और संशोधनादिक करके उन्हे वर्तमानरूप दिया है। और देवर्द्धिगणीका यह कार्य वीर-निर्वाण सं० ९८० (वि० सं० ५१०) का माना जाता है। तत्त्वार्थसूत्रके कर्त्ता उनसे पहले हो गये हैं, जिनका समय पं० सुखलालजीने भी "प्राचीनमें प्राचीन विक्रमकी पहली शताब्दी और अर्वाचीनसे अर्वाचीन समय तीसरी-चौथी शताब्दी" माना है। ऐसी हालतमे श्वेताम्बर आगम-ग्रंथो पर तत्त्वार्थसूत्रकी छायाका पड़ना बहुत कुछ स्वाभाविक तथा संभाव्य है, और यह हो सकता है कि तत्त्वार्थसूत्रकी कुछ बातोंको बादमे बनाये जाने वाले इन आगम-ग्रंथोमे शामिल कर लिया गया हो; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि तत्त्वार्थसूत्रके मूलाधार वर्तमानके श्वेताम्बरीय आगम-ग्रंथ हैं अथवा तत्त्वार्थसूत्र उन्हींके आधार पर बना है। हाँ, उक्त तुलनात्मक समन्वय परसे इतना नतीजा जरूर निकाला जा सकता है कि तत्त्वार्थसूत्रके अधिकांश विषयोंकी संगति वर्तमानमें उपलब्ध होने वाले श्वेताम्बरीय आगमोंके साथ भी ठीक बैठती है, और इसलिये जो आगमोंसे प्रेम रखते हैं उन्हे तत्त्वार्थसूत्र को भी उसी प्रेमकी दृष्टिसे देखना चाहिये।

जहाँ तक मैं समझता हूँ पं० सुखलालजीका उक्त मन्तव्य अभी एकांगी है—अन्तिम निर्णय नही है—निर्णयके समय उनके सामने दूसरा प्राचीन साहित्य

उपस्थित नहीं था, जो साहित्य उपस्थित था उसीपर से वे अपना उक्त मन्तव्य स्थिर करनेके लिये बाध्य हुए जान पड़ते हैं। और इसीसे आप अपने हिन्दी-विवेचन-सहित तत्त्वार्थसूत्रकी 'परिचय' नामक प्रस्तावनामें लिखते हैं—"वाचक उमास्वाति श्वेताम्बर परम्परामें हुए दिगम्बरमें नहीं ऐसा खुद मेरा भी मन्तव्य अधिक वाचन-चिन्तनके बाद आज पर्यंत स्थिर हुआ है।" साथ ही, अपनी यह अभिलाषा भी व्यक्त करते हैं कि "दिगम्बर परम्परामें विद्यमान और सर्वत्र आदरप्राप्त जो प्राचीन प्राकृत-संस्कृत शास्त्र हैं उनके साथ भी तत्त्वार्थ (सूत्र) का समन्वय दिखाया जाय।" ऐसी हालतमें यदि आपके सामने दूसरा प्राचीन साहित्य आए तो आपका उक्त मन्तव्य बदल भी सकता है।

तत्त्वार्थसूत्रके मूल आधारको मालूम करनेके लिये उन बीजोंको खोजनेकी खास जरूरत है जिनसे इस तत्त्वार्थशास्त्रके सूत्रोंका शब्द अथवा अर्थरूपमें उद्भव संभव हो और जिनका अस्तित्व इस सूत्रग्रंथ की उत्पत्तिसे पहले पाया जाता हो। ऐसे बीजोंकी खोजके लिये दिगम्बर सम्प्रदायके कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत आगमग्रंथों और श्री भूतबल्यादि-आचार्य-विरचित 'षट् खण्डागम' जैसे प्राचीन ग्रंथ बहुत ही उपयुक्त हैं; क्योंकि ये सब ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्रसे पहलेके बने हुए हैं। मेरी इच्छा बहुत दिनोंसे इन ग्रंथोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेकी थी, परन्तु अवसर नहीं मिल रहा था और इधर षट्खण्डागमादिको लिये हुए धवलादि ग्रंथोंकी प्राप्तिका अपने पास कोई साधन भी नहीं था। इससे इच्छा पूर्ण नहीं होरही थी। हालमें पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार (सम्पादक 'अनेकान्त') 'जैनलक्षणावली' आदि कार्योंके लिये देहली आदिसे धवलादिकी प्रतियाँ प्राप्त करनेमें सफल होसके हैं, और जब यह निश्चय होगया कि 'अनेकान्त' को अब वीर-सेवा-मन्दिर से ही निकाला जायगा तब आपका यह अनुरोध हुआ कि तत्त्वार्थ-सूत्रके बीजोंकी खोज अब जरूर होनी चाहिये और वह अनेकान्तके इसी विशेषाङ्कमें जानी चाहिये। यद्यपि समय बहुत कम रह गया था, फिर भी मैंने दिनरात परिश्रम करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यके उपलब्ध ग्रंथों और 'धवला' टीकामें पाए जाने वाले षट्खण्डागमपर एक सरसरी नजर डाल कर तत्त्वार्थ-सूत्रके बीजोंकी जो खोजकी है उसे मैं आज इस लेखके साथ अनेकान्तके पाठकोंके सामने रख रहा हूं। खोजके समय मेरी दृष्टि शुरू शुरूमें शब्दशः बीजोंके संग्रहकी ओर रही और बादमें वह अर्थशः बीजोंके संग्रहकी ओर भी प्रवृत्त हुई; इस दृष्टिभेद, सरसरी नजर और शीघ्रताके कारण कुछ बीजोंका छूट जाना संभव है, जिन्हें पुनः अवलोकनके अवसरपर संग्रह करके प्रकट किया जायगा। इसके सिवाय, 'महा बन्ध' नामका जो विस्तृत छठा खण्ड है और जो षट्खण्डागमके पहले पाँच खण्डोंसे पंचगुना बड़ा है वह अद्यावधिपर्यंत मुझे देखनेको नहीं मिला—उस की प्रति अभी तक मूडबिद्रीके भण्डारसे बाहर ही नहीं आई है। उसमें तत्त्वार्थसूत्रके बहुतसे बीजोंकी भारी संभावना है। यह ग्रंथ जब प्राप्त होगा तभी उसपरसे शेष बीजोंकी खोज की जायगी। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई उदार महानुभाव मूडबिद्रीसे उसकी शीघ्र कापी कराकर उसे वीरसेवामन्दिरको भिजवा देवें। ऐसा होनेपर खोजका यह काम जल्दी ही सम्पन्न तथा पूर्ण हो सकेगा। अस्तु।

वर्तमानमें जो खोज पाठकोंके सामने रक्खी जाती है उससे यह बिल्कुल स्पष्ट है और विद्वानोंको विशेष बतलानेकी जरूरत नहीं रहती कि तत्त्वार्थ-सूत्रके बीज प्राचीन दिगम्बर-साहित्यमें प्रचुरताके साथ पाए जाते हैं, और वे सब इस बातको सूचित करते हैं कि तत्त्वार्थसूत्रका मूल आधार दिगम्बरीय आगम-साहित्य है, और इसलिये वह एक दिगम्बर ग्रंथ है, जैसी कि दिगम्बर सम्प्रदायकी मान्यता है। यह खोज ऐतिहासिकों तथा संशोधकोंके लिये बहुत ही उपयोगी तथा कामकी चीज होगी और वे इसे साथमें लेकर तत्त्वार्थसूत्रके मूलस्रोतका अथवा

आधारका ठीक पता लगानेमें सफलमनोरथ हो सकेंगे, ऐसी दृढ़ आशा है। साथ ही यह भी आशा है कि जो विद्वान् उपाध्याय आत्मारामजीके 'तत्त्वार्थ-सूत्र-जैनागमसमन्वय' को लेकर यह एकांगी (एक तरफा) विचार स्थिर कर चुके हैं कि 'तत्त्वार्थसूत्र श्वेताम्बर आगमोंके आधारपर ही बना है' अथवा 'उसके सूत्रोंकी आधारशिला श्वेताम्बर परम्परामें उपलब्ध जैनागम ही हैं' उन्हें अपने उस विचारको क़ायम रखनेके लिये अब बहुत ही ज्यादा सोचना तथा विचारना पड़ेगा।

खोजको सामने रखनेसे पहले एक बात और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि, दिगम्बरीय श्रुत 'मूलाचार' मे तत्त्वार्थसूत्रोंके बहुतसे बीज पाये जाते हैं; परन्तु मूलाचारका विषय चूँकि अभी विवादापन्न है— उसके समय तथा कर्तृत्व-विषयका ठीक निर्णय नहीं हुआ—इस लिये खोजमें उसपरसे बीजोंका संग्रह नहीं किया गया। मूलाचारकी कुछ पुरानी प्रतियोंमें उसे कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ लिखा है *। कुन्दकुन्दाचार्यके ग्रंथोंके साथ उसके साहित्यादिका मेल भी बहुत कुछ है, और धवला टीकामें 'तहा आयारंगे वि वुत्तं' जैसे वाक्यके साथ जिस गाथाको उद्धृत किया गया है वह उसमें पाई जाती है— श्वेताम्बरीय आचाराङ्गमें नहीं। नाम भी उसका वास्तवमें 'आचार' शास्त्र ही जान पड़ता है। इसीसे टीकाको 'आचार-वृत्ति' लिखा है। आचारके पूर्व 'मूल' शब्द बादको जोड़ा हुआ मालूम होता है— मूलग्रंथ परसे उसकी कोई उपलब्धि नहीं होती। जिस प्रकार भगवती आराधनाकी टीका लिखते समय पं० आशाधरजीने अपनी टीकाको 'मूलाराधनादर्पण' नाम देकर ग्रंथके नामके साथ 'मूल' विशेषण जोड़ा है उसी प्रकार किसीटीकाकार के द्वारा 'आचार' नामके साथ यह 'मूल' विशेषण जोड़ा गया जान पड़ता है। बाकी 'आचार' यह नाम द्वादशांगवाणीके प्रथम अंग (आचाराङ्ग) का है ही। अतः धवला द्वारा 'आचाराङ्ग' नामसे इसका उल्लेख इस ग्रंथके अतिप्राचीन होनेको सूचित करता है। कुछ भी हो, इस विषयमें प्रोफेसर ए० एन० उपाध्याय आजकल विशेष खोज कर रहे हैं और अपनी भी खोज जारी है। यदि खोजसे 'मूलाचार' ग्रन्थ कुन्द-कुन्दकृत सिद्ध हो गया अथवा यह स्पष्ट हो गया कि इस ग्रन्थका निर्माण तत्त्वार्थसूत्रसे पहले हुआ है तो इस ग्रन्थ परसे भी तत्त्वार्थसूत्रके बीजोंका वह संग्रह किया जायगा जो इस समय छोड़ दिया गया है।

अब तत्त्वार्थसूत्रके बीजोंकी खोज अध्यायक्रम और सूत्रक्रमसे नीचे दी जाती है। जिन सूत्रोंके बीज अभी तक उपलब्ध नहीं हुए उन्हे छोड़ दिया गया है। तत्त्वार्थके सूत्रोंको मोटे टाइपमें ऊपर रक्खा गया है और नीचे उनके बीजसूत्रोंको दूसरे टाइपमें दे दिया गया है। षट्खण्डागमके सिवाय और जितने ग्रन्थोंके नाम बीज सूत्रोंके साथमें, उनका स्थान निर्देश करनेके लिये, उल्लिखित हैं वे सब श्रीकुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथ हैं। षट्खण्डागममें एक एक विषयके अनेक बीजसूत्र भी पाये जाते हैं, जिनमेंसे कुछको लेख बढ़ जानेके भयसे छोड़ दिया है और कुछको ले लिया गया है। उदाहरणके तौरपर कर्मप्रकृतियोंका विषय जीवस्थान (प्रथमखण्ड) की 'प्रकृतिसमुत्कीर्तन' नाम की प्रथमचूलिकामें आया है और चौथे खण्डसे प्रारम्भ होनेवाले 'कदि' आदि २४ अनुयोगद्वारोंमेंसे ५ वें पयडि (प्रकृति) नामके अनुयोगद्वारसे भी पाया जाता है; यहां 'पयडि' अनुयोगद्वारसे ही उस विषय के बीजसूत्रोंका संग्रह किया गया है। अनेक बीजसूत्र ऐसे भी हैं जिनमे विवक्षित तत्त्वार्थसूत्रका एक एक अंश ही पाया जाता है और वे इस बातको सूचित करते हैं कि वह तत्त्वार्थसूत्र अनेक बीजसूत्रों का आशय लेकर बनाया गया है, उनमेसे जिनजिन अंशोंके बीजसूत्र मिले हैं उन्हे साथमें प्रकट कर दिया गया है और शेषके लिये खोज जारी है :—

* ऐसी एक प्रति 'ऐलक पन्नालाल सरस्वतीभवन' बम्बईमें भी मौजूद है।

## पहला अध्याय

**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥**

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि ।

—पंचास्तिकाय १६४

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥

—पंचास्तिकाय १०६

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादी परिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥

—समयसार १५५

**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥२॥**

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।

—दर्शनपाहुड २०

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं ········ ········ ॥

—पंचास्तिकाय १०७

**तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥३॥**

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणिया पुरिसा ।
अंतरहेयोभणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥

—नियमसार १५३

**जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥**

सव्वविरओ वि भावहि णवयपयत्थाइं सत्ततच्चाइं ।

—भावप्राभृत ६५

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।
संवर णिज्जर बंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ॥

—पंचास्तिकाय १०८

**नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥**

चउव्विहो पयडिणिक्खेवो णामपयडी, ठवणपयडी, दव्वपयडी भावपयडी चेदि * । ३ ।

—षट्खंडागम

**सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥**

संतपरूवणा, दव्वपमाणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, कालाणुगमो अंतराणुगमो, भावाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ।

—षट्खंडागम, जीवट्ठाण ७

**मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥**

आभिणिसुदोहिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि ।

—पंचास्तिकाय ४१

आभिणि सुदोहि मणकेवलं ········ ········ ॥

—समयसार २०४

**आद्ये परोक्षम् ॥११॥**

**प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥**

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा ।
उवलद्धं तेहि कधं पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥
जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं त्ति भणिदमट्ठेसु ।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥

—प्रवचनसार १-५७, ५८

आभिणिबोहिय सुदओहिणाणिमणणाणि सव्वणाणी य ।
वंदे जगप्पदीवे पच्चक्खपरोक्खणाणी य ॥ १९ ॥

—योगिभक्ति १६

---

* षट्खण्डागमके इस सूत्रमें जिसप्रकार निक्षेपके चारभेदोंका पयडी (प्रकृति) के साथ उल्लेख किया गया है उसी प्रकार अन्य अनेक स्थानोंपर 'वेयणा' (वेदना) आदिके साथ भी उल्लेख किया है। इससे सूत्रकथित निक्षेपके ये चारों भेद षट्खण्डागमसम्मत हैं।

**मतिः स्मृतिः संज्ञाचिन्ताऽभिनिबोध-इत्यनर्थांतरम् ॥ १३ ॥**

सण्णा सदि मदि चिंता चेदि ॥
आभिणिवोहियणाणी……॥

—षट्खंडागम

**अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥**

चउव्विहं ताव ओग्गहावरणीयं, ईहावरणीयं, अवायावरणीयं, धारणावरणीयं चेदि । २२ ।

—षट्खण्डागम,

उग्गहईहावायाधारणागुणसंपदेहि संजुत्ता ॥

—आचार्यभक्ति ६

**अर्थस्य ॥ १७ ॥**

चक्खिंदिय अत्थोग्गहावरणीयं, सोदिंदिय अत्थोग्गहावरणीयं, घाणिंदिय अत्थोग्गहावरणीयं जिब्भिंदिय अत्थोग्गहावरणीयं, फासिंदिय अत्थोग्गहावरणीयं, णोइंदिय अत्थोग्गहावरणीयं, तं सव्वं अत्थोग्गहावरणीयं णामकम्मं ॥ २७ ॥

—षट्खंडागम

**व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥**

**न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १६ ॥**

जं तं वंजणोग्गहावरणीयं णामकम्मं तं चउव्विहं सोदिंदिय-वंजणोग्गहावरणीयं, घाणिंदिय-वंजणोग्गहावरणीयं, जिब्भिदिय वंजणोग्गहावरणीयं. फासिंदियवंजणोग्गहावरणीयं चेव ॥ २५ ॥

—षट्खण्डागम

**श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥२०॥**

आयारं सुद्दयडं ठाणं समवाय विहायपण्णत्ती ।
णायाधम्मकहाओ उवयासयाणं च अज्झयणं ॥
वंदे अंतयडदसं अणुत्तरदसं च पण्हवायरणं ।
एयारसमं …… विवायसुत्तं णमंसामि ॥
परियम्मसुत्तपढमाणुओयपुव्वाणचूलिया चेव ।
पवरवर दिट्ठिवादं तं पंचविहं पणिवदामि ॥

—श्रुतभक्ति २, ३, ४

**भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥२१॥**

जं तं भवपच्चइयं तं देवणेरइयाणं ॥५१॥

—षट्खण्डागम

**क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२**

जं तं गुणपच्चइयं तं तिरिक्खमणुस्साणं ॥५१॥

तं च अणेयविहं—देसोहि परमोहि सव्वोहि, हीयमाणं, वड्ढमाणाणं, अवट्ठिदं, अणवट्ठिदं, अणुगामि, अणणुगामि सप्पडिवादि अप्पडिवादि एयक्खेत्तमणेयखेत्तं ॥५२॥

—षट्खण्डागम

**ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥**

**विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥**

मणपज्जवणाणावरणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं चेव, विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं चेव ॥५७॥ जं तं उजुमदि मणपज्जवणाणावरणीयं णामकम्मं तं तिविहं उजुगमणोगदं जाणदि, उजुगं वचिगदं जाणदि उजुगं कायगदं जाणदि ॥५८॥ मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा सदि मदिचिंता जीविदमरणं लाहालाहं सुहदुक्खं णगरविणासं देसविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अइवुट्टि अणावुट्टि सुवुट्टि दुवुट्टि सुभिक्खं दुभिक्खं खेमाखेमभयरोगकालसंजुत्ते अत्थे विजाणदि ॥५ ॥ किंचि भूओ अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि ण अवत्तमाणाणं

जीवाणं जाणदि ॥६०॥ कालदो जहण्णेण दो तिण्णि भवग्गहणाणि ॥६१॥ उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि ॥६२॥ जीवाणं गदिमागदि पदुप्पादेदि ॥६३॥ खेत्तादो ताव जहण्णेण गाउवपुधत्तं उक्कस्सेण जोयणपुधत्तस्स अब्भंतरदो णो बहिद्धा ॥६४॥ तं सव्वं उज्जुमदि मणपज्जवणाणावरणीयं णामकम्मं ॥६५॥

जं तं विउलमदि मणपज्जवणाणावरणीयं णामकम्मं तं छव्विहं — उजुगमणुज्जुगंमणोगदं जाणदि उजुगमणुज्जगंवचिगदं जाणदि उजुगमणुज्जगं कायगदं जाणदि ॥६६॥ मणेणमाणसं पडिविंदइत्ता ॥६७॥ परेसिं सण्णा सदिमदिचिंता जीविदमरणं लाहालाहं सुहदुक्खं णगरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेत्तविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अदिवुट्टि अणावुट्टि सुवुट्टि दुवुट्टि सुभिक्खं दुब्भिक्ख खेमाखेमभयरोगकालसंजुत्ते अत्थे जाणदि ॥६८॥ किंचिभूओ अप्पणोपरेसिं च वत्तमाणाणं जीवाणं जाणदिअवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि ॥६९॥ कालदो तावजहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि ॥७०॥ जीवाणं गदिमागदिंपदुप्पादेदि ॥७१॥ खेत्तादो तावज्जहण्णेण जोयणपुधत्तं ॥७२॥ उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो णो बहिद्धा ॥७३॥ तं सव्वं विउलमणपज्जव णाणावरणीयं णामकम्मं ॥७४॥

—षट्खण्डागम, पयडिअणुयोगद्वार

### सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥

तं च केवलणाणं सगलं सपुण्णं असवत्तं ॥७७॥

सइभयव उप्पण्णणाणदरिसी स देवासुरमाणुसस्स लोगस्स आगदिं गदि चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिंठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कंकलं माणोमाणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति।

षट्खण्डागम ॥७८॥

### मतिश्रुतावधयोविपर्ययश्च ॥३१॥

···मदि अण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी···।

—षट्खण्डागम, सत्प्ररूपणा ११५

कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते।

—पंचास्तिकाय, ४१

### नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूताः नयाः ॥३३॥

णेगमववहारसंगहा सव्वाओ ॥४॥ उजुसुदोट्ठवणं णेच्छदि ॥५॥ सद्दणओ णामवेयणं भाववेयणं च इच्छदि किमिदि दव्वं णेच्छदि ॥६॥

—षट्खण्डागम

## दूसरा अध्याय

### औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च॥१॥

चदुण्हमुवसमोत्ति को भावो उवसमिओ भावो ॥ ॥

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलित्ति कोभावो खइओभावो ॥६॥ सम्मामिच्छादिट्ठित्ति कोभावो खओवसमओभावो ॥४॥ ओदइएण भावोपुणे असंजदो ॥६॥ सासणसम्मादिट्ठित्ति को भावो पारिणामिओभावो ॥३॥

—षट्खण्डागम, जीवट्ठाण, भावाणुयोगद्वार

उदएण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसुयअत्थेसु विच्छिण्णा॥

—पंचास्तिकाय, ५७

**द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २**

[ इस सूत्रमें पंचभावोंके उत्तरभेदोंकी जिस संख्याका क्रमशः निर्देश किया है वह षट्खण्डागम में भावोंके उत्तरभेदोंके कथनसे प्राय: उपलब्ध हो जाती है अथवा ग्रहण की जासकती है। ]

**सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥**

······उवसमियं सम्मत्तं उवसमियं चारित्तं जे चामण्णे एवमादिया उवसमियभावा······॥१६॥

—षट्खण्डागम

**ज्ञानाज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोग-वीर्याणि च ॥ ४ ॥**

··· खइयसम्मत्तं, खइयचारित्तं, खइयादाणलद्धी, खइयालाहलद्धी, खइयाभोगलद्धी, खइया परिभोगलद्धी, खइयावीरियलद्धी, केवलणाणं, केवल दंसणं, सिद्धे, बुद्धे, परिणिव्वुदे सव्वदुक्खाणमंतयडे त्ति जे चामण्णे एवमादिया खइया भावा······॥१७॥

—षट्खण्डागम

**ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्च-भेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमाऽसंयमाश्च ॥५॥**

······खओवसमियं मदिअण्णाणित्ति वा, खओवसमियं सुअण्णाणित्ति वा, खओवसमियं विभंगणाणित्ति वा, खओवसमियं आभिणिबोहियणाणित्ति वा, खओवसमियं सुदणाणित्ति वा, खओवसमियं ओहिणाणित्ति वा, खओवसमियं मणपज्जवणाणित्ति वा, खओवसमियं चक्खुदंसणित्ति वा, खओवसमियमचक्खुदंसणित्ति वा, खओवसमियं ओहिदंसणित्ति वा, खओवसमियं सम्मामिच्छत्तिलद्धित्ति वा, खओवसमियं सम्मत्तलद्धित्ति वा, खओवसमियं संजमासंजमलद्धित्ति वा, खओवसमियं संजमलद्धित्ति वा, खओवसमियं दाणलद्धित्ति वा, खओवसमियं लाहलद्धित्ति वा, खओवसमियं भोगलद्धित्ति वा, खओवसमियं परिभोगलद्धित्ति वा, खओवसमियं वीरियलद्धित्ति वा·········॥१८॥

—षट्खण्डागम

**गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥**

·····देवेत्ति वा, मणुस्सेत्ति वा, तिरिक्खेत्ति वा, णेरइएत्ति वा, इत्थिवेदेत्ति वा, पुरिसवेदेत्ति वा, णवुंसयवेदेत्ति वा, कोहवेदेत्ति वा, माणवेदेत्ति वा, मायावेदेत्ति वा, लोहवेदेत्ति वा, रागवेदेत्ति वा, दोसवेदेत्ति वा, मोहवेदेत्ति वा, किण्हलेस्सेत्ति वा, णीललेस्सेत्ति वा काउलेस्सेत्ति वा, तेउलेस्सेत्ति वा, पम्मलेस्सेत्ति वा, सुक्कलेस्सेत्ति वा, असंजदेत्ति वा, अविरदेत्ति वा, अण्णाणेत्ति वा, मिच्छादिट्ठित्ति वा, जे चामण्णे एवमादिया कम्मोदयपच्चइया विवागणिप्फण्णा भावा सो सव्वो विवागपच्चइयो जीवभावबंधो णाम। ॥ १४ ॥

—षट्खण्डागम

**जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥**

भवियाणुवादेण भवसिद्धिओणाम कथं भवदि ॥ ६३ ॥ पारिणामिएण भावेण ॥ ६४ ॥

—षट्खण्डागम

**उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥**

जीवो उवओगलक्खणो णिच्चो

समयसार गा० २४

**स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥**

णाणाणुवादेण अत्थि मदिआण्णाणि, सुद-

अण्णाणी, विभंगणाणी, आभिणिबोहियणाणी, सुदणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी, केवलणाणी चेदि। —षट्खण्डागम १, १, ११५

दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी चेदि। —षट्खण्डागम १, १, १३१

उवओगो खलु दुविहो णाणेणय दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स-सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि॥
आभिणिसुदोहिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणिय तिणिण वि णाणेहिं संजुत्ते॥
दंसणमविचक्खुजुदं अचक्खुजुदमवियओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविषयं केवलियं चावि पण्णत्तं॥
—पंचास्तिकाय ४०, ४१, ४२।

उवओगो णाणदंसणं भणिदा, —प्रवचनसार २, ६३

**संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥**

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा। —पंचास्तिकाय १०९

**समनस्काऽमनस्काः ॥११॥**

सण्णियाणुवादेण अत्थि सण्णी असण्णी। —षट्खण्डागम १, १, १७२

**संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥**

**पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥**

**द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥**

कायाणुवादेण अत्थि पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, तउकाइया, वणप्फइकाइया, अकाइयाचेदि ।३९।
तसकाइया, बीइंदियप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ।४४।
—षट्खण्डागम १, १, ३९, ४४

पुढवी यचदगमगणीवाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया —पंचास्तिकाय, ११०

**पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥**

**स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥**

**स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥**

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया, बीइंदिया, तीइंदिया, चदुरिंदिया, पंचिंदिया, अणिंदिया चेदि। —षट्खण्डागम, १, १, ३३

[ इंद्रियविषयोंके नामोंके लिये देखो आगे उद्धृत पंचास्तिकायकी गाथा नं० ११६, ११७ ]

**वनस्पत्यन्तानामेकं ॥ २२ ॥**

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया।
मणपरिणामविरहिया जीवा एगेंदिया भणिया॥
—पंचास्तिकाय ॥११२॥

**कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥**

संवुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा॥
जूगा गुंभी मक्कणपिपीलियाविच्छियादिया कीडा।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा॥
उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरापतंगमादीया।
रूपं रसं च गंधं फासं पुण तेवि जाणंति॥
सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू।
जलचर थलचर खचरा वलिया पंचेंदिया जीवा॥
—पंचास्तिकाय, ११४, ११५, ११६, ११७

**अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥**

... ... ...विदिसावज्जं गदिं जंति —पंचास्तिकाय ७३

**विग्रहगतौ कर्मयोगः॥ २५ ॥**

**अविग्रहाजीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥**

**एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥**

**एकंद्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥**

कम्मइकायजोगी केविचिरं कालादो होंदि, ११० ॥

जहण्णेण एक्कसमयो ॥ १११ ॥

उक्कस्सेण तिण्णिसमया ॥ ११२ ॥

अणाहारा केविचिरं कालादो होंति ॥ २१२ ॥

उक्कस्सेण तिण्णिसमया ॥ २१३ ॥

—षट्खण्डागम

**औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥**

जं तं सरीरणामं तं पंचविहं—ओरालियसरीरणामं, वेउव्वियसरीरणामं, आहारसरीरणामं, तेजइयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि ॥९९॥

—षट्खण्डागम, पयडि अणुयोगद्दार

ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजइओ ।
आहारय कम्मइओ पुग्गलदव्वप्पगा सव्वे ॥

—प्रवचनसार, २, ७९

**प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥**

**अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥**

**अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥**

जहण्णुक्कस्सपदेण ओरालियवेउव्विय आहारसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो सेढीए असंखेज्जदिभागो उक्कस्सओ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

तेजाकम्मइयसरीरस्स जहण्णओ गुणगारो अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो ॥

तस्सेव उक्कस्सओ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥

जो सो अणादिसरीरबंधो णाम ॥ ६२ ॥

—षट्खण्डागम

**नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥**

**न देवाः ॥ ५१ ॥**

**शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥**

णेरइया चदुसु ठाणेसु सुद्धणवुंसयवेदा ॥१०५॥

तिरिक्खा सुद्धणवुंसयवेदा एइंदियप्पहुडि जाव-चउरिंदियात्ति ॥१०६॥

तिरिक्खा तिवेदा ········ ॥१०७॥

देवा चदुसुठाणेसु दुवेदा इत्थिवेदा पुरिसवेदा॥११०॥

—षट्खण्ड गम

# तीसरा अध्याय

**रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥**

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥८१॥

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया ॥८२॥

—षट्खण्डागम १, १, ८१, ८२

सत्तविहा णेरइया णादव्वा पुढविभेएण ।

—नियमसार १६

**तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ।६।**

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्तादस सत्तारस बावीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥४२॥ —षट्खण्डागम

**नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।३८।**

**तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥**

मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केविचिरं कालादो होंति ॥१८॥ जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥१९॥ उक्कस्सेण तिण्णिपलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥२०॥ पंचिंदियतिरिक्ख पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी केविचिरं कालादो होंति ॥१३॥ जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥१४॥ उक्कस्सेण तिण्णिपलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥१५॥ —षट्खण्डागम

तिरिक्खाउ-मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ठिदिबंधो-पलिदोवमाणि ॥१४८॥

तिरिक्खउअ स मणुसाउअस्स जहण्णओ ठिदि-बंधो खुद्दाभवग्गहणं ॥१६०॥

उक्कस्सेण तिण्णिपलिदोवमाणि ॥६३॥ एगजी-वं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥

—पट्खण्डागम, जीवट्ठाण, कालाणुगमाणुओगद्दार।

# चौथा अध्याय

**देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥**

देवा चउण्णिकाया... —पंचास्तिकाय ११८

**वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्ना कल्पा-तीताश्च ॥ १७ ॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥**

**सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्म-ब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशता-रसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो-र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापरा-जितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १६ ॥**

**प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥**

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव उवरिमगेविज्जविमाण-वासियदेवा······ ······॥ १७० ॥

अणुदिस - अणुत्तर - विजय - वइजयंत - जयं-तापराजिदसव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा··· ॥१७१॥

—षट्खण्डागम १, १, १७०, १७१

भवणवासियवाणवेंतरजोदिसिय सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवा देवगदिभंगो ॥ १३ ॥ सणक्कुमारमा-हिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ॥१४॥ बम्हबम्हु-त्तरलांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं का-लादो होदि ॥१७॥ सुक्कमहासुक्कसदारसहस्सार कप्पवा-सियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ॥ १२० ॥ आणदपाणदआरणअच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि ॥ २६ ॥ अणुदिसजाअव-राइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ॥ २७ ॥ सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केविचिरं कालादो होदि ॥ ३२ ॥ —पट्खण्डागम

**सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके॥२६॥**

**सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥**

**त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधि-कानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकै-केन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥३२॥**

सोहम्मीसाणपहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवा-सियदेवा केविचिरं कालादो होंति ॥३०॥ उक्कस्सेण बे-सत्त-दस - चोद्दस - सोलस - अट्ठारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥ आणदप्पहुडि जाव अवराइद-विमाणवासियदेवा केविचिरं कालादो होंति ॥ ३३ ॥ उक्कस्सेण वीसं-बावीसं-तेवीसं-चउवीसं-पणुवीसं-छव्वीसं-सत्तावीसं-अट्ठावीसं एगुणत्तीसं-तीसं-एक्कत्तीसं बत्तीसं-तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥३५॥ —षट्खण्डागम

**अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥**

**परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनंतरा ॥३४॥**

जहण्णेण पलिदोवमं बे-सत्त-दस-चोद्दस-सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥३१॥ जहण्णेण अट्ठारस-वीसं - बावीसं - तेवीसं - चउवीसं - पणुवीसं- छव्वीसं-सत्तावीसं-अट्ठावीसं-एगुणतीसं-तीसं-एक्कत्तीसं-बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३४ ॥ —षट्खण्डागम

**नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥**

**दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥**

पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होति ॥४॥

जहएणेण दसवाससहस्साणि ॥ ५ ॥ विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया केविचिरं कालादो होंति ॥ ७ ॥ जहएणेण एक्कतिरिएणसत्त-दस-सत्तारस बावीस सागरोवमाणि ॥ ६ ॥ —षट्खण्डागम

**भवनेषु च ॥ ३७ ॥**

**व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥**

**परापल्योपममधिकम् ॥ ३६ ॥**

**ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥**

**तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥**

भवणवासियवाणवेंतरजोदिसियदेवा केविचिरं कालादो होति ॥ २७ ॥

जहएणेण दसवाससहस्साणि पलिदोवमस्स अट्ठमभागो ॥ २८ ॥

उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं पलिदोवमं सादिरेयं ॥ २९ ॥ —षट्खण्डागम

## पांचवां अध्याय

**अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥**

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयासं ।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणएणमइया अणुमहंता ॥४॥
आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥ १२४ ॥
—पंचास्तिकाय ४, १२४

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं ।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता ॥
—नियमसार ९

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकायत्ति ।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु बहुप्पदेसत्तं ॥
—नियमसार ३४

चेदणभावो जीओ चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥
—नियमसार, ३७

**द्रव्याणि ॥ २ ॥**

**जीवाश्च ॥ ३ ॥**

**(कालश्च) ॥ ३९ ॥**

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।
दवियं तं भएणंते अणएणभूदं तु सत्तादो ॥
—पंचास्तिकाय ६

**नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥**

**रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥**

ते चेव अत्थिकाया ते कालियभावपरिणदा णिच्चा ।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥६॥
आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥९७॥
—पंचास्तिकाय ६, ९७

पुग्गलदव्वं मोत्तं मुत्ति विरहिया हवंति सेसाणि ।
—नियमसार ३७

**आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥**

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिणामा ।
पुधगुवलद्धिविसेसा करंति एगत्तमएणत्तं ॥
—पचास्तिकाय ९६

**निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥**

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु काल करणादु ॥
—पंचास्तिकाय ९८

**असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥**

धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु ।
—नियमसार ३५-उत्तरार्ध

**आकाशस्याऽनन्ताः ॥९॥**

लोयायासे ताव इदरस्स अणंतयं हवे देहो (सा) ।
—नियमसार ३६ पूर्वार्ध

**संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥**

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स ।

—नियमसार ३५ पूर्वार्ध

**नाणोः॥ ११ ॥**

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेत्ता ।
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसखाणं ॥

—पंचास्तिकाय ८०

अपदेसो परमाणू।

—प्रवचनसार २, ७१

**लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥**

**धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥**

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥
जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी ।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥८६

—पंचास्तिकाय ९०, ८७

**एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥**

ओगाढगाढणिचिओ पुग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं वादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥

- पंचास्तिकाय ६४

**गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः॥१७॥**

धम्मदव्वस्स गमणहेदुत्तं:...... ...... ।
धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकरणा दा ॥

—प्रवचनसार २, ४१

गमणणिमित्तं धम्मं अधम्मं ठिदि जीवपुग्गलाणं च ।

—नियमसार ३०

उदयं जह मच्छ.णं गम्माणुग्गहपरं हवदि लोए ।
तह जीवपुग्गालाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥८५॥
जह हवदि धम्मदव्वं तह तं ज णेह दव्वमधम्मक्खं ।
ठिदिकिरिया जुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीय ॥

—पंचास्तिकाय ८५, ८६

**आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥**

आगासस्सवगाहो..... । —प्रवचनसार २, ४१

अवगहणं आयामं जीवादी सव्वदव्वाणं ।

—नियमसार ३०

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तहय पुग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ।

—पंचास्तिकाय ९०

**शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्१९**

देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पगत्ति णिद्दिट्ठा ।

—प्रवचनसार २, ६९

**सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥**

**परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥**

जं वा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा ।
काले विजुज्जिमाणा सुखदुक्खं दिंति भुंजंति ॥

—पंचास्तिकाय ६७

**वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥**

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य ।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति ॥

—पंचास्तिकाय २४

**स्पर्शरसगंधवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥**

फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पुग्गला होंति ।

—प्रवचनसार १, ५६

**शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतम - श्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥**

संठाणा संघादा वण्णरसफासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहु ॥

—पंचास्तिकाय १२६

**अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥**

अणुखंधवियप्पेण दु पोंग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।

—नियमसार २०

**भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥**

**भेदादणुः ॥२७॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः २८**

वग्गणणिरूवणदाए इमो एयपदेसियपरमाणु पोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ॥ १ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण ॥ २ ॥

इमा दुपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेदसंघादेण ॥ ३ ॥

उवरिल्लीणं दव्वाणं भेदेण हेट्ठिमल्लीणं दव्वाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण ॥ ४ ॥

तिपदेसियपरमाणुपोग्गलदव्ववग्गणा चदु पंच छ सत्त अट्ठ णव दस संखेज्ज असंखेज्ज परित्त अपरित्त अणंत—अणंताणंत पदेसियपरमाणुपोग्गल-दव्ववग्गणा णाम किं भेदेण किं संघादेण किं भेद-संघादेण ॥ ५ ॥ —षट्खण्डागम

—(इस विषयका कितना ही विस्तृत विवेचन षट्-खण्डागममें किया गया है)।

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।

सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥

—पंचास्तिकाय ७७

**सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौ-व्ययुक्तं सत् ॥३०॥ गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ३८**

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्ययधुवत्तसंजुत्तं।

गुणपज्जया सयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥

—पंचास्तिकाय १०

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।

गुणवं च सपज्जयं जं तं भण्णंति वुच्चंति ॥

—प्रवचनसार २, ३

**तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥**

तेकालियभावपरिणदा णिच्चा ॥ —पंचास्तिकाय ९।

**अर्पिताऽनर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥**

गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥

—पंचास्तिकाय १०

**स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥३३॥ न जघन्यगुणा-नाम् ॥३४॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥३६॥ बंधेऽधिकौ-पारिणामिकौ च ॥३७॥**

जो सो थप्पो सादियविस्ससा बंधोणाम तस्स इमो णिद्देसो वेमादा णिद्धदा वेमादा लुक्खदा बंधो ।३२।

समणिद्धा समलुक्खदा भेदो ॥ ३३ ॥

णिद्धा णिद्धा ण वज्झंति लुक्खा लुक्खा य पोग्गला।

णिद्धलुक्खा य वज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥३४॥

वेमादा णिद्धदा वेमादा लुक्खदा बंधो ॥ ३५ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।

णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बंधो जहण्णवज्जो

विसमो समो वा ॥ ३६ ॥ —षट्खण्डागम

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।

समधो दुराधिगा जदि वज्झंति हि आदि परिहीणा ॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बंधमणु भवदि।

लुक्खेण वा तिगुणदो अणुवज्झदि पंचगुणजुत्तो ॥

—प्रवचनसार २, ७३, ७४

**कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥ ४० ॥**

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।

—नियमसार ९

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।

मासो दु अयण संवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥

—पंचास्तिकाय २४

**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥**

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा॥
—पंचास्तिकाय, १३

**तद्भावः परिणामः॥ ४२॥**

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं॥
—प्रवचनसार २, १२

## छठा अध्याय

**कायवाङ्मनः कर्मयोगः॥१॥ स आस्रवः॥२॥**

जोगणिमित्तं गहणं, जोगो मणवयणकायसंभूदो।
—पंचास्तिकाय १४८

**शुभः पुण्यस्याऽशुभः पापस्य॥३॥**

रागो जस्सपसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्ते णत्थि कलुस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि॥१३५॥
चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि॥१३९॥
—पंचास्तिकाय १३५, १३९

**सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः॥४**

तं छदुमत्थवीयरायाणं सजोगिकेवलीणं तं सव्वमीरियावथकम्मं णाम। —षट्खण्डागम

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥

दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खणलवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए वच्छलदाए पवयणप्पभावणदाए अभिक्खणणाणोवजोगजुत्तदाए इच्चेदेहिं सोलसेहिं कारणेहिं जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति॥४१॥ —षट्खंडागम

## सातवाँ अध्याय

**हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥१॥ देशसर्वतोऽणुमहती॥२॥**

थूले तसकायवहे थूले मोसे तितिक्खथूले य।
परिहारो परपिम्मे परिग्गहारंभपरिमाणं॥२३॥
हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य॥२९
—चारित्रपाहुड़ २३, २९

**तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच॥३॥**

[इस सूत्रके विषयकी उपलब्धि अगले सूत्रोंकी तुलनामें बीजरूपसे उद्धृत चारित्रपाहुड़की गाथाओंसे होजाती है, जो भावनाओंकी पांच-पांच संख्याको लिये हुए है।]

**वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभाजनानि पंच॥४॥**

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाएऽहिंसाए भावणा होंति॥३१॥
—चारित्रप्राभृत ३१

**क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च॥५॥**

कोहभयहासलोहा मोहा विवरीयभावणा चेव।
विदियस्स भावणाए ए पंचेवय तहा होंति॥३२॥
—चारित्रप्राभृत ३२

**शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माऽविसंवादाः पञ्च॥६॥**

सुण्णायारणिवासो विमोचितावास ज परोधं च।

एसणसुद्धिसउंतं साहम्मीसं विसंवादे ॥ ३३ ॥

—चारित्रप्राभृत, ३३

**स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥**

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहि ।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥३४॥

—चारित्रप्राभृत ३४

**मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥८॥**

अपरिग्गहसमणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु ।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥ ३५ ॥

—चारित्रप्राभृत ३५

**मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाऽविनयेषु ॥११॥**

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ।

—नियमसार १०४

जीवेसु साणुकंपो, प्रवचनसार २, ६५

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्हि ।
होज्जं मज्झत्थोऽहं··············॥

—प्रवचनसार २, ६७

**निःशल्यो व्रती ॥१८॥**

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ॥

—नियमसार ८७

तिसल्लपरिसुद्धे । —योगिभक्ति ३

**अगार्यनगारश्च ॥१९॥**

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे निरायारं ।

—चारित्रप्राभृत, २०

**अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥**

पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावयचत्तारि संजमचरणं च सायारं ॥ २२ ॥

—चारित्रप्राभृत २२

**दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥**

दिसिविदिसिमाणपढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥ २४ ॥
सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २५ ॥

—चारित्रप्राभृत २४, २५

**मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥**

सामण्णपच्चयाखलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य बोद्धव्वा ॥

—समयसार १०९

## आठवां अध्याय

**सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥**

सपदेसो सो अप्पा कसायिदो मोहरागदोसेहिं ।
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधो त्ति परूविदो समये ॥

—प्रवचनासार २, ६६

**प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥**

जं तं बंधविहाणं तं चउव्विहं, पयडिबंधो, ठिदिबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो चेदि। —षट्खण्डागम

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि······· ।

—पंचास्तिकाय ७३

**आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥४॥**

जा सा थप्पा कम्मपयडी णाम सा अट्ठविहा—णाणा-

वरणीयकम्मपयडी एवं दंसणावरणीय-वेयणीय-मोह-णीय-आउअ-णाम-गोद-अंतराइय-कम्मपयडी चेदि ।१८।

—पट्खण्डागम ।

**पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥५॥**

[ इस सूत्रके विषयकी उपलब्धि अगले सूत्रोंकी तुलनामें बीजरूपसे उद्धृत षट्खण्डागमके सूत्रोंसे होजाती है । ]

**मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥६॥**

णाणावरणीयस्सकम्मस्स पंचपयडीओ-आभिणिबो-हियणाणावरणीय सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावर-णीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥२०॥

—षट्खण्डागम

**चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥**

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णवपयडीओ—णिद्दा-णिद्दा पयलापयला थीणगिद्धि णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदं-सणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि ॥८०॥

—पट्खण्डागम

**सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥**

वेदणीयकम्मस्स दुवे पयडीओ—सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव एवदियाओ पयडीओ ॥८३॥

—पट्खण्डागम

**दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा स्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥९॥**

ज तं मोहणीय कम्मं तं दुविहं—दंसणमोहणीयं चेव चारित्तमोहणीयं चेव ॥ ८६ ॥ जं त दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं ॥८७॥ तस्स संतकम्मं पुण-तिविहं—सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं ॥ ८८ ॥ जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं—कसायवेद-णीयं णोकसायवेदणीयं चेव ॥ ८९ ॥ जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं—अणंताणु-बंधीकोहमाणमायालोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माणमायालोहं, पच्चक्खाणावरणीयकोहमाणमायालोहं संजलणकोहमाणमायालोहं चेदि ॥९०॥ जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं—इत्थीवेद—पुरिसवेद—णवुंसयवेद—हस्स—रदि—अरदि—सोग—भय—दुगुंछा चेदि ॥९१॥

—पट्खण्डागम

**नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥**

आउअस्सकम्मस्स चत्तारि पयडीओ—णिरयाउअं, तिरिक्खाउअं, मणुसाउअं, देवाउअं चेदि ॥९४॥

—षट्खण्डागम

**गति जाति शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धन-संघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णा-नुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्-वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभ-गसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशः-कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥**

णामस्सकम्मस्स बादालीसं पिंड पयडिणामाणि—गदीणाम, जादिणाम, सरीरणाम, सरीरबंधणणाम, सरीरसंघादणाम,सरीरसंठाणणाम, सरीरअंगोवंगणाम, सरीरसंघडणणाम, वण्णणाम, गंधणाम, रसणाम, फासणाम, आणुपुव्वीणाम, अगुरुलहुगणाम, उव-घाद- परघादणाम, उस्सासणाम, आदाव, उज्जोव, विहायगदि, तस—थावर—सुहुम—पज्जत्त—अपज्जत्त—पत्तेय—साहारणसरीर — थिराथिर—सुहासुह—सुभग — दुभग—सुस्सर—दुस्सर—आदेज्जअणादेज्ज—जसकित्ति—अजसकित्ति—णिमिणतित्थयरणामं चेदि ॥१०१॥

—पट्खण्डागम

**उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥**

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ—उच्चागोदं चेव, णीचा-

गोदंचेव ॥१२६॥ —षट्खण्डागम

**दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥१३॥**

अंतराइयस्स कम्मस्स पंचपयडीओ—दाणंतराइयं, लाहंतराइयं,भोगंतराइयं,परिभोगंतराइयं,वीरियंतराइयं चेदि एवदियाओ पयडीओ ॥१३०॥ —षट्खण्डागम

**आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः परास्थितिः ॥१४॥**

पंचण्हं णाणावरणीयं णवण्हं दंसणावरणीयाणं असादावेदणीयं पंचण्हमंतराइयाणमुक्कस्सओ ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥१२२॥

—षट्खण्डागम, जीवस्थानान्तर्गतचूलिका ६

**सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥**

मिच्छत्तस्स उक्कस्सओ ठिदिबंधो सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ ॥१२२॥ —षट्खण्डागम

सोलसण्हं कसायाणं उक्कस्सो ठिदिबंधो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥१३१॥ —षट्खण्डागम

**विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥**

णवुंसयवेद अरदि सोग भयदुगुंछा णिरयगदी - तिरिक्खगदी एइंदिय पंचिंदिय जादि ओरालिय वेउव्विय तेजाकम्मइयसरीर हुंडसंठाण ओरालिय वेउव्वियसरीर अंगोवंग असंपत्तसेवट्टसंघडण वण्ण गंध रसफास णिरयगदि तिरिक्खगदि पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुलहुअ उवघाद परघाद उस्सास आदावुज्जोव अप्प - सत्थविहायगदि तस थावर बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर-अथिर असुभ दुभग दुस्सर अणादेज्ज अजसकित्ति-णिमिण णीचागोदाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ॥१३७॥ —षट्खण्डागम

पुरिस वेद हस्स रदि देवगदि समचउरससंठाण-वज्जरिसहसंघडण देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी पसत्थ-विहायगदि थिर सुभ सुभग सुस्सर आदेज्ज जसकित्ति-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो दस सागरोवम कोडाकोडीओ ॥ १३४ ॥ —षट्खण्डागम

**त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥**

णिरआउ देवाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेतीसं सागरोपमाणि ॥ १४० ॥

तिरिक्खाउ मणुसाउअस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तिण्णि पलिदोवमाणि ॥ १४८ ॥ —षट्खण्डागम

**अपरा द्वादशमूहूर्त्ता वेदनीयस्य ॥१८॥**

सादावेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ताणि ॥ १६९ ॥

पंच दंसणावरणीय असादावेदणीयाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णिसत्तभागा, पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागे ऊणया ॥ १६६ ॥

**नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥**

जसकित्ति उच्चागोदाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ-मुहुत्ताणि ॥ २०१ ॥

**शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥ २० ॥**

पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं लोभसंजुलणस्स पंचण्हमंतराइयाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतो मुहुत्तं ॥१६३॥ —षट्खण्डागम

## नववां अध्याय

**आश्रवनिरोधः संवरः ॥१॥**

आसवणिरोहो (संवरो) —समयसार १६६

**तपसा निर्जरा च ॥३॥**

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं ।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥

—पंचास्तिकाय १४४

**सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥**

कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाइअसुहभावाणं।
परिहारो मणगुत्ती ववहारणयेण परिकहियं ॥६६॥
थीराजचोरभत्तकहादिवयणस्स पावहेउस्स।
परिहारो वचगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा ॥६७॥
बंधण-छेदण-मारण-आंकुचण तह पसारणादीया।
कायकिरियाणियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुत्ति त्ति ॥६८॥

—नियमसार ६६, ६७, ६८

**ईर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥**

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि।
गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥
पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स ॥६२॥
कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी ॥६३॥
पोथइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा ॥६४॥
पासुगभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स ॥६५॥

—नियमसार ६१, ६२, ५३, ६४, ६५

**उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥**

उत्तम खम मद्दवज्जव सच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तव चागम किंचण्हं बम्हा इदि दसविहं होदि ॥७०॥

—बारसअणुवेक्खा ७०

**अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥**

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं।
आसव संवर णिज्जर धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो ॥२॥

—बारसअणुवेक्खा ॥ २ ॥

**मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याःपरिषहाः ८**

जे बावीस परीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खवणिज्जरा साहू ॥१२॥

—सूत्रप्राभृत १२

**सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातमिति चारित्रम् १८**

संजमाणुवादेण अत्थि संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा, असंजदा चेदि ॥ १२३ ॥

—षट्खण्डागम १, १, १२३

सामाइयं तु चारित्तं छेदोवट्ठावणं तहा।
तं परिहारविसुद्धिं च संजमं सुहुमं पुणो ॥
जहाखादं तु चारित्तं, ...... ।  —चारित्रभक्ति ३,४

**अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥**

जं तं तवोकम्मं णाम ॥२४॥
तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मंणाम॥२५॥

—षट्खण्डागम

**ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥**

विणयं पंचपयारं,  —भावप्राभृत १०२

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकाल पसत्था।

—दर्शनप्राभृत २३

**आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥ २४ ॥**

विज्जावच्चं दसवियप्पं। —भावप्राभृत १०३

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं।
लोगिगजणसंभासा ण णिंददा वा सुहोवजुदा॥
—प्रवचनसार ३, ५३

**वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः २५**

जा तत्थवायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थयथुइधम्मकहा वा जेचामण्णेण एवमादिया॥१२॥ —षट्खण्डागम

**आर्त्तरौद्रधर्मशुक्लानि॥ २८॥**

झायहि धम्मं सुक्कं अट्टं रुद्दं च झाणमुत्तूणं।
—भावप्राभृत ११९

**सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः४५**

संजदासंजदस्स गुणसेडिगुणो असखेज्जगुणो॥२१८॥ अधापवत्तसंजदस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो॥२१९॥ अणंताणुबंधिविसंजोइयंतस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो॥२२०॥ दंसणमोहक्खवगस्स गुणसेडिगुणो असंखेज्जगुणो॥२२१॥ कसायउवसामगस्स गुणसेढिगुणो असंखेज्जगुणो॥२२२॥ उवसंतकसाय वीदरागछदुमत्थस्स गुणसेडिगुणो असखेज्जगुणो॥२२३॥ कसायखवगस्स गुणसेढिगुणो असंखेज्जगुणो॥२२४॥ खीणकसाय वीदरायछदुमत्थस्स गुणसेढिगुणो असंखेज्जगुणो॥२२५॥ —षट्खण्डागम

## दशवां अध्याय

**मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्। १॥**

संपुण्णं पुण चारित्तं पडिवज्जतो तदो चत्तारि कम्माणि अंतोमुहुत्तट्ठिदं ट्ठवेदि णाणावरणीयं दंसणावरणीयं मोहणीयमंतराइयं चेदि॥३२९॥ —षट्खण्डागम

**बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः॥ २॥**

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवंतेण सो मोक्खो॥
—पंचास्तिकाय १५३

आउस्स खयेण पुणो णिण्णासो होइ सेसपयडीणं।
पच्छा पावइ सिग्घं लोयग्गं समयमेत्तेण॥१७५॥
—नियमसार १८१

**अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः। ४॥**

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी हांति अचिरेण॥
—दर्शनप्राभृत ६

विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलं विरियं।
केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं॥१८१॥
—नियमसार १८१

**तदनंतरमूर्ध्वं गच्छात्यालोकान्तात्॥५॥**

कम्मविमुक्को अप्पा गच्छइ लोयग्गपज्जंतं।
—नियमसार १८२

**धर्मास्तिकायाभावात्॥ ८॥**

धम्मत्थिकायभावो तत्तो परदो ण गच्छंति॥
—नियमसार १८३

**क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः॥ ९॥**

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयासणिव्वुदे सिद्धे।
अंतयडेदरसिद्धे उक्कस्स जहण्णमज्झिमोगाहे॥२॥
उड्ढमह तिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्गणिरुवसग्गे दीवादहिणिव्वुदे य वंदामि॥३॥
पच्छायडे य सिद्धे दुगतिगचदुणाणपंचचदुरजमे।

परिवड्ढिदा परिवड्ढिदे संजममम्मत्तणाणमादीहिं ॥४॥
साहरणा साहरणे मम्मुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिदपलियंकणिसण्णे विगय मले परमणाणगे वंदे॥५॥
पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति॥६॥
पत्तेयसयं बुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं समये समयं पणिवदामि ॥ ७ ॥

—सिद्धभक्ति २, ३, ४, ५, ६, ७

## आभार और निवेदन

इस लेखके तय्यार करनेमें मुझे मुख्तार साहब (अधिष्ठाता वीरसेवामंदिर) से जो सहाय एवं सहयोग प्राप्त हुआ है और खोजके समय उनकी 'धवलादिश्रुत-परिचय' नामक हजार पेजवाली नोट्सबुकसे जो सहायता मिली है उस सबके लिये मैं आपका अतीव आभारी एवं कृतज्ञ हूँ।

अन्तमें विद्वानोंसे मेरा यह सानुरोध निवेदन है कि वे इस लेखपर गम्भीरताके साथ विचारकर अपना मत स्थिर तथा व्यक्त करें। और जिन विद्वानों की दृष्टिमें प्राचीन दिगम्बर साहित्यको देखते हुए दूसरे बीजसूत्र भी आए हों वे उन्हें शीघ्र ही यहाँ भेजने अथवा प्रकट करने की कृपा करें। 'महाबन्ध' परसे बीजसूत्रोंका संग्रह बहुत ही आवश्यक है, अतः उसकी प्रति कराकर वीरसेवामंदिरको भिजवानेका श्रेय या तो किसी महानुभावको लेना चाहिये और या मूडबिद्रीमें ही किसी योग्य विद्वान्के द्वारा उसपर से बीजसूत्रोंका संग्रह कराकर तुलनाके साथ प्रकट करना चाहिये। साथ ही, लोकविभागादि-विषयक दूसरे ऐसे प्राचीन ग्रंथोंकी भी खोज होनी चाहिये जिनका निर्माण तत्त्वार्थसूत्रसे पहले हुआ हो। त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें 'लोकविनिश्चय' जैसे कई प्राचीन ग्रंथोंका उल्लेख मिलता है, उन्हें खोजकर जरूर देखना चाहिये। ऐसा होनेपर तत्त्वार्थसूत्रके बीजोंकी खोज मुकम्मल हो सकेगी।

वीरसेवामंदिर, सरसावा, ता० २०-१-१९४१

---

# साहित्यपरिचय और समालोचन

**१ कविकुल किरीट-सूरिशेखर**—लेखक, क्रमाठी। प्रकाशक, चन्दूलाल जमनादास शाह, छाणी (बडोदा)। पृष्ठ संख्या, ४५०। मूल्य, सजिल्दका आठआना।

यह लब्धिसूरीश्वर ग्रन्थमालाका ९ वाँ ग्रन्थ है, जो गुजराती भाषामें विजयलब्धिसूरिके जीवन-चरित्रको लिये हुए है। जीवनचरित्र बहुत कुछ खोजके साथ लिखा गया जान पड़ता है और उसमें सूरि-जीका जीवनवृत्त उनके कार्यों तथा विहारोंके परिचय-सहित वर्णित है। चित्र भी दीक्षाकालसे लेकर अनेक अवस्थाओंके दिये हैं। पुस्तकमें सब-मिलाकर चित्र दो दर्जनके करीब हैं, जिनमें गुरु श्रीकमलविजय, और श्रीमद्विजयानन्दसूरि आदिके चित्र भी शामिल हैं। पुस्तककी भाषा अच्छी प्रौढ और लेखनशैली सुन्दर है। छपाई-सफाई और गेट-अप सब आकर्षक हैं। इतनी बड़ी तथा चित्रोंवाली पुस्तकका मूल्य आठ आना बहुत कम है और वह गुरुभक्तिको लिये हुए प्रचारकी दृष्टिसे जान पड़ता है। परन्तु पुस्तकमें विषयसूचीका न होना बहुत खटकता है। पुस्तक पढने तथा संग्रह करनेके योग्य है।

**२ सागारधर्मामृत सटीक**—मूललेखक, पं० प्रवर आशाधर। अनुवादक, व्याख्यानवचस्पति पं० देवकीनन्दन जैनशास्त्री कारंजा। प्रकाशक, मूलचन्द किसनदास कापड़िया, सूरत। पृष्ठसंख्या ३६४, बड़ा साइज। मूल्य, सजिल्द प्रतिका ३)

इस ग्रंथका विषय अपने नामसे ही स्पष्ट है। पं० आशाधर जी विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके बहुश्रुत प्रतिभाशाली विद्वान् होगये हैं। अपने पूर्वाचार्योंके श्रावकाचार-विषयक ग्रंथोंका अच्छा मनन और परिशीलन करके इस ग्रंथकी रचना की है। ग्रंथमें गृहस्थोंकी क्रियाओंका और उनके कर्तव्य दिका विस्तृत विवेचन है। ग्रंथकर्ताने इस पर स्वयं एक टीका भी लिखी है जो इस ग्रथके साथ माणिकचन्द्र ग्रंथमालामें प्रकाशित होचुकी है। इस टीकामें मूलग्रन्थके पद्योंका विस्तृत एवं उपयोगी विवेचन किया है। श्रावकाचारविषयक ग्रन्थोंमें यह अपनी जोड़का एक ही ग्रन्थ है।

ग्रंथके प्रारंभमें अनुवादक जी ने ग्रंथके प्रत्येक अध्यायका संक्षिप्त परिचय 'विषय प्रवेश' शीर्षकके नीचे हिन्दी भाषामें लगा दिया है, जिससे ग्रंथके प्रतिपाद्य विषयका संक्षिप्त परिचय पाठकोंको सरलतासे हो जाता है। इसके पश्चात् ढाई फार्मकी उपयोगी एवं महत्वपूर्ण प्रस्तावना है, जो जैन समाजके प्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी बम्बईकी लिखी हुई है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टिसे पं० आशाधरजीके विषयमें बड़े परिश्रमसे महत्वपूर्ण सामग्रीका संकलन किया गया है। इससे जिज्ञासुओंको पं० आशाधरजीका बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। आपकी उक्त स्वोपज्ञ टीकाके अनुसार पं० देवकीनन्दन जी शास्त्रीने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। यद्यपि अनुवादमें कहीं कहीं टीकाके कितने ही स्थल छोड़ दिये गये हैं और कितने ही स्थलोंपर अनुवाद करनेमें संकोच भी किया गया है। उदाहरणके लिये पृष्ठ २४७ पर दिये हुए ३४ वें श्लोककी स्वोपज्ञटीकाका 'गृहत्यागविधि' वाला कितना ही उपयोगी अंश छोड़ दिया गया है। भाषा-साहित्यको कुछ और भी परिमार्जित करनेकी आवश्यकता थी। अस्तु; आपका यह उद्योग सराहनीय है। अच्छा होता यदि ऐसे ग्रंथके अनुवादके साथमें अन्य आचार-विषयक ग्रन्थोंके कथनका तुलनात्मक टिप्पण भी लगा दिया जाता और प्रतिमा आदिविषयक कुछ कथनोंके विवेचनात्मक परिशिष्ट भी लगा दिये जाते। इसके सिवाय, संस्कृत टीकामें प्रयुक्त हुए अथवा 'उक्तं च' आदि रूपसे उद्धृत प्राचीन पद्योंकी अकारादि क्रमसे एक सूची भी साथमें लगाई जानी चाहिये थी। इन सबके होनेपर प्रस्तुत संस्करणकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती। फिर भी यह संस्करण अपने पिछले संस्करणकी अपेक्षा बहुत कुछ उपयोगी है। छपाई साधारण और कहीं कहींपर अनेक अशुद्धियोंको लिये हुए है। आशा है कापडिया जी अगले संस्करण में इन सब त्रुटियोंकी पूर्ति करके उसे और भी उपयोगी बनानेका प्रयत्न करेंगे।

—परमानन्द शास्त्री

# अनेकान्तके प्रेमियोंसे आवश्यक निवेदन

जो सज्जन 'अनेकान्त' से प्रेम रखते हैं, उसकी ठोस सेवाओंसे कुछ परिचित हैं—यह समझते हैं कि उसके द्वारा क्या कुछ सेवाकार्य होरहा है—हो सकता है,—और साथ ही यह चाहते हैं कि यह पत्र अधिक ऊँचा उठे, घाटेकी चिंतासे मुक्त रहकर स्वावलम्बी बने, इसके द्वारा इतिहास तथा साहित्यके कार्योंको प्रोत्तेजन मिले—अनेक विद्वान उन कार्योंके करनेमें प्रवृत्त हों—, नई नई खोजें और नया नया साहित्य सामने आए, प्राचीन साहित्यका उद्धार हो, सच्चे इतिहासका निर्माण हो, धार्मिक सिद्धान्त की गुत्थियां सुलझें, समाजकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्तरूप धारण करे; और इस प्रकार यह पत्र जैनसमाजका एक आदर्शपत्र बने, समाज इस पर उचित गर्व कर सके और समाजके लिये यह गौरवकी तथा दूसरोंके लिये स्पृहाकी वस्तु बने, तो इसके लिये उन्हें इस पत्रके सहयोगमें अपनी शक्तिको केन्द्रित करना चाहिये। संयुक्त शक्तिके बलपर सब कुछ हो सकता है, अकेले सम्पादक अथवा प्रकाशकसे कोई काम नहीं बन सकता, और न खाली मनोरथ मनोरथसे ही कोई काम बन पाता है, मनोरथके साथमें जब यथेष्ट पुरुषार्थ मिलता है तभी कार्यकी ठीक सिद्धि होती है। पुरुषार्थ बड़ी चीज़ है। अतः इस दिशा में अनेकान्तके प्रेमियोंका पुरुषार्थ खास तौरसे अपेक्षित है-- उनका यह मुख्य कर्तव्य है कि वे पुरुषार्थ करके इस पत्रको समाजका अधिकसे अधिक सहयोग प्राप्त कराएँ और इसके संचालकोंके हाथोंको मज़बूत बनाएँ, जिससे वे अभिमतरूप से इस पत्रको ऊँचा उठाने तथा लोकप्रिय बनानेमें समर्थ हो सकें।

इसके लिये अनेकान्तके प्रचार, विद्वत्सहयोग और आर्थिक सहयोगकी बड़ी ज़रूरत है। इनमें भी आर्थिक सहयोग प्रधान है, उसके बलपर दूसरी आवश्यकताओंकी भी बहुत कुछ पूर्ति की जासकती है। धनका अभाव निःसन्देह एक बहुत ही खटकने वाली चीज़ है। धनाभावके कारण संसारका कोई भी कार्य ठीक नहीं बनता, इसीसे दरिद्रियोंके मनोरथ उत्पन्न हो होकर हृदयमें ही विलीन होते रहते हैं और वे कोई बड़ा काम नहीं कर पाते। 'चार जनोंकी लाकडी और एक जनेका बोझ' अथवा 'बूँद-बूँदसे घट भरे' की कहावतके अनुसार छोटी छोटी सहायताएँ मिलकर एक बहुत बड़ी सहायता हो जाती है और उससे बड़े बड़े काम निकल जाते हैं, तथा किसी एक व्यक्ति पर अधिक भार भी नहीं पड़ता। समाजके अधिकांश कार्य इसी संयुक्त शक्तिके आधारपर चला करते हैं। अनेकान्तको ऊँचा उठाने और उसे अपने मिशनमें सफल बनानेके लिये मैंने इस समय अनेकांत की सहायताके निम्न चार मार्ग स्थिर किये हैं। इनमेंसे जो सज्जन जिस मार्गसे जितनी सहायता करना चाहें और कर सकें उन्हें उस मार्गसे उतनी सहायता ज़रूर करनी चाहिये तथा दूसरोंसे भी करानी चाहिये, ऐसा मेरा सानुरोध निवेदन है। आशा है अनेकान्तके प्रेमी सज्जन इसपर ज़रूर ध्यान देंगे और इस तरह मेरे हाथोंको मज़बूत बनाकर मुझे विशेष रूपसे सेवा करनेके लिये समर्थ बनाएँगे। सहायताके वे चार मार्ग इस प्रकार हैं—

(१) २५), ५०), १००) या इससे अधिक रकम देकर सहायकोंकी चार श्रेणियोंमेंसे किसीमें अपना नाम लिखाना।

(२) अपनी ओरसे असमर्थोंको तथा अजैन संस्थाओं को अनेकान्त पत्र फ्री (बिना मूल्य) या अर्ध मूल्यमें भिजवाना और इस तरह दूसरोंको अनेकान्तके पढ़नेकी सातिशय प्रेरणा करना। (इस मदमें सहायता देनेवालों

की ओरसे दस रुपयेकी सहायता पीछे अनेकान्त चारको फ्री और आठको अर्ध मूल्यमें भेजा जासकेगा।)

(३) उत्सव-विवाहादि दानके अवसरों पर अनेकान्तका बराबर खयाल रखना और उसे अच्छी सहायता भेजना तथा भिजवाना, जिससे अनेकान्त अपने अच्छे विशेषाङ्क निकाल सके, उपहार ग्रन्थोंकी योजना कर सके और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दे सके। स्वतः अपनी ओरसे उपहार ग्रन्थोंकी योजना भी इस मदमें शामिल होगी।

(४) अनेकान्तके ग्राहक बनना, दूसरोंको बनाना और अनेकांत के लिये अच्छे अच्छे लेख लिखकर भेजना, लेखोंकी सामग्री जुटाना तथा उसमें प्रकाशित होनेके लिये उपयोगी चित्रोंकी योजना करना और कराना।

सम्पादक 'अनेकान्त'

---

## अनेकान्तके नये ग्राहकोंको भेंट

पिछले वर्ष अनेकान्तके ग्राहकोंको पोस्टेज-पैकिंग खर्चके लिये चार आने अधिक भेजनेपर महत्व के अध्यात्मग्रन्थ 'समाधितंत्र' की कापियां भेंटमें दीगई थीं। इस वर्ष जो नये ग्राहक बनेंगे उन्हें भी मूल्य के साथ अथवा बादको चार आने अधिक भेजनेपर उक्त ग्रन्थ भेंट स्वरूप दिया जायगा। साथ ही, पं० जुगलकिशोर मुख्तार सम्पादक 'अनेकान्त' की लिखी हुई ४८ पृष्ठकी उपयोगी पुस्तक 'सिद्धिसोपान' की एक एक प्रति भी दीजायगी। सूचनार्थ निवेदन है।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

---

# समन्तभद्रका मुनिजीवन और आपत्काल

[ सम्पादकीय ]

श्री अलंकदेव, विद्यानंद और जिनसेन-जैसे महान् आचार्यों तथा दूसरे भी अनेक प्रसिद्ध मुनियों और विद्वानों द्वारा किये गये जिनके उदार स्मरणों एवं प्रभावशाली स्तवनों-संकीर्तनोंको अनेकान्तके पाठक दूसरे वर्षकी सभी किरणोंके शुरूमे आनंदके साथ पढ चुके हैं और उनपरसे जिन आचार्य महोदयकी असाधारण विद्वत्ता, योग्यता, लोकसेवा और प्रतिष्ठादिका कितना ही परिचय प्राप्त कर चुके हैं, उन स्वामी समंतभद्रके बाधारहित और शांत मुनिजीवनमे एक बार कठिन विपत्तिकी भी एक बडी भारी लहर आई है, जिसे आपका 'आपत्काल' कहते हैं। वह विपत्ति क्या थी और समंतभद्रने उसे कैसे पार किया, यह सब एक बडा ही हृदय-द्रावक विषय है। नीचे उसीका, उनके मुनि-जीवनकी झाँकी सहित, कुछ परिचय और विचार पाठकोंके सामने उपस्थित किया जाता है।

## मुनि-जीवन

समंतभद्र, अपनी मुनिचर्याके अनुसार, अहिंसा. सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामके पंचमहाव्रतोका यथेष्ट रीतिसे पालन करते थे, ईर्या-भाषा-एषणादि पंचसमितियोंके परिपालनद्वारा उन्हे निरंतर पुष्ट बनाते थे, पाचो इंद्रियोंके निग्रहमे सदा तत्पर, मनोगुप्ति आदि तीनों गुप्तियोंके पालनमे धीर और सामयिकादि षडावश्यक क्रियाओंके अनुष्ठानमे सदा सावधान रहते थे। वे पूर्ण अहिंसाव्रतका पालन करते हुए, कषायभावको लेकर किसी भी जीवको अपने मन, वचन या कायसे पीड़ा पहुँचाना नही चाहते थे। इस बातका सदा यत्न रखते थे कि किसी प्राणीको उनके प्रमादवश बाधा न पहुँच जाय, इसीलिये वे दिनमे मार्ग शोधकर चलते थे, चलते समय दृष्टिको इधर उधर नहीं भ्रमाते थे, रात्रिको गमनागमन नही करते थे, और इतने साधनसंपन्न थे कि सोते समय एकासनसे रहते थे—यह नहीं होता था कि निद्राऽवस्थामे एक करवटसे दूसरी करवट बदल जाय और उसके द्वारा किसी जीवजंतुको बाधा पहुँच जाय, वे पीछी पुस्तकादिक किसी भी वस्तुको देख भाल कर उठाते-धरते थे और मलमूत्रादिक भी प्रासुक भूमि तथा बाधारहित एकांत स्थानमें क्षेपण करते थे। इसके सिवाय, उनपर यदि कोई प्रहार करता तो वे उसे नही रोकते थे, उसके प्रति दुर्भाव भी नही रखते थे, जंगलमें यदि हिंस्र जंतु भी उन्हे सताते अथवा डंस-मशकादिक उनके शरीरका रक्त पीते थे तो वे बलपूर्वक उनका निवारण नही करते थे, और न ध्यानावस्थामे अपने शरीरपर होने वाले चींटी आदि जंतुओंके स्वच्छंद विहारको ही रोकते थे। वे इन सब अथवा इसी प्रकारके और भी कितने ही उपसर्गों तथा परीषहोंको साम्यभावसे सहन करते थे और अपने ही कर्मविपाकका चिंतन कर सदा धैर्य धारण करते थे—दूसरोंको उसमे जरा भी दोष नहीं देते थे।

समंतभद्र सत्यके बड़े प्रेमी थे वे सदा यथार्थ

भाषण करते थे, इतना ही नहीं बल्कि, प्रमत्तयोगसे प्रेरित होकर कभी दूसरेको पीड़ा पहुँचानेवाला सावद्य वचन भी मुँहसे नहीं निकालते थे, और कितनी ही बार मौन धारण करना भी श्रेष्ठ समझते थे। स्त्रियोंके प्रति आपका अनादरभाव न होते हुए भी आप कभी उन्हें रागभावसे नहीं देखते थे; बल्कि माता, बहिन और सुताकी तरहसे ही पहिचानते थे; साथ ही, मैथुनकर्मसे, घृणात्मक † दृष्टिके साथ, आपकी पूर्ण विरक्ति रहती थी, और आप उसमें द्रव्य तथा भाव दोनों प्रकारकी हिंसाका सद्भाव मानते थे। इसके सिवाय, प्राणियोंकी अहिंसा को आप 'परमब्रह्म' समझते थे ❋ और जिस आश्रमविधिमें अणुमात्र भी आरंभ न होता हो उसीके द्वारा उस अहिंसाकी पूर्णसिद्धि मानते थे। उसी पूर्ण अहिंसा और उसी परमब्रह्मकी सिद्धिके लिए आपने अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग किया था और नैर्ग्रंथ्य-आश्रममें प्रविष्ट होकर अपना प्राकृतिक दिगम्बर वेष धारण किया था। इसीलिये आप अपने पास कोई कौडी पैसा नहीं रखते थे, बल्कि कौड़ी-पैसेसे सम्बंध रखना भी अपने मुनिपदके विरुद्ध समझते थे। आपके पास शौचोपकरण (कमंडलु), संयमोपकरण (पीछी) और ज्ञानोपकरण (पुस्तकादिक) के रूपमें जो कुछ थोड़ीसी उपधि थी उससे भी आपका ममत्व नहीं था—भले ही उसे कोई उठा ले जाय, आपको इसकी जरा भी चिन्ता नहीं थी। आप सदा भूमिपर शयन करते थे और अपने शरीरको कभी संस्कारित अथवा मंडित नहीं करते थे; यदि पसीना आकर उसपर मैल जम जाता था तो उसे स्वयं अपने हाथसे धोकर दूसरेको अपना उजलारूप दिखानेकी भी कभी कोई चेष्टा नहीं करते थे; बल्कि उस मलजनित परीषहको साम्यभावसे जीतकर कर्ममलको धोनेका यत्न करते थे, और इसी प्रकार नग्न रहते तथा दूसरी सरदी गरमी आदिकी परीषहोंको भी खुशीखुशीसे सहन करते थे। इसीसे आपने अपने एक परिचय † में, गौरवके साथ अपने आपको 'नग्नाटक' और 'मलमलिनतनु' भी प्रकट किया है।

समंतभद्र दिनमें सिर्फ एक बार भोजन करते थे, रात्रिको कभी भोजन नहीं करते थे, और भोजन भी आगमोदित विधिके अनुसार शुद्ध, प्रासुक तथा निर्दोष ही लेते थे। वे अपने उस भोजनके लिये किसीका निमंत्रण स्वीकार नहीं करते थे, किसीको किसी रूपमें भी अपना भोजन करने करानेके लिये प्रेरित नहीं करते थे, और यदि उन्हें यह मालूम हो जाता था कि किसीने उनके उद्देश्यसे कोई भोजन तय्यार किया है अथवा किसी दूसरे अतिथि (मेहमान) के लिये तय्यार किया हुआ भोजन उन्हें दिया जाता है तो वे उस भोजनको नहीं लेते थे। उन्हें उसके लेनेमें सावद्यकर्मके भागी होनेका दोष मालूम पड़ता था और सावद्यकर्मसे वे सदा अपने आपको मन-वचन-काय तथा कृत-कारित-अनुमोदनद्वारा दूर

† आपकी इस घृणात्मक दृष्टिका भाव 'ब्रह्मचारी' के निम्न लक्षणसे भी पाया जाता है, जिसे आपने 'रत्नकरंडक' में दिया है—

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगंधि बीभत्सं।
पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

❋ अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्रारंभोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्धयर्थं परमकरुणो ग्रंथमुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥११९॥
—स्वयंभूस्तोत्र।

† 'कांच्यां नग्नाटकोहं मलमलिनतनुः' इत्यादि पद्यमें।

रखना चाहते थे। वे उसी शुद्ध भोजनको अपने लिये कल्पित और शास्त्रानुमोदित समझते थे जिसे दातारने स्वयं अपने अथवा अपने कुटुम्बके लिये तय्यार किया हो, जो देनेके स्थान पर उनके आनेसे पहले ही मौजूद हो और जिसमेंसे दातार कुछ अंश उन्हें भक्तिपूर्वक भेंट करके शेषमें स्वयं संतुष्ट रहना चाहता हो—उसे अपने भोजनके लिये फिर दोबारा आरंभ करनेकी कोई जरूरत न हो। आप भ्रामरी वृत्तिसे, दातारको कुछ भी बाधा न पहुँचाते हुए, भोजन लिया करते थे। भोजनके समय यदि आगमकथित दोषोंमेंसे उन्हें कोई भी दोष मालूम पड़ जाता था अथवा कोई अन्तराय सामने उपस्थित हो जाता था तो वे खुशीसे उसी दम भोजनको छोड़ देते थे और इस अलाभके कारण चित्तपर जरा भी मैल नहीं लाते थे। इसके सिवाय, आपका भोजन परिमित और सकारण होता था। आगममें मुनियोंके लिये ३२ ग्रास तक भोजनकी आज्ञा है परंतु आप उससे अक्सर दो चार दस ग्रास कम ही भोजन लेते थे, और जब यह देखते थे कि बिना भोजन किये भी चल सकता है—नित्यनियमोंके पालन तथा धार्मिक अनुष्ठानोंके सम्पादनमें कोई विशेष बाधा नहीं आती तो कई कई दिनके लिए आहारका त्याग करके उपवास भी धारण कर लेते थे; अपनी शक्तिको जाँचने और उसे बढ़ानेके लिये भी आप अक्सर उपवास किया करते थे, ऊनोदर रखते थे, अनेक रसोंका त्याग कर देते थे और कभी कभी ऐसे कठिन तथा गुप्त नियम भी ले लेते थे जिनकी स्वाभाविक पूर्तिपर ही आपका भोजन अवलम्बित रहता था। वास्तवमें, समंतभद्र भोजनको इस जीवनयात्राका एक साधन मात्र समझते थे। उसे अपने ज्ञान, ध्यान और संयमादिकी सिद्धि, वृद्धि तथा स्थितिका सहायक मात्र मानते थे—और इसी दृष्टिसे उसको ग्रहण करते थे। किसी शारीरिक बलको बढ़ाना, शरीरको पुष्ट बनाना अथवा तेजोवृद्धि करना उन्हें उसके द्वारा इष्ट नहीं था; वे स्वादके लिये भी भोजन नहीं करते थे, यही वजह है कि आप भोजनके ग्रासको प्रायः बिना चबाये ही—बिना उसका रसास्वादन किये ही—निगल जाते थे। आप समझते थे कि जो भोजन केवल देहस्थितिको कायम रखनेके उद्देशसे किया जाय उसके लिये रसास्वादनकी जरूरत ही नहीं है, उसे तो उदरस्थ कर लेने मात्रकी जरूरत है। साथ ही, उनका यह विश्वास था कि रसास्वादन करनेसे इंद्रियविषय पुष्ट होता है, इंद्रियविषयोंके सेवनसे कभी सच्ची शांति नहीं मिलती, उल्टी तृष्णा बढ जाती है, तृष्णाकी वृद्धि निरंतर ताप उत्पन्न करती है और उस ताप अथवा दाहके कारण यह जीव संसारमें अनेक प्रकारकी दुःख-परम्परासे पीड़ित होता है ‡; इसलिये वे क्षणिक सुखके लिये कभी इन्द्रियविषयोंको पुष्ट नहीं करते थे—क्षणिक सुखोंकी अभिलाषा करना ही वे परीक्षावानोंके लिये एक कलंक और अधर्मकी बात समझते थे। आपकी यह खास धारणा थी कि, आत्यन्तिक स्वास्थ्य—अविनाशी स्वात्मस्थिति अथवा कर्मविमुक्त अनंतज्ञानादि अवस्था की प्राप्ति-ही पुरुषोंका—इस जीवात्माका—स्वार्थ है—स्व-प्रयोजन है, क्षणभंगुर भोग—क्षणस्थायी विषयसुखानुभवन—उनका स्वार्थ नहीं है; क्योंकि तृपानुषंगसे—भोगों की उत्तरोत्तर आकांक्षा बढ़नेसे—शारीरिक और मान-

‡ शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं,
तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं,
तापस्तदायासयतीत्यवादीः॥ १३॥
—स्वयंभूस्तोत्र।

सिक दुःखोंकी कभी शांति नहीं होती। वे समझते थे कि, यह शरीर 'अजंगम' है—बुद्धिपूर्वक परिस्पंदव्यापाररहित है—और एक यंत्रकी तरह चैतन्य पुरुषके द्वारा वव्यापारमें प्रवृत्त किया जाता है; साथ ही, 'मलबीज' है—मलसे उत्पन्न हुआ है; मलयोनि है—मलकी उत्पत्तिका स्थान है; 'गलन्मल' है—मल ही इसमें झरता है; 'पूति' है—दुर्गंधियुक्त है; 'बीभत्स' है—घृणात्मक है; 'क्षयि' है—नाशवान् है—और 'तापक' है—आत्माके दुःखोंका कारण है। इस लिये वे इस शरीरसे स्नेह रखने तथा अनुराग बढानेको अच्छा नहीं समझते थे, उसे व्यर्थ मानते थे, और इस प्रकारकी मान्यता तथा परिणतिको ही आत्महित स्वीकार करते थे ❀। अपनी ऐसी ही विचार-परिणतिके कारण समंतभद्र शरीरसे बड़े ही निस्पृह और निर्ममत्व रहते थे—उन्हें भोगोंसे जरा भी रुचि अथवा प्रीति नहीं थी—; वे इस शरीरसे अपना कुछ पारमार्थिक काम निकालनेके लिये ही उसे थोड़ासा शुद्ध भोजन देते थे और इस बातकी कोई पर्वाह नहीं करते थे कि वह भोजन रूखा-चिकना, ठंडा-गरम, हलका-भारी, कडुआ-कषायला आदि कैसा है।

इस लघु भोजनके बदलेमें समन्तभद्र अपने शरीर से यथाशक्ति खूब काम लेते थे घंटों तक कायोत्सर्गमें स्थित होजाते थे, आतापनादि योग धारण करते थे, और आध्यात्मिक तप ‡ की वृद्धिके लिये, अपनी शक्तिको न छिपाकर, दूसरे भी कितने ही अनशनादि उग्र उग्र बाह्य तपश्चरणोंका अनुष्ठान किया करते थे। इसके सिवाय, नित्य ही आपका बहुतसा समय सामायिक, स्तुतिपाठ, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, समाधि, भावना, धर्मोपदेश, ग्रन्थरचना और परहितप्रतिपादनादि कितने ही धर्मकार्योंमें खर्च होता था। आप अपने समयको जरा भी धर्मसाधनारहित व्यर्थ नहीं जाने देते थे।

## आपत्काल

इस तरहपर, बड़े ही प्रेमके साथ मुनिधर्मका पालन करते हुए, स्वामी समन्तभद्र जब 'मणुवकहल्ली'† ग्राममें धर्मध्यानसहित आनंदपूर्वक अपना मुनिजीवन व्यतीत कर रहे थे और अनेक दुर्द्धर तपश्चरणोंके द्वारा आत्मोन्नतिके पथमें अग्रेसर हो रहे थे तब एकाएक पूर्वसंचित असातावेदनीय कर्मके तीव्र उदयसे आपके शरीरमें 'भस्मक' नामका एक महारोग उत्पन्न हो गया ❀। इस रोगकी उत्पत्तिसे यह स्पष्ट है

❀ स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां,
स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोनुषंगान्न च तापशान्ति-
रितीदमाख्यद्भगवान्सुपार्श्वः ॥३१॥
अजंगमं जंगमनेययंत्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरं।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं
त्वमाख्यः ॥३२॥
—स्वयंभूस्तोत्र।

"मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नंगम......"
—रत्नकरंडक।

‡ बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ॥८३॥
—स्वयंभूस्तोत्र।

† ग्रामका यह नाम 'राजावलीकथे' में दिया है। यह 'कांची' के आसपासका कोई गाव जान पडता है।

❀ ब्रह्मनेमिदत्त भी अपने 'आराधनाकथाकोष' में ऐसा ही सूचित करते हैं। यथा—
दुर्द्धरानेकचारित्ररत्नरत्नाकरो महान्।
यावदास्ते सुखं धीरस्तावत्तत्कायकेऽभवत् ॥
असद्वेद्यमहाकर्मोदयाद्दुःखदायकः।
तीव्रकष्टप्रदः कष्टं भस्मकव्याधिसंज्ञकः ॥
—समन्तभद्रकथा, पद्य नं० ४, ५

कि समंतभद्रके शरीरमें उस समय कफ क्षीण होगया था और वायु तथा पित्त दोनों बढ़ गये थे; क्योंकि कफके क्षीण होने पर जब पित्त, वायुके साथ बढ़कर कुपित हो जाता है तब वह अपनी गरमी और तेजी से जठराग्निको अत्यंत प्रदीप्त, बलाढ्य और तीक्ष्ण कर देता है और वह अग्नि अपनी तीक्ष्णतासे विरूक्ष शरीरमें पड़े हुए भोजनका तिरस्कार करती हुई, उसे क्षणमात्रमें भस्म कर देती है। जठराग्निकी इस अत्यंत तीक्ष्णावस्था को ही 'भस्मक' रोग कहते हैं। यह रोग उपेक्षा किये जाने पर—अर्थात्, गुरु, स्निग्ध शीतल, मधुर और श्लेष्मल अन्नपानका यथेष्ट परिमाणमें अथवा तृप्तिपर्यंत सेवन न करने पर—शरीरके रक्तमांसादि धातुओंको भी भस्म कर देता है, महादौर्बल्य उत्पन्न कर देता है, तृषा, स्वेद, दाह तथा मूर्च्छादिक अनेक उपद्रव खड़े कर देता है और अंतमें रोगीको मृत्युमुखमें ही स्थापित करके छोड़ता है +। इस रोगके आक्रमण पर समंतभद्रने

+ कट्वादिरूक्षान्नभुजां नराणां
क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ।
अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्नि-
र्भुक्तं क्षणाद्भस्मकरोति यस्मात्।
तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभू-
दुपेक्षितोऽयं पचते च धातून्।
—इति भावप्रकाश'।

"नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम्।
स्वोष्मणा पावकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति॥
तथा लब्धबलो देहे विरूक्षे सानिलोऽनलः।
परिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः॥
पक्वान्नं सततं धातून् शोणितादीन्पचत्यपि।
ततो दौर्बल्यमातंकान् मृत्युं चोपनयेन्नरं॥
भुक्तेऽन्ने लभते शांतिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति।
तृट्स्वेददाहमूर्च्छाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः॥"
"तमत्यग्निं गुरुस्निग्धशीतमधुरविज्वलैः।
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः॥"
—इति चरक'।

शुरूशुरूमें उसकी कुछ पर्वाह नहीं की। वे स्वेच्छा-पूर्वक धारण किये हुए उपवासों तथा अनशनादि तपोंके अवसरपर जिस प्रकार क्षुधापरीषहको सहा करते थे उसी प्रकार उन्होंने इस अवसर पर भी, पूर्व अभ्यासके बलपर, उसे सह लिया। परन्तु इस क्षुधा और उस क्षुधामें बड़ा अन्तर था; वे इस बढ़ती हुई क्षुधा के कारण, कुछ ही दिन बाद, असह्य वेदनाका अनु-भव करने लगे; पहले भोजनसे घंटोंके बाद नियत समय पर भूखका कुछ उदय होता था और उस समय उपयोग के दूसरी ओर लगे रहने आदिके कारण यदि भोजन नहीं किया जाता था तो वह भूख मर जाती थी और फिर घंटों तक उसका पता नहीं रहता था; परन्तु अब भोजनको किये हुए देर नहीं होती थी कि क्षुधा फिरसे आ धमकती थी और भोजनके न मिलनेपर जठराग्नि अपने आसपासके रक्त मांसको ही खींच खींचकर भस्म करना प्रारम्भ कर देती थी। समंतभद्रको इससे बड़ी वेदना होती थी, क्षुधाकी समान दूसरी शरीरवेदना है भी नहीं; कहा भी गया है—

**"क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना।"**

इस तीव्र क्षुधावेदनाके अवसरपर किसीसे भोजनकी याचना करना, दोबारा भोजन करना अथवा रोगोपशांतिके लिये किसीको अपने वास्ते अच्छे स्निग्ध, मधुर, शीतल गरिष्ठ और कफकारी भोजनोंके तय्यार करनेकी प्रेरणा करना, यह सब उनके मुनिधर्मके विरुद्ध था। इस लिये समंतभद्र, वस्तुस्थितिका विचार करते हुए उस समय अनेक उत्तमोत्तम भावनाओंका चिन्तवन करते थे और अपने आत्माको सम्बोधन करके कहते थे—"हे आत्मन्, तूने अनादिकालसे इस संसारमें परिभ्रमण

करते हुए अनेक बार नरक-पशु आदि गतियों में दुःसह क्षुधावेदनाको सहा है, उसके आगे तो यह तेरी क्षुधा कुछ भी नहीं है। तुझे इतनी तीव्र क्षुधा रह चुकी है जो तीन लोकका अन्न खाजाने पर भी उपशम न हो, परन्तु एक कण खानेको नहीं मिला। ये सब कष्ट तूने पराधीन होकर सहे हैं और इसलिये उनसे कोई लाभ नहीं होसका, अब तू स्वाधीन होकर इस वेदनाको सहन कर। यह सब तेरे ही पूर्व कर्म का दुर्विपाक है। साम्यभावसे वेदनाको सह लेनेपर कर्मकी निर्जरा हो जायगी, नवीन कर्म नहीं बँधेगा और न आगेको फिर कभी ऐसे दुःखोंको उठानेका अवसर ही प्राप्त होगा।" इस तरह पर समंतभद्र अपने साम्यभावको दृढ़ रखते थे और कषायादि दुर्भावोंको उत्पन्न होनेका अवसर नहीं देते थे। इसके सिवाय, वे इस शरीरको कुछ अधिक भोजन प्राप्त कराने तथा शारीरिक शक्तिको विशेष क्षीण न होने देनेके लिये जो कुछ कर सकते थे वह इतना ही था कि जिन अनशनादि बाह्य तथा घोर तपश्चरणोंको वे कर रहे थे और जिनका अनुष्ठान उनकी नित्यकी इच्छा तथा शक्तिपर निर्भर था—मूलगुणोंकी तरह लाजमी नहीं था—उन्हे वे ढीला अथवा स्थगित करदें। उन्होंने वैसा ही किया भी—वे अब उपवास नहीं रखते थे, अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग और कायक्लेश नामके बाह्य तपोंके अनुष्ठानको उन्होंने, कुछ कालके लिये, एकदम स्थगित कर दिया था, भोजनके भी वे अब पूरे ३२ ग्रास लेते थे; इसके सिवाय रोगी मुनिके लिये जो कुछ भी रिआयतें मिल सकती थीं वे भी प्रायः सभी उन्होंने प्राप्त कर ली थीं। परंतु यह सब कुछ होते हुए भी, आपकी क्षुधाको जरासी शांति नहीं मिली, वह दिनपर दिन बढ़ती और तीव्रसे तीव्रतर होती जाती थी, जठरानलकी ज्वालाओं तथा पित्तकी तीक्ष्ण ऊष्मासे शरीरका रस-रक्तादि दग्ध हुआ जाता था, ज्वालाएँ शरीरके अंगों-पर दूर दूर तक धावा कर रही थीं, और नित्यका स्वल्प भोजन उनके लिये जरा भी पर्याप्त नहीं होता था—वह एक जाज्वल्यमान अग्निपर थोड़ेसे जलके छींटेका ही काम देता था। इसके सिवाय, यदि किसी दिन भोजनका अन्तराय हो जाता था तो और भी ज्यादा ग़जब हो जाता था—क्षुधा राक्षसी उस दिन और भी ज्यादा उग्र तथा निर्दय रूप धारण कर लेती थी। इस तरहपर समंतभद्र जिस महावेदनाका अनुभव कर रहे थे उसका पाठक अनुमान भी नहीं कर सकते। ऐसी हालतमें अच्छे अच्छे धीरवीरोंका धैर्य छूट जाता है, श्रद्धान भ्रष्ट हो जाता है और ज्ञानगुण डगमगा जाता है। परंतु समंतभद्र महामना थे, महात्मा थे, आत्म-देहान्तरज्ञानी थे, संपत्ति-विपत्तिमें समचित्त थे, निर्मल सम्यग्दर्शनके धारक थे और उनका ज्ञान अदुःखभावित नहीं था जो दुःखोंके आनेपर क्षीण होजाय *, उन्होंने यथाशक्ति उग्र उग्र तपश्चरणोंके द्वारा कष्ट सहनका अच्छा अभ्यास किया था, वे आनंदपूर्वक कष्टोंको सहन किया करते थे—उन्हें सहते हुए खेद नहीं मानते थे †।

---

* अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥
—समाधितंत्र।

† जो आत्मा और देहके भेद विज्ञानी होते हैं वे ऐसे कष्टोंको सहते हुए खेद नहीं माना करते, कहा भी है—

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताह्लादनिर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुंजानोपि न खिद्यते॥
—समाधितंत्र।

और इसलिये, इस संकटके अवसरपर वे जरा भी विचलित तथा धैर्यच्युत नहीं हो सके।

समंतभद्रने जब यह देखा कि रोग शांत नहीं होता, शरीरकी दुर्बलता बढ़ती जारही है, और उस दुर्बलताके कारण नित्यकी आवश्यक क्रियाओंमें भी कुछ बाधा पड़ने लगी है; साथ ही, प्यास आदिकके भी कुछ उपद्रव शुरू हो गये हैं, तब आपको बड़ी ही चिन्ता पैदा हुई। आप सोचने लगे—"इस मुनिअवस्थामें, जहाँ आगमोदित विधिके अनुसार उद्गम-उत्पादनादि छयालीस दोषों, चौदह मलदोषों और बत्तीस अन्तरायोंको टालकर, प्रासुक तथा परिमित भोजन लिया जाता है वहाँ, इस भयंकर रोगकी शांतिके लिये उपयुक्त और पर्याप्त भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती ‡। मुनिपदको कायम रखते हुए, यह रोग प्रायः असाध्य अथवा निःप्रतीकार जान पड़ता है; इसलिये या तो मुझे अपने मुनिपदको छोड़ देना चाहिये और या 'सल्लेखना' व्रत धारण करके इस शरीरको धर्मार्थ त्यागनेके लिये तय्यार हो जाना चाहिये; परंतु मुनिपद कैसे छोड़ा जा सकता है? जिस मुनिधर्मके लिये मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर चुका हूँ, जिस मुनिधर्मको मैं बड़े प्रेमके साथ अब तक पालता आ रहा हूँ और जो मुनिधर्म मेरे ध्येयका एक मात्र आधार बना हुआ है उसे क्या मैं छोड़ दूं? क्या क्षुधाकी वेदनासे घबराकर अथवा उससे बचनेके लिये छोड़ दूं? क्या इंद्रियविषयजनित स्वल्प सुखके लिये उसे बलि दे दूं? यह नहीं हो सकता। क्या क्षुधादि दुःखोंके इस प्रतिकारसे अथवा इंद्रियविषयजनित स्वल्प सुखके अनुभवनसे इस देहकी स्थिति सदा एकसी और सुखरूप बनी रहेगी? क्या फिर इस देहमें क्षुधादि दुःखोंका उदय नहीं होगा? क्या मृत्यु नहीं आएगी? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो फिर इन क्षुधादि दुःखोंके प्रतिकार आदिमें गुण ही क्या है? उनसे इस देह अथवा देहीका उपकार ही क्या बन सकता है? + मैं दुःखोंसे बचनेके लिये कदापि मुनिधर्मको नहीं छोड़ूँगा; भले ही यह देह नष्ट हो जाय, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है; मेरा आत्मा अमर है, उसे कोई नाश नहीं कर सकता; मैंने दुःखोंका स्वागत करनेके लिये मुनिधर्म धारण किया था, न कि उनसे घबराने और बचनेके लिए, मेरी परीक्षाका यही समय है, मैं मुनिधर्मको नहीं छोड़ूँगा।" इतनेमें ही अंतःकरणके भीतरसे एक दूसरी आवाज आई—"समंतभद्र! तू अनेक प्रकारसे जैन शासनका उद्धार करने और उसे प्रचार देनेमें समर्थ है, तेरी बदौलत बहुतसे जीवोंका अज्ञानभाव तथा मिथ्यात्व नष्ट होगा और वे सन्मार्गमें लगेंगे,

---

‡ जो लोग आगमसे इन उद्गमादि दोषों तथा अन्तरायोंका स्वरूप जानते हैं और जिन्हें पिण्ड-शुद्धिका अच्छा ज्ञान है उन्हें यह बतलानेकी जरूरत नहीं है कि सच्चे जैन साधुओंको भोजनके लिये वैसे ही कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयोंका कारण दातारोंकी कोई कमी नहीं है, बल्कि भोजनविधि और निर्दोष भोजनकी जटिलता ही उसका प्रायः एक कारण है—फिर 'भस्मक' जैसे रोगकी शांतिके लिये उपयुक्त और पर्याप्त भोजनकी तो बात ही दूर है।

+ क्षुधादि दुःखोंके प्रतिकारादिविषयक आपका यह भाव 'स्वयंभूस्तोत्र'के निम्न पद्यसे भी प्रकट होता है—

'क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थिति-
र्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनो-
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत्' ॥ १८ ॥

यह शासनोद्धार और लोकहितका काम क्या कुछ कम धर्म है ? यदि इस शासनोद्धार और लोकहितकी दृष्टिसे ही तू कुछ समयके लिये मुनिपदको छोड़दे और अपने भोजनकी योग्य व्यवस्था द्वारा रोगको शान्त करके फिरसे मुनिपद धारण कर लेवे तो इसमें कौनसी हानि है ? तेरे ज्ञान, श्रद्धान, और चारित्रके भावको तो इससे जरा भी क्षति नहीं पहुँच सकती, वह तो हरदम तेरे साथ ही रहेगा; तू द्रव्यलिंगकी अपेक्षा अथवा बाह्यमें भले ही मुनि न रहे, परंतु भावोंकी अपेक्षा तो तेरी अवस्था मुनि-जैसी ही होगी, फिर इसमें अधिक सोचने विचारनेकी बात ही क्या है ? इसे आपद्धर्मके तौरपर ही स्वीकार कर; तेरी परिणति तो हमेशा लोकहितकी तरफ रही है, अब उसे गौण क्यों किये देता है ? दूसरोंके हितके लिये ही यदि तू अपने स्वार्थकी थोड़ीसी बलि देकर—अल्प कालके लिये मुनिपदको छोड़कर—बहुतोंका भला कर सके तो इसमें तेरे चरित्र पर जरा भी कलंक नहीं आ सकता, वह तो उलटा और भी ज्यादा देदीप्यमान होगा; अतः तू कुछ दिनोंके लिये इस मुनिपदका मोह छोड़कर और मानापमानकी जरा भी पर्वाह न करते हुए अपने रोगको शांत करनेका यत्न कर, वह निःप्रतीकार नहीं है; इस रोगसे मुक्त होने पर, स्वस्थावस्थामें, तू और भी अधिक उत्तम रीतिसे मुनिधर्मका पालन कर सकेगा; अब विलम्ब करनेकी जरूरत नहीं है, विलम्बसे हानि होगी।"

इस तरहपर समंतभद्रके हृदयमें कितनी ही देरतक विचारोंका उत्थान और पतन होता रहा। अन्तको आपने यही स्थिर किया कि "क्षुदादिदुःखोंसे घबराकर उनके प्रतिकारके लिये अपने न्याय्य नियमोंको तोड़ना उचित नहीं है; लोकका हित वास्तवमें लोकके आश्रित है और मेरा हित मेरे आश्रित है; यह ठीक है कि लोककी जितनी सेवा मैं करना चाहता था उसे मैं नहीं कर सका; परन्तु उस सेवाका भाव मेरे आत्मामें मौजूद है और मैं उसे अगले जन्ममें पूरा करूँगा; इस समय लोकहितकी आशापर आत्महितको बिगाड़ना मुनासिब नहीं है; इसलिये मुझे अब 'सल्लेखना' का व्रत जरूर ले लेना चाहिये और मृत्युकी प्रतीक्षामें बैठकर शांतिके साथ इस देहका धर्मार्थ त्याग कर देना चाहिये।" इस निश्चयको लेकर समंतभद्र सल्लेखनाव्रतकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये अपने वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और अनेक सद्गुणालंकृत पूज्य गुरुदेव† के पास पहुँचे और उनसे अपने रोगका सारा हाल निवेदन किया। साथ ही, उनपर यह प्रकट करते हुए कि मेरा रोग निःप्रतीकार जान पड़ता है और रोगकी निःप्रतीकारावस्थामें 'सल्लेखना' का शरण लेना ही श्रेष्ठ कहा गया है*, यह विनम्र प्रार्थना की कि—"अब आप कृपाकर मुझे सल्लेखना धारण करनेकी आज्ञा प्रदान करें और यह आशीर्वाद देवें कि मैं साहसपूर्वक और सहर्ष उसका निर्वाह करनेमें समर्थ हो सकूँ।"

समंतभद्रकी इस विज्ञापना और प्रार्थनाको सुन कर गुरुजी कुछ देरके लिये मौन रहे, उन्होंने समंतभद्रके मुखमंडल (चेहरे) पर एक गंभीर दृष्टि डाली

---

† 'राजावलीकथे' से यह तो पता चलता है कि समन्तभद्रके गुरुदेव उस समय मौजूद थे और समन्तभद्र सल्लेखनाकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये उनके पास गये थे, परंतु यह मालूम नहीं होसका कि उनका क्या नाम था।

* उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥१२२॥
—रत्नकरंडक।

और फिर अपने योगबलसे मालूम किया कि समंतभद्र अल्पायु नहीं है, उसके द्वारा धर्म तथा शासनके उद्धारका महान् कार्य होनेको है, इस दृष्टिसे वह सल्लेखनाका पात्र नहीं; यदि उसे सल्लेखनाकी इजाजत दीगई तो वह अकाल हीमें कालके गालमें चला जायगा और उससे श्री वीरभगवानके शासन-कार्यको बहुत बड़ी हानि पहुँचेगी; साथ ही, लोकका भी बड़ा अहित होगा। यह सब सोचकर गुरुजीने, समंतभद्र की प्रार्थनाको अस्वीकार करते हुए, उन्हें बड़े ही प्रेम के साथ समझाकर कहा—"वत्स, अभी तुम्हारी सल्लेखनाका समय नहीं आया, तुम्हारे द्वारा शासन-कार्यके उद्धारकी मुझे बड़ी आशा है, निश्चय ही तुम धर्मका उद्धार और प्रचार करोगे, ऐसा मेरा अन्तःकरण कहता है; लोकको भी इस समय तुम्हारी बड़ी जरूरत है, इसलिये मेरी यह खास इच्छा है और यही मेरी आज्ञा है कि तुम जहाँपर और जिस वेश में रहकर रोगोपशमनके योग्य तृप्तिपर्यंत भोजन प्राप्त कर सको वहींपर खुशीसे चले जाओ और उसी वेषको धारण करलो, रोगके उपशान्त होनेपर फिरसे जैनमुनिदीक्षा धारण कर लेना और अपने सब कामो को सँभाल लेना। मुझे तुम्हारी श्रद्धा और गुणज्ञतापर पूरा विश्वास है, इसी लिये मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता कि तुम चाहे जहाँ जा सकते हो और चाहे जिस वेषको धारण कर सकते हो; मैं खुशीसे तुम्हें ऐसा करनेकी इजाजत देता हूँ।"

गुरुजीके इन मधुर तथा सारगर्भित वचनोंको सुनकर और अपने अन्तःकरणकी उस आवाजको स्मरण करके समंतभद्रको यह निश्चय होगया कि इसीमें जरूर कुछ हित है, इसलिये आपने अपने सल्लेखनाके विचारको छोड़ दिया और गुरुजी की आज्ञाको शिरोधारण कर आप उनके पाससे चल दिये।

अब समंतभद्रको यह चिंता हुई कि दिगम्बर मुनिवेषको यदि छोड़ा जाय तो फिर कौनसा वेष धारण किया जाय, और वह वेष जैन हो या अजैन। अपने मुनिवेषको छोड़ने का खयाल आते ही उन्हें फिर दुःख होने लगा और वे सोचने लगे—"जिस दूसरे वेषको मैं आज तक विकृत † और अप्राकृतिक वेष समझता आरहा हूँ उसे मैं कैसे धारण करूँ। क्या उसीको अब मुझे धारण करना होगा? क्या गुरुजीकी ऐसी ही आज्ञा है?—हाँ, ऐसी ही आज्ञा है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—'यही मेरी आज्ञा है,—चाहे जिस वेषको धारण करलो, रोगके उपशांत होनेपर फिरसे जैनमुनिदीक्षा धारण कर लेना। तब तो इसे अलंघ्य-शक्ति भवितव्यता कहना चाहिये—यह ठीक है कि मैं वेष (लिंग) को ही सब कुछ नहीं समझता—उसीको मुक्तिका एक मात्र कारण नहीं जानता,— वह देहाश्रित है और देह ही इस आत्मा का संसार है; इसलिये मुझ मुमुक्षुका—संसार बंधनोंसे छूटनेके इच्छुकका—किसी वेषमें एकान्त आग्रह नहीं हो सकता *; फिर भी मैं वेषके विकृत और अविकृत

---

† ...ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः॥
—स्वयंभूस्तोत्र

* श्रीपूज्यपादके समाधितंत्रमें भी वेषविषयमें ऐसा ही भाव प्रतिपादित किया गया है। यथा—

लिंगं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिंगकृताग्रहाः॥८७॥

अर्थात्—लिंग (जटाधारण नग्नत्वादि) देहाश्रित है और देह ही आत्माका संसार है, इस लिये जो लोग लिंग (वेष) का ही एकान्त आग्रह रखते हैं—उसीको मुक्तिका कारण समझते हैं—वे संसारबंधनसे नहीं छूटते।

ऐसे दो भेद जरूर मानता हूँ, और अपने लिये अविकृत वेषमें रहना ही अधिक अच्छा समझता हूँ। इसीसे, यद्यपि, उस दूसरे वेषमें मेरी कोई रुचि नहीं हो सकती, मेरे लिये वह एक प्रकारका उपसर्ग ही होगा और मेरी अवस्था उस समय अधिकतर चेलोपसृष्ट मुनि जैसी ही होगी; परन्तु फिर भी उस उपसर्गका कर्ता तो मैं खुद ही हूंगा न? मुझे ही स्वयं उस वेषको धारण करना पड़ेगा। यही मेरे लिये कुछ कष्टकर प्रतीत होता है। अच्छा, अन्य वेष न धारण करूँ तो फिर उपाय भी अब क्या है? मुनिवेषको कायम रखता हुआ यदि भोजनादिके विषयमें स्वेच्छाचारसे प्रवृत्ति करूँ तो उससे अपना मुनिवेष लज्जित और कलंकित होता है, और यह मुझसे नहीं हो सकता; मैं खुशीसे प्राण दे सकता हूँ परन्तु ऐसा कोई काम नहीं कर सकता जिससे मेरे कारण मुनिवेष अथवा मुनिपदको लज्जित और कलंकित होना पड़े। मुझसे यह नहीं बन सकता कि जैनमुनिकेरूपमें उस पद के विरुद्ध कोई ही नाचरण करूँ; और इसलिये मुझे अब लाचारीसे अपने मुनिपदको छोड़ना ही होगा। मुनिपदको छोड़कर मैं 'क्षुल्लक' हो सकता था, परन्तु वह लिंग भी उपयुक्त भोजनकी प्राप्तिके योग्य नहीं है—उस पदधारीके लिए भी उद्दिष्ट भोजनके त्याग आदिका कितना ही ऐसा विधान है, जिससे उस पद की मर्यादाको पालन करते हुए रोगोपशांतिके लिये यथेष्ट भोजन नहीं मिल सकता, और मर्यादाका उल्लंघन मुझसे नहीं बन सकता—इसलिये मैं उस वेष को भी नहीं धारण करूँगा। बिल्कुल गृहस्थ बन जाना अथवा यों ही किसीके आश्रयमें जाकर रहना भी मुझे इष्ट नहीं है। इसके सिवाय, मेरी चिरकाल की प्रवृत्ति मुझे इस बातकी इजाजत नहीं देती कि मैं अपने भोजनके लिये किसी व्यक्ति-विशेषको कष्ट दूं; मैं अपने भोजनके लिए ऐसे ही किसी निर्दोष मार्गका अवलम्बन लेना चाहता हूं जिसमें खास मेरे लिए किसीको भी भोजनका कोई प्रबन्ध न करना पड़े और भोजन भी पर्याप्त रूपमें उपलब्ध होता रहे।"

यही सब सोचकर अथवा इसी प्रकारके बहुतसे ऊहापोहके बाद, आपने अपने दिगम्बर मुनिवेषका आदरके साथ त्याग किया और साथ ही, उदासीन भावसे, अपने शरीरको पवित्र भस्मसे आच्छादित करना आरंभ कर दिया। उस समयका दृश्य बड़ा ही करुणाजनक था। देहसे भस्मको मलते हुए आप की आँखें कुछ आर्द्र हो आई थीं। जो आँखें भस्मक व्याधिकी तीव्र वेदनासे भी कभी आर्द्र नहीं हुई थीं उनका इस समय कुछ आर्द्र हो जाना साधारण बात न थी। संघके मुनिजनोंका हृदय भी आपको देखकर भर आया था और वे सभी भावीकी अलंघ्य शक्ति तथा कर्मके दुर्विपाकका ही चिंतन कर रहे थे। समंतभद्र जब अपने देहपर भस्मका लेप कर चुके तो उनके बहिरंगमें भस्म और अंतरङ्गमें सम्यग्दर्शनादि निर्मल गुणोंके दिव्य प्रकाशको देखकर ऐसा मालूम होता था कि एक महाकांतिमान् रत्न कर्दमसे लिप्त होरहा है और वह कर्दम उस रत्नमें प्रविष्ट न हो सकनेसे उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता *, अथवा ऐसा जान पड़ता था कि समंतभद्रने अपनी भस्मकाग्निको भस्म करने—उसे शांत बनाने—के लिये यह 'भस्म' का दिव्य प्रयोग किया है। अस्तु।

---

* अन्तःस्फुरितसम्यक्त्वे बहिर्व्याप्तकुलिंगकः।
शोभितोऽसौ महाकान्तिः कर्दमाक्तो मणिर्यथा॥
—आराधना कथाकोश।

संघको अभिवादन करके अब समंतभद्र एक वीर योद्धाकी तरह, कार्यसिद्धिके लिये, 'मणुवकहल्ली'से चल दिये।

'राजावलिकथे' के अनुसार, समंतभद्र मणुवकहल्लीसे चलकर 'कांची' पहुँचे और वहाँ 'शिवकोटि' राजाके पास, संभवतः उसके 'भीमलिंग' नामक शिवालयमें ही, जाकर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया। राजा उनकी भद्राकृति आदिको देखकर विस्मित हुआ और उसने उन्हें 'शिव' समझकर प्रणाम किया। धर्मकृत्योंका हाल पूछे जानेपर राजाने अपनी शिव-भक्ति, शिवाचार, मंदिरनिर्माण और भीमलिंगके मंदिरमें प्रतिदिन बारह खंडुग † परिमाण तंडुलान्न विनियोग करनेका हाल उनसे निवेदन किया। इसपर समंतभद्रने, यह कहकर कि 'मैं तुम्हारे इस नैवद्यको शिवार्पण ‡ करूँगा.' उस भोजनके साथ मंदिरमें अपना आसन ग्रहण किया, और किवाड़ बंद करके सबको चले जानेकी आज्ञा की। सब लोगोंके चले जानेपर समंतभद्रने शिवार्थ जठराग्निमें उस भोजनकी आहुतियाँ देनी आरम्भ की और आहुतियाँ देते देते उस भोजनमेंसे जब एक कण भी अवशिष्ट नहीं रहा तब आपने पूर्ण तृप्ति लाभ करके, दरवाजा खोल दिया। संपूर्ण भोजनकी समाप्तिको देखकर राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। अगले दिन उसने और भी अधिक भक्तिके साथ उत्तम भोजन भेंट किया; परंतु पहले दिन प्रचुरपरिमाणमें तृप्तिपर्यंत भोजन कर लेनेके कारण जठराग्निके कुछ उपशांत होनेसे, उस दिन एक चौथाई भोजन बच गया, और तीसरे दिन आधा भोजन शेष रह गया। समंतभद्रने साधारणतया इस शेषान्नको देवप्रसाद बतलाया; परंतु राजाको उससे संतोष नहीं हुआ। चौथे दिन जब और भी अधिक परिमाणमें भोजन बच गया तब राजाका संदेह बढ़ गया और उसने पाँचवें दिन मन्दिरको, उस अवसर पर, अपनी सेनासे घिरवाकर दरवाजे को खोल डालनेकी आज्ञा दी।

दरवाजेको खोलनेके लिए बहुतसा कलकल शब्द होनेपर समंतभद्रने उपसर्गका अनुभव किया और उपसर्गकी निवृत्तिपर्यंत समस्त आहार पानका त्याग करके तथा शरीरसे बिल्कुल ही ममत्व छोड़कर, आपने बड़ी ही भक्तिके साथ एकाग्र चित्तसे श्रीवृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुति* करना आरंभ किया। स्तुति करते हुये, समन्तभद्रने जब आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ स्वामीकी भले प्रकार स्तुति करके भीमलिंगकी ओर दृष्टि की, तो उन्हें उस स्थानपर किसी दिव्य शक्तिके प्रतापसे, चंद्रलांछनयुक्त अर्हंत भगवानका एक जाज्वल्यमान सुवर्णमय विशाल बिम्ब विभूतिसहित, प्रकट होता हुआ दिखलाई दिया। यह देखकर समंतभद्रने दरवाजा खोल दिया और आप शेष तीर्थंकरोंकी स्तुति करनेमें तल्लीन होगये।

दरवाजा खुलते ही इस महात्म्यको देखकर शिवकोटि राजा बहुत ही आश्चर्यचकित हुआ और अपने

---

† 'खंडुग' कितने सेरका होता है, इस विषयमें वर्णी नेमिसागरजीने, पं० शांतिराजजी शास्त्री मैसूरके पत्राधारपर, यह सूचित किया है कि बेंगलोर प्रांतमें २०० सेरका, मैसूर प्रांतमें १८० सेरका, हेगडदेवनकोटमें ८० सेरका और शिमोगा डिस्ट्रिक्टमें ६० सेरका खंडुग प्रचलित है, और सेरका परिमाण सर्वत्र ८० तोलेका है। मालूम नहीं उस समय खास कांचीमें कितने सेरका खंडुग प्रचलित था। संभवतः वह ४० सेरसे तो कम न रहा होगा।

‡ 'शिवार्पण'में कितना ही गूढ अर्थ संनिहित है।

* इसी स्तुतिको 'स्वयंभूस्तोत्र' कहते हैं।

छोटे भाई 'शिवायन' सहित, योगिराज श्रीसमंतभद्र को उद्दंड नमस्कार करता हुआ उनके चरणोंमे गिर पडा। समंतभद्रने, श्रीवर्द्धमान महावीरपर्यंत स्तुति कर चुकनेपर, हाथ उठाकर दोनोंको आशीर्वाद दिया। इसके बाद धर्मका विस्तृत स्वरूप सुनकर राजा संसार-देह-भोगोंसे विरक्त होगया और उसने अपने पुत्र 'श्रीकंठ' को राज्य देकर 'शिवायन' सहित उन मुनिमहाराजके समीप जिनदीक्षा धारण की। और भी कितने ही लोगोंकी श्रद्धा इस माहात्म्यसे पलट गई और वे अणुव्रतादिकके धारक होगये *।

इस तरह समंतभद्र थोडे ही दिनोंमे अपने 'भस्मक' रोगको भस्म करनेमे समर्थ हुए, उनका आपत्काल समाप्त हुआ, और देहके प्रकृतिस्थ होजाने पर उन्होने फिरसे जैनमुनिदीक्षा धारण करली।

* देखो 'राजावलिकथे' का वह मूल पाठ, जिसे मिस्टर लेविस राइस साहबने अपनी Inscriptions at Sravanabelgola नामक पुस्तककी प्रस्तावना के पृष्ठ ९२ पर उद्धृत किया है। इस पाठका अनुवाद मुझे वर्णी नेमिसागरकी कृपासे प्राप्त हुआ, जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

श्रवणबेल्गोलके एक शिलालेख ‡ मे भी, जो आजसे आठसौ वर्षसे भी अधिक पहलेका लिखा हुआ है, समन्तभद्रके 'भस्मक' रोगकी शान्ति, एक दिव्यशक्तिके द्वारा उन्हें उदात्त पदकी प्राप्ति और योगसामर्थ्य अथवा वचन-बलसे उनके द्वारा 'चंद्रप्रभ' (बिम्ब) की आकृष्टि आदि कितनी ही बातोंका उल्लेख पाया जाता है। यथा—

> वंद्यो भस्मकभस्मसात्कृतिपटुः पद्मावती देवता-
> दत्तोदात्तपद-स्वमंत्रवचनव्याहूतचंद्रप्रभः।
> आचार्यस्स समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ
> जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः॥

इस पद्यमें यह बतलाया गया है कि जो अपने 'भस्मक' रोगको भस्मसात् करनेमें चतुर है, 'पद्मावती' नामकी दिव्य शक्तिके द्वारा जिन्हे उदात्त पदकी प्राप्ति हुई, जिन्होने अपने मंत्रवचनोंसे (बिम्बरूपसे) 'चंद्रप्रभ' को बुला लिया और जिनके द्वारा यह कल्याणकारी जैनमार्ग (धर्म) इस कलिकालमें सब ओरसे भद्ररूप हुआ, वे गणनायक आचार्य समंतभद्र पुनः पुनः वन्दना किये जानेके योग्य हैं।

‡ इस शिलालेखका पुराना नंबर ५४ तथा नया नं० ६७ है; इसे 'मल्लिषेणप्रशस्ति' भी कहते हैं, और यह शक सम्वत् १०५० का लिखा हुआ है।

---

"सुखकर वही है, जिससे इच्छा घटे और तृप्ति बढ़े। जिससे इच्छा और अतृप्तता बढ़ती जाय वह सुखकर कभी नहीं हो सकता है।"

"सुखाभिलाषा होनेपर उसी सुखकी कामना चाहिये, जिसका कभी ह्रास न हो और जिसमें दुःख की कालिमा न लगी हो,।"

"जो हमारे स्वाधीन है और विपत्तिमे हमसे जुदा न हो, वही आनन्द है—सच्चा सुख है।"

"अपनी इच्छाओंको सीमाबद्ध करनेमे सुखको खोजो, नकि उन्हे पूर्ण करनेमें।"

"उच्च आकांक्षाका तो कहीं अन्त ही नहीं है। आवश्यकताएँ जहाँ तक हो, संक्षिप्त करलो। देखें फिर सुख कैसे नहीं आता है।"

—विचारपुष्प द्यान

# जैनसाहित्यके प्रचारकी आवश्यकता

[ लेखक—श्री सुरेन्द्र ]

भारतकी अन्य जातियाँ अपने उत्थानके लिए सतत प्रयत्न कर रही हैं। धर्मप्रचारके हेतु न जाने कितने प्रयत्न किए जा रहे हैं। उनके अपने दल स्थापित हो रहे हैं। नवयुवकोंमें जीवन-प्रदान करनेके लिए धर्म-प्रेम और देश-प्रेमके भावोंको कूट-कूट कर भरा जा रहा है। उनकी संख्यामें भी यथेष्ट अभिवृद्धि हो रही है। पर जैन जातिके युवकगण और वृद्धगण अपने उसी साचेमें ढले हुए हैं। उनमें वह जोश नहीं है जो अन्य जातियोंके जनसमूह की नस नसमें विद्यमान है। दुनिया उन्नतिके मार्ग पर चल पड़ी है, पर हमारी जैन जाति अभी अपने घरसे भी नहीं निकली है। कुछ युवकगण उस पथ पर आना चाहते हैं, अपनी जातिके मुखको धवलित करना चाहते हैं, पर उनके पास ऐसे साधन नहीं हैं। वे समाजके अनुचित बन्धनमें जकड़े हुए हैं। समाजके अप्रगतिशील मनुष्य इन युवकों के लघु अश जोश को एक खेल समझते हैं और उनको निठल्ला सम्बोधित करते हैं। किसी भी प्रकार की प्रगति चाहे वह सामाजिक हो या सामयिक समाजके इन कर्णधारों द्वारा ठुकरा दी जाती है। युवकगण हतोत्साह हो जाते हैं और उनका मन गिर जाता है।

किसी भी जातिका अभ्युत्थान नवयुवकोंपर निर्भर है। वे सब कुछ कर सकते हैं। सब कुछ करनेके लिए, उनमें काम करनेकी लगन और आशाका संचार होना चाहिए, जिसके लिए एक योग्य नेताकी आवश्यकता है, जो समय समय पर उनकी उठती हुई निराशाको आशामें परिवर्तित कर सके, जो उन नवयुवकोंका अपना कर्णधार बन सके, एक मित्र बन सके और मित्रके रूपमें एक सहायक भी हो सके। साथ ही शरीरबल, बुद्धिबल और आत्मबल की भी परम आवश्यकता है। जब तक उपर्युक्त बातोंका समावेश हरएक नवयुवकमें यथेष्ट मात्रामें न होगा, तब तक वह जात्युत्थानके कार्यमें सफलीभूत नहीं हो सकता। अपने बुद्धिबलसे ही वह अपनी जातिके मुखको उज्ज्वल कर सकेगा। इस बुद्धिबलको प्राप्त करनेके लिए प्रथम ही शरीरबल और आत्मबलकी परम आवश्यकता है। हरएक मानवको धर्मका वास्तविक अधिकारी होनेके लिए बुद्धिकी शरण लेनी पड़ती है। धर्मकी शिक्षा ही, जो उसे अन्तर्जगत में प्रविष्ट करा सके और उच्च अध्यात्मवादके पथपर आरूढ़ करा सके, उसकी आदर्श कर्णधार बनेगी। उसका धर्मका अध्ययन तत्त्वोंपर आश्रित हो, न कि ऊल-जलूल बाह्य विषयों पर। आजका जमाना शान्तिकी कामना करता है। उसे आज ऐसे वास्तविक धर्मकी आवश्यकता है जो अखिलविश्वको एक प्रेमसूत्रमें बाँध सके। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें नृत्य करती हुई अशान्तिको शान्त कर सके। जब तक नवयुवक इन सब बातोंमें सुसम्पन्न नहीं हो जाता, तब तक वह एक 'जैन नवयुवक' कहलानेका वास्तविक अधिकारी नहीं है। धर्मकी ओर जितनी ही उसकी प्रवृत्ति होगी, उतना ही वह जातिका मुख उज्ज्वल कर सकता है। धर्म तथा साहित्यका पारदर्शी एक नवयुवक ही लुप्त प्राय जैन साहित्यकी खोज कर सकता है। जैनधर्मका वास्तविक अध्ययन करने वाला मनुष्य ही जैनधर्मके उच्चतम तत्त्वों का प्रकाश अन्य जातिके लोगोंके सामने रख सकता है, इतना ही नहीं उनके हृदयको जैनदर्शनके सिद्धान्तों और उसके साहित्यकी ओर आकृष्ट भी कर सकता है। हमारी

भारतमाताको ऐसे ही नवयुवकोंकी आवश्यकता है जो उसकी इस निराश्रित आत्माको शान्ति दे सकें। स्वामी विवेकानन्दका कथन है कि विदेशमें धर्मप्रचारके द्वारा ही हमारी संकीर्णता दूर हो सकती है। जैनसमाज और जैनधर्मकी संकीर्णताका एकमात्र कारण अपने धर्मका प्रचार न करना है। स्वामीजी भारतकी संकीर्णताको विदेश में धर्म-प्रचार द्वारा ही दूर करनेका उपदेश दे गये हैं। बिलकुल उसी ढंगसे हम कह सकते हैं कि जैनजाति और जैनधर्मकी संकीर्णताको देशमें धर्म-प्रचार-द्वारा ही निवारण कर सकते हैं।

धर्म-प्रचारकी व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने एक भाषणमें कहा था कि—"भारतके पतन और दुःख-दरिद्रताका मुख्य कारण यह है कि उसने अपने कार्यक्षेत्रको संकुचित कर लिया था। वह शामुककी तरह दरवाजा बन्द करके बैठ गया था। उसने सत्यकी इच्छा रखनेवाली आर्येतर दूसरी जातियोंके लिए अपने रत्नोंके भण्डारको—जीवन-प्रद सत्य रत्नोंके भण्डारको—खोला नहीं।" हम लोगोंके पतनका भी सबसे मुख्य कारण यही है कि हम लोगोंने अपने घरसे बाहर जाकर अन्य जातियों के सामने अपने साहित्यरत्नोंको तुलनादिके लिए नहीं रक्खा। अतः जैन-साहित्यको और खासकर लुप्तप्राय जैनसाहित्य को खोजकर प्रकाशित करने तथा प्रचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। आज हमारा अगणित जैनसाहित्य मन्दिरोंकी कालकोठरियोंमें पड़ा पड़ा गल सड़ रहा है और दीमकों आदिके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किया जारहा है! जातिके कर्णधार कहलाने वाले और शास्त्रोंके अधिकारी उसे आजन्म बन्दीके समान बन्द किए हुए हैं! उनकी कृपासे आज हमारे जैनधर्मका दरवाजा दूसरोंके लिए प्रायः बन्द है! जब तक नगर नगरमें प्रचारक सस्थाये और लुप्तप्राय जैन साहित्यकी उद्धारक संस्थायें न होंगी और जातिके प्रचारक तथा रिसर्च-स्कालर्स (Research scholars) तन-मन-धन से साहित्यके अनुसंधान तथा प्रचारके कार्यको न करेंगे, तब तक यह जैनजाति कभी भी अपनी संकीर्णता को दूर कर अपनेको भारतकी उन्नतिशील जातियोंके समकक्ष खड़ा करनेमें समर्थ नहीं हो सकती और न अपनी तथा अपने धर्मकी कोई प्रगति ही कर सकती है।

## बुझता दीपक

(१)
धाँय धाँय कर अन्तस्तल में
धधक रही है ज्वाला,
खण्ड खण्ड हो टूट गई है
चिर-संचित - मणिमाला!

(२)
उमड़ पड़ा पाखंड शाकिनी-
रूप हुई सुरबाला,
बिखर पड़ा है प्यार, उलटकर
प्रेम - सुधा का प्याला!

(३)
जग बदला, कलिका मुरझाई,
उजड़ गया नव - उपवन,
उसमें पनप रहा मुस्काकर
मुझ दुखिनी का यौवन!

(४)
पर सँभलो यह मुस्काना है
उस दीपक की ज्वाला,
जो बुझने पर ज्योतिर्मय हो
करदे श्याम - उजाला।

( श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' )

# भक्तियोग-रहस्य

## [ सम्पादकीय ]

जैनधर्मके अनुसार, सब जीव द्रव्यदृष्टिसे अथवा शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा परस्पर समान हैं—कोई भेद नहीं—, सबका वास्तविक गुण-स्वभाव एक ही है। प्रत्येक जीव स्वभावसे ही अनन्त दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनन्त वीर्यादि अनन्त शक्तियोका आधार है—पिण्ड है। परन्तु अनादि-कालसे जीवोंके साथ कर्ममल लगा हुआ है, जिसकी मूल प्रकृतियाँ आठ, उत्तर प्रकृतियाँ एकसौ अड़तालीस और उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ असंख्य हैं। इस कर्म-मलके कारण जीवोंका असली स्वभाव आच्छादित है, उनकी वे शक्तियाँ अविकसित हैं और वे परतंत्र हुए नाना प्रकारकी पर्यायें धारण करते हुए नजर आते हैं। अनेक अवस्थाओंको लिये हुए संसारका जितना भी प्राणिवर्ग है वह सब उसी कर्म-मलका परिणाम है—उसीके भेदसे यह सब जीव-जगत् भेदरूप है; और जीवकी इस अवस्थाको 'विभाव-परिणति' कहते हैं। जबतक किसी जीवकी यह विभाव-परिणति बनी रहती है, तब तक वह 'संसारी' कहलाता है और तभी तक उसे संसारमें कर्मानुसार नाना प्रकारके रूप धारण करके परिभ्रमण करना तथा दुःख उठाना होता है; जब योग्य साधनोंके बलपर यह विभाव-परिणति मिट जाती है—आत्मामें कर्म-मलका सम्बन्ध नहीं रहता—और उसका निज स्वभाव सर्वाङ्गरूपसे अथवा पूर्णतया विकसित हो जाता है, तब वह जीवात्मा संसार-परिभ्रमणसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है और मुक्त, सिद्ध अथवा परमात्मा कहलाता है, जिसकी दो अवस्थाएँ हैं—एक जीवन्मुक्त और दूसरी विदेहमुक्त। इस प्रकार पर्यायदृष्टिसे जीवोंके 'संसारी' और 'सिद्ध' ऐसे मुख्य दो भेद कहे जाते हैं; अथवा अविकसित, अल्पविकसित, बहुविकसित और पूर्ण-विकसित ऐसे चार भागोंमें भी उन्हे बाँटा जा सकता है। और इस लिये जो अधिकाधिक विकसित हैं वे स्वरूपसे ही उनके पूज्य एवं आराध्य हैं, जो अविकसित या अल्पविकसित हैं; क्योंकि आत्मगुणोंका विकास सबके लिये इष्ट है।

ऐसी स्थिति होते हुए यह स्पष्ट है कि संसारी जीवोंका हित इसीमे है कि वे अपनी विभाव-परिणतिको छोड़कर स्वभावमें स्थिर होने अर्थात् सिद्धिको प्राप्त करनेका यत्न करें। इसके लिये आत्म-गुणोंका परिचय चाहिये, गुणोंमे वर्द्धमान अनुराग चाहिये और विकास-मार्गकी दृढ श्रद्धा चाहिये। बिना अनुरागके किसी भी गुणकी प्राप्ति नहीं होती—अननुरागी अथवा अभक्त-हृदय गुणग्रहणका पात्र ही नहीं, बिना परिचयके अनुराग बढ़ाया नहीं जा सकता और बिना विकास-मार्गकी दृढ श्रद्धाके गुणोंके विकासकी ओर यथेष्ट प्रवृत्ति ही नहीं बन सकती। और इस लिये अपना हित एवं विकास चाहनेवालोंको उन पूज्य महापुरुषों अथवा सिद्धात्माओंकी शरणमें जाना चाहिये—उनकी उपासना करनी चाहिये, उनके गुणोंमें अनुराग बढ़ाना चाहिये और उन्हें अपना मार्ग-प्रदर्शक मानकर उनके नक़्शे क़दमपर

चलना चाहिये अथवा उनकी शिक्षाओंपर अमल करना चाहिये, जिनमें आत्माके गुणोंका अधिकाधिक रूपमें अथवा पूर्णरूपसे विकास हुआ हो; यही उनके लिये कल्याणका सुगम मार्ग है। वास्तवमें ऐसे महान् आत्माओंके विकसित आत्मस्वरूपका भजन और कीर्तन ही हम संसारी जीवोंके लिये अपने आत्माका अनुभवन और मनन है; हम 'सोऽहं' की भावनाद्वारा उसे अपने जीवनमें उतार सकते हैं और उन्हींके—अथवा परमात्मस्वरूपके—आदर्शको सामने रखकर अपने चरित्रका गठन करते हुए अपने आत्मीय गुणोंका विकास सिद्ध करके तद्रूप हो सकते हैं। इस सब अनुष्ठानमें उनकी कुछ भी ग़रज नहीं होती और न इसपर उनकी कोई प्रसन्नता ही निर्भर है—यह सब साधना अपने ही उत्थानके लिये की जाती है। इसीसे सिद्धिके साधनोंमें 'भक्ति-योग' को एक मुख्य स्थान प्राप्त है, जिसे 'भक्ति-मार्ग' भी कहते हैं।

सिद्धिको प्राप्त हुए शुद्धात्माओंकी भक्तिद्वारा आत्मोत्कर्ष साधनेका नाम ही 'भक्ति-योग' अथवा 'भक्ति-मार्ग' है और 'भक्ति' उनके गुणोंमें अनुरागको, तदनुकूल वर्तनको अथवा उनके प्रति गुणानुराग-पूर्वक आदर-सत्काररूप प्रवृत्तिको कहते है, जो कि शुद्धात्मवृत्तिकी उत्पत्ति एवं रक्षाका साधन है। स्तुति, प्रार्थना, वन्दना, उपासना, पूजा, सेवा, श्रद्धा और आराधना ये सब भक्तिके ही रूप अथवा नामान्तर हैं। स्तुति-पूजा-वन्दनादि रूपसे इस भक्तिक्रियाको 'सम्यक्त्ववर्द्धिनी क्रिया' बतलाया है, शुभोपयोगि चारित्र' लिखा है और साथ ही 'कृतिकर्म' भी लिखा है जिसका अभिप्राय है 'पापकर्म-छेदनका अनुष्ठान'। सद्भक्तिके द्वारा औद्धत्य तथा अहंकारके त्यागपूर्वक गुणानुराग बढ़नेसे प्रशस्त अध्यवसायकी—कुशल परिणामकी—उपलब्धि होती है और प्रशस्त अध्यवसाय अथवा परिणामोंकी विशुद्धिसे संचित कर्म उसी तरह नाशको प्राप्त होता है, जिस तरह काष्ठके एक सिरेमें अग्निके लगनेसे वह सारा ही काष्ठ भस्म हो जाता है। इधर संचित कर्मोंके नाशसे अथवा उनकी शक्तिके शमनसे गुणावरोधक-कर्मोंकी निर्जरा होती या उनका बल-क्षय होता है तो उधर उन अभिलषित गुणोंका उदय होता है, जिससे आत्माका विकास सधता है। इससे स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्योंने परमात्माकी स्तुतिरूपमें इस भक्तिको कुशल परिणामकी हेतु बतलाकर इसके द्वारा श्रेयोमार्गको सुलभ और स्वाधीन बतलाया है और अपने तेजस्वी तथा सुकृती आदि होनेका कारण भी इसीको निर्दिष्ट किया है, और इसी लिये स्तुति-वंदनादिके रूपमें यह भक्ति अनेक नैमित्तिक क्रियाओंमें ही नहीं, किन्तु नित्यकी षट् आवश्यक क्रियाओंमें भी शामिल की गई है, जो कि सब आध्यात्मिक क्रियाएँ हैं और अन्तर्दृष्टिपुरुषों (मुनियों तथा श्रावकों) के द्वारा आत्मगुणोंके विकासको लक्ष्यमें रखकर ही नित्य की जाती हैं और तभी वे आत्मोत्कर्षकी साधक होती हैं। अन्यथा, लौकिक लाभ, पूजा-प्रतिष्ठा, यश, भय, रूढि आदिके वश होकर करनेसे उनके द्वारा प्रशस्त अध्यवसाय नहीं बन सकता और न प्रशस्त अध्यवसायके बिना संचित पापों अथवा कर्मोंका नाश होकर आत्मीय गुणोंका विकास ही सिद्ध किया जा सकता है। अतः इस विषयमें लक्ष्यशुद्धि एवं भावशुद्धिपर दृष्टि रखनेकी खास जरूरत है, जिसका सम्बन्ध विवेकसे है। बिना विवेकके कोई भी क्रिया यथेष्ट फलदायक नहीं होती, और न बिना विवेककी भक्ति सद्भक्ति ही कहलाती है।

---

[आप 'वीरसेवामन्दिर' के विशिष्ट प्रेमी हैं। आपने उसे अपनी पूज्य माता जीकी ओरसे ५०) रु० मासिकके हिसाबसे १७००) रु० की सहायता ३४ मास तक प्रदान की है और अपनी धर्मपत्नीकी तरफसे ३०००) रु० की सहायता 'अनुसन्धान व ग्रन्थनिर्माण' कार्यके लिये दी है, जिसके फलस्वरूप 'जैनलक्षणावली' और 'पुरातन-जैनवाक्य-सूची' के संग्रहका अधिकांश कार्य हुआ है। इस वर्ष वीरसेवामन्दिरसे 'अनेकान्त' के प्रकाशनका समाचार पाकर और उसकी सहायक स्कीमको देखकर आप भी उसके १००) रु० के सहायक बने हैं।]
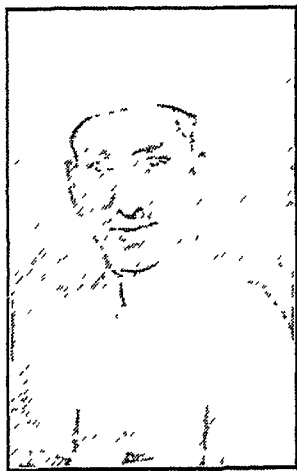
साहू शान्तिप्रसादजी जैन, डालमियानगर
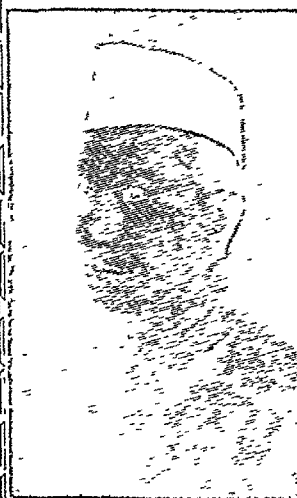
**ला० तनसुखरायजी जैन, न्यू देहली**

[आप पिछले दो वर्ष 'अनेकान्त' के संचालक रहे हैं, और उसे फिरसे चालू करनेका श्रेय आपको प्राप्त है। इस वर्ष १००) रु०की सहायताका वचन देकर आप उसके सहायक बने हैं। वीरसेवामन्दिरके आप प्रेमी हैं।]

**साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन, लाहौर**

[आप नजीबाबादके सुप्रसिद्ध रईस व जमींदार हैं, वीरसेवामन्दिर' और 'अनेकान्त' से खास प्रेम रखते हैं। इस वर्ष १००) रु० की सहायताका वचन देकर आप भी अनेकान्तके 'सहायक' बने हैं।]

# आत्म-बोध

[ लेखक—श्री 'भगवत्' जैन ]

'वे सब बातें कीजिए। जिन्हें आत्मोन्नतिके इच्छुक काममें लाया करते हैं। दिन-रात ईश्वराराधन, आत्म-चिन्तवन और कठिन व्रतोपवास करते रहिए। लेकिन तब तक वह 'सब-कुछ' नहीं माना जा सकता, जब तक कि 'आत्म-बोध' प्राप्त न हो जाए! हाँ, आत्म-बोध' ऐसी ही चीज है, उसे पाकर 'इच्छा' मिट जाती है; क्योंकि वह सर्वोपरि है!'

( १ )

मनमें सन्तोष रहता है कि अमुक चीज हमने अमुकको दे दी। लेकिन वैसी हालतमें दिलपर काबू करना सख्त मुश्किल मालूम होता है, जब कोई चीज असावधानीसे खो जाए! इससे बहस नहीं चीज घटिया रहे या कीमती! 'खो जाने' की जहाँसे हद शुरू होती है, वहींसे मनकी शान्ति, प्रायः दूर भागने लगती है!...

सूर्यमित्रको अगर चरमदुःख है, तो कुछ बे-जा नहीं! हो सकता है—'गतं न शोच्यं' के मानने वाले कोई धीमान् उन्हें वज्र-मूर्ख कहनेपर उतारू हो। पर यह उतना ही अन्याय-पूर्ण रहेगा, जितना वासना-त्यागी, परम शान्त, दिगम्बर-साधुको दरिद्री कहना! ...घरका कोना-कोना खोज डाला गया! नगर-वीथियां, राजपथ—जहाँ जहाँ उन्होंने गमन किया है—सब, सतर्क-दृष्टि द्वारा देखे जाचुके हैं। लेकिन अँगूठी का कहीं पता नहीं! कोई जगह ऐसी नहीं बाकी रही जहां उसे न ढूँढा-ढकोरा गया हो! बहुत याद करने पर भी सूर्यमित्रको इसका जवाब नहीं मिल रहा कि अँगूठी कब तक उँगलीमें रही, और कब, किस जगह उँगलीसे निकल कर खो गई ?'

चीजका खोजाना ही जहाँ दुःखका कारण है, वहाँ सूर्यमित्रको उससे भी कुछ ज्यादह वजूहात हैं! पहली बात तो यह, कि अँगूठी बेश-क़ीमती है! अलावः इसके बड़े रंज और घबराहटकी गुञ्जायश यों है कि अँगूठी अपनी नहीं, वरन् एककी—थोड़े ही समयके लिए रखने-भरको अमानत थी! अमानत ऐसेकी है जिसे डाट-डपट कर संतुष्ट नहीं किया जा सकता, बहाना बनाकर पिण्ड नहीं छुड़ाया जा सकता।... वह हैं राजगृहीके प्रतापशाली महाराज!

बात यों हुई।—महाराज सूर्यमित्रको मानते-चीनते हैं, राजका उठना-बैठना, कराब-करीब बे-तकुल्लुफी का-सा व्यवहार! मगर सिर्फ महाराजकी ओरसे ही! क्योंकि सूर्यमित्रको तो राज्य सम्मान करना जैसे आवश्यक ही है!

कुछ कारण विशेष होनेपर महाराजने अँगूठीको उँगलीसे उतारा। सूर्यमित्र पास ही थे, दे दी ज़रा रखनेके लिये। मिनिट, दो मिनिट तो सूर्यमित्र

अँगूठीको मुट्ठीमे दवाये रहे। फिर देखा तो महाराज को भी अँगूठी वापस लेनेमे देर थी। अहतियातन सूर्यमित्रने अँगूठीको उँगलीमें डाल लिया।······

और बातोंहीबातोंमें घर लौट आए! न इन्हे अँगूठी वापस करनेकी याद रही, न महाराजको माँग लेनेकी। घर आकर निगाह गई तो अँगूठी उँगलीमें! सोचा—'भूल होगई। कल दर्बारमें हाजिर कर देंगे। और क्षमा-याचना भी, अपनी असावधानी की!'

अँगूठी उँगली में ही पड़ी रही!

सुबह जब दर्बारमें चलनेका वक्त हुआ तो उँगली पर निगाह गई—सूनी उँगली!!!

सूर्यमित्रके दम खुश्क! शरीरकी रक्तप्रवाहिनी नालियाँ जैसे रुकने लगी। आंखोके आगे काले-बादलो जैसे उड़ने लगे। वह सिर थाम कर वहीं बैठ गए। सिर जो चकरा रहा था। माथेपर पसीने की बूंदें झलक आईं!

'अँगूठी कहाँ गई?—'

हृदयके भीतरी कोनेसे आवाज उठी और शरीर के रोम-रोममें समा गई!··· लेकिन उत्तर था कहाँ?—देता कौन? स्वयं सूर्यमित्रका हृदय ही मौन था।

सारा परिवार दुःखित, भृत्यदल चिंतित और सारे परिचित व्यथित। घरमे अनायास जैसे भूकम्प का हमला हुआ हो!···

सूर्यमित्रका मन दुश्चिन्ताओंमे जकड़ रहा है। जैसे मरी-मक्खीको चींटियाँ पकड़ रखती हैं। तन-बदनकी सुध उन्हे नही है। आज दर्बारमे जाना स्थगित कर दिया है। खाने-पीनेको ही नही, बल्कि भूख तकको भूले बैठे हैं।

सोचना ही जैसे जरूरी काम है उनका आज! सोच रहे हैं—'महाराजको क्या जवाब दिया जायेगा? दर्बारमे जाने तककी हिम्मत नही पड़ रही, फिर मुँह किस तरह दिखायें? अगर इसी दरम्यान उनकी बुलावट आजाये? ठीक उसी तरहकी अँगूठी बन सकेगी? नमूना बताया कैसे जायेगा? और फिर कितनी रक़म चाहिए—उसके लिए? कुछ शुमार है! यह मैं कर कैसे सकता हूं? काश! अँगूठी कहीं मिल जाए? ··क्या होगा अब? यह कौन बनाए? ज्योतिष-विद्या-कोविद भी तो ठीक-ठीक नही बतला पा रहे। घोर संकट है। कैसी कड़ुवी समस्या है?··'

दुपहरी ढलने लगी।

सूर्यमित्रकी दशामें कोई अन्तर नही। मुँह सूख रहा है। मन काँप रहा है। शरीर तापमानकी गर्मीसे झुलसा जारहा है। घरमें चूल्हा नहीं सुलगा। मरघट उदासी का शासन व्यवस्थितरूपसे चल रहा है।—किसीकी आँखे बरस रही हैं, कोई हिचकियाँ ले रहा है। घातककल्पना, या अज्ञात-भय आँखोमें, हृदयमें ठस रहा है—'महाराजका क्रोध जीवित छोड़ेगा या नहीं?'

सूर्यमित्र छतपर चहल-क़दमी कर रहे थे, इस आशासे कि मनकी व्यथा शायद कुछ घटे, कि अनायास सड़कपर जाते हुए एक उल्लसित-जत्थेपर उनकी नजर पड़ी! जत्थेमें बूढ़े थे, अधेड़ थे, जवान थे और खुशीमें ललकते हुए बालक! कुछ स्त्रियाँ भी थी, जिनके ओठोंपर पवित्र-मुस्कान-सी हिलोरें लहरा रही थी।···विश्व-वैचित्र्यके इस ज्वलन्तउदाहरणने सूर्यमित्रके दुखते हुए मनमें एक चमकसी पैदा की! मन मचल पड़ा—'ये लोग कहाँ जा रहे है?'

दर्याफ्त कराया गया।—'बासनाहीन, परम-शान्त, तपोवन, दिगम्बर-साधु महाराज 'सुधर्माचार्य' नगर-निवासियोंके भाग्योदयसे प्रेरित होकर, समीपके उद्यानमें पधारे हैं। सुखाभिलाषी, धर्म-प्रेमीजन उनके दर्शन-वन्दन द्वारा महत्पुण्योपार्जनके लिए जारहे हैं।

सूर्यमित्रका स्वार्थ करवट बदलने लगा। अकारण ही, ऋषिआगमनमें उन्हें अपनी चिन्ता-निवृत्तिका आभास दिखलाई देने लगा। विचार आया—'सम्भव है ये साधु अपने तपोबल, या विद्याबल द्वारा अंगूठीके बारेमें कुछ बतला सकें! लेकिन······।'

उसी वक्त विचारोंके मार्ग में रुकावट आ खड़ी हुई।—'लेकिन मेरा एक जैन-ऋषिके पास जाना, कहाँ तक ठीक रहेगा? प्रजाकी दृष्टिमें·· ?—अगर महाराजने सुन पाया···?···मैं···? मैं एक राज्य-कर्मचारी होकर एक साधुके पास. दीनताके भाव लेकर जाऊँ?—नहीं, यह हर्गिज उचित नहीं। अँगूठीके लोभमें पद-मर्यादाको भूलजाना मूर्खता होगी।'

अन्तर्द्वन्द !!!—

'पर, अँगूठीकी समस्याका हल होना तो जरूरी है। बगैर वैसा हुए मेरा पद खतरेसे खाली है, यह कौन कह सकता है? अँगूठी साधारण नहीं, मूल्य-वान् है। मेरा भविष्य उसके साथ खोया जा रहा है। उसके अन्वेषणका मार्ग निश्चित होना ही चाहिए।'

दुविधा! असमंजस !!—

क्या करना चाहिए? आशापर सब-कुछ किया जाता है। फिर अपना स्वार्थ भी तो है। अगर अँगूठी मिलनेका उपाय मिल गया तब? साधुओंके पास बड़ी-बड़ी विद्याएँ होती हैं, कौन जानें उन्हींमेसे ये हों! तो·· ···? शामको जरा अँधेरी चलना ठीक रहेगा। ज्यादह लोग देख भी न सकेंगे, और मतलब भी पूरा हो जायेगा।'

अब सूर्यमित्रके मुँहपर बदहवासीकी कुछ कम रेखाएँ थीं। भीतर आशा जो उठ–बैठ रही थी।

× × × ×

[ २ ]

मन ललकारता, पैर पीछे हटते। आशा उत्तेजित करती, पदमर्यादा मुर्दा बनाती। स्वार्थ आगे धकेलता, संकोच पीके खदेड़नेको तुल जाता! बड़ी देर तक यही होता रहा। सूर्यमित्र आचार्यप्रवरके समीप तक न पहुंचकर, दूर ही दूर चक्कर काटते रहे। कभी सोचते—'लौट चलें।' कभी—'आए हैं तो पूछना चाहिए।'

ज्ञान सिन्धु आचार्य—महाराजने देखा—'निकट-भव्य है—आत्मबोध प्राप्त कर सकता है।'

उधर सूर्यमित्र सोच रहे हैं—'इतने नागरिकोंके बीच, मैं कैसे पूछ सकूँगा कि मेरी अंगूठी कहाँ गई? मिलेगी या नहीं? मिलेगी तो कब, कहाँ?'···

···कि साधुशिरोमणि स्वयं कह उठते हैं—'सूर्य-मित्र! अपने महाराजकी अँगूठी खोकर अब चिन्ता-वान् बन रहे हो? वह सान्ध्यतर्पण करते समय, उँगलीसे निकल कर—तालाबके कमलमें जा गिरी है। सुबह कमल खुलनेपर मिल जायेगी, चिन्ता क्या है!'

सूर्यमित्रके जलते हुए हृदयपर जैसे मेघ-वृष्टि हुई। कम अचम्भित हुए हों, यह भी नहीं। काश! साधु-शब्द सच निकलें!'—के साथ २ यह भी सोचने लगे कि—'है जरूर कोई-न-कोई विद्या, इनके पास! नहीं, मेरा नाम लेकर सम्बोधन कैसे किया? अँगूठी

राजाकी थी यह इन्हे कैसे मालूम ? इसका तो किसी को भी पता नहीं है—अब तक।'

और वह लौट पड़े उसी दम ! बगैर कुछ कहे-सुने, चुप ! हल्की प्रसन्नता और झीना-सन्देह दोनो उनके साथ थे।

× × × ×

रात, कैसी विह्वलता कैसी असमंजसता और कैसी धूप-छायासी आशा-निराशाके साथ बीती। यह कहनेसे अधिक अनुमान लगानेकी बात है।

सुबह हुआ ! सूर्य चढा ! सूर्यमित्र-कमल-विकसित हुए। तभी दो अत्यंत लालायित आँखोने देखा —रत्नालंकृत, नेत्र-वल्लभ, सुन्दर अँगूठी, विशाल पंखुरियो वाले मनोहर कमलकी गोदमें पड़ी मुस्करा रही है।

हर्षमें डूबे हुए शरीरके दोनो हाथोने शीघ्रता पूर्वक उसे प्राप्त कर लिया, और इसके दूसरे ही क्षण अँगूठी सूर्यमित्र की उँगलीमें पड़ी, अपने सौभाग्य पर जैसे हँस रही थी।···

सूर्यमित्र दर्बार गए—मनमे न संकोच था, न भय। हमेशाकी तरह प्रसन्न, गंभीर, गुरुत्वपूर्ण।

बैठे। अपनी भूलकी समालोचना करते हुए अँगूठी महाराजको सौंपी। उन्होंने मामूली तवज्जहके साथ अँगूठी हाथमें ली और उँगलीमें पहिन ली।

एक छोटी, संक्षेप सी मुस्कराहट उनके ओठो पर दिखलाई दी।

फिर दैनिक राजकार्य।

× × × ×

[ २ ]

इन दिनों सूर्यमित्रका जीवन जाने कैसा बन रहा है ? पिछली रात भी विह्वलता, भूखसी, चावसा, अधूरापनसा नींद नहीं लेने देता था। आज भी वही सब कुछ है। फर्क है तो इतना कि आज उस तकलीफकी किस्ममे तब्दीली होगई है।···

रात बीतती जारही है। पर सूर्यमित्रका ध्यान उसकी ओर कतई नहीं है। वह सोच रहे हैं—'कितनी उपयोगी, कितनी अमूल्य, कितनी कल्याणकारी विद्या है ? ऐसी विद्या पाने पर संसारमें क्या नहीं किया जासकता ? जरूर लेनी चाहिए—यह विद्या ! फिर ब्रह्म बालकका तो विद्यापर पूर्णाधिकार है। जो विद्या ले वह थोड़ी।'

विद्या प्राप्त होनेपर वह क्या २ कर सकते है ? कौनसा विद्वान् तब उनके मुकाबिलेका गिना जा सकेगा ? भविष्यके गर्भमें क्या है, क्या अतीतकी गोद मे समा चुका है ? जब यह वह बताएँगे, तब कितना यश, कितना नाम उन्हे संसारमें मिलेगा ? महाराजके हृदयमे तब उनके लिए कितनी जगह बन जायेगी ? आदि मधुर-कल्पनाएँ, चलचित्रकी तरह आँखोके आगे सजीव बन कर आने लगी।

और···?—इसी अतृप्त-लालसाके सुनहरे-स्वप्नो मे रातकी रात बीत गई। लेकिन सुबह, प्रभातके नए सूरजके साथ-साथ सूर्यमित्रके हृदयमे भी एक नवीनताने जन्म लिया। वह थी—विद्याप्राप्तिकी अटूटचेष्टा···। विद्या मनमे चुभ जो गई थी। मनमें चुभीका उपाय है—दृढ़संकल्प। रातभर जो कोरीआँखों उधेड़बुन होती रही है, उसने सूर्यमित्रको इसी नतीजेपर पहुँचाया है। अब उन्हे रुकावटें, पथभ्रष्ट नहीं कर सकती। बाधाएँ चित्तवृत्तिको डुला नहीं सकती। जो लहर उठी है, वह विद्या प्राप्त होने तक अब उनका साथ देगी।

यह है अन्तरात्माकी पुकार ! आत्म—विश्वासका खुला रूप !!!

× × × ×

[ ४ ]

बगैर इस बातका विचार किए कि हम राज्य-मान्य पुरोहित हैं। पद-मर्यादा भी कोई चीज़ है। जिन्हे सिर नवा रहे हैं, वह अपने मान्य-संन्यासी नहीं, वरन् दिगम्बरत्वके हामी, एक महर्षि हैं।—सूर्यमित्रने विनयपूर्वक तपोधन सुधर्माचार्यको प्रणाम किया।

आज उनके हृदयमें संकोच नहीं है। घबराहट भी नहीं, कि कोई देखलेगा। मुँहपर सन्तोप है, आँखोंमें विनय।

महाराजने 'धर्मवृद्धि' दी। कहा—'आत्मबन्धु ! अँगूठी मिल गई, अब क्या चिन्ता है ?'

'महाराज !···' सूर्यमित्रने कहना चाहा, लेकिन कह न सके। सोचने लगे किन शब्दोंमे कहा जाए ? बातकी शुरूआत कहाँसे हो ? सवाल 'माँगने'का है। 'माँगना' वह काम है जो दुनियाके सारे कामोंसे मुश्किल—कठिन—होता है।

क्षणोंके अन्तरालके बाद—महाराज बोले—'कहो सूर्यमित्र ! क्या कहना चाहते हो ?'

सूर्यमित्रका मन खुलसा गया। महाराजके वचन-माधुर्यमे उन्हें वह आत्मीयता मिली, जो अब तक उनसे दूर थी। आडम्बर—रहित शब्दोंमें, चरणोंमें सिर नवाते हुए बोले—'योगीश्वर ! हमें वह विद्या दो, जिसके द्वारा तुम अन्तरकी बात जान लेते हो, खोई—वस्तुका भेद समझ पाते हो।'

महाराज मुस्कराये।

शायद सोचने लगे—'कितना भोला है—यह मानव ! विद्या-लोभने इसे पराजित कर रखा है, भूल रहा है कि—'वह विद्या कोई अलग वस्तु नहीं।' बल्कि इसीकी अपनी चीज़ है। केवल 'अनसमझ'के अन्तरने उसे 'पर' बना दिया है। चाहे तो तत्काल उसे पा सकता है, है ही उसकी इस लिए।'

फिर बोले—'तो उस विद्याकी ही केवल इच्छा रखते हो—सूर्यमित्र ?

जिसे वह 'महान्' समझकर माँग रहे हैं, गुरुदेव के लिए वह साधारणसे अधिक नहीं। उसके लिये 'केवल' शब्द इस्तैमाल कर रहे हैं। इस उदार रहस्य ने उन्हें चौंका दिया। जागरित लालसामें बल-संचार हुआ। विचार आया—'होनहो ऋषिके पास इससे भी मूल्यवान् और भी विद्याएँ हैं। तभी यह बात है। लेकिन एक साथ ज्यादहके लिए मुँह फैलाना शायद ठीक न रहेगा। मुमकिन है—तपस्वी जी नाराज होजाएँ। 'राजा, योगी, अग्नि, जल इनकी उल्टी रीति।'—मशहूर ही तो है। फिर अपनका इतनेसे फिलहाल काम चल सकता है। बाक़ी फिर···।

अधिक से अधिक स्वरमें मिठास लानेका प्रयत्न करते हुए सूर्यमित्रने उत्तर दिया—'हाँ ! महाराज ! वह विद्या मुझे मिलनी चाहिए। बड़ी कृपा होगी, आजन्म एहसान मानूँगा।'

'विद्या देनेमें तो मुझे उज्र नहीं। लेकिन मुश्किल तो तुम्हारे लिए यह है कि विद्या, बिना मेरा जैसा वेष धारण किये आती ही नहीं। सोचो, इसकेलिए मैं क्या कर सकता हूँ ?'—

—महाराजने गंभीर स्वरमें, वस्तुस्थितिके साथ साथ अपनी विवशता सामने रक्खी।

सूर्यमित्र उत्सुक नेत्रोंसे ताकते रहे, बोले कुछ नहीं। सम्भव है, बोलनेके लिए उन्हें शब्द ही न मिले हों—मनमाफिक।

चुप उठकर चले आए।

× × × ×

( ५ )

घर आकर सूर्यमित्रने मशवरा किया। विद्याकी महत्ता मनमें घुल जो चुकी थी। सहज ही वह विद्या लाभको छोड कैसे सकते थे ?...

कहने लगे—'दिगम्बर साधु बनकर भी अगर वह विद्या मुझे मिलती है, तो मेरा खयाल है—इतने में भी मँहगी नहीं। दिगम्बर साधु बनना अपनी मान्यताके खिलाफ जरूर है. लेकिन मैं जो बन रहा हूँ वह भक्तके रूपमे नहीं. वरन् विद्याप्राप्तिके, साधन के तरीकेपर। वह भी हमेशा-हमेशाके लिए नहीं, सिर्फ विद्याको 'अपनी' बना लेने तक ही। अब विचार करो क्या हर्ज है ?...मेरा तो यही मत है कि दिगम्बर साधु बनना उतना बुरा नहीं, जितनी गहरी भूल इस सुयोगको छोड़ देनेसे होगी।

ब्राह्मणपरिवारके आगे विषम समस्या है। घुटी के लाभ जहाँ पीनेके लिये प्रेरित करते हैं, वहजायका उतना ही रोक देनेकी हिम्मत दिखाता है।...बात कुछ देर 'नाहीं नुकर' की घाटीमें पडी रही। लेकिन सूर्यमित्र की 'लगन' मे काफी मजबूती थी, बल था। आखिर सब लोगोको स्वीकारोक्ति द्वारा उनका मार्ग अबाधित करना ही पड़ा।

आगे बढ़े।

स्त्रीने आकर रास्ता रोक लिया। रुँधे हुए गलेमे जैसे बडी देर रो लेनेके-बाद अब बोलनेका मौका मिला हो, बोली—'कहाँ चले ? बच्चोंकी, मेरी, किसी की कुछ चिंता नहीं, विद्या ही सब कुछ तुम्हारी बन रही है ?... संन्यासी बनोगे ? मैं कैसे घरमे रह सकूँगी ?'

वह रोदी।

उसे जैसे रोना जरूरी था।

पर सूर्यमित्रने समझा उसे बाधा। बोले—घब-राओ नही। मैं संन्यासी जरूर बन रहा हूँ, लेकिन यह मत समझो, कि तुम्हे या बच्चोंको भूल जाऊँगा। मुझे किसीकी चिन्ता न रहेगी। नही, सब तरह ऐसा ही रहूँगा। सिर्फ दिगम्बर-साधुका रूप रखना होगा। विद्या जो बिना वैसा किए नही आती। मजबूरी है न ?—इसी लिए!'

'तो कब तक लौट सकोगे ?'—स्त्रीने हारकर, आधीनस्थ-स्वरमें पूछा।

'वापस ? विद्या मिली नहीं कि लौटे नही। साधु बननेका शौक थोड़ा है ?—बहुत लगा—महीना भर।'—और वह जैसे पिण्ड छुड़ाकर भागे!

× × × ×

[ ६ ]

दूसरा दिन है।—

सूर्यमित्र दिगम्बर-साधुके भव्य वन्दनीय वेषमें, तपोनिधि सुधर्माचार्यके समीप विराजे हैं। भक्त-गण आते हैं, श्रद्धा-पूर्वक अभिवादनकर, पुण्य-लाभ लेते हैं, और चले जाते हैं।

अवसर पाकर सूर्यमित्र बोले—'प्रभो। आज्ञा-नुकूल मैंने साधुता स्वीकार करली। अब मुझे विद्या मिल जानी चाहिए।'

'जरूर!'—वात्सल्यमयी स्वरमें महाराज ने उत्तर दिया—'लेकिन जरा धैर्यसे काम लो। मेरी तरह क्रियाएँ करो, आत्मविश्वास रखो; और शास्त्र-अध्ययनमें दिन बिताओ। अवश्य तुम्हे विद्याएँ प्राप्त होंगी। एक वही नहीं, और भी साथ-साथ।'

सूर्यमित्रने बातें सुनी ही नहीं, हृदयमें धरली। तदनुकूल आचरण भी किया—अटूट लगन, और श्रद्धाके साथ!

कई दिन आए और चले गए।

हृदयमें कुछ ज्ञान-संचार होने लगा। लगने लगा जैसे आँखोंके आगेसे परदासा उठता जा रहा है।

पूछने लगे—'स्वामी! शास्त्रस्वाध्यायमें आनन्द तो खूब आता है, पर अभी वह विद्या मुझे नहीं मिल सकी।'

'मिलेगी! जिस दिन विद्याकी लालसा मनसे दूर हो जायेगी, उसी दिन विद्या तुम्हारे चरणोंमें लोटेगी।'—महाराजने गंभीर वाणीमें व्यक्त किया।

सूर्यमित्रका मन धुलता जारहा है। वासनाएँ क्षीण होरही हैं। ज्ञान जागरित होरहा है।

बहुत दिन बीत गए।

शास्त्र-अध्ययन करते २ वह सोचने लगे—एक दिन!...'ओफ! विद्याके लोभमें मैंने इतने दिन निकाल दिये। कपूर देकर कंकड़ लेना चाहता था? वज्र-मूर्खता! महान् ऐश्वर्यका स्वामी यह आत्मा; आज कितना दीन बन रहा है। क्या नहीं है—इसके पास? लेकिन सांसारिकता इसका पीछा छोड़े तब?'

इसी समय गुरुदेव बोले—'कहो सूर्यमित्र! अब विद्याकी लालसा बाकी है क्या?...चाहिये?'

सूर्यमित्रने तत्काल उत्तर दिया—'नहीं, प्रभो! अब मुझे विद्याकी जरूरत नहीं। अब मुझे उससे कहीं मूल्यवान् वस्तु—आत्मबोध मिल चुका है। उसे पा लेनेपर किसीकी इच्छा नहीं रहती।'

× × × ×

( ७ )

सूर्यमित्र !!!—

आज महान् तपस्वी ही नहीं, महान् आचार्य हैं। अनेकों विद्याएँ उन्हे सिद्ध हैं। लेकिन वे उन्हे जानते तक नहीं। उन्हे उनसे क्या प्रयोजन? क्या वास्ता? अब उन्हें वह वस्तु मिल चुकी है जो अत्यंत दुर्लभ, अमूल्य और महासौख्यप्रदाता है, विद्याओं की उसके आगे क्या वकअत? वह वस्तु है—

आत्म-बोध !!!

---

# अहिंसा-तत्त्व

( लेखक—श्री ब्र० शीतलप्रसाद )

[ इस लेखके लेखक ब्र० शीतलप्रसाद जी अर्सेसे बीमार हैं—कम्पवातसे पीड़ित हैं, फिर भी आपने अनेकान्तके विशेषाङ्कके लिए यह छोटासा सुन्दर तथा उपयोगी लेख लिखकर भेजनेकी कृपा की है, इसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। कामकी—कर्तव्य पालनकी लगन इसको कहते हैं! और यह है अनुकरणीय सेवाभाव !!

—सम्पादक ]

**श्री** समन्तभद्राचार्यने स्वरचित स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है कि अहिंसा परमब्रह्मस्वरूप है। जैसे परम-ब्रह्म परमात्मामें कोई विकार नहीं है, रागद्वेष नहीं है, इच्छा-मोह नहीं है, न कोई हिंसात्मक भाव है; वैसे ही अहिंसातत्त्वमें कोई राग-द्वेष-मोह-भाव नहीं है, न द्रव्यहिंसा है, न भावहिंसा है, न संकल्पी हिंसा है, न आरम्भी हिंसा है। जहाँ मन-वचन-कायकी रागादि क्रिया न होकर आत्मा अपने आत्मस्वरूपमें स्थित रहता है वहीं अहिंसातत्त्व है।

जैन तीर्थंकरोंने ऐसी अहिंसाको ही आदर्श अहिंसा कहा है। इसमे जो कुछ भी कमी है वह हिंसा मे गर्भित है। रागद्वेष-मोहादि विभावोंसे आत्माके वीतरागतादि भाव प्राणोंकी हिंसा होती है। द्रव्य-प्राणोंके घातको द्रव्यहिंसा कहते हैं, परन्तु वह भाव-हिंसाके विना हिंसा नाम नहीं पाती है। जैसे कोई साधु भूमि देख कर चलता है, उसके परिणामोंमें जीवरक्षाका भाव है—जीवहिंसाका भाव नही है; ऐसी दशामें यदि अचानक किसी क्षुद्रजन्तुका घात हाथ या पग द्वारा हो जावे, तो वह मुनि उस द्रव्य-हिंसाका भागी न होगा। क्योंकि उसके भावमें हिंसा नही है, इसलिए वास्तवमें भावहिंसा ही हिंसा है; द्रव्यहिंसा भावहिंसाका प्रकट कार्य है, इसलिये द्रव्य-हिंसाको भी हिंसा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जैन तीर्थंकरोने अहिंसाको ही धर्म माना है। जगतमें व्यवहार करते हुए व्यवहारी जीवोंसे सर्वथा अहिंसा का पालन हो नही सकता। तब जितने अंशमें अहिंसातत्वमें कमी रहेगी, उतने अंशमें वे हिंसाके भागी होंगे। अगर एक साधु भी हो, और वह शुभ राग-वश शुभ क्रिया करता हो, तो उस समय अहिंसा के तत्वसे वाहर है क्योंकि शुभरागमें मंद कषायका मल है। जितना कषायका मल है उतना ही हिंसाका दोष है। शुद्ध भावमें कषायरहित रमण करना अहिंसा होगा।

गृहस्थोंका भी यही आदर्श होना चाहिये—वीतरागभावको ही अहिसा मानना चाहिये। जब शुभ राग भी हिंसा है तब अशुभ राग से किया हुआ गृहस्थीका आरम्भ हिंसात्मक क्यो न हो? यह बात दूसरी है कि साधारण गृहस्थ संकल्पी हिंसाका त्याग तो कर देता है, अर्थात् हिंसाके अभि-प्रायसे हिसात्मक कार्य नही करता। परन्तु आरम्भी हिंसाको भी हिंसा ही समझना चाहिये, क्योंकि उस मे कारण भावहिंसामयी कषायभाव है, इसलिए जितना भी शक्य हो आरम्भी हिंसासे बचना चाहिये। आरम्भी हिंसाके तीन भेद है—उद्योगी, गृहारम्भी और विरोधी। इनमेसे यदि कोई प्रकारकी हिंसा गृहस्थीसे बन जाय तो वह उसे हिंसा ही समझे। हिसाको अहिंसा धर्म मानना मिथ्या होगा। जितनी कम हिंसासे काम होसके उतना उद्यम करना गृहस्थका कर्तव्य है। हिंसात्मक युद्धोंकी अपेक्षा यदि शान्तिमयी प्रयोगोसे परस्परके मनमुटाव मिट सकें तो अहिंसा धर्मके माननेवाले गृहस्थका ऐसा ही कर्त्त-व्य ठीक होगा। परस्पर विरोध होनेपर अन्ध होकर एक दूसरेको निर्दयतासे हानि पहुँचाना घोर हिसा है। मानवीय कर्तव्यसे वाहर है।

यदि कोई धार्मिक कार्यके लिये आरम्भ करता है और उसमें हिसा होती है, तो भी उस हिंसाको धर्म नहीं कहा जा सकता। चूंकि आरम्भी हिंसाके मुकाबलेमे धार्मिक लाभ अधिक होगा, इस लिये उपचारसे उस आरम्भी हिंसाको भी धर्ममें गर्भित कर देते हैं। प्रयोजन यह है कि अहिंसा सदा अहिंसा ही रहेगी, और वह वीतरागभावमय है या परब्रह्मस्वरूप है। इसमे जितने अंशोंमे जो कुछ कमी है वह सब उतने अंशोंमे हिंसा है। जैन सिद्धान्तका यही आशय है। इस ही पर निश्चय लाकर हरएक व्यक्तिको अहिंसाके शिखरपर पहुँचनेका उद्यम शीघ्रतासे या शनैः शनैः करना चाहिये।

# जैनधर्म और अहिंसा

( लेखक—श्री अजितप्रसाद जैन, एम० ए०, एडवोकेट )

—❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀—

जैनधर्म अहिंसा-प्रधान धर्म है। "अहिंसा परमो धर्मः" महाभारतका भी वाक्य है; परन्तु यह जैनधर्मका खास झण्डा है। जैनधर्मका नाम ही अहिंसाधर्म है।

जैनाचार्योंने चारित्रकी व्यवस्था और मीमांसा अहिंसाके आधारपर की है। इन्द्रिय-दमन, त्यागावलम्बन, व्रतोंका अनुष्ठान, सामायिकका सेवन, चित्तकी एकाग्रताका सम्पादन, चिन्ता-निरोध, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, सब कुछ अहिंसाधर्मका ही पालन है। आर्तध्यान-रौद्रध्यानादिरूप सावद्य चित्तवृत्तिसे तथा योगोंकी—मन-वचन-कायकी असावधान प्रवृत्तिसे द्रव्य प्राणोंका व्यपरोपण न होते हुए भी आत्माके स्वच्छ निजभावका नाश होता है. और ऐसा होना हिंसा है-आत्मस्वभावका घात है।

श्री अमृतचन्द्रसूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें बड़े जोरके साथ यह उपदेश दिया है कि सब पाप हिंसामें और सब पुण्य अहिंसामें गर्भित है। हिंसा-अहिंसाकी व्यापकताको बतलाने वाले आपके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं:—

सर्वस्मिन्नप्यस्मिन् प्रमत्तयोगैकहेतुकथनं यत्।
अनृतवचनेऽपि तस्मान्नियतं हिंसा समवसरति ॥९९॥
अर्था नाम य एते, प्राणा एते बहिश्चराः पुंसाम्।
हरति स तस्य प्राणान्, यो यस्य जनो हरत्यर्थान् ॥१०३॥
हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥१०८॥
यदपि क्रियते किञ्चिन्मदनोद्रेकादनङ्गरमणादि।
तत्रापि भवति हिंसा रागाद्युत्पत्तितन्त्रत्वात् ॥१०९॥
हिंसा पर्यायत्वात्सिद्धा हिंसान्तरङ्गसङ्गेषु।
बहिरङ्गेषु तु नियतं प्रयातु मूर्छैव हिंसात्वम् ॥११९॥
एवंविधमपरमपि ज्ञात्वा मुञ्चत्यनर्थदण्डं यः।
तस्यानिशमनवद्यं विजयमहिंसाव्रतं लभते ॥१४७॥
इति यः षोडशयामान् गमयति परिमुक्तसकलसावद्यः।
तस्य तदानीं नियतं पूर्णमहिंसाव्रतं भवति ॥१५७॥
इत्थमशेषितहिंसः प्रयाति स महाव्रतित्वमुपचारात्।
उदयति चरित्रमोहे लभते तु न संयमस्थानम् ॥१६०॥
इति यः परिमितभोगैः सन्तुष्टस्त्यजति बहुतरान् भोगान्।
बहुतरहिंसाविरहात्तस्याऽहिंसा विशिष्टा स्यात् ॥१६६॥
हिंसायाः पर्यायो लोभोऽत्र निरस्यते यतो दाने।
तस्मादतिथिवितरणं हिंसाव्युपरमणमेवेष्टम् ॥१७२॥
नीयन्तेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्।
सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसाप्रसिद्ध्यर्थम् ॥१७९॥

अहिंसाका अटल श्रद्धान सम्यग्दर्शनकी पहिली निशानी है और उसका व्यवहार (अमल) सम्यक् चारित्रका मार्ग है। व्रती श्रावक अहिंसाव्रतको एकदेश धारण करता है। वह हिंसाको सावद्ययोग तथा अशुभकर्मास्रव-कारण पाप मानता है। यदि वह एकदेश हिंसा करता है तो उसको क्षम्य, वाजिबी, ठीक, अनिवार्य, धर्मानुकूल, धर्मादेशानुसार नहीं मानता। वह उसका प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण तथा

प्रायश्चित्त करता है और हिंसा बन जाने से आत्म-निन्दा व अफसोस किया करता है। व्रती श्रावकके लिये आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसाकी इजाजत, अनुज्ञा, अनुमति, आदेश जैनाचार्योंने कहीं कभी नहीं दिया है। हिंसा हर हालतमें हिंसा है—अहिंसा नहीं हो सकती। हिंसामें कषायभावों के कारण जिस प्रकारकी तीव्रता या मंदता होगी उसके कारणसे होने वाले कर्मबन्धमें भी उसी प्रकारकी तीव्रता या मंदता आएगी और फल भी उसका तद्रूप ही होगा। इसमें किसीकी भी कोई रू-रिआयत नहीं चल सकती।

व्रती श्रावकके लिये हिंसा अनिवार्य भी नहीं है। महात्मा गांधीने तो मनुष्यमात्रके लिये यह स्पष्ट शब्दों और विशद युक्तियोंसे घोषित कर दिया है कि अहिंसाव्रत बड़ी हद तक प्रत्येक नागरिक धारण कर सकता है—दैनिक सामाजिक व्यवहारमें लासकता है। राष्ट्रीय स्वराज्य-प्राप्तिमें और तत्पश्चात् राज्य-प्रबन्धमें, नागरिक जीवनमें, हिंसासे बचे रहना मुश्किल नहीं है।

महात्माजीसे प्रश्न किया गया कि कांग्रेस—वालण्टीयर-दलको भाले, तलवार, लाठी आदि शस्त्र चलानेकी शिक्षा दी जाती और अभ्यास कराया जाता है, यह कहां तक ठीक है और इसका आशय क्या है? उन्होंने जवाबमें लिखा है कि—फौजमें भरती होने वाले सिपाहीके लिये तो केवल शारीरिक मजबूतीकी परीक्षा की जाती है; औरतें, बुड्ढे, कच्चे, जवान और रोगी भरती नहीं किये जाते; लेकिन कांग्रेसकी अहिंसात्मक पलटनमें तो मानसिक योग्यता की परीक्षा ही प्रधान है और औरतें, बुड्ढे, कच्चे जवान, लंगडे, अन्धे और कोढ़ी भी भर्तीके लायक हो सकते हैं। कांग्रेसके अहिंसात्मक शान्त सैनिकको दूसरेके वध करनेकी लियाकत नहीं चाहिये; उसमें अपने प्राण समर्पण की हिम्मत होनेकी जरूरत है। हमने देखा है कि दस-बारह वर्षके बच्चे पूर्ण सत्याग्रह करनेमें सफल हुए हैं। कांग्रेस-वालण्टीयरको तलवार, भाले, लाठीकी जरूरत नहीं पड़ेगी। जनताकी सेवा-परिचर्या, चौकीदारी, दुर्जनको दुर्व्यवहारसे रोकना और दुर्जनके आक्रमणसे अपनी जान देकर भी सज्जनको बचाना उसका कर्तव्य होगा। कांग्रेस वालण्टीयरकी वर्दी भड़कीली न होगी बल्कि सादी और ग़रीबोंकीसी रहेगी। कांग्रेस-वालण्टीयर प्राणी-मात्र का मित्र होगा; वह किसीको शत्रु नहीं मानेगा; और जिसको लोग शत्रु समझे उसके वास्ते भी कांग्रेस वालण्टीयरके हृदयमें दयाभाव होगा। कांग्रेस—वालण्टीयरका यह अटल श्रद्धान है कि कोई मनुष्य स्वभावसे दुर्जन नहीं है और प्रत्येक मनुष्यको भले, बुरेमें विवेक करनेकी शक्ति है। शरीरको शक्ति-मान् रखनेके लिये वह हठयोग—व्यायामका प्रयोग करेगा। ऐसे वालण्टीयरमें यह शक्ति होगी कि वह रात—दिन एक जगह जम कर पहरा देगा; गर्मी, सर्दी, वर्षा सह लेगा और बीमार नहीं पड़ेगा; खतरे की जगह निडर पहुँचेगा; आग बुझानेके लिये भाग पड़ेगा; सुनसान जंगलों और भयानक स्थानोंमें अकेला पहुँचेगा, मार-पीट, भूख प्यास, अन्य यातना सह सकेगा, लाठी चलाते हुये बलवाइयोंकी भीड़में घुस पडेगा, चढ़ी हुई नदी और गहरे कुएँमें जनताको बचानेके लिये फाँद पड़ेगा, उसका शस्त्र और अस्त्र आत्मबल और परमात्म-विश्वास है।

व्रती जैन श्रावकके भी प्रायः ये ही लक्षण हैं जो ऊपर कहे गए हैं। हर ऐसा श्रावक अहिंसक, सत्य-वक्ता, निर्लोभी, सरल स्वभावी, ब्रह्मचारी, निडर,

शरीरको नश्वर और आत्माको अमर समझने वाला होता है। अपने व्रतकी मर्यादाका उल्लंघन कर वह अपनी शक्तिभर हिंसाका भाव—हिंसाका विचार अपने मनमें आने ही नहीं देता।

'शठेन शाठ्यम्' की नीति, गालीका जवाब गाली, थप्पड़का जवाब थप्पड़, लाठीका जवाबलाठी—यहजैन धर्मकी शिक्षा या जैनाचार्योंका सिद्धान्त कभी नहीं रहा है। जैनाचार्योंने किसी हालतमें भी हिंसाकी इजाजत, परवानगी, छूट, आदेश या आज्ञा नहीं दी है। जो व्यक्ति जिस हालतमे जैसे परिणामोंसे हिंसा करेगा, वह हिंसाके फलका भागी अवश्य होगा। हिंसा-कर्म किसी दशामे भी क्षम्य, ठीक, वाजिबी, उचित या धर्मानुकूल नहीं समझा जा सकता।

अजिताश्रम, लखनऊ। ता० १९–१०–४०

## जग चिड़िया रैन बसेरा है

ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमे, जग चिड़िया-रैन बसेरा है।

मानव! तूने देखा, तन यह, मिट्टीका एक खिलौना है।
तू विहँस रहा है देख जिसे, कल देख उसे ही रोना है॥
उठ जाग, बाँध अपनी गठरी, होता जा रहा सवेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमें, जग चिड़िया-रैन-बसेरा है॥

जब आयेगा तूफान प्रबल, झड जायेंगे वैभव सारे।
कुछ फिक्र करो निज जीवनकी, क्यों बनते जाते मतवाले॥
सुनले, कुछ सोच समझ भी ले, इस जगमें कोइ न तेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमें, जग चिड़िया-रैन-बसेरा है॥

मानव मानवको चूस रहा, जग चिल्लाता दाना दाना।
यह भरा उदर वह कृशितकाय, अन्तर इसका क्या पहिचाना?
सारी दुनिया मतलबकी अब, जो कुछ करले वह तेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमें, जग चिड़िया-रैन-बसेरा है॥

तेरे सब साथी चले गये, क्या सोच रहा अपने मनमें?
आना जाना है लगा सदा, कोई रह नहीं सका जगमें॥
तू भी अब जल्द सम्हल जा रे! यह अल्प समयका डेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमे, जग चिड़िया-रैन बसेरा है॥

जो चला गया वह आवेगा, जो आया है वह जाना है।
ओ भोले मानव! सोच समझ, जग एक मुसाफिरखाना है॥
सुन! देख देख मगमे पग रख, सारा जग यही लुटेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमें, जग चिड़िया-रैन-बसेरा है॥

यात्रा तेरी है महाकठिन, कण्टकाकीर्ण पथरीला मग।
बाधाये, सिरपर नाच रहीं, मत डरो—बढ़ाते जाना पग॥
आँधी आई तूफान प्रबल, होता जा रहा अँधेरा है।
ओ ग़ाफिल! सोच ज़रा मनमे, जग चिड़िया-रैन-बसेरा है॥

( लेखक—हरीन्द्रभूषण जैन )

# विवाह और हमारा समाज

( लेखिका—श्री ललिताकुमारी पाटणी 'विदुषी', प्रभाकर )

[ 'अनेकान्त' के पाठक श्रीमती ललिताकुमारीजीसे कुछ परिचित जरूर हैं—आपके लेखोंको अनेकान्तमें पढ़ चुके हैं। आप श्रीमान् दारोगा मोतीलालजी पाटणी, जयपुरकी सुपौत्री हैं और शिक्षा तथा समाजसुधारके कामोंसे विशेष प्रेम रखती हैं। हालमें आपने अपने विवाहसे कुछ दिन पूर्व, अपनी भावज सुशीला देवीके अनुरोधपर "विवाह और हमारा समाज" नामकी एक छोटीसी पुस्तक लिखी है, जिसमें पाँच प्रकरण हैं—१ विवाह क्या है ?, २ विवाहका उद्देश्य, ३ विवाह कब किया जाय ?, ४ बेजोड़ विवाह और ५ वैवाहिक कठिनाइयाँ। यह पुस्तक उक्त सुशीला देवीने अपने 'प्रकाशकीय' वक्तव्यके साथ छपाकर मँगसिर मासमें विवाहके शुभ अवसरपर भेटरूपमें वितरण की है और अपनेको समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। पुस्तक सुन्दर ढंगसे लिखी गई है; विचारोंकी प्रौढता, हृदय की उदारता और कथनकी निर्भीकताको लिये हुए है, खूब उपयोगी है और प्रचार किये जानेके योग्य है। विवाह-विषयमें स्त्रीसमाजकी ओरसे यह प्रयत्न निःसन्देह प्रशंसनीय है। ऐसी पुस्तकोंका विवाह जैसे अवसरोंपर उपहारस्वरूप वितरण किया जाना समाजमें अच्छा वातावरण पैदा करेगा। अस्तु; यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिये पुस्तकके शुरूके दो अंश नमूनेके तौरपर नीचे दिये जाते हैं। —सम्पादक ]

## विवाह क्या है ?

विवाहके सम्बन्धमें कलम उठानेके पहले स्वभावतः यह सवाल उठता है कि विवाह है क्या वस्तु ? विवाह का जो शाब्दिक अर्थ निकलता है वह है—विशेष रूपसे वहन करना यानी ढोना। कौन किसका वहन करे ? उत्तर होगा—स्त्रीका पुरुषको वहन करना और पुरुषका स्त्रीको वहन करना। अर्थात्—स्त्री और पुरुष दोनोंके अभिन्न होकर एक दूसरेको वहन करनेकी प्रक्रियाका प्रारम्भ होना विवाह है। इस प्रक्रियामें स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने सांसारिक जीवनको अभिन्न होकर वहन करते हैं। यहां सांसारिक जीवन से सामाजिक, कौटुम्बिक, लौकिक और गृहस्थ-जीवन से ही तात्पर्य नहीं है, किन्तु सांसारिक जीवनमें राजनैतिक और धार्मिक जीवन भी सम्मिलित है। जिस तरह विवाह स्त्री पुरुषोंके सामाजिक-कौटुम्बिक आदि जीवनको परस्पर मिला देता है, उसी तरह विवाह उनके धार्मिक और राजनैतिक जीवनका भी एकीकरण करता है। अर्थ यह हुआ कि विवाहके पहले जो स्त्री-पुरुष अपने हरएक आचरणमें स्वतन्त्र थे, वृत्तियोंमें स्वच्छन्द थे और जीवनचर्यामें स्वाधीन थे, वे ही स्त्री-पुरुष विवाहके बाद अपने हरएक कार्य-कलापमें एक दूसरेका सहयोग प्राप्तकर उसे पूर्ण करते हैं। इसीलिये विद्वान् समाज-वेत्ताओं की सम्मतिमें विवाह एक धार्मिक और सामाजिक पवित्र बन्धन है, जिसमें परिबद्ध होकर स्त्री और पुरुष दोनों गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्वको आपसमें बांट लेते हैं। यह बन्धन जीवन-पर्यन्त अटूट और अमिट बना रहता है। वह

दो स्त्री-पुरुषोंके भावो जीवनके कार्य-क्रम, कर्त्तव्य, अनुष्ठान व आचरणको इस तरह एक दूसरेके जीवनसे बाँध देता है कि एकके अलग रहनेपर उनमें से एकका भी कार्य-क्रम, कर्त्तव्य, अनुष्ठान व आचरण भली प्रकार सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए विवाहकी व्याख्या करनेमे उसका साधारण और सरल स्वरूप यही स्थित होता है कि विवाह दो स्त्री-पुरुषोंके जीवनको बाँधने वाला एक पवित्र, धार्मिक और सामाजिक बन्धन है, जो समाजमें अनिश्चित कालसे एक विशेष संस्कारके रूपमे चला आरहा है।

समाज-विज्ञानके कुछ आधुनिक विद्यार्थियोंका कहना है कि विवाहके मूलमें स्त्री और पुरुषोंकी केवल एक ही भावना काम करती है, जिसे वे अपने शब्दोंमें लैङ्गिक (Sexual) भावना कहते हैं। इसलिए उसीके आधारपर विवाहकी स्थिति होनी चाहिये। उसे सामाजिक और धार्मिक बन्धनके साथ जकड़नेकी जरूरत नहीं। एक अंग्रेज प्रोफेसरके मतमें भी विवाह हरएक प्राणीमें पाई जाने वाली एक इच्छापर ही स्थित है जिसे वे अंग्रेजीमे Erotic tendency कहते हैं। विद्वान् लोग हिन्दीमें इसका अनुवाद करेंगे—प्रणय-सम्बन्धी इच्छा। यह हरएक प्राणीको एक दूसरेके प्रति आकर्षित करती है और उनमें सम्बंध स्थापित कराती है। यही सम्बंध विवाहका रूप होना चाहिये। उसमें धार्मिक और सामाजिक बंधनके पुटकी आवश्यकता नहीं है। इस मतपर भारतीय समाजनेत्ता अपनी यह सम्मति प्रकट करते हैं कि विवाहकी सत्तामें सेक्स सम्बंधी भावना और प्रणय सम्बंधी इच्छाका अस्तित्व आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है, किंतु विवाहकी सम्पूर्ण स्थिति तन्मूलक ही नहीं होनी चाहिए। सेक्स सम्बंधी इच्छा जमीनपर चलने वाले चौपाये जानवरो और आसमानमें उड़ने वाले पक्षियोंमें भी पाई जाती है, किंतु उनके समाजमें एक संस्कार विशेष न हो सकनेके कारण विवाहकी स्थिति विल्कुल अव्यवहार्य है। यह माना जासकता है कि अगर प्राणियोंमें प्रणय-सम्बंधी भावना और इच्छाका कदाचित् उदय ही नहीं होता तो शायद विवाहकी पद्धति भी प्रचलित नही होती, किंतु कोरी प्रणयसम्बंधी इच्छाको ही विवाहका रूप मान लेना सामाजिक-संगठनकी दृष्टि में विल्कुल असंगत है। पशु-पक्षियोंकी बात जाने दीजिये। मनुष्योंमें भी हम देखते हैं—प्रणयसम्बंधी इच्छा होजानेपर भी दो स्त्री पुरुषोका जब तक एक सामाजिक और धार्मिक सम्बंध स्थापित नहीं होजाता तब तक वे विवाहका ध्येय प्राप्त करनेमें कभी सफल नहीं होसकते। जिस देश और समाजमें ऐसी प्रथा का प्रचार है कि जहां प्रणयसम्बंधी इच्छाका उदय हुआ वहां तत्क्षण ही दाम्पत्य-सम्बंधकी स्थिति भी कायम होगई, तो वह विवाह, विवाहके उद्देश्य की सिद्धिमें कदाचित् ही सफल होसकेगा। इसलिए यह मानना ही पड़ेगा कि जिसे हम विवाह कहते हैं वह हमारे समाजमें प्रचलित सामाजिक और धार्मिक संस्कारसे ही परिपूर्ण होता है। केवल प्रणय-सम्बंधी भावनाएँ दो आत्माओंका एकीकरण अवश्य करा देतीं है किंतु उसके स्थाई और आजीवन बने रहने की गारण्टी नहीं कर सकती। जब तक उसके साथ सामाजिक बन्धनका समन्वय न होगा, वह एकीकरण अस्थायी और ढीला ही रहेगा। विवाहके उद्देश्यकी सिद्धिमे तो वह शायद ही सफल हो। एक बात और है, जहाँ प्रणय अथवा स्त्री पुरुषसम्बंधी प्रेम के आकर्षणसे ही विवाहकी स्थिति मानली जाती है,

वहाँ विवाहसे स्त्री-पुरुषोके गृहस्थ जीवनकी घनिष्ठता के उद्देश्यको कतई भुला दिया जाता है। विवाहका उद्देश्य स्वच्छन्द प्रेम नही है किंतु कुछ और भी महान् है, जिसपर आगेके परिच्छेदमे विचार किया जायगा। जब तक इस उद्देश्यकी प्राप्ति नही होजाती है, ऐसी किसी भी उच्छृङ्खल पद्धतिको विवाहका रूप नही दिया जासकता।

पाठक-पाठिकाओंके सामने मराठीके सुप्रसिद्ध लेखक श्री वामन मल्हार जोसीके विवाह-सम्बंधी लेखका अंश नीचे दिया जाता है, जिसमे आधुनिक युवक-युवतियो के उच्छृङ्खल विचारोकी अच्छी विवेचना कीगई है—

"विवाह संस्थापर प्रहार करने वाले लेखक कहते हैं कि विवाह-सम्बंधके कारण आज समाजमे विषमता और कष्टमय स्थिति दिखाई पड़ती है। परन्तु प्रश्न यह है—क्या विवाहसम्बंध बंद कर दिया जाय तो यह स्थिति नही रहेगी? उससे तो उल्टे अनाचारकी और वृद्धि ही नही होगी? लेकिन इस बारेमे तो कोई विचार ही नही करता। हम पुस्तकालय मे पढ़ने जाँय, या नाट्य सिनेमा देखने जाँय, तो वहाँ स्त्री-पुरुष सभी मिलते हैं। अगर सम्बंधका अस्तित्व न हो तो पुस्तकालय और नाट्यगृहमे आये हुये अनेक पुरुष किसी न किसी स्त्रीकी ओर और अनेक स्त्रियाँ किसी न किसी पुरुषकी ओर प्रेमाकर्षण से प्रेरित होंगे, यह तय है, और इससे बहुत से व्यक्तियोकी स्थिति कष्टमय होजानेकी सम्भावना है। भला ऐसा कोई प्रेमसम्बंध स्थायी या दृढ़ होसकता है, जिसमे किसी प्रकारका प्रतिबन्ध न हो? ऐसे प्रणयी युगलमे से तो पुरुषको कोई अधिक सुन्दर स्त्री दिखाई पड़ी कि वह पहली स्त्रीको छोड़ नईसे मीठी-मीठी प्रेमवार्ता करने लगेगा। और स्त्रियोका क्या होगा? वे भी जहाँ और अच्छे या सुन्दर पुरुष के सहवासमे आई कि झटसे उनके प्रेमपाशमे पड़ जायेगी। और ऐसा करें भी क्यो नहीं? जब विवाह-सम्बंध ही न हो तो फिर स्त्री-पुरुष दोनोके लिए प्रेम का बाजार सदाके लिये खुला हुआ ही है।

ऐसा स्वेच्छाचार यदि समाजमे चलने दिया जाय तो सर्वत्र अनर्थ ही मच जाय। मतलब यह है कि जब तक विवाह संस्था है तभी तक समाजमे स्थिरता है—हरएक व्यवहार सरलतासे होता है। जो लेखक यह कहते हैं कि विवाह संस्थाकी जरूरत नही, उनका खुद का व्यवहार कैसा होता है? उनकी स्त्री यदि दूसरे पुरुषसे प्रेम करे तो यह उन्हे पसंद होगा? यदि नहीं, तो फिर यह कहनेसे क्या लाभ कि विवाह संस्थाकी कोई जरूरत नही?" फलतः विवाह क्या है? इसका एक मात्र उत्तर यही हो सकता है कि विवाह एक ऐसा धार्मिक और सामाजिक संस्कार है जो दो स्त्री-पुरुषोको उनके सांसारिक जीवनके प्रत्येक पहलू और भागमें अभिन्न होकर चलानेकी शुरुआत प्रदान करता है।

## विवाह का उद्देश्य

जो लोग यह समझते हैं कि विवाहका उद्देश्य वाहियात विलास राग-रंग और मौज है, वे बहुत बड़ी गलती पर हैं और जो इसी प्रलोभनसे विवाह जैसे महान् उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्यमे हाथ डाल बैठते हैं वे बहुधा धोखा खाते हैं। विवाहके चन्दरोज बाद ही वे देखते हैं कि विवाहके पहले वे जिन सुख और आनन्दोकी कल्पना करते थे वे अकस्मात् हवा होकर उड़ गये। उस स्थितिमे उनको अपना अमूल्य जीवन बड़ा कष्टकर और दुखप्रद मालूम होने लगता है। वे

समझते हैं जैसे उनके जीवनकी सारभूत चीज कोई चुराकर लेगया और उसके अभावमे वे निर्धन होगये। यह सारभूत चीज जो वास्तवमें सारभूत नहीं है और कुछ नहीं, बेसमझ दम्पतियोंमें पाये जानेवाला महज वासनाका आकर्षण है। यह आकर्षण तांबेपर चढ़े हुए सोनेके मुलम्मेकी तरह कुछ दिन तो चमकता है किन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता है त्यों-त्यों वह खुली डिबियामें पड़े हुए कपूरकी तरह उड़ने लगता है। ऐसे स्त्री-पुरुष समझते हैं कि कुछ साधनोंकी कमी होजानेसे उनका यह आकर्षण ढीला पड़ गया, इस लिए वे इसमें खिंचाव लानेकेलिए तरह-तरहके साधन जुटाते हैं और व्यर्थ समय, शक्ति और धनका व्यय करते हैं किंतु वे जितना ही सुखोपभोग और आनन्द-विलासकी ओर जानेका प्रयत्न करते हैं उनके जीवनमें मृगतृष्णासे व्यथित और निराश प्राणियोंकी तरह उतनी ही एक मानसिक अन्तर्वेदना और निराशा बढ़ती हुई चली जाती है। इसलिए जो लोग विवाह जैसी जिम्मेवारीमें हाथ डालें पहले यह समझलें कि विवाह क्यों किया जारहा है और वे किस उद्देश्य से प्रेरित होकर विवाह कर रहे हैं। अगर उनका उद्देश्य राग-रंग और मौज ही हो तो वे तुरन्त ही विवाहकी जिम्मेवारीसे दूर भाग खड़े हों और उसका नाम भी न लें। विश्वास रक्खें कि उनका राग-रंग और भोग-विलास विवाह जैसे पवित्र कार्यमें कतई निहित नहीं है। विवाह उनके राग-रंग और भोग-विलासको बहुत ही तिरस्कार और घृणाकी दृष्टिसे देख रहा है। अगर वे इसके सामने अपने इस निकृष्ट ध्येयको लेकर खड़े हुए तो कोई आश्चर्य नहीं वह उनको अपनी प्रबल तेजस्वितासे भस्म कर बैठे।

जो लोग सामान्य बुद्धिको साथ लेकर विवाहका उद्देश्य समझने और निर्धारित करने चले उन्होंने यह निश्चित किया कि विवाहका उद्देश्य सन्ततिक्रमको बराबर चलाते रहना है। आम लोग ऐसा ही समझते हैं और ऐसा समझना कुछ अंशोंमे ठीक भी है। मोटे तौर पर विचार करनेपर सर्वसाधारणके सामने यही उद्देश्य निश्चितसा होरहा है। सच तो यह है कि साधारण लोग इसके अतिरिक्त विवाहके उद्देश्यको सोचने और समझनेकी कोशिश भी नहीं करते। हम लोगोंमे अगर कभी विवाहका सवाल उठता है तो उसकी आवश्यकता यही कहकर बतलाई जाती है कि पीछेसे कोई घर सँभालने वाला भी चाहिये। अगर विवाह न किया जाय तो हमारे कुलका नाम ही न रहे। 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' आदि स्मृतिके सूत्रोंसे भी लोगोंके दिलोंपर यह विश्वास जमा हुआ है कि जिसके सन्तान न हो उसका परलोक बिगड़ जाता है। इस तरह एक अनिश्चित कालसे सर्व-साधारणके सन्मुख यह कथन एक सत्यके रूपमें चला आरहा है कि विवाहका उद्देश्य सन्ततिक्रमको बराबर चलाते रहना है और इसी उद्देश्यसे इस कर्मकी आयोजना की गई है।

जिन विद्वान् लोगोंने विवाह और उसके उद्देश्य पर गंभीर विचार किया वे इस परिणामपर पहुँचे कि सन्ततिक्रमको बनाये रखना विवाहका मुख्य उद्देश्य नहीं उसका एक फल है। जिस तरह पढ़ लिखकर विद्वान् होनेका उद्देश्य धन कमाना नहीं हो सकता, अलबत्ता यदि कोई विद्वान् अपनी विद्यासे आजी-विका चलानेका भी काम करता हो तो उसका फल जरूर हो सकता है, उसी तरह विवाहके बहुतसे फलों मे सन्ततिका उत्पादन भी एक फल है। यह जरूर है कि यह फल और सब फलोंसे जो विवाह करनेसे

मिलते हो अधिक महत्वपूर्ण और समाजोपयोगी है। एक प्रश्न उठता है—पढ़ लिखकर मनुष्य क्या करे ? छोटी समझ वाले लोग भी यदि इस प्रश्नका विद्वत्ता-पूर्ण समाधान नही करेंगे तो कदाचित् यह उत्तर नहीं देंगे कि पढ़ लिखकर मनुष्य रुपया कमाने पर पिल पड़े। बुद्धिमान् मनुष्योंके पास इस प्रश्नका यही उत्तर होगा कि पढ़ लिखकर मनुष्य सर्व प्रथम अपने आत्मामे ज्ञानका प्रकाश करे फिर दूसरोंका अज्ञान नष्ट करे। बुराईसे बचे और भलाईको अपनाये। अपने स्वार्थको छोड़े और दूसरोंका उपकार करे। इसी तरह विवाहके सम्बन्धमे भी सवाल खड़ा हो सकता है। वह यह कि विवाह करके मनुष्य क्या करे ? विचार पूर्ण विद्वानोंसे तुरन्तही इसका जवाब हम आसानीसे यह शायद ही सुनें कि शादी करके मनुष्य सन्तान उत्पादनके कार्यमें लग जाय। यह उत्तर साधारण समझ वालोके गले भी सरलताके साथ नही उतर सकता। एक बात है । सन्ततिक्रम पशु-पक्षियोमें भी अनादि कालसे अविच्छिन्न रूपमें चला आरहा है । किंतु उनमें विवाहकी प्रथा नहीं है। मनुष्य समाजमें भी कुछ ऐसे वर्ग हैं जिनमें आचरण-सम्बन्धी पूर्ण स्वच्छन्दता है और विवाहका प्रतिबन्ध नहीं है, उनमे भी सन्ततिक्रम विद्यमान है। फिर ऐसी कौनसी वजह है जो सन्ततिक्रमके लिये विवाह-बन्धनकी ही आवश्यकता हुई, जब कि विवाहके बिना भी वह जारी रह सकता है। लोग कहेंगे, पशु-पक्षियों और जंगली जातियोंमें जो संतति-क्रम जारी है उसकी तहमें, दुराचार, अनीति, स्वछन्द-आचरण, अनियम और अव्यवस्था विद्यमान है। वह संततिक्रम पाशविक और असभ्यतापूर्ण है। वह मानुषिक और लोकहित-पूर्ण नहीं है। वह बेरोकटोक और निर्बन्ध है। उसमें स्वार्थ और वासनाके अतिरिक्त और किसीकी प्रेरणा नही है। ठीक है। तो फिर यही क्यों न समझिये कि विवाहका उद्देश्य सामाजिक दृष्टिसे समाजमें सदाचारकी वृद्धि करना, दुराचारका नाश करना, शिथिलाचारका मिटाना और सुन्दर आचरणका स्थापित करना है। व्यवस्था और नियमका बनाए रखना है। पाशविकताका मूलोच्छेद और मनुष्यताका निर्माण करना है। वैयक्तिक दृष्टिसे विवाहका उद्देश्य है त्याग और तपस्या। सेवा और उपकार। अपने स्वार्थोंको भुला कर दूसरोंके लिए बलिदान करना। विवाह करनेके पहिले जहाँ मनुष्य अपनेही निजके हितोंकी रक्षामें चिन्ता में रहता है, विवाह करनेके बाद वह दूसरोंके हितोंकी रक्षामें निमग्न रहता है। विवाह करनेसे पहिले वह दूसरोंसे कुछ लेनेकी अभिलाषा रखता है किन्तु विवाह करनेके बाद वह दूसरोंको कुछ देनेकी सीख ग्रहण करता है। विवाहके पहले उसके जीवन का क्षेत्र उसका अपना ही जीवन है किन्तु विवाहके बाद वह विस्तृत होजाता है। विवाहके पहले वह अपने ही अपने क्षुद्र स्वार्थोंमें लगा रहता है, किन्तु विवाहके बाद वह दूसरेके अर्थ अपने आपको बिछा देता है।

कुछ लोगों का कहना है कि विवाहका उद्देश्य प्रेम है। प्रेम जैसी सुन्दर वस्तुको प्राप्त करनेके लिए ही मनुष्य विवाह करता है। प्रेम ही एक ऐसा आकर्षण है जो दो भिन्न भिन्न आत्माओंको मिला देता है। जो लोग ऐसा कहते हैं उनसे यह पूछा जासकता है कि यह प्रेम है क्या वस्तु ? अगर उनका प्रेम त्याग और बलिदानके रूपमे है तो विवाहका उद्देश्य प्रेम उचित ही है किन्तु यदि केवल वासनाका आकर्षण है

तो वह जघन्य है और विवाह जैसे पवित्र कार्य का उद्देश्य अथवा ध्येय कभी नहीं होसकता । इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि विवाहका मुख्य उद्देश्य समाजमे आचरण-सम्बन्धी मर्यादा स्थापित करना तथा त्याग और बलिदानका क्रियात्मक पाठ पढ़ाना है और गौणरूपसे उद्देश्य कहिये अथवा उसका फल कहिये सन्तानोत्पत्ति अथवा सन्ततिक्रमको बराबर चलाये रखना है ।

# पिंजरे की चिड़िया

मूल लेखक—नोबेल पुरस्कार-विजेता, जॉन गॉल्सवर्दी (इंगलैण्ड)
( अनुवादक— महावीरप्रसाद जैन, बी० ए०, सरधना )

"पहाड़ी मैना—यहाँ कहाँ ?" मेरे मित्रने आश्चर्य से पूछा ।

मैंने उंगलीसे संकेत कर पिंजरा दिखा दिया । लोहेकी तीलियोंसे चोच लड़ा कर मैना एक बार फिर बोल उठी ।

यकायक मेरे मित्रके मुखपर वेदनाके चिन्ह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगे । ऐसा जान पड़ने लगा मानो उनका हृदय किसी दुःखपूर्ण स्मृतिसे शोकाकुल हो उठा है । थोड़ी देर बाद धीरे २ हाथ मलते हुए उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

"कई वर्ष बीत जानेपर भी वह दृश्य मेरी स्मृतिमें ज्योंका त्यों ताजा बना हुआ है । मैं अपने एक मित्र के साथ बन्दीगृह देखने गया था । हमें उस भयानक स्थानके सब भाग दिखा चुकनेपर जेलरने अन्तमे कहा—आओ, अब तुम्हे एक आजन्म कारावास पाये हुए बन्दीको दिखाऊँ ।

जब हम उसकी कोठरीमे घुसे तो वह स्थिर दृष्टिसे चुपचाप अपने हाथमे कागजकी ओर देख रहा था । युवक होनेपर भी वह वृद्ध जान पड़ता था । एक झुका हुआ...काँपतासा ..निरकंकाल, मैलीसी चादरमे लिपटा हुआ । अपनी पहली स्वतन्त्र अवस्था का कितना दारुण भग्नावशेष था ..वह बंदी !!

हमारे पैरोंकी आहट सुनकर उसने अपनी आँखे ऊपरको उठाईं । आह ! मैं उस समय उसके भावको भली भाँति न समझ सका । परन्तु बादमे समझा । उसकी आँखें ; अपने आखिरी साँस तक मैं उनको न भूल सकूंगा । वह दारुण दुखकी प्रतिमूर्तियाँ ! और एकान्त-वासके लम्बे युग जिन्हे वह काट चुका था, और जो उसे अभी बंदीगृहके बाहर वाले कब्रस्तान में दबाये जानेसे पहले, काटने शेष थे, अपनी समस्त वेदना लिए उन आँखोंसे झाँक रहे थे । विश्व भरके सारे स्वतन्त्र मनुष्योंकी सम्पूर्ण वेदना मिलकर भी उस निरीह पीड़ाके बराबर न होती......उसकी पीड़ा मुझे असह्य हो उठी । मैं कोठरीमे एक ओर लकड़ीके टुकड़ेको उठाकर देखने लगा । उसपर बन्दी ने एक चित्र बना रक्खा था ।

चित्रमें एक सुन्दर युवती हाथमें फूलोंका गुच्छा लिए पुष्पोद्यानके बीचोंबीच बैठी पार्श्व में एक घूम कर बहता हुआ स्रोत, किनारे पर हरी २ दूब, और एक अजीब-सी चिड़िया, और युवतीके ऊपर एक बहुत बड़ा सघन वृक्ष, पत्तोंमें बड़े बड़े फल लिए हुए। सारा चित्र, मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, क्या बताऊं? जैसे एक प्रकारके कुतूहलसे परिपूर्ण हो।

मेरे साथीने पूछा—जेल आनेसे पहले चित्र बनाना जानता था?

'ना-ना', उसने हाथ हिलाकर कहा, 'जेलर साहब जानते हैं। यह किसीका चित्र नहीं। 'केवल कल्पना है।' यह कहकर वह किस प्रकार मुस्कराया उससे हृदय-हीन पिशाच भी रो पड़ता। उस चित्रमें उसने, सुंदर युवती, हरा-भरा फूलोंसे लदा पेड़, पौदे, स्वतंत्र पक्षी गरज अपने हृदयकी समस्त सुन्दर भावनाएँ निकाल कर रखदी थी। अट्ठारह सालसे वह उसे बना रहा था। बनाकर बिगाड़ देता और फिर बनाता। कईसौ बार बिगाड़ कर उसने यह चित्र बनाया था।

हां, सत्ताईस वर्षसे वह वहाँ बंदी था। जीवित होनेपर भी मुर्दा। किसी प्राकृतिक वस्तुके स्पर्श, गंध, वर्णसे दूर। उनकी स्मृति भी मिटसी चली थी। अपनी तृषित आत्मासे सींचकर उसने यह युवती वृक्ष और पक्षी निकाले थे। मानुषिक कलाकी यह उच्चतम महाकाष्ठा है और हृदयकी कभी न मिटने वाली भावनाओंका सच्चा दिग्दर्शन।

उस समय मैंने मूक परीषह की पवित्रताका अनुभव। किया क्रॉसपर चढ़ाए इस जीवित क्राइस्टके सम्मुख मेरा माथा आपसे आप झुक गया। उसने चाहे जो अपराध किया हो उसकी मुझे पर्वा नहीं। परन्तु मैं कह सकता हूं कि हमारे समाजने उस निरीह भटके हुए प्राणीके साथ अक्षमनीय अपराध किया है।

जब कभी मैं किसी पक्षीको पिजरेमें बन्द देखता हूं तो मेरी आंखोंके सामने उस अकथनीय व्यथाका दृश्य खिंच जाता है जो मैंने उस बन्दीकी आँखोंमें देखी थी।"

मेरे मित्रने बोलना बन्द कर दिया और थोड़ी देर बाद हमसे विदा माँगकर चला गया।

---

## भामाशाह
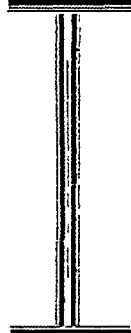
देशभक्त! तेरा अनुपम था, वह स्वदेश अनुराग!
प्रमुदित होकर किया देश-हित धन-वैभवका त्याग!!
जिस समृद्धिकेलिये विश्व यह रहता है उद्भ्रान्त!
निर्दय हो भाई कर देता भाईका प्राणान्त!!
उसी प्राण-से प्रिय स्वकोषको दे स्वदेश रक्षार्थ!
एक नागरिकका चरित्रमय-चित्र किया चरितार्थ!!

दानवीर! तेरे प्रतापसे ले प्रतापने जोश!
फतह किए बहु दुर्ग, भुलाया शत्रु-वर्गका होश!!
जैन-वीर! तू था विभूति वह, उपमा-दुर्लभ अन्य!
भारत-माँ जन तुझे मानती है अपनेको धन्य!!
भामाशाह! गा रहा तेरी कीर्ति-कथा इतिहास!
जीवित तुझे रखेगी, जब तक है धरती-आकाश!!

श्री 'भगवत्' जैन

# एकान्त और अनेकान्त

ले० पं० पन्नालाल जैन 'वसन्त' साहित्याचार्य

वड़वानलसे मैं हूं अदाह्य
मैं अस्त्र-शस्त्रसे हूं अभेद्य,
मैं प्रवल पवनसे हूँ अशोष्य
मैं जलप्रवाहसे हूं अक्लेद्य।
ज्यों जीर्ण वस्त्रको छोड़ मनुज
नूतन अम्बर गह लेता है,
त्यों जीर्ण देहको छोड़ जीव
नूतन शरीर पा लेता है।
यह जीव न मरता है कदापि
पैदा भी होता है न कभी,
यह है शाश्वत,—तन नशने पर
इसका विनाश होता न कभी।

इस भाँति आपको नित्य मान
कितने ही जगके जीव आज,
करते घातक पातक महान्
मनमें किंचित् लाते न लाज।
जब जीव न मरते मारेसे
तब हिंसामें भी पाप कहाँ?
एकान्त-गर्तमें पड़कर यों
दुख पाते हैं बहु जीव यहाँ।

× × ×

जो उषा-कालमें प्राचीसे
लेकर वैभव था उदित हुआ,
वह दिव्य दिवाकर भी आखिर
दिखता है सब को अस्त हुआ।
हरि—हर—ब्रह्मादिक देवोंपर
जब चक्र कालका चल जाता;
तब कौन विश्वमें शाश्वत हो—
कर, नर रहनेको है आता?
जो जीव जन्म लेता जगमें
वह मृत्यु अवश ही पाता है,
यह सकल विश्व है क्षणभङ्गुर
थिर कोइ न रहने पाता है।
इस भाँति आपको अथिर मान
बेचैन हुए कितने फिरते।
कितने सुख समता पानेको
दिन रात तड़पते हैं फिरते।
एकान्तवादका कुटिल चक्र
वस्तु—स्वरूपको चूरचूर,
कर मार्गभ्रष्ट मानव समाज-
को, करता निज सुखसे विदूर।

× × ×

सज्ज्ञान—प्रभाकर ही मैं हूँ
सच्चिदानन्द, सुखसागर हूँ,
मैं हूँ विशुद्ध, बल—वीर्य—विपुल,
बहु दिव्य गुणोंका आगर हूँ।
कितने ही ऐसा सोच साच,
कर्तव्य—विमुख होजाते हैं,
एकान्तवादकी मदिरासे
उन्मत्त चित्त बन जाते हैं।

× × ×

मैं अज्ञ, दुःखका आकर हूँ
बलहीन, अशुचिताका घर हूँ,
मैं हूँ दोषोंका वर निकेत
मैं एक तुच्छ पापी नर हूँ।
यह सोच मनुज कितने जगमें
कायर हो दुःख उठाते हैं,

कितने ही निजको भूल यहाँ
अति परासक्त हो जाते हैं।
एकान्तवादकी रजनीमें—
नर निजपरको है भूल रहा
निज लक्ष्य-बिन्दुसे हो सुदूर
परको ही अपना मान रहा।

× × ×

उल्लिखित विरोधी भावोंमें—
एकान्त-निशाके अञ्चलमें
दिनकर हो आता अनेकान्त,
आलोक लिये अन्तस्तलमें

है अनेकान्त अद्भुत प्रभात
सुख-शान्तिगेह, समता-निकेत
सब वैर-तापको कर विदूर
बन जाता सबको सौख्य-हेत।
सत् नित्य, अनित्य, अनेक, एक
अज्ञान-ज्ञान-सुख-दुःखरूप
शुचि, अशुचि, अशुभ-शुभ-शत्रु-मित्र
नय-वश होजाता सकलरूप।
यह अनेकान्तका सूत्र मन्त्र
बनकर उदार अपना सीखो;
हैं सकल वस्तु निज-निज स्वरूप
समभावोंसे रहना सीखो।

---

# विवाहका उद्देश्य

(लेखक—श्री एन० के० ओसवाल)

संध्याका समय है। सूर्य भगवान अपनी अन्तिम किरणोंके सुनहरे प्रकाशसे जगको देदीप्यमान कर रहे हैं। लेकिन यह प्रकाश अब थोड़ी ही देरके लिये है। सामने एक आलीशान मकानके चबूतरेपर एक बारह बरसका बालक बड़ी ही सज-धजके साथ दूल्हेके रूपमें बैठा हुआ है। मकान गाँवके एक सुप्रसिद्ध मालदार सेठजीका है, जिनकी लड़कीका शुभ लग्न आज इस छोटी उम्रके दूल्हेके साथ होने वाला है।

सूर्यकी वही अंतिम किरणें इस कोमल बालकके चेहरेकी प्राकृतिक शोभाको और भी उच्चकोटिकी बना रही हैं। उसका मुँह हृष्ट-पुष्ट है। शरीर भी खूब सुडौल है। इतनेपर भी उसके शरीरपर लगे हुए जवाहिरात और जरीके कपड़े तो उसमें इन्द्रकी-सी शोभा लारहे हैं। पर हमें डर है कि प्रकृति ऐसे सुंदर बालकको सुरक्षित रखेगी, जिसका कि विवाह एक अठारह बरसकी कुमारीके साथ होरहा है।

क्या हम इस बालकको जाकर समझावें कि वह यह सब क्या कर रहा है? लेकिन नहीं, वह अपने पिताकी कठपुतली है। वह खुद भी तो इतना अज्ञान है कि इन बातोंको समझना उसके बूतेकी बात नहीं। साधारण पाँचवीं क्लासका लड़का क्या समझे कि विवाह किस उद्देश्यको सामने रखकर किया जाता है? उसके पिताको घरमें बहू लेजानेसे मतलब है, ताकि वह जल्दी ही पितामहके पदको प्राप्त होवे, और परदादा बननेपर तो उसे स्वर्गमें ऊँचा स्थान प्राप्त होगा और मरते समय उसके नामपर सोनेकी सीढ़ी दान देनेका हक मिलेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

पांच दिन बाद बारात घर पहुँची। बड़ी ही खुशी और धूम-धामसे बधाई हुई। लडकेके पिता अकलचंद सेठ तो फूले नहीं समाते थे। पांचसौ रुपये टीकेके मिले, दस हजारका माल दहेजमें आया और लड़केकी बहू भी सुन्दर, सयानी, घरका काम-काज देखनेमे होशियार थी।

लेकिन उस कोमल बालकके हृदयपर, जिसे युवावस्था तो दूर रही, अभी किशोरावस्थाको भी पार करनेमे बहुतसे वर्षोंका समय बाकी था, इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। वह पूर्वकी तरह स्कूल जाने लगा। लेकिन आज जब वह स्कूलसे लौटा तो उसका मुंह कुछ उदासीन था। कारण क्या हो सकता था? यही कि आज लड़कोने मिलकर बचपनमें शादी करनेके लिए उसकी खूब हँसी उड़ाई थी। खैर, बात पुरानी होगई और वह भी इन बातों का अब बुरा नहीं मानता था।

रमेश तो अपने दिन स्कूलमें काटता था, लेकिन उसकी नववधू लीलाकी क्या हालत थी? क्या उसके पिताने उसे रमेशको व्याहा था या उस घरको जो कि उस का ससुराल था। दिन भर वह घरके काम-काज देखा करती, न कभी बाहर जाना और न किसीसे मिलना। खाने-पीने, पहनने-ओढ़नेको घरमे काफी था। शारीरिक थकावट लाने वाला काम भी उसके लिए कोई नहीं था। घरमें नौकर चाकर काफी थे। फिर भी वह दुखी थी। वह जवान थी। उसका यौवन वहाँ धूलमें मिल रहा था। वह भी समझती थी कि उसके जीवन का वहाँ नाश होरहा है। लेकिन वह कर ही क्या सकती थी? अपने दिलमें उमड़ी हुई बात लोहूके घूंटकी तरह वह नीचे उतार लेती थी। उसे समाजमें अपने कुलकी शान रखना था, वह मर्यादाके बाहर नहीं जाना चाहती थी; लेकिन साथ ही उसे उसका यौवन सता रहा था।

रमेश की परीक्षा नजदीक आई हुई थी। वह भरसक प्रयत्न कर परीक्षामे शानके साथ उत्तीर्ण होना चाहता था। वह अपने कमरेमे बैठा रातको बारह बजे तक अभ्यास किया करता, बादमें शयन-गृहमें जा सोता और सुबह पांच बजे ही उठ खड़ा होता। उसे यह खयाल ही नहीं आता कि वह विवाहित है। उसने अभी तक 'अर्धाङ्गिनी' शब्दकी परिभाषाको भी पूरी तौरपर नहीं समझ पाया था। उसे प्रेमका व्यावहारिक अर्थ भी मालूम नहीं था। वह समझता था कि स्त्रियोंको घरका काम काज करने के लिये ही पर घरसे शादी कर वधूके रूपमे लाया जाता है। लीला विचारी अपना दुख अपने आप ही को सुनानेके सिवाय और कर ही क्या सकती थी!!

❋ ❋ ❋ ❋

एक दिन लीलाने नींद न ली। रमेश जब सोने केलिए कमरेमे आया तो वह उसका हाथ पकड़कर नम्र शब्दोंमें बोली, "आप तो सारे दिन अपनी पढाई में ही लीन रहते हो, कभी मुझ अभागिनीकी भी खबर लेनेका विचार दिलमे लाते हो या नहीं।"

रमेशके लिए यह सब नई बातें थीं, वह नही समझ पाया कि लीलाके कहनेका क्या अभिप्राय है। वह बोल उठा, "तुम्हें क्या चाहिए सो अम्माजीसे माँगलो। मुझे बातें करनेको समय नहीं है। मुझे नींद लेने दो, सुबह जल्दी उठना है।" लीलाके हृदयको धक्कासा लगा, वह चुपचाप सोगई। लेकिन उसके हृदयमें जो आशाकी बेल उगी हुई थी, वह इन शब्दोंसे कैसे मुरझा सकती थी।

लीला पढ़ी लिखी भी तो कहाँ थी। उसे न

साहित्यका ज्ञान और न किताबोंकी पहिचान। उसे क्या मालूम कि एक जवान पुरुष और एक बच्चेमे क्या फरक है, उसे तो अपनी आशा और इच्छा पूर्ण करनेसे मतलब। वह महाजन वंश और जैन धर्म में पली हुई नारी थी, लेकिन साथ ही अंधविश्वास ने उस अज्ञान बालाके मस्तिष्कमे पूरी तौरसे स्थान जमा लिया था। हम कहते है आशा अमर होती है। लीलाकी भी यही गति थी। उसे भी आशा थी कि उसके पतिदेव एक दिन उसके दुःखका समझेंगे और उसके अंतर की भूखको दूर करेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

परीक्षा समाप्त होगई, रमेशके इम्तिहान का नतीजा आया। वह अपनी क्लासमें सर्वप्रथम और फर्स्ट डिवीजनमें पास हुआ था, जिसके लिए हेडमास्टर ने बहुत खुशी प्रकट की और उसे स्कूल बोर्डसे मिलने वाला इनाम भी जाहिर कर दिया। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि अगले साल होने वाले बोर्डके मिडिल इम्तिहानमें वह गाँव और स्कूलको काफी यश प्राप्त कराएगा।

अब रमेशकी गर्मीकी छुट्टियाँ हैं, कोई विशेष काम नहीं। दिनको यह मित्रोके साथ खेलने, नहाने तैरने, वगैरहकेलिये जाता है। अभी उसे अभ्यास करनेकी कोई जरूरत नहीं। शामको जल्दीसे सो जाता है। न इधर उधरके विचार, न किसी बातकी कोई चिंता।

परन्तु इधर लीलाको उसका दुःख उसे सता रहा था। आज उसने रमेशसे कुछ बोलनेकी ठानी। रात को ज्योंही वह कमरे आया उसने रमेशको पलङ्गपर बिठाकर कहा "गरीबपरवर, अब तो आपकी परीक्षा समाप्त होचुकी है, सुबह जल्दी उठना नहीं, अब आप मुझ गरीबकी इच्छाओंको पूर्ण क्यो नही करते? क्या आपको मालूम नही मैं कितनी दुःखी हूँ? मैं आपसे कितना कहूँ।"

रमेश कुछ नहीं समझा। वह बोल उठा "तुम्हारे माफिक भी कोई मनुष्य होगा; घरमें खाने खरचने को बहुत, काम करनेको नौकर-चाकर, फिर भी तुम्हे क्या दुःख है। फिजूल मेरे पीछे क्यों पड़ती हो।

वह रमेशके गले लिपट गई, और गद्गद् कण्ठ-से कहने लगी; "तुम्हारा और मेरा सम्मिलन और पाणिग्रहण होनेका उद्देश्य क्या आप यही समझते हैं! लेकिन, मेरी आंतरिक भूख, मेरी सन्तानकी अभिलाषाको कौन पूरी करेगा, पतिदेव?"

रमेशके सिरमे बिजली-सी दौड़ गई! वह सन्न होगया! वह अब कुछ कुछ समझने लगा कि उसकी पत्नी उससे क्या चाहती है। उसका मन अब गृहस्था-वस्थाको समझने लग गया था। अब वह स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी स्वाभाविक प्रेरणा (Sexual instinct) से बिल्कुल अनभिज्ञ न था। लेकिन साथ ही वह इस विषयपर गहरा विचार करने लायक भी न था। उसने अपनी दुःखिता पत्नी पर दया करना चाहा, और उस दयाका रूप क्या था उसे पाठक स्वयं विचारलें।

रमेश खुद भी अब इसमें अपना दिलबहलाव समझने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀

पंद्रह दिन बाद—

रमेश, दिनके दो बजे, अपने कमरेमें बैठा हुआ था। उसका एक मित्र उससे मिलने आया था, जो उसके सामने कुर्सीपर बैठा हुआ कुछ बोल रहा था। रमेशके चेहरेपर अब वह सौंदर्य नहीं था, वह तेज

नहीं था, वह प्रसन्नता भी नहीं थी जो कि महीनाभर पहले थी।

"यार! तुम तो अब बहुत सूखते चले जारहे हो, खेलने भी कभी नहीं आते, ऐसी तुम्हें कौनसी चिन्ताने आ घेरा? कुछ मैं भी तो समझ पाऊँ।" मित्रने उत्सुकतासे पूछा।

"कुछ नहीं मोहन. जरा दिल ही कम होगया है।"

"हाँ मैं समझ गया, शायद अपनी नव-वधूसे छुटकारा नहीं मिलता होगा, और तो हो ही क्या सकता है?" मोहन बीचमें ही बोल उठा।

रमेश सटपटा गया, शरमके मारे कुछ बोल नहीं सका।

* * *

महीनाभर बाद रमेशका स्कूल खुला। उसकी क्लासके सभी लड़के वहाँ हाजिर थे, लेकिन रमेश ही नहीं दीख रहा था।

मास्टर साहबने पूछा—"मोहन, तुम्हारा मित्र रमेश आज स्कूल क्यों नहीं आया? क्या उसे आज मिलने वाले पुरस्कारपर कोई खुशी नहीं है?"

"नहीं जनाब, वह बीमार है। उसके पिता उसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अस्पतालमें इलाज कराने लेगये हैं। लेकिन उसकी स्थिति चिंताजनक है।" मोहनने दुःख प्रकट करते हुए कहा।

मास्टर साहब अवाक् रह गये। उनके दर्जेका प्रथम आनेवाला लड़का चिंताजनक स्थितिमें है, यह जानकर उनके होश उड़ गये। उसी रोज शामको वे अस्पताल पहुँचे। डाक्टरने बतलाया कि उसे सूजाक होगया है, और टी० बी० (Tuberculosis) ने काफी जोर पकड़ लिया है। "अब केवल ईश्वरपर ही भरोसा रक्खे बैठे हैं, उसकी नसें बहुत कमजोर होगई हैं।" आखिरमें डाक्टरने कहा।

मास्टर का मुंह सूख गया। वे रमेशके कमरेमें गये। उसका मुँह पीला था, उसके गालोंमें खड्डे पड़ गये थे, शरीर हाड-पंजर ही रह गया था। खटियाके नजदीक जाकर बोले—"रमेश!" उसने आंखें खोलीं। मास्टरको देखते ही उसका गला भर आया, आंखें आंसुओंसे भर गईं। वह बोलनेका प्रयत्न करने लगा।

मास्टरने उसे शान्त करते हुए कहा—"रमेश, तुमने भूल की!"

"हां गुरुजी!" रमेशको बोलनेमें बड़ी मुश्किल पड़ रही थी। फिर भी वह बोलनेका साहस कर रहा था। "मैं अपने किये पापका फल भोग रहा हूं, यह इस जन्ममें ही किया हुआ अपराध है। अब मैं नहीं बच सकता, मेरी आशाका ताँता टूट गया है।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया। मास्टरने उसको शान्त होनेको कहा, लेकिन वह कह रहा था—"गुरुजी···मेरा यह संदेश, कृपया मेरे सहपाठियोंको कह दीजियेगा। मैं तो···म···र जाऊंगा। लेकिन वे इस की हुई भूलसे पाठ लें, उन्हें ऐसा मौका न आवे। यह सब मेरी बचपनमें शादी हो जानेका परिणाम है। अब मेरी पत्नी सदाकेलिये विधवा हो जायेगी। उसकी इच्छाको कौन पूरी करेगा? उसकी ···सं··ता··न·· की भूख ··अब···कैसे······" रमेशकी आंखोंसे आंसू टपकने लगे। उसे उस दिन की याद आगई जब कि उसकी पत्नी लीलाने उसके गले लिपट कर कहा था कि उसे संतानकी भूख सता रही है। वह और कुछ कहनेका प्रयास कर रहा था, लेकिन मुंह खोलते ही पिचक जाता था। मास्टरने उसे धीरज देना चाहा। उन्होंने रमेशका हाथ अपने हाथमें लिया, वह एक दम ठंडा था।

देखते ही देखते रमेशका सांस चढ़ने लगा।

मास्टर साहब उसका हाथ मसलने लगे, ताकि उसमे कुछ गरमी आजाय, परन्तु यह सब व्यर्थ था। उसकी घड़ी आगई थी। अक्कलचन्द सेठ अन्दर आये, उनका मुँह सूखा हुआ था। रमेशकी सांस चढ़ी हुई देखकर तो उनकी हड्डी हड्डी पानी होगई, वे बहुत ही अधीर थे। मास्टर साहबने कहा, "सेठजी! अब आपको बहुत दुःख होरहा है, लेकिन अब काम बिगड़ गया है। अपने हाथोंसे अपनेही पैरोंमे कुल्हाड़ी मारी है, आपने! लेकिन उस समय आप अपनी धुनमें थे। तुम्हे दादा और परदादा बननेकी इच्छाने अपने इकलौते पुत्रसे हाथ धुलवा दिये! वह अब संसारमें नही रह सकता, उसका अन्तिम समय आ पहुंचा है!!" सेठकी छाती बैठ गई!!

"हाय! यह क्या कह रहे हो? क्या मेरा बेटा अब...न...हीं...बच...स...क...ता!" यह कहते कहते उनकी आँखें भर आईं। वे चारपाईके नजदीक आये। रमेशका मुंह खुला था, उसका अन्तिम साँस निकल गया था। देखते ही उनकी आशाएँ हवा होगई, उनका सिर चकराने लगा। "हाय!" कहते हुए वे धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े! मास्टर साहब भी बहुत दुःखित हुए, पर सब व्यर्थ था।

❀ ❀ ❀ ❀

सुबहके छः बजे हैं, सूर्य भगवान अपनी सुनहरी किरणोंको पहाड़ के पीछे छिपाए हुए हैं, वे कुछ किरणें आकाशमें बादलोंकी तरफ छोड़ रहे थे, पर भूतलपर दृष्टि डालनेके पहले वे कुछ सोच रहे थे। मानो, उन्हें यह दुःख था कि किसी दिन उन्होंने अस्ताचलको जाते वक्त अपनी सुनहरी किरणोंसे जिस रमेशकी इन्द्र की-सी शोभाको बढ़ानेमें आनन्द प्रकट किया था, उसी रमेशके शवकी अन्तिम क्रिया के वक्त आज उन्हें उदयाचल से निकलते ही श्मशान भूमिकी भयानकताका दृश्य देखना पड़ेगा। शायद वे ही सुनहरी किरणें उस भयानक भूमिको और भी ज्यादा भयानक कर देवें।

चिता जल रही थी। अकलचंद सेठ रुदन कर रहे थे। लोग बैठे बातें कर रहे थे। कोई कहता था "लड़का होशियार, तन्दुरुस्त था, पर न जाने उसे एकाकी क्या होगया।" दूसरा कहता था—"अजी लड़की ही बड़ी चुड़ैल है, उसीने इस भोले-भाले लड़केका सर्वनाश किया।" एक महाशय कह रहे थे—लड़कीने शादी करके घर आये उसी दिनसे अपना पैर बाहर छोड़ रक्खा था, और इसी कारणसे लड़का चिन्तित था, दिन ब दिन कमजोर हो रहा था।"

इतनेमें एक आदमी गाँवकी ओरसे भागता हुआ आया। सब उसकी ओर देखने लगे। वह नजदीक आकर कहने लगा, "लीलाका कुछ पता नहीं है। अभी तक उसका चूड़ा भी नहीं फोड़ा गया। न मालूम वह कहाँ भाग गई!" बस फिर क्या था। पहले ही उसकी बात चली हुई थी, अब तो और भी बढ़ गई। हजारों गालियाँ उसके नामपर बरसने लगी न जाने कितने विशेषण—चुड़ैल, हरामजादी, कुलटा, कुलच्छिणी, वगैरह उसके नामपर लगाये जाने लगे!

अन्तिम क्रिया करके गांवमे लौटे, इधर उधर खूब आदमी दौड़ाये गए, पुलिसको भी खबर दीगई पर लीलाका कहीं पता न था। शामको उठामणे पे लोग उसके नामपर चर्चा चला रहे थे। सब उसके बारेमे बुरी आशंकाएँ करते थे।

पर आँखिर वह गई भी तो कहां गई?

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे दिन चरवाहा गांवमे खबर लाया कि उसने

नजदीकके जंगलमे तालाबके पास एक लाश पड़ी पाई है। उसके गलेमें एक रस्सी है और महाजन घर कीं खोसी मालूम पड़ती है। जान पड़ता है उसने आत्महत्या ही करली है।

जाँच करने पर मालूम हुआ कि वह लीली ही थी।

❀ ❀ ❀ ❀

आत्महत्या ! और किसलिये यह महापाप ?

पाठक खुद ही इसका निर्णय करलें।

एक उमड़ता हुआ फूल बीच ही में तोड़ डाला गया।

एक जवान बालाको जीवन असह्य हो जानेके भयसे और अपनी इच्छाओंकी पूर्ति न होने रूप घोर निराशासे संसार छोड़ देना पड़ा !!

सेठजी अकलचन्दकी अक्ल अब ठिकाने आई, जबकि वे अपने इकलौते पुत्रसे हाथ धो बैठे थे।

मास्टर साहबको अब समझ पड़ा कि रमेशके विवाहका उद्देश्य क्या था।

---

## [ बच्चोंकी हाईकोर्ट ]

( १ )

बड़े भैया एक स्लेट-पेंसिल लाये, चार टुकड़े बराबरके किए, चारों बच्चोंको देने लगे, चारों मचल पड़े,—यह तो छोटी है, हम नहीं लेते !

( २ )

पिताजी आये—अच्छा हम इन्हें बड़ी करदें। मुट्ठीमें दबाई, पीछे मुट्ठी खोली—लो, बड़ी बन गई ! सबके सब—नहीं बनी।

( ३ )

हाई कोर्टमें मामला पेश हुआ। पिताजीने जो प्रयोग किया था वही यहाँ किया गया। सबके सब—हाँ, अब बनगई ! एक एक टुकड़ा सबने ले लिया।

( ४ )

हाईकोर्ट ? ☛ "माँ"

\+ \+ \+ \+

जिस प्रकार ज्ञानीजनोंको 'स्याद्वाद' मान्य है उसी प्रकार बच्चों को 'मातृवाद' मान्य है।

—दौलतराम मित्र

# श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र

( लेखक—श्री पं० नाथूराम प्रेमी )

ये दो ग्रंथकर्त्ता लगभग एक ही समयमें, एक ही स्थानपर हुए हैं और दोनोंने ही महाकवि पुष्पदन्तके महापुराणपर टिप्पण लिखे हैं, इस लिए कुछ विद्वानोंका यह खयाल हो गया है ❋ कि प्रभाचन्द्र और श्रीचन्द्र एक ही हैं, लिपिकर्त्ताओंकी ग़ल्तीसे कहीं कहीं जो श्रीचंद्रकृत लिखा मिलता है, सो वास्तवमें प्रभाचन्द्रकृत ही होना चाहिए। परन्तु यह खयाल ही खयाल है, वास्तवमें श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र दो स्वतंत्र ग्रन्थकर्त्ता हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे यह बात सुस्पष्ट हो जायगी—

बम्बईके सरस्वती भवनमें (नं० ४६३) में रविषेणाचार्यकृत पद्मचरितका श्रीचन्द्रकृत टिप्पण है + । उसका प्रारंभ और अन्तका अंश देखिए—

प्रारंभ—

शंकरं वरदातारं जिनं नत्वा स्तुतं सुरैः।
कुर्वे पद्मचरितस्य टिप्पणं गुरुदेशनात् ॥

सिद्धं जगत्प्रसिद्धं कृतकृत्यं वा समाप्तं निष्ठितमिति यावत्। सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धि (द्धेः) कारणं समग्रो धर्मार्थकाममोक्ष स चासौ भव्यार्थश्च भव्यप्रयोजनं तस्य सिद्धिर्निष्पत्तिः स्वरूपलब्धिर्वा तस्याः कारणं हेतुः। किं विशिष्टं हेतुमुत्तमं दोषरहितं······

अन्त—

‡ लाढ (ड़) बागड़ि (ड) श्रीप्रवचनसेन (?) पंडितात्पद्मचरितस्सकर्णो (नमाकर्ण्य ?) बलात्कारगणश्रीश्रीनन्द्याचार्यसत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना श्रीमद्विक्रमादित्यसंवत्सरे सप्तासीत्यधिकवर्षसहस्र(स्रे) —श्रीमद्धारायां श्रीमतो राजे (ज्ये) भोजदेवस्य······

एवमिद (दं) पद्मचरितटिप्पितं श्रीचंद्रमुनिकृत-समाप्तमिति।

स्व० सेठ माणिकचन्द्रजीके चौपाटीके मन्दिरमें (नं० १९७) इन्हीं श्रीचन्द्रमुनिका एक और ग्रन्थ 'पुराणसार' है। उसका प्रारंभ और अंत इस प्रकार है—

प्रारंभ -

नत्वादितः सकल (तीर्थ) कृत (तां) कृतार्थान्
सर्वोपकारनिरतांस्त्रिविधेन नित्यम्।
वक्ष्ये तदीय - गुणगर्भमहापुराणं
संक्षेपतोऽथनिकरं शृणुत प्रयत्नात् ॥

अन्त—

धारायां पुरि भोजदेवनृपते राज्ये जयात्युच्चकैः
श्रीमत्सागरसेनतो यतिपतेर्ज्ञात्वा पुराणं महत्।
मुक्त्यर्थं भवभीतिभीतजगता श्रीनन्दिशिष्यो बुधः
कुर्वे चारु पुराणसारममलं श्रीचंद्रनामा मुनिः ॥

---

❋ देखो डा०पी०एल० वैद्य सम्पादित महापुराण की अंगरेजी भूमिका।

+ भवनके रजिस्टरमें इसका नाम, 'पद्मनन्दि-चरित्र' लिखा हुआ है। यह प्रति हालकी लिखाई हुई और बहुत ही अशुद्ध है।

‡ लाड़बागड़ नामका संघ काफी पुराना है। दुबकुंडके जैनमन्दिरमें एक शिलालेख वि० सं० ११४५ का है, जिसमें इस संघके तीन सेनान्त आचार्योंका उल्लेख है।

लाड या लाट गुजरातका प्राचीन नाम है और बांसवाडाके आसपासके प्रदेशको अब भी बागड़ कहते हैं।

श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे यत्तपूत्य (अशीत्य ?) धिकवर्षसहस्रे पुराणसाराभिधानं समाप्तं। शुभं भवतु। लेखकपाठकयोः कल्याणम्।

पद्मचरितके टिप्पणकार और पुराणसारके कर्त्ता इन्हीं श्रीचन्द्रमुनिका बनाया हुआ महापुराण (पुष्पदन्तकृत) का एक टिप्पण है, जिसका दूसरा भाग अर्थात् उत्तरपुराण-टिप्पण उपलब्ध है ✻। उसके अन्तमें लिखा है—

श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे वर्षाणामशीत्यधिकमहस्रे महापुराण-विषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तात् परिज्ञाय मूलटिप्पणिकां चालोक्य कृतमिदं समुच्चय-टिप्पणं अज्ञपातभीतेन श्रीमद्बला (त्का) रगणश्रीसंघा (नंद्या)चार्यसत्कविशिष्येण श्रीचंद्रमुनिना निज-दोर्दण्डाभिभूतरिपुराज्यविजयिनः श्रीभोजदेवस्य। १०२।

इति उत्तरपुराणटिप्पणकं प्रभाचंद्राचार्य † विरचितं समाप्तम्।

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यगताब्दः संवत् १५७५ वर्षे भादवा सुदी ५ बुद्धदिने कुरु-जांगलदेशे सुलतानसिकंदरपुत्र सुलतान इब्राहिम-राज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भट्टारक श्रीगुणभद्रसूरिदेवाः तदाम्नाये जैसवाल चौ० टोडरमल्लु। चौ० जगसीपुत्र इदं उत्तरपुराण टीका लिखापितं। शुभं भवतु। मांगल्यं दधाति लेखक-पाठकयोः।

उक्त तीनों ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंसे यह बात स्पष्ट होती है कि इन तीनोंके कर्त्ता श्रीचन्द्रमुनि हैं, जो बलात्कारगणके श्रीनन्दि सत्कविके शिष्य थे और उन्होंने धारा नगरीमें परमारवंशीय सुप्रसिद्ध राजा भोजदेवके समयमें वि० सं० १०८७ और १०८० में उक्त ग्रंथोंकी रचना की है।

अब श्रीप्रभाचंद्राचार्यके ग्रंथोंको देखिए और पहले आदिपुराण टिप्पणको लीजिये—

प्रारंभ—

प्रणम्य वीरं विबुधेन्द्रसंस्तुतं<br>
निरस्तदोषं वृषभं महोदयम्।<br>
पदार्थसंदिग्धजनप्रबोधकं<br>
महापुराणस्य करोमि टिप्पणम्॥

अन्त—

समस्तसन्देहहरं मनोहरं<br>
प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेश्वरम्।<br>
कृतं पुराणे प्रथमे सुटिप्पणं<br>
सुखावबोधं निखिलार्थदर्पणम्॥

इति श्रीप्रभाचंद्रविरचितमादिपुराणटिप्पणकं पंचासश्लोकहीनं सहस्रद्वयपरिमाणं परिसमाप्ता (प्त)। शुभं भवतु। X

पुष्पदन्तके महापुराणके दो भाग हैं एक आदि-पुराण और दूसरा उत्तरपुराण। इन भागों की प्रतियाँ अलग अलग भी मिलती हैं और समग्र ग्रंथकी एक प्रति भी मिलती है। श्रीचन्द्रने और प्रभाचन्द्र ने दोनों भागों पर टिप्पण लिखे हैं। श्रीचन्द्रका आदिपुराण का टिप्पण तो अभी तक हमें नहीं मिला परंतु प्रभाचन्द्र के दोनों भागों के टिप्पण उपलब्ध

✻ यह ग्रन्थ जयपुरके पाटोदीके मन्दिरके भंडारमें ( गठरी नं० १३ ग्रन्थ तीसरा पत्र ५७ श्लो० १७०० ) है। इसकी प्रशस्ति स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवालने आश्विन-सुदी ५ वीर सं० २४४७ के जैनमित्रमें प्रकाशित कराई थी और मेरे पास भी उन्होंने इसकी नकल भेजी थी। इसी सम्बन्धमें उन्होंने अपने ता० १६-६-२३ के पत्रमें लिखा था कि "उत्तर पुराणकी टिप्पणी मँगाई सो वह गठरी नहीं मिली थी—आज ढूँढकर निकाली है। उसके आदि अंतके पाठकी भी नक्ल है। 'श्रीचंद्रमुनिना' में 'प्रभा' शब्द छूट गया मालूम होता है। परंतु श्लोक सख्यामें फर्क होनेसे शायद श्रीचंद्रमुनि दूसरा भी हो सकता है।"

† यहाँ निश्चयसे श्रीचन्द्राचार्यकी जगह प्रभा-चन्द्राचार्य लिखा गया है। यह लिपिकर्ताकी भूल मालूम होती है।

X भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट की प्रति नं० ५६३ (आफ १८७५-७७)

हैं। उनमें से आदिपुराण-टिप्पणका मंगलाचरण और प्रशस्ति ऊपर दी जाचुकी है। अब उत्तरपुराण के टिप्पण को लीजिये—

अन्तिम अंश—

इत्याचार्यप्रभाचंद्रदेवविरचितं उत्तरपुराणटिप्पणकं द्व्यधिकशततमः सन्धिः।

नित्यं तत्र तवप्रसन्नमनसा यत्पुण्यमत्यद्भुतं
यातस्तेन समस्तवस्तुविषयं चेतश्चमत्कारकः।
व्याख्यातं हि तदा पुराणममलं स्व (सु)स्पष्टमिष्टाक्षरैः
भूयाच्चेतसि धीमतामतितरां चन्द्रार्कताराबधिः॥१॥
तत्त्वाधारमहापुराणगम(ग)नद्यो(ज्ज्यो)ती जनानन्दनः।
सर्वप्राणिमनःप्रभेदपटुता प्रस्पष्टवाक्यैः करैः।
भव्याब्जप्रतिबोधकः समुदितो भूभृत्प्रभाचंद्रतो
जीयाट्टिपणकः प्रचंडतरणिः सर्वार्थमग्नद्युतिः॥२॥

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृताखिलमलकलंकेन श्रीप्रभाचंद्रपंडितेन महापुराणटिप्पणकं शतत्र्यधिकसहस्त्रत्रयपरिमाणं कृतमिति। *

इससे मालूम होता है कि यह टिप्पण धारानिवासी पं० प्रभाचन्द्रने जयसिंहदेव (परमारनरेश भोजदेवके उत्तराधिकारी)के राज्यमें रचा है। आदिपुराणके टिप्पणमें यद्यपि धारानिवासी और जयसिंहदेव राज्यका उल्लेख नहीं है; और इसका कारण यह है कि आदिपुराण स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, महापुराणका ही अंश है परन्तु वह है इन्हीं प्रभाचंद्रका।

इसी उत्तरपुराण टिप्पणकी एक प्रति आगरेके मोतीकटरेके मंदिरमें है जो साहित्यसन्देशके सम्पादक श्रीमहेन्द्रजीके द्वारा हमें देखनेको मिली थी। उसकी पत्रसंख्या ३३ है और उसका दूसरा और ३२ वां पत्र नष्ट होगया है। उसमें ३३ वें पत्रका प्रारंभ इस तरह होता है—

निषः॥९ साइवए स्थाति स्थाने॥१० अणिद्धऊ अनुक्तस्वरूपः। वसुसमगुणसरीरु सम्यक्त्वाद्यष्ट गुणस्वरूपः। हयतिउ हतार्तिः॥११ पढेविपाठं गृहं समडए। करिवइस। नामेवा वासा प्रवाहेण॥

इसके आगे वह श्लोक और प्रशस्ति है जो ऊपर दी जाचुकी है। यह उत्तरपुराण-टिप्पण श्रीचन्द्रके उत्तरपुराणसे भिन्न है। क्योंकि उसके अंतके टिप्पण प्रभाचंद्र के टिप्पणोंसे नहीं मिलते। प्रभाचंद्र के टिप्पणका अंश ऊपर दिया गया है। श्रीचंद्रके टिप्पण का अंतिम अंश यह है—

देसे सारए इतिसम्बन्धः। पढम ज्येष्ठा निरंगु कामः मुई मूकी। जलमंथणु अतिमकल्किनामेदं। विरसेसइगजिष्यति। पढेवि पाठग्रहणनामेदं॥

इसके आगे ही 'श्रीविक्रमादित्य संवत्सरे' आदि प्रशस्ति है।

श्रीचंद्रके उत्तरपुराण टिप्पणकी श्लोकसंख्या १७०० है जब कि प्रभाचंद्रके टिप्पणकी १३५०। क्योंकि सम्पूर्ण महापुराण-टिप्पणकी श्लोकसंख्या ३३०० बतलाई गई है और आदिपुराणकी १९५०। ३३०० मेंसे आ० पु० टि० १९५० संख्या बाद देनेसे १३५० संख्या रह जाती है।

जिस तरह श्रीचंद्रके बनाये हुए कई ग्रन्थ हैं जिनमेंसे तीनका परिचय ऊपर दिया जा चुका है उसी तरह प्रभाचंद्रके भी अनेक स्वतंत्र ग्रंथ और टीकाटिप्पण ग्रंथ हैं और उनमेंसे कईमें उन्होंने धारानिवासी और जयसिंहदेवके राज्यका उल्लेख किया है जैसे कि आराधना कथाकोश (गद्य)में लिखा है—

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपंचपरमेष्ठिप्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलंकेन श्रीमत्प्रभाचंद्रपंडितेन आराधनासत्कथाप्रबंधः कृतः।

---

* यह ग्रंथ जयपुरके पाटोदीके मंदिरके भंडारमें (ग्रंथ नं० २३३) है।

उन्होंने कई ग्रंथ जयसिंहदेवसे पहले भोजदेवके समयमें भी बनाये हैं× और उनमें अपने लिये लगभग यही विशेषण दिये हैं।

उन सब बातोंसे स्पष्ट हो गया है कि ये दोनों ग्रंथकर्त्ता भिन्न भिन्न हैं, दोनोंको एक समझना भ्रम है। ऐसा मालूम होता है कि जयपुरके लिपिकर्त्ताने पहले प्रभाचन्द्रके टिप्पणकी नकल की होगी और तब उसकी यह धारणा बन गई होगी कि टिप्पणके कर्ता प्रभाचंद्र हैं और उसके बाद जब उससे श्रीचंद्र के टिप्पणकी भी नकल कराई होगी तब उसने उसी धारणाके अनुसार श्रीचन्द्रको ग़लत समझकर 'प्रभाचंद्राचार्यविरचितं' लिख दिया होगा।

बम्बई, १४-११-४०

×जैसे प्रमेयकमलमार्तण्डके अन्तमें—"श्रीभोजदेव राज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्रणामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलंकेन श्रीमत्प्रभाचंद्रपंडितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति।

---

# गाँधी-अभिनन्दन

भारतकी बलिवेदी पर,
निज स्वार्थोंकी बलि देकर।
स्वातंत्र्य-प्रेम-मतवाला,
वाणीमें समता भरकर।
ले साम्यवादका झण्डा,
जगमे परिवर्तन लाकर।
भारतका लाल निराला,
बलिदानोंका बल पाकर।
सोतेसे विश्व-हृदयमें,
जागृतिका गीत सुना कर।
दीनों-हीनों-निबलोंको,
पथभ्रष्टोको अपना कर।

ले विश्व-प्रेमकी वीणा,
गा सत्य-अहिंसा-गायन।
जगको आदर्श दिखाने,
आया गाँधी मनभावन।
वैभव-विलाससे निस्पृह,
सादा जीवन अपना कर।
सच्चा सेवक दुनियाका,
है आया जगतीतल पर।
चिर-पराधीनता-पीड़ित,
भारत माँका सुन क्रन्दन।
स्वाधीन उसे करनेको,
आया गांधी, अभिनन्दन।

पं० रविचन्द्र जैन 'शशि'

# प्रो० जगदीशचन्द्रके उत्तर-लेखपर सयुक्तिक सम्मति

(ले०—श्री पं० रामप्रसाद जैन शास्त्री)

श्रीमान् प्रोफेसर जगदीशचंद्रजी जैन एम० ए० ने 'तत्वार्थभाष्य और अकलंक' नामका अपना लेख नं० ३ * भेजकर मुझे उसपर सम्मति देनेकी प्रेरणा की है। तदनुसार मैं उसपर अपनी सम्मति नीचे प्रकट करता हूं। साथ ही, यह भी प्रकट किये देता हूँ कि उक्त लेख नं० ३ से पूर्वके दो लेख मेरे देखनेमें नहीं आये अतः इस तृतीय लेखांकपर जो सम्मति है वह उस मूलक ही है और उसीकी विचारणा पर मेरी निम्न लिखित धारणा है।

## (१) अर्हत्प्रवचन और अर्हत्प्रवचनहृदय

इस प्रकरणको लेकर पं० जुगलकिशोरजीका जो राजवार्तिक-मूलक कथन है वह निर्भ्रान्तमूलक इस लिये प्रतीत होता है कि—जिस ग्रंथपर राजवार्तिक टीका लिखी जारही है उसी ग्रंथके ऊपर किये गये आक्षेपका उत्तर उसी ग्रंथद्वारा नहीं किया जाता, उसके लिये उस ग्रंथके पूर्ववर्ती ग्रंथके प्रमाणकी आवश्यकता होती है। अतः पं० जुगलकिशोरजीने नं० १ के सम्बन्धमें जो समाधान किया है वह जैनेतर (अन्यधर्मी) के आक्षेप-विषयक राजवार्तिकमूलक शंका-समाधानके विषयको लिये हुए उत्तर है। उसमें 'गुणाभावादयुक्तिः' इस वाक्यद्वारा जिस शंकाका निर्देश किया गया है उसीका समाधान 'इतिचेन्न' इत्यादि वाक्यसे किया गया है। दूसरी शंका यह उठाई गई थी कि यदि गुण है तो उसके लिये तीसरी गुणार्थिक नय होनी चाहिये—उसका भी शास्त्रीय प्रमाण 'गुण इतिदव्वविधानं' इत्यादि गाथा-द्वारा दिया गया है—अर्थात् कहा गया है कि गुण और द्रव्य अभेदविवक्षासे एक ही पदार्थ हैं, इस लिये तीसरे नयके माननेकी जरूरत नहीं है। इस प्रकरणमें 'अर्हत्प्रवचन' या 'अर्हत्प्रवचहृदय' कौनसा शास्त्र है? बाबू जगदीशचंद्रजीका मत तो इस विषयमें ऐसा है कि—सूत्रपाठ और उसपर जो श्वेताम्बर-मान्य भाष्य है, ये दोनो ही उन शब्दोंसे लिये जाते हैं। परन्तु पं० जुगलकिशोरजीकी मान्यता यह है कि दोनोंमेंसे एकको भी 'अर्हत्प्रवचन' या 'अर्हत्प्रवचन-हृदय' नामसे उल्लेखित नहीं किया गया है। विचारपूर्वक देखा जाय तो इन दोनों पक्षोंमें बाबू जुगलकिशोरजीका मानना ही ठीक प्रतीत होता है। कारण कि राजवार्तिकमें जो गुणको लेकर शंका उठाई गई है वह 'आर्हतमतमें गुण नहीं है' ऐसे शब्दोंसे उठाई गई है, उसका समाधान जिस सूत्रके द्वारा दिया गया है वह कोई प्राचीन ग्रंथका ही संभावित होता है। क्योंकि परपक्षवादीके लिये जिस ग्रंथके सूत्रपर आक्षेप है उसी ग्रंथके सूत्रसे उसका समाधान युक्तिसंगत मालूम नहीं होता। तत्वार्थसूत्रके नामसे तो दोनों सम्प्रदायके ग्रंथ एक ही हैं—पाठभेद भले ही हो, पर नामसे तथा पाठबाहुल्यसे तो समानता ही

---

* यह लेख 'प्रो० जगदीशचन्द्र और उनकी समीक्षा' नामक सम्पादकीय लेखके उत्तरमें लिखा गया है, और इसे, 'अनेकान्त' मे प्रकाशनार्थ न भेजकर श्वेताम्बर पत्र 'जैनसत्यप्रकाश'मे प्रकाशित कराया गया है। —सम्पादक

है। दूसरे कदाचित् श्वेताम्बरीय तत्वार्थ भाष्यका भी तुष्यतु दुर्जन न्यायसे प्रमाण देते भी तो फिर—प्रश्न-कर्त्ताका यह प्रश्नतो बाकी ही रहता कि श्वेताम्बर ग्रंथकी तो यह बात हुई परन्तु दिगम्बर ग्रंथोंमें गुण सद्भावका क्या उत्तर है ? तो उस विषयमें अकलंक-देव क्या समाधान करते ? यह बात अवश्य ही विचारणीय है। इस सब बातके विचारसे ही मालूम होता है कि श्रीअकलंकदेवने उस तरहका समाधान—दिया है कि जिसमें शंका करनेका मौका ही न लगे। इस लिये ऐसा समाधान—'अर्हत्प्रवचन' के नामसे दिया है। और अर्हत् प्रवचनके प्रमाणोंका सूचक 'द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः' यह सूत्र है, इसमें यह निष्कर्ष साफ निकल आता है कि यह सूत्र खास उमास्वाति (मि) की संपत्ति नहीं है किंतु किसी प्राचीन ग्रन्थका यह सूत्र है। इस सर्व पूर्वप्रति-पादित कथनसे पं० जुगलकिशोरजीके मतकी स्पष्ट पुष्टि होती है। इसी सर्व विषयको लक्ष्यमें रखकर—पं० जुगलकिशोरजीने जो अपने (नं० १ के) वक्तव्यमें लिखा है कि—'अर्हत्प्रवचन' और 'अर्हत्प्रवचन-हृदय' तत्वार्थभाष्यके तो क्या मूलसूत्रके भी उल्लेख नहीं हैं, यह लिखना उनका बिलकुल सुसंगत है। इसमें क्यों क्या आदि शंकाको ज़रा भी अवकाश नहीं है। दूसरे कदाचित् थोड़ी देरके लिये यह भी मान लिया जाय कि—'अर्हत्प्रवचन' वह ग्रन्थ भी हो सकता है जिसपर कि राजवार्तिक आदि टीकायें हैं, क्योंकि इस ग्रंथमें 'अर्हत्प्रवचन' ही तो है तो फिर कहना होगा कि अकलंककी दृष्टिमें तत्वार्थ सूत्र ही अर्हत्प्रवचन था न कि श्वेताम्बरमान्य भाष्य आदि। कारण कि अकलंकदेवने अर्हत् प्रवचन शास्त्रके प्रमाणमें 'द्रव्याश्रयाः निर्गुणा गुणाः' यह सूत्र ही प्रमाणत्वसे उपन्यस्त किया है, न कि कोई भाष्यका अंश या उसका कोई पाठ। अतः स्पष्ट मालूम होता है कि अकलंकके सामने श्वेताम्बरीय भाष्य आदि कोई भी ग्रंथ नहीं था किंतु—सर्वार्थसिद्धि आदि दिगम्बरीय ग्रंथ ही थे, जिनके आधारसे उनका भाष्य दिगम्बर संमत है।

## (२) अर्हत्प्रवचन और तत्वार्थाधिगम

इस वक्तव्यमें पं० जुगलकिशोरजीका जो आशय है उससे मेरा निम्नलिखित आशय दूसरी तरहका है। पं० जुगलकिशोरजीने 'इति अर्हत्प्रवचने तत्वार्थाधिगमे उमास्वातिवाचकोपज्ञसूत्रभाष्ये भाष्यानुसारिण्यां टीकायां सिद्धसेनगणिविरचितायां अनागारागारिधर्मप्ररूपकः सप्तमोध्यायः' इस टीकावाक्यमें जो 'उमास्वातिवाचकोपज्ञसूत्रभाष्ये', यह पद सप्तम्यन्त माना है सो ठीक नहीं है, यह पद वास्तवमें प्रथमा का द्विवचन है। क्योंकि 'भाष्य, शब्द नित्य नपुंसक है। इसलिये इस वाक्यका यह अर्थ होता है कि—अर्हत्प्रवचन तत्वार्थाधिगममें उमास्वातिप्रतिपादित सूत्र और भाष्य हैं, उसमें सिद्धसेनगणिविरचित भाष्यानुसारी टीका है, उसमें मुनिगृहस्थधर्मप्ररूपक यह सातवाँ अध्याय है। यहाँ पर 'उमास्वातिवाचकोपज्ञसूत्रभाष्ये' यह पद जो सप्तम्यन्त माना है, वह भ्रमसे माना है। कारण कि यदि ग्रन्थकर्त्ताको सप्तम्यन्त पद ही देना था तो सप्तमीका द्विवचनान्त देना ही ठीक प्रतीत होता। परंतु सो तो दिया नहीं—इससे स्पष्ट है कि यह पद प्रथमाका द्विवचनान्त है। कदाचित् हमारे मित्र प्रोफेसर साहबके हिसाबकी यह दलील हो कि लाघवके लिये एक वचनान्त ही दिया है तो यह दलील यहाँ पर ठीक नहीं है; कारण कि लाघवका विचार सूत्रोंमें होता है, यह पंक्ति सूत्र

नहीं है, अत. यह दलील यहाँ ठहर नहीं सकती। दूसरी दलील यह है कि सूत्र और भाष्यको एकत्व दिखानेके लिये सप्तमीका एक वचन है सो यह भी ठीक नही; क्योंकि एकता जो दिखलाई जा सकती है वह एक कर्तृत्वकी दिखलाई जा सकती है। सो ऐसी संदिग्ध अवस्थामें वह बात बन नहीं सकती, क्योकि द्वंद्व-समासमें सर्वपद स्वतंत्र रहते हैं, पूर्वपदके साथ जो विशेषण है वह उत्तरपदके साथ हो ही हो, यह नियम नही है। दूसरे टीकाकर्त्ताको यदि भाष्य 'स्वोपज्ञ' ही बतलाना था तो स्पष्ट भाष्यके साथ भी 'स्वोपज्ञ' या 'उमास्वातिवाचकोपज्ञ' ऐसा कोई विशेषण लगा देना था, सो कुछ किया नहीं। अत: इस सप्तमाध्यायके अंतसूचक वाक्यसे तो यह सूचित होता नहीं कि श्वेताम्बरीयभाष्य 'स्वोपज्ञ' है। तथा इस लेखांक ३ मे आपने ऐसा कोई प्रमाण भी नही दिया है कि अमुक अमुक प्रमाणसे, इन-इन आचार्योंके मतसे, इस (श्वेताम्बरीय) भाष्यकी स्वोपज्ञता सिद्ध है।

दूसरे एक बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि, सिद्धसेनगणि जिन उमास्वातिको 'सूत्रानभिज्ञ' कहते हैं और उनके कथनको 'प्रमत्तगीत' बतलाते हैं फिर उस भाष्यको स्वोपज्ञ तथा प्रमाण मानकर उसपर टीका लिखते हैं! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि—इस ग्रन्थकी स्वोपज्ञताके विषयमें सिद्धसेन, हरिभद्र आदि विद्वानोंने धोखा खाया है। कारण कि, भाष्यके कर्ताने उस ग्रन्थकी महत्ता दिखलानेके लिये कही स्वोपज्ञतासूचक संकेत किया दीखता है, इसीसे तथा कुछ श्वेताम्बरीय कथन की सम्मततासे ज्यादा विचार न करके पीछेके विद्वानोंने उस ग्रन्थको स्वोपज्ञ मान लिया दीखता है। प्रो० साहबके कथन से दिगम्बरी विद्वानोंने उस ग्रंथकी स्वोपज्ञता का निषेध नहीं किया है तो कही उसकी स्वोपज्ञताका विधान भी तो नही किया है। वास्तवमें दिगम्बर अकलंक आदिके सामने वह ग्रंथ तथा उसकी ऐसी मान्यता होती तो वे उस विषयके निषेध तथा विधान के विषयमें कुछ लिखते; परंतु वह ग्रन्थ जब उनके सामने ही नहीं था तो फिर प्रोफेसर साहबका यह लिखना कहां तक संगत है कि इस ग्रंथकी स्वोपज्ञता का निषेध पं० जुगलकिशोर जीको छोड़कर किसी दिगम्बरी विद्वानने नहीं किया? पहले आप यह सिद्ध कीजिये कि—अमुक पूज्यपाद, अकलंक आदिके सामने यह ग्रंथ था। जब यह बात सिद्ध होजायगी तब पीछे आपकी यह बात भी मान्य की जा सकेगी। आपने इस 'लेखांक ३' में जो प्रमाण दिये हैं वे कोई भी ऐसे प्रमाण नहीं हैं जिनसे यह बात सिद्ध होजाय कि श्वेताम्बरभाष्य अकलंकदेवके सामने था। आपने अपने मतकी पुष्टिमें जिन नवीन विद्वानोंका दाखिला दिया है उन सबमें आप सरीखा ही बहुत कुछ सादृश्य है, अतः उनकी मान्यता इस विषयक प्रमाणकोटिकी मानी जाय, ऐसी बात नहीं है। यहाँ पर युक्तिवादका विषय है, युक्तिसे आपके कथनकी प्रमाणीकता सिद्ध हो जायगी तो फिर उनकी भी वैसी मान्यता स्वयं सिद्ध ही है। फिर सहयोगके लिये एक की जगह दो तीनकी मान्यता अवश्य ही पौष्टिकता की सूचक हो सकती है।

### (३) वृत्ति

'वृत्तौ पंचत्ववचनात्' इत्यादि राजवार्तिकके विषय को लेकर पं० जुगलकिशोरजीने जो विषय प्रतिपादन किया है वह भी बिलकुल संगत है। संगतिका कारण यह है कि पं० जुगलकिशोर जीने, राजवार्तिक और श्वेताम्बरीय भाष्यके पाठमें पाये जाने वाले भेदके

विधानसे और 'कालश्च' इस दिगम्बरीय सूत्रके उल्लेख से, प्रोफेसर साहबका जो मत है कि भाष्य राजवार्तिकारके समक्ष था उसका निरसन (खंडन) भले प्रकार किया है।

प्रोफेसरजीने जो यह लिखा है कि भाष्यका नाम 'वृत्ति' भी था सो उसका निषेध तो पं० जुगलकिशोर जीने भी नहीं किया है, अतः उस विषयके उल्लेखकी विशेष आवश्यकता नहीं थी। परंतु आपने पं० जुगलकिशोरजी द्वारा उपस्थित किये हुए शिलालेख प्रमाणकी 'वृत्ति' को जो अनुपलब्ध बतलाकर अपने मतकी पुष्टि करनी चाही है वह कुछ समीचीन प्रतीत नहीं होती; क्योंकि उसमें १३२० शकके शिलालेखको नवीन बतलाकर जो अपना मत समर्थन किया है वह निर्मूलक है। शिलालेखके लेखक तो जिस शताब्दीमें उत्पन्न होंगे उसी शताब्दीका उल्लेख करेंगे; जिनने पुरानी बातका उल्लेख किया है उनका कथन अयुक्त क्यों? क्या परम्परासे पूर्वकी बातको जानने वाले और अपने समयमें उस पूर्वकी बातका उल्लेख करने वाले झूठे ही होते हैं? यदि प्रो० साहब का ऐसा सिद्धान्त है तो फिर कहना होगा कि आप इतिहासज्ञता से कोसों दूर हैं। क्या १३२० शताब्दी के लेखकको उस लेखनसे कोई स्वार्थिक वासना थी? इसी नाचीज युक्तिको लेकर आपने गंधहस्ति भाष्यके अस्तित्वको मिटानेकी जो कोशिश की है वह भी निर्मूल और नितान्त भ्रामक है, जबकि अष्टसहस्रीके टिप्पण और हस्तिमल्ल आदि कवियोंके उल्लेखसे उस का भी अस्तित्व होना स्पष्ट ही है। बहुतसे आचार्य ऐसे होते हैं कि अपने पूर्वकी कृतिका उल्लेख करते हैं और बहुतसे ऐसे हैं जो नहीं भी करते हैं—उन्हींमेंसे निरपेक्ष पूज्यपाद आदि आचार्य हैं। जिनने उल्लेख किया है वे शिलालेखक और हस्तिमल सरीखे विद्वान् हैं। उल्लेखका १५वीं शताब्दीसे पूर्व न मिलकर १५वीं शताब्दीमें मिलना किसीकी विशेषविज्ञतामें आश्चर्यसूचक तो नहीं है। आप सरीखे यदि विद्वान् आश्चर्य मानें तो दूसरी बात है।

प्रो० साहबने जो यह लिखा है कि—'कालश्च' इस सूत्रके होनेपर तो पांच द्रव्यकी शंका हो ही नहीं सकती किंतु 'कालश्चेत्येके' ऐसा सूत्र होनेपर शंका हो सकती है सो यह लिखना भी आपका असंगत प्रतीत होता है, क्योंकि जिस जगहकी व्याख्या करते समय पंचत्वकी शंका की गई है वहाँ तक सौत्रीय पद्धतिमें कालका कोई भी उल्लेख नहीं आया है। इसलिये पंचत्वविषयक शंका करना तथा 'कालश्च' इस सूत्र द्वारा शंकाका समाधान बिलकुल जायज है। जैसे इसी 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' सूत्रकी दूसरी वार्तिकके प्रमाणमें 'तद्भावाव्ययं नित्यं' सूत्रको उपन्यस्त किया है। इसी तरह और भी बहुतसे स्थल हैं जो कि पूर्वकथित सिद्धिमें आगेके सूत्र उपन्यस्त हैं, जिनको कि आपने भी 'तद्भावेति' और 'भेदादणुः' सूत्रोंके उल्लेखसे स्वीकार किया है।

यदि राजवार्तिककारको भाष्यपर की गई शंकाका ही निरसन करना अभीष्ट था तो भाष्यगत सूत्रके उल्लेखसे ही उसका निरसन करते। और जब उस विषयमें सूत्रगत—'एके' शब्दको लेकर शंका उठती तो फिर उसका समाधान करते कि नहीं? —भाष्यकारके मतसे काल द्रव्य भी है, जो कि 'वर्तना परिणाम' इत्यादि सूत्रसे स्पष्ट है। सो यह कुछ राजवार्तिकारने किया नहीं, इससे स्पष्ट है कि राजवार्तिकारका अभिप्रेत भाष्यविषयक समाधानका नहीं है। यह एक बड़ी विचित्र बात है कि भाष्यगत शंकाका

समाधान, अकलंक सरीखे विद्वान् भाष्यगत सूत्रसे न करके दिगम्बरगत सूत्रसे करें! क्या शंका करने वाला यह नहीं कह सकता था कि—'कालश्च' यह सूत्र भाष्यमें कहाँ है?—यह सूत्र तो दिगम्बराम्नाय का है। ऐसी बात उपस्थित होनेपर अकलंकजी क्या समाधान करते, सो प्रो० साहब ही जानें!

वास्तवमें इस विषयको हल करनेके लिये पं० जुगलकिशोरजीने जिस वृत्तिका शिलालेखगत उल्लेख किया है वह ही वृत्ति इस प्रकरणकी होनी चाहिये या कोई दूसरी † ही हो; परंतु वह होगी अवश्य दिगम्बर वृत्ति ही, क्योंकि 'कालश्च' सूत्रका दाखिला ही स्वयमेव इस बातका सूचक है।

मेरी समझसे इस प्रकरणमें एक दूसरी बात प्रतीत होती है, जो कि विद्वत् दृष्टिमें बड़े ही महत्वकी वस्तु हो सकती है। वह बात यह कि—'वृत्ति' शब्दके बहुतसे अर्थ हैं, उनमेंसे एक अर्थ वृत्तिका 'रचनाभेद' यानी रचनाविशेष होता है। यहां रचनाविशेषका आशय सूत्ररचनाविशेष होना है, क्योंकि प्रकरण यहां उसी विषयका है। जैसे कि 'आ आकाशादेक-द्रव्याणि' इस सूत्रमें सौत्रीरचनाका कथन है।

यहांपर भी सौत्री रचनामें 'जीवाश्च' सूत्र तक या आगे भी बहुत दूर तक 'काल' द्रव्यका सूत्रोल्लेखसे वर्णन नहीं आया है, और 'जीवाश्च' इस सूत्रके बाद ही 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इस सूत्रगत 'अवस्थित' शब्दकी व्याख्या की गई है, और व्याख्यामें धर्मादि-षट्त्वका कथन है। इसी दशामें पंचद्रव्यकी शंका होना और उसका समाधान होना बिलकुल ही उपयुक्त है। यहाँपर 'वृत्तौ पंचत्ववचनात्' इत्यादि वार्तिकका अभिप्राय यह होता है कि—'वृत्तौ'—रचनायां (सूत्र रचनायां) सूत्र रचनामें 'पंच'—पांच द्रव्य हैं, 'तु'—पुनः या अर्थात्, 'अवचनात्'—छहका कथन न होनेसे, 'षट्द्रव्योपदेशव्याघातः'—षट्द्रव्यका उपदेश नहीं बन सकता। ऐसा शंकाका समाधान 'इतिचेन्न' शब्दसे किया है, सो स्पष्ट ही है। इस वार्तिकका जो भाष्य है उसका अभिप्राय भी यही होता है—वृत्ति—सूत्ररचनामें धर्मादिक द्रव्य अवस्थित हैं वे कभी पंचत्वसे व्यभिचरित नहीं हो सकते, इसलिये षट्द्रव्यका उपदेश नहीं बनता। उसका उत्तर—अकलंकदेवने—'कालश्च' सूत्रसे देकर अपने कथनकी पुष्टि की है।

खंडन मंडनके शास्त्रोंमें 'नहि कदाचित्' आदिशब्द प्रायः आ ही जाते हैं, इसलिये ये शब्द भाष्यमें हैं और ये ही शब्द राजवार्तिकमें भी हैं। इसलिये राज वार्तिकके सामने भाष्य था, ऐसा मान लेना विद्वत् दृष्टिमें हृदयग्राहकताका सूचक नहीं है।

## (४) भाष्य

पं० जुगलकिशोरजीने 'कालस्योपसंख्यानं' इत्यादि वार्तिकके राजवार्तिकभाष्यमें आये हुए 'बहुकृत्वः' शब्दको लेकर जो यह सूचित किया है कि—अकलंकदेवके समक्ष कोई प्राचीन दि० जैन भाष्य था या उन्हींका भाष्य जो राजवार्तिकमें है, वह भी हो सकता है। पंडितजीकी ये दोनो कोटियां उपयुक्त हैं; क्योंकि राजवार्तिककारके सामने उनसे प्राचीन भाष्य 'सर्वार्थसिद्धि' था, जिसके कि आधारपर राजवार्तिक और उसका भाष्य है। सर्वार्थसिद्धि

† 'वृत्ति' विवरणको भी कहते हैं, इसलिये राजवार्तिक मे 'आकाशग्रहणमादौ' इत्यादि वार्तिकके विवरण-प्रकरणमें 'धर्मादीनां पंचानामपि द्रव्याणां' ऐसा उल्लेख है और इसलिये कहा जा सकता है कि 'वृत्ति' शब्दसे उनने अपने राजवार्तिकका ग्रहण किया हो।—पंचमाध्याय प्रथमसूत्र वार्तिक नं० ३४।

भाष्य क्यों है ? इसका उत्तर—स्वमत-स्थापन और परमतनिराकरणरूप भाष्यका अर्थ होता है तथा वृत्ति और भाष्य एक अर्थवाचक भी होते हैं, दूसरे सर्वार्थसिद्धिकी लेखनशैली पातंजल भाष्य-सरीखी भी है। इन सभी कारणोंसे सर्वार्थसिद्धि भाष्य ही है। इसलिये पं० जुगलकिशोरकी मान्यता, अन्य भाष्योंकी इस वक्त अनुपलब्धिमें, शायद थोड़ी देरके लिये नही भी मानी जाय, परंतु सर्वार्थसिद्धिकी तो वर्तमानमें उपलब्धि है और उसमें 'षड्द्रव्याणि' के उल्लेख २–३ जगह दीख ही रहे हैं। इसी तरह राजवार्तिकमें भी कई जगह उल्लेख हैं। अतः इस विषयमें पंडितजीकी प्राचीन भाष्यसंबंधी तथा राजवार्तिक-संबंधी जो मान्यता है वह बिलकुल सत्य और अनुभवगम्य है।

इस प्रकरणमें पं० जुगलकिशोरजीने प्रोफेसर साहब जीके लिये जो यह लिखा है कि भाष्यमें 'बहुकृत्वः' शब्द है उसका अर्थ 'बहुत बार' होता है उस शब्दार्थको लेकर 'षड्द्रव्याणि, ऐसा पाठ भाष्य में बहुत बारको छोड़कर एक बार तो बतलाना चाहिये, इस उपर्युक्त पंडितजीके कथनके प्रतिवादके लिये प्रोफेसर साहबने कोशिश तो बहुत.की है परंतु 'षड्-द्रव्याणि' इस प्रकारके शब्दोंके पाठको वे नहीं बता सके हैं। यह उनके इस विषयके अधीर प्रवृत्तिके लम्बे-चौड़े लेखसे स्पष्ट है। यद्यपि इस विषयमें उनने 'सर्वं षट्त्वं षड्द्रव्यावरोधात्' इस पं०जुगलकिशोरजी प्रदर्शित भाष्य वाक्यसे तथा प्रशमरतिकी गाथाकी 'जीवाजीवौ द्रव्यमिति षड्विधं भवतीति' छायासे बहुत कोशिश की है परंतु केवल उससे 'षट्त्वं' 'षड्विधं', ये वाक्य ही सिद्ध हो सके हैं किन्तु 'षड्द्रव्याणि' यह वाक्य उमास्वातिने तथा भाष्यकारने कहीं भी स्पष्ट रूपसे उल्लिखित नहीं किया है। उत्तर वह देना चाहिये जो प्रश्नकर्ता पूछता हो, परन्तु आपके इतने लम्बे-चौड़े व्याख्यानमें वैसा उत्तर नही है। अतः स्पष्ट है कि राजवार्तिकमें 'यद्भाष्ये बहुकृत्वः षड्द्रव्याणि इत्युक्तं' इन शब्दोंसे जिस भाष्यका उल्लेख है वह सर्वार्थसिद्धि या उससे भी पुराने किसी भाष्यका और राजवार्तिक-भाष्यका उल्लेख है—श्वेताम्बर भाष्यका उल्लेख किसी भी दशामें न है और न हो सकता है। क्योंकि उप-लब्ध दिगम्बर भाष्योंमें वैसे उल्लेख स्पष्ट हैं, तो फिर दूसरे भाष्यकी कल्पना केवल कल्पना ही है अर्थात् बिलकुल ही निर्मूलक है।

इसी प्रकरणमें प्रोफेसर साहबने जो लिखा है कि 'पंचत्व' शब्दका अकलंकने जो ऊपर पंचास्तिकाय अर्थ किया है वही ठीक बैठता है। मेरी समझमें यह आपका लिखना बिल्कुल ही असंगत है। क्योंकि अकलंकदेवने अपनी राजवार्तिकमें कहीं भी 'पंचत्व' का अर्थ पंचास्तिकाय नहीं किया है। दूसरे तो क्या 'अवस्थितानि' पदका अर्थ भी उनने 'पंचत्व' नही किया है किंतु 'षड्इयत्ता' किया है। आप शायद पंचमाध्यायके पहले सूत्रकी १३वी और १५वीं वार्तिक के भाष्यका उल्लेखकर यह कहें कि वहाँपर 'पंचत्व' का अर्थ 'पंचास्तिकाय' ही किया है सो यह आपकी संस्कृत भाषाकी अजानकारीका ही परिणाम है; क्यों-कि वहाँ प्रथम तो 'पंचत्व' शब्द ही नहीं है, दूसरे है भी तो 'पंच' शब्द है और वह पंच शब्द आस्ति-कायके पूर्व जुड़ा होनेसे अस्तिकायके विशेषणरूप से विवक्षित है। जो विशेषण होता है वह विशेष्य का अर्थ नहीं होता किंतु विशेष्यकी विशेषता बतलाता है। राजवार्तिककारने कहीं भी 'पंचत्व' का अर्थ 'पंचास्तिकाय' नहीं किया है। अतः उपयुक्त रूपसे

जो आपने यह लिखा है कि राजवार्तिककारने 'पंचत्व' का अर्थ पंचास्तिकाय किया है यह बिलकुल ही अनुचित है। राजवार्तिककार 'पंचत्व' का वह अर्थ कर भी कैसे सकते थे; क्योंकि 'पंचत्व' का न तो शब्दमर्यादासे वह अर्थ होता है और न प्रकरणवश ही—ऐंचातानीसे ही होता, क्योंकि सूत्रमें 'काय' शब्द का विधान है, जो कि अस्तिकायका सूचक है। सूत्रस्थ 'काय' शब्दके होते हुए भी 'पंचत्व' का अर्थ 'अस्तिकाय' होता है यह एक विचित्र नयी सूझ है! आपके द्वारा ऐसी विचित्र नयी सूझके होनेपर भी भाष्यगत यह अभिप्रेत तो नहीं सिद्ध हुआ जो कि प्रश्नकर्ताको अभीष्ट है। यह बात यहाँ ऐसी होगई कि पूछा खेत को उत्तर मिला खलियान का।

इसी प्रकरणमे प्रोफेसर साहबने जो यह लिखा है कि—"यदि यहाँ भाष्यपद का वाच्य राजवार्तिक-भाष्य होता तो 'भाष्ये' न लिखकर अकलंकदेवको 'पूर्वत्र' आदि कोई शब्द लिखना चाहिये था"; मेरी समझसे यह लिखना भी आपका अनुचित प्रतीत होता है, कारण कि सर्वत्र लेखक की एकसी ही शैली होनी चाहिये ऐसी प्रतिज्ञा करके लेखक नहीं लिखते किंतु उनको जिस लेखनशैलीमे स्वपरको सुभीता होता है वही शैली अंगीकार कर अपनी कृतिमे लाते हैं, 'पूर्वत्र' शब्द देनेसे संदेह हो सकता था कि—वार्तिक में या भाष्यमें? वैसी शंका किसीको भी न हो इस लिये स्पष्ट उनने 'भाष्ये' यह पद लिखा है। क्योंकि राजवार्तिकके पंचम अध्यायके पहले सूत्रकी 'आर्ष-विरोध' इत्यादि ३५वीं वार्तिकके भाष्यमें 'षण्णामपि द्रव्याणां', 'आकाशदीनां षण्णां' ये शब्द आये हैं, तथा अन्यत्र भी इसी प्रकार राजवार्तिक भाष्यमें शब्द हैं। राजवार्तिक भाष्यमें यह षट् द्रव्यका विषय स्पष्टरूप होनेसे पं० जुगलकिशोरजीने यह लिख दिया है कि "और वह उन्हींका अपना राजवार्तिक भाष्य भी हो सकता है" यह लिखना अनुचित नहीं है।

प्रो० साहबके इस लेखमे नम्बर ४ तकके लेखका विषय पं० जुगलकिशोरजीका तो यह रहा है कि श्वे० भाष्य राजवार्तिककारके सन्मुख (समक्ष) नहीं था, और प्रोफेसर साहब जगदीशचंद्रजीका विषय यह रहा है कि श्वे० भाष्य राजवार्तिककारके समक्ष था। इन दोनोंके उपर्युक्त कथनकी विवेचनासे यह स्पष्ट होगया है कि श्वे० भाष्य राजवार्तिककारके समक्ष नहीं था।

जबकि राजवार्तिककारके समक्ष श्वेताम्बर भाष्य था ही नहीं तो फिर शब्दादि-साम्यविषयक नं० ५ का प्रोफेसर साहबका कथन कुछ भी कीमत नहीं रखता। शब्दसाम्य, सूत्रसाम्य, विषयसाम्य तो बहुत शास्त्रोंके बहुतसे शास्त्रोंसे मिल सकते हैं तथा मिलते हैं, अतः नं० ५ का जो प्रोफेसर साहबका वक्तव्य है वह बिलकुल ही नाजायज है। हाँ, इन चारों नंबरों के अलावा यदि कोई खास ऐसा प्रमाण हो कि जिससे अकलंकदेव भाष्यकारके पीछे सिद्ध होजाँय तो यह नं० पांचका उल्लेख जायज हो सकता है। अकलंक देवने अपने ग्रन्थमे कहीं भी श्वे० भाष्यको उमास्वाति का बनाया हुआ नहीं लिखा है तथा न आज तक ऐसी कोई युक्ति ही देखनेमे आई कि जिसके बलसे यह सिद्ध होजाय कि राजवार्तिककारके समक्ष यह भाष्य था। जब ऐसी दशा स्पष्ट है तो फिर कहना ही होगा कि हमारे इन नवयुवक पंडितोंका इस विषयका कथन कथनाभास होनेसे केवल भ्रान्तिजनक है तथा भ्रमात्मक ही है। अलमिति।

श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवन, बम्बई

# अतिशय क्षेत्र इलोराकी गुफाएँ

[ ले०—श्री० बाबू कामताप्रसाद जैन ]

निजाम हैदराबादकी रियासतमें भारतके प्राचीन गौरवको प्रकट करनेवाली अनेक कीर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। वे कीर्तियां जैनों, बौद्धों और वैष्णवोंकी सम्पत्ति ही नहीं, बल्कि साम्प्रदायिकताको भुलानेवाला त्रिवेणी-संगमरूप ही हैं। गतवर्ष श्री गोम्मटेश्वरके महामस्तकाभिषेकोत्सवसे लौटते हुये हमको यहाँके पुण्यमई स्थान इलोराके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

ईस्वी ९ वीं—१० वीं शताब्दिमें इलोरा संभवत: ऐलापुर अथवा इलापुर कहलाता था और तब वह राष्ट्रकूटसाम्राज्यका प्रमुख नगर था। एक समय वह राष्ट्रकूट राजधानी भी रहा अनुमान किया जाता है। तब उसका वैभव अपार था अब तो उसकी प्रतिछाया ही शेष है। परन्तु यह छाया भी इतनी विशाल, इतनी मनोहर और इतनी सुन्दर है कि उसको देखते ही दर्शकके मुखसे बेसाख्ता निकल जाता है : 'ओह! कैसा सुन्दर है यह!' सच देखिये तो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का सिद्धान्त इलोराकी निःशेष विभूति—उन कलापूर्णगुफाओंमे जीवित चमत्कार दर्शा रहा है। अब सोचिये यौवन-रससे चुहचुहाते इलापुरका सौभाग्य—सौंदर्य्य! आज कालकरालने उसे निष्प्रभ बनानेमें कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु फिर भी उसे वह निष्प्रभ नहीं बना सका! उसका नाम और काम भुवनविख्यात् है!

'हरिवंशपुराण' में श्री जिनसेनाचार्यजीने एक इलावर्द्धन नगरका उल्लेख किया है। श्री जिनसेनाचार्यजीके समय इलोरा अपनी जवानीपर था, क्योंकि उनका समय राष्ट्रकूट साम्राज्यकालके अंतर्गत पड़ता है। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने जिस इलावर्द्धन नगरका उल्लेख किया है वह इलोरा होगा। उन्होंने लिखा है कि 'कौशलदेशकी रानी 'इला' अपने पुत्र 'ऐलेय' को साथ लेकर दुर्गदेशमें पहुँची और वहाँपर इलावर्द्धन नगर बसाकर अपने पुत्रको उसका राजा बनाया। (सर्ग १७ श्लो० १७—१९) हो सकता है कि इस प्राचीन नगरको ही राष्ट्रकूट राजाओंने समृद्धिशाली बनाया हो! और इसके पार्श्ववर्ती पर्वतमे दर्शनीय मन्दिर निर्माण कराये हों!

गत फाल्गुणी अमावस्याको हम लोग मनमाड जंकशन (G. I. P. R.) से लारियोमें बैठकर इलोराके दर्शन करनेके लिये गये। जमीन पथरीली है—चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ नजर आते हैं। जब हम इलोराके पास पहुँचे तो बड़ा-सा पहाड़ हमारे सम्मुख आ खड़ा हुआ। पहले ही एलोर गाँव पड़ा। यह एक छोटासा आधुनिक गाँव है। उस रोज़ यहां पर वार्षिक मेला था। चारों ओरसे ग्रामीण जनता वहाँ इकट्ठी हुई थी। गाँवके पास बहती हुई पहाड़ी नदीमे उसने स्नान किया था और पवित्रगात होकरके कैलाशमंदिरमें शिवजीपर जल चढ़ाया था। हजारों स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकायें इस लोकमूढ़तामे आनन्दविभोर हो रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि शिवजीकी यह मूर्ति सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप (परमात्म-

स्वरूप) का समलंकृत प्रतीक है । शिव अमरत्वका ही संकेत है। जो अमर होना चाहे वह संसार-विष (रागद्वेषादि) को पीकर हज्म कर डाले—उसको नाम निःशेष करदे—वही शिव है ! परन्तु उन भोले ग्रामीणोंको इस रहस्यका क्या पता ? वह तो कुल-परंपरासे उस मूढ़तामे बहे आरहे थे। 'धर्मप्रभावना ऐसे मेलोंमें सद्ज्ञानका प्रचार करनेमें ही हो सकती है।'—यह सत्य वह मर्मज्ञजनोंको बता रही थी। हमारी लॉरी उस भीड़को चीरती हुई चली। ग्रामीणों की आकांक्षाओं और अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये तरह-तरहकी साधारण दुकानें भी लगी हुई थी। ज्यों-त्यो करके हमारी लॉरी मेलेको पार कर गई। दोनो ओर हरियाली और पथरीले भरके नजर पड़ रहे थे। वह पहाड़ी नदी भी इन्हीमें घूम-फिर कर आँखमिचौनी खेल रही थी। हमने उसे पार किया और पहाड़ीपर चढ़ने लगे । थोड़ा चलकर लॉरी रुकी—हम लोग नीचे उतरे । देखा सामने उत्तुंग पर्वत फैला हुआ है। उसको देखकर हृदयको ठेस-सी लगती है। सुदृढ़-अटल और गंभीर योद्धासा वह दीखता है। कलामय सरसता उसमे कहाँ ? यह भ्रम होता है। दिन काफी चढ़ गया था—बच्चे भी साथ में थे। गरमी अपना मजा दिखला रही थी । चाहा कि भोजन नहीं तो जलपान ही कर लिया जाय। परंतु 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की चाह-दाहने शारीरिकदाहको भुला दिया। सब लोग इलोरा देखनेके लिये बढ़े। कैलाशमंदिरके द्वारपर ही पर्वतस्रोतसे झरा हुआ जल छोटेसे कुण्डमे जमा था—उसने शीतलता दी। क्षेत्रका प्रभाव ही मानो मूर्तिमान होकर आगे आ खड़ा हुआ। भीतर घुसे और देखा दिव्यलोकमें आगये । पर्वत काटकर पोला कर दिया गया है । अंधेरी गुफायें वहाँ नहीं हैं । पर्वतके छोटेसे दरवाजेके भीतर आलीशान महल और मंदिर बने हुये हैं। उनमें शिल्प और चित्रण-कलाके असाधारण नमूने देखते ही बनते हैं। आश्चर्य है कि एक खंभेपर हजारों-लाखो मनोंवाला वह पाषाणमयी पर्वत खड़ा हुआ है । उसकी प्रशंसा शब्दोंमे करना अन्याय है—इतना ही बस है कि मनुष्यके लिए संभव हो तो उसको अवश्य देखना चाहिए। कलाका वह आगार है। इस कैलाशभवन 'शिवमंदिर' को राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज प्रथमने बनवाया था।

इस मंदिरको देखनेके साथ ही हमको इलोराकी जैन गुफाओंको देखनेकी उत्कण्ठा हुई। सब लोग लॉरीमें बैठकर वहाँसे दो मीलके लगभग शायद उत्तरकी ओर चले और वहाँसे हनुमानगुफा आदिको देखते हुये जैनगुफाओके पास पहुँचे। नं० ३० से नं० ३४ तककी गुफायें जैनियोंकी हैं। हमने नं० २६ B के गुफामंदिरको भी देखा। उसमे भीतर ऐसा कोई चिन्ह नहीं मिला जिससे उसे किसी सम्प्रदाय विशेष-का अनुमान करते; परंतु उसके बाहरी बरांडामे जैन-मूर्तियाँ ही अवशेषरूपमें रक्खी दीखती हैं। इससे हमारा तो यह अनुमान है कि यह गुफा भी जैनियोंकी है। ये गुफायें भी बहुत बड़ी हैं और इनमें मनोज्ञ दिग० जैन प्रतिमायें बनी हुई हैं। इनके तोरणद्वार—स्थंभ—महराब—छते बड़ी ही सुंदर कारीगरी की बनी हुई हैं। हजारो आदमियोके बैठनेका स्थान है। राष्ट्रकूट-राज्यकालमें जैनधर्मका प्राबल्य था। अमोघ-वर्ष आदि कई राष्ट्रकूटनरेश जैनधर्मानुयायी थे। उनके सामन्त आदि भी जैन थे। वे जैन गुरुओकी वंदना-भक्ति करते थे। इन गुफा-मंदिरोंको देखकर

वह भव्य-समय याद आ गया—दृष्टिके सामने जैनाचार्योंकी धर्मदेशनाका सुअवसर और सुदृश्य नृत्य करने लगा—इन्हीं गुफाओंमें आचार्य महाराज बैठते थे और राजा तथा रंक सभीको धर्मरसपान कराते थे ! धन्य था वह समय !

जैनगुफाओंमे इन्द्रसभा नामकी गुफा विशेष उल्लेखनीय है। इसका निर्माण कैलाशभवनके रूपमें किया गया है। इसके इर्द-गिर्द छोटी २ गुफायें हैं। बीचमे दो खनकी बड़ी गुफा बनी हुई है। यह बड़ी गुफा बड़ा भारी मंदिर है, जो पर्वतको काटकर बनाया गया है। इसकी कारीगरी देखते ही बनती है। इसमे घुसते ही एक छोटीसी गुफाकी छतमें रंगबिरंगी चित्रकलाकी छायामात्र अवशेष थी—वह बड़ी मनोहर और सूक्ष्म रेखाओंको लिये हुये थी। किंतु दुर्भाग्यवश वहाँपर बरोंने छत्ता बना लिया और शायद उसीको उडानेके लिये आग जलाकर यह रंगीन चित्रकारी काली कर दीगई थी। यह दृश्य पीड़ोत्पादक था—जैनत्वके पतनका प्रत्यक्ष उदाहरण था। कहाँ आजके जैनी जो अपने पूर्वजोके कीर्त्तिचिन्होंको भी नहीं जानते। और कितना बढ़ा चढ़ा उनके पूर्वजोंका गौरव ! भावुकहृदय मन मसोसकर ही रह जायगा। कहते हैं कि निजामसरकारका पुरातत्वविभाग इसपर सफेद रंग करा रहा है। इसका अर्थ है, इलोरामें जैनचित्रकारीका सर्वथा लोप ! क्या यह रोका नहीं जा सकता ? और क्या पुरातन चित्रकारीका हो उद्धार नहीं हो सकता ? हो सकता सब कुछ है, परंतु उद्योग किया जाय तब ही कुछ हो।

इन्द्रसभा वाली इस गुफाका नं० ३२ है। यह दो भागोंमे विभक्त है। एक इन्द्रगुफा कहलाती है और दूसरी जगन्नाथ गुफा। इन्द्रगुफाका विशाल मण्डप चार बड़े २ स्तंभोंपर टिका हुआ है। इस सभाकी उत्तरीय दीवारमे छोरपर भ० पार्श्वनाथकी विशाल-मूर्त्ति विराजमान है—वह दिगम्बर मुद्रामें है और सात फणोका मुकट उनके शीशपर शोभता है। नाग-फण मंडल-मंडित संभवतः पद्मावती देवी भगवानके ऊपर छत्र लगाये हुए दीखती है। अन्य पूजकादि भी बने हुए हैं। इसी गुफामें दक्षिणपार्श्वपर श्री गोम्मटेश्वर बाहुबलिकी प्रतिमा ध्यानमग्न बनी हुई है। लतायें उनके शरीरपर चढ़ रही हैं, मानो उनके ध्यानके गांभीर्यको ही प्रकट कर रही हैं। यह भी दिगम्बर मुद्रामें खड्गासन है। भक्तजन इनकी पूजा कर रहे हैं।

यहीं अन्यत्र कमरेके भीतर वेदीपर चारो दिशाओंमें भ० महावीरकी प्रतिमा उकेरी हुई है। दूसरे कमरेमे भ० महावीर स्वामी सिंहासन पर विराजमान मिलते हैं। उनके सामने धर्मचक्र बना हुआ है। मानों इस मन्दिरका निर्माता दर्शकोंको यह उपदेश दे रहा है कि जिनेन्द्र महावीरका शासन ही त्राणदाता है, अतएव उनका प्रवर्ताया हुआ धर्मचक्र चलाते ही रहो। परंतु कितने हैं, जो इस भावनाको मूर्त्तिमान् बनाते हैं ! इसीमें पिछली दीवारके सहारे एक मूर्त्ति बनी हुई है जो 'इन्द्र' की कहलाती है। मूर्त्तिमें एक वृक्षपर तोते बैठे हुए हैं और उसके नीचे हाथीपर बैठे हुए इंद्र बने हैं। उनके आसपास दो अंगरक्षक हैं। इस मूर्त्तिसे पश्चिमकी ओर इंद्राणीकी मूर्त्ति बनी हुई है। इन्द्राणी सिंहासनपर बैठी हैं और सुन्दर आभूषणादि पहने अङ्कित है। इसी स्थानसे आसपासके छोटे २ कमरोंमें जाना होता है, जिनमें भी तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

इस गुफामें अहातेके भीतर एक बड़ासा हाथी बना हुआ है और वहीं पर एक मानस्तंभ खड़ा है

जो २७ फीट ऊँचा होगा। कहते हैं, पहले इसके शिखरपर एक चतुर्मुख प्रतिमा विराजमान थी; किंतु वह उस दिनसे एक रोज़ पहले धराशायी होगई जिस दिन लॉर्ड नॉर्थब्रुक सा० इन गुफाओंको देखने आये थे।

इस गुफामें मूर्तियोंके दिव्य दर्शन करके कुछ जैन लोगोंने अक्षतादि चढ़ाये थे; यह देख कर पुरातत्व विभागके कर्मचारीने उनको रोक दिया। इस घटनासे हमारे हृदयको आघात पहुँचा—परितापका स्थल है कि हमारे ही पूर्वजोकी और हमारे ही धर्मकी कीर्त्तियोकी विनय और भक्ति भी हम नहीं कर सकते! जो स्वयं अपना व्यक्तित्व सुरक्षित नहीं रखता, उसके लिये परिताप करना भी व्यर्थ है! जैनी पुरातन वस्तुओंकी सार-सँभाल करना नहीं जानते! इसलिये यही दूसरे लोग उनकी वस्तुओंकी सार-सँभाल करते हैं और छूने नहीं देते तो बेजा भी क्या है?

इन गुफाओंमें दूसरी बड़ी गुफा जगन्नाथगुफा है। यह इन्द्रसभा गुफाके पास ही है; परंतु उतनी अच्छी दशामें नहीं है। इसकी रचना प्रायः नष्ट हो गई है। इसमें भी भ० पार्श्वनाथ, भ० महावीर और गोम्मट स्वामीकी प्रतिमायें हैं। सोलहवें तीर्थंकर भ० शान्तिनाथकी एक मूर्तिपर इन गुफाओंमें ८ वीं–९ वीं शताब्दिके अक्षरोंमें एक लेख लिखा हुआ है, जिसे बर्जेस सा० ने निम्न प्रकार पढ़ा था :—

**"श्री सोहिल ब्रह्मचारिणा शांति-भट्टारक प्रतिमेयार"**

अर्थात्—"श्री सोहिल ब्रह्मचारी द्वारा यह शांतिनाथकी प्रतिमा निर्मापी गई।'

एक अन्य मूर्ति 'श्रीनागवर्मकृत प्रतिमा' लिखी गई है। जगन्नाथ गुफामें पुरानी कनड़ी भाषाके भी कई लेख हैं, जो ईसाकी ८ वीं–९ वीं शताब्दिके हैं। इन लेखोंको पढ़कर यहाँका विशेष इतिहास प्रकट किया जाना चाहिये।

अवशेष गुफायें ज्यादा बड़ी नहीं हैं, परन्तु उन में भी तीर्थंकर प्रतिमायें दर्शनीय हैं। इनका विशेष वर्णन 'ए गाइड टु इलोरा' नामक पुस्तकमे देखना चाहिये। इस लेखमें तो उनकी एक झाँकी मात्र लिखी है। इलोराकी सब गुफायें लगभग १०–१२ मीलमें फैली हुई हैं और इनकी कारीगरी देखनेकी चीज़ है। उनको देखनेमे हमारे संघके लोग भूख-प्यास भी भूल गये। दोपहरका सूर्य गरमी लिये चमक रहा था, लेकिन फिर भी लोग गुफाओंके ऊपर पर्वतपर चढ़कर जिनमंदिरके दर्शन करनेके लिये उतावले हो गए। बर्सातके पानीका बना हुआ ऊबड़-खूबड़ रास्ता था—वह वैसे ही दुर्गम था—उसपर कड़ी धूप! परंतु जिनवन्दनाकी धुनमें पगे हुये बच्चे भी उसे चावसे पार कर रहे थे। करीब १॥–२ फर्लांग ऊपर चढ़नेपर वह चैत्यालय मिला। उसमे जिनेन्द्र पार्श्वनाथके दर्शन करके चित्त प्रसन्न हो गया—अपने श्रमको सब भूल गये और भाग्यको सराहने लगे। इस चैत्यालयको बने, कहते हैं, ज्यादा समय नहीं हुआ है। औरंगाबादके किन्हीं सेठजीने इसे गत शताब्दिमें बनवाया है। मालूम होता है, वह यहाँ दर्शन करते हुये आये होंगे और जिनेन्द्रपार्श्वके गुफामंदिरको अथवा कहिये शैल-मंदिरको भग्नावशेष देखकर यह चैत्यालय बनवाया होगा। परंतु आज फिर उसकी सार-सँभाल करनेवाला कोई नहीं है। निज़ामका पुरातत्वविभाग भी उसकी ओरसे विमुख है। शायद इसी लिये कि वह जैनियोंकी अपनी चीज है। उसमें भ० पार्श्वकी पद्मासन विशालकाय प्रतिमा अखंडित और पूज्य है। यहाँ ही सब यात्रियोंने

जिनेन्द्रका साभिषेक पूजन किया। क्या ही अच्छा हो, यदि यहाँपर नियमित रूपमें पूजा-प्रक्षाल हुआ करे। औरंगाबादके जैनियोंको यदि उत्साहित किया जाय तो यह आवश्यक कार्य सुगम है। ऐसा प्रबंध होनेपर यह अतिशयक्षेत्र प्रसिद्ध हो जावेगा और तब बहुतसे जैनीयात्री यहाँ निरन्तर आते रहेंगे। क्या तीर्थक्षेत्र कमेटी इसपर ध्यान देगी ?

हाँ, तो यह पूज्य प्रतिमा भ० पार्श्वनाथकी पद्मासन और पाषाणकी है। यह ९ फीट चौड़ी और १६ फीट ऊँची है। इसके सिंहासनमें धर्मचक्र बना है और एक लेख भी है, जिसको डा० बुल्हरने पढ़ा था। उसका भावार्थ निम्नप्रकार है:—

'स्वस्ति शाक सं० ११५६ फाल्गुण सु० ३ बुधवासरे श्री वर्द्धमानपुरमे रेणुगीका जन्म हुआ था··· उनका पुत्र गेलुगी हुआ, जिनकी पत्नी लोकप्रिय स्वर्णा थी। इन दम्पत्तिके चक्रेश्वर आदि चार पुत्र हुये। चक्रेश्वर सद्गुणोंका आगार और दातार था। उसने चारणोंसे निवसित इस पर्वतपर पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा स्थापित कराई और अपने इस दानधर्मके प्रभावसे अपने कर्मोंको धोया। परमपूज्य जिन भगवानकी अनेक विशाल प्रतिमायें निर्मापी गई हैं, जिनसे यह चरणाद्रि पर्वत वैसे ही पवित्र तीर्थ होगया है, जैसे कि भरत म० ने कैलाश पर्वतको तीर्थ बना दिया था। अनुपम-सम्यक्त्व-मूर्तिवत्, दयालु, स्वदारसंतोषी, कल्पवृक्षतुल्य चक्रेश्वर पवित्र धर्मके संरक्षक मानो पंचम वासुदेव ही हुये!'

इस लेखसे स्पष्ट है कि यह स्थान पूर्वकालसे ही अतिशय तीर्थ माना गया है। अतः इसका उद्धार होना अत्यन्तावश्यक है। वहाँ से लौटते हुए हृदयमे इसके उद्धारकी भावनाएँ ही हिलोरें ले रही थी। शायद निकटभविष्यमें कोई दानवीर चक्रेश्वर उनको फलवती बनादें। इस लेखसे तत्कालीन श्रावकाचार का भी आभास मिलता है। दान देना और पूजा करना ही श्रावकोंका मुख्य कर्तव्य दीखता है—शील-धर्मपरायण रहना पुरुषोंके लिए भी आवश्यक था।

इलापुर अथवा इलोराका यह संक्षिप्त वृतान्त है—'अनेकान्त' के पाठकोंको इसके पाठसे वहाँ के परोक्ष दर्शन होंगे। शायद उन्हे वह प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिए भी लालायित करदें।

अलीगंज ॥ इति शम् ॥
ता० ७।१।४१

---

"क्यों अखिल ब्रह्माण्ड छानते फिरते हो, अपने आपमें क्यों नहीं देखते, तुम जो चाहते हो सो और कहीं नहीं, अपने आपमे है।"

"दूसरोंके लिये दुःख स्वीकार करना क्या सुख नहीं है ?"

"जिसकी महानताकी जड भलाई में नहीं है, उसका अवश्य ही पतन होगा।"

"जो सुख इन्द्रियोंसे मिलता है वह अपने और परको बाधा पहुँचाने वाला, हमेशा न ठहरने वाला, बीच बीचमें नष्ट होजाने वाला, कर्मबन्धनका कारण तथा विषम होता है, इसलिये वह दुःख ही है।"

"जब हम मरें तो दुनियाँको अपने जन्मके समय से अधिक शुद्ध करके छोड़ जायँ, यह हमारे जीवनका उद्देश्य होना चाहिये।"

"कमसे कम ऐसा काम तो करो कि जिससे तुम्हारा भी नुकसान न हो और दूसरोंका भी भला हो जाय।"

—विचारपुष्पोद्यान

# उठती है उरमें एक लहर !

[ १ ]

इस नियति-नियमकी वेलामें—
युग-परिवर्तन हो जावेगा,
प्राणी ! भवके निगमागममें—
यों कब तक आए-जाएगा ?
जगके भीषण कोलाहलमें—
श्वासोंके स्वर जाएँ न विखर !
उठती है उरमें एक लहर !!

[ २ ]

जीवनके मौन-रहस्योंकी—
गाथा उलझी रह जाएगी।
यह त्याग-तपस्याकी मेरी-
दुनिया सूनी हो जाएगी !
मानवताकी अभिलाषाएँ—
पाएँगी पीड़ा आठ पहर !
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ३ ]

ममताकी यह काली-बदली—
आहोंसे भरकर दीवानी;
अम्बरको ढक उच्छ्वासोंसे—
वरसाएगी खारा पानी।
भारी मनको हलका करने—
करुणा रोएगी सिहर-सिहर !
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ४ ]

यौवनकी पीड़ा तपसीकी—
क्रीडाओंमें घुल जानेको;
उमड़ी लेकर तपका निखार—
निश्चल-निधिमें धुल जानेको।
उत्तुंग तरंगोंसे बहती-
मनमें गंगा करलूँ हर-हर !
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ५ ]

मेरे बीहड़ वन-उपवनमें—
वल्लरियाँ क्या खिल पाएँगी ?
हुलसित मनकी चंचलहिलोर—
थिर होंगी क्या, मिट जाएँगी !
आत्माका सच्चित्-शिवस्वरूप—
अन्तस्तलमें देखूँ झुककर।
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ६ ]

वाणी वीणामें वीतरागका—
मञ्जुल स्वर भर जाएगा;
हृत्तंत्रीकी झंकारोंसे—
झंकृत जीवन हो जाएगा।
आँखोंसे झरकर चिरविषाद—
आँसू बन जाएँगे निर्झर !
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ७ ]

नैराश्य-निशा अँधियारीमें—
क्या कुमुद हास छिटकाएगा ?
आध्यात्मिक तत्वोंका प्रदीप—
अन्तर आलोक दिखाएगा ?
नन्दन-वनका मादक-पराग—
विखरेगा क्या इस भूतलपर ?
उठती है उरमें एक लहर !!

[ ८ ]

मायाके मोहक-पिंजरेसे—
मन-पंछी जब उड़ जाएगा;
जिनवरके वह वैरागभरे—
पद अम्बरमें चढ़ गाएगा।
जिस परिधि-परामें सिहरणकर—
प्राणी हो जाता मुक्त-अमर !
उठती है उरमें एक लहर !!

पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

# समाज-सुधारका मूल स्रोत

( ले०—पं० श्रेयांसकुमार जैन शास्त्री )

आज समाज-सुधारकी दुन्दुभि चारों ओर बज रही है। हर एक कोनेसे उसकी आवाज आ रही है। हर एकके दिमागमें रह रहकर यह समस्या उलझन पैदा कर रही है। पर असली समस्याका हल नहीं। हो भी क्योंकर ? जब निदान ही ठीक नहीं तो फिर चिकित्सा विचारीका अपराध ही क्या ? समाज किसी व्यक्तिविशेषका नाम नहीं, वह तो व्यक्तियोंका समुदाय है। समुदायका नाम ही समाज है। व्यक्तियोंसे रहित समाजका कहीं अस्तित्व ही नहीं। इसलिये व्यक्तिका सुधार समाजका सुधार है। जबतक व्यक्तिगत जीवन प्रगतिकी ओर प्रवाहित न हो तब तक समाजसुधार की आशा रखना कोरी विडम्बना है। अतः व्यक्तिगत जीवन किस प्रकार सुधार की ओर अग्रसर हो यह सोचने के लिये बाध्य होना ही पड़ेगा और इसके लिये व्यक्तिका मूलजीवन अर्थात् उसका शिशुजीवन देखना होगा।

आइये ! जरा शिशु-जीवनकी भी झांकी देखें। हमारे देशमें शिशु प्रायः माता-पिताके मनोरञ्जनका एक साधनमात्र है और उसका पालन-पोषण भी उसी दृष्टिकोणसे किया जाता है। जबकि आज पाश्चात्य देशोंमें—संयुक्त राज्य अमरीका, इंगलैण्ड, रूस, जापान, फ्रांस और जर्मनी आदिमें यह बात नहीं है। वहां शिशुओंके पालन-पोषण और शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उन देशोंमें शिशुओंके सामाजिक जीवनमें एक महत्वपूर्ण स्थान है, वे समाज के एक आवश्यक अङ्ग माने जाते हैं और उसी मान्यता के आधार पर उनके जीवन-विकासके लिये उन्हे मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञोंकी देखरेखमें रखकर उनके सर्वमुखी विकासकी व्यवस्था की जाती है। सचमुचमें मानव-जीवन और सामाजिक-जीवनमें शिशुका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। शिशु ही राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, यह एक प्रसिद्ध बात है। पर उनकी भारतवर्षमें कैसी शोचनीय स्थिति है, शिशु-जीवनकी किस तरह भयङ्कर उपेक्षा की जाती है, उनका जीवन किस तरह पैरों तले रौंदा जाता है, उनके अमूल्य जीवनको किस तरह मिट्टी में मिलाया जाता है यह किसीसे भी छिपा नहीं है। इसका एक प्रधान कारण यद्यपि देशकी दरिद्रता अवश्य है, पर साथ ही माता-पिताकी अज्ञानताका भी इसमें मुख्य हाथ है; क्योंकि हम कितने ही वैभव-सम्पन्न परिवारोंमें भी बालकोंके स्वास्थ्यका पतन तथा उनकी अकाल मृत्युकी घटनाएँ अधिक देखते रहते हैं। ऐसी हालतमें यह कहना होगा कि शिशु-पोषणका वैज्ञानिक ज्ञान माता-पिताओंके लिये परमावश्यक है। वस्तुतः शिशु ही मानव समाज का निर्माता है। उसके सुधार पर सबका अथवा सारे समाजका सुधार निर्भर है।

पर खेद है कि हमारे देशमें बाल-जीवनकी समस्या पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता ! बालको का पालन-पोषण भी समुचित और वैज्ञानिक ढंगसे नहीं किया जाता। ६-७ वर्षकी आयु तक तो बाल-शिक्षणकी कोई खास व्यवस्था भी नहीं की जाती। उन्हे ६ या ७ वर्षकी अवस्थामें बाल-पाठशालाओंमें प्राथमिक शिक्षा-प्राप्तिके लिये भेज दिया जाता है, जबकि इससे पूर्वके ५-६ वर्षोंमें बालक माता-पिता

के पास रहकर कोई जीवनोपयोगी शिक्षा प्राप्त नहीं करते। उनका समय प्राय: बुरी आदतें सीखने, अनुचित खेलो और माताके लाड़-प्यारमें ही बीतता है। शैशव जीवनके इस अमूल्य समयमे वे समुचित-शिक्षणसे वञ्चित रह जाते हैं।

शिशु अपना चरित्र-निर्माण गर्भावस्थामें ही प्रारम्भ कर देता है, यह कोरी कल्पना नहीं किंतु नग्न सत्य है। वीर अभिमन्यु तथा शिवाजीके जीवन-चरित्र हमे इसी ओर संकेत कर रहे हैं। इस समय वालकका मन एक प्रकारसे दर्पणके समान होता है, उस पर जैसी छाया या संस्कार पड़ता है, वैसा ही वह देख पड़ता है। गर्भ-कालमें ही वालकके जीवनपर माता-पिताके विचारों, व्यवहारो व भावोंकी छाप पड़ती है। पर इस देशमें तो शिशु माता-पिताके मनोरञ्जनका एक साधनमात्र हैं। अतएव उनकी भयङ्कर उपेक्षा तथा लाड़-प्यार दोनो ही बच्चोंकी मृत्यु या उनके नितान्त गन्दे जीवनके प्रमुख कारण होते हैं। ऐसे वालक समाजपर बोझ होनेके सिवा अपनी कोई उपयोगिता नहीं रखते। समाजका सुधार तथा राष्ट्रका उद्धार ऐसे वालकोंसे नितान्त असम्भव है। वह तो तभी सम्भव है जब उसके नागरिक विद्वान्, वीर, साहसी, निःस्वार्थसेवी, सदाचारी, ब्रह्मचारी, स्वस्थ, दयालु और मानव-मात्रसे वन्धु-भाव तथा स्नेहका व्यवहार करने वाले हों। और यह स्पष्ट ही है कि उत्तम नागरिक उत्तम माता-पिता ही पैदा कर सकते हैं, और ऐसे ही नागरिकोंका समुदाय एक समुन्नत और समुज्ज्वल समाज हो सकता है, औरोंका नहीं। बाल-जीवनके सुधारमे ही समाज-सुधार और राष्ट्रउद्धारके बीज संनिहित हैं। आशा है समाजके शुभचिन्तक इस दिशामें क़दम बढ़ाकर राष्ट्रहितका मार्ग साफ करेंगे।

---

# किसका, कैसा गर्व ?

( लेखक—पं० राजेन्द्रकुमार जैन 'कुमरेश' )

नव-सौन्दर्य सुमन सौरभ-सा—
जीवन मतवाला।
[illegible]-सा झूम रहा है,
यौवन की हाला !!
वैभवका यह नशा, रूप—
की, यह कैसी नादानी !
हाय ! भूल क्यों रहा, मौत—
की करुणाजनक कहानी !!
तनिक देख ! उस नील गगनमें—
तारो का मुस्कान !
दिनमें या घनघोर घटामें—
चुपके से छिप जाना !!
लता-गोदमें झूल, तनिक—
पाकर पराग इतराया।
कल जो खिला आज वह ही—
है रो रो कर मुरझाया !!

किसका, कैसा गर्व ? अरे !
जब जीवन ही सपना है !
सर्वनाश के इस निवास में—
कौन, कहाँ, अपना है !!
जुड़ा रहेगा सदा नहीं—
यह दीवानो का मेला !
एक एक का नाश करेगा
सहसा काल अकेला !!
देखेगा वह नहीं कौन है—
गोरा अथवा काला !
धू धू करके धधक उठेगी—
अरे ! चिता की ज्वाला !!
यह तेरा अभिमान करेगा—
उस की ही अगवानी !
समय रेत पर उतर गया है—
बड़ों बड़ो का पानी !!

# ऐतिहासिक जैनसम्राट् चन्द्रगुप्त

( लेखक—न्यायतीर्थ पं० ईश्वरलाल जैन स्नातक )

भगवान् महावीरके निर्वाण-पश्चात् भारतको अपनी उन्नत अवस्थासे पतित करने वाला एक क्षयरोग अपना विस्तार करने लगा—भारत देश अनेक छोटे बड़े राज्योंमें विभक्त होगया। छोटेसे छोटा राज्य भी अपनेको सर्वोच्च समझकर अभिमानमें लिप्त एवं सन्तुष्ट था। वे छोटे बड़े राज्य एक दूसरेको हड़पजाने की इच्छा से परस्पर ईर्ष्या और द्वेषकी अग्नि जलाते, फूटके बीज बोते, लड़ते झगड़ते और रह जाते। सैन्यबल और शक्ति तो परिमित थी ही, परन्तु उन्हे संगठित होनेकी आवश्यकता प्रतीत न हुई। यदि एक भी शक्ति शाली राष्ट्र उस समय उनपर आक्रमण करता तो सबको ही आसानीसे हड़प कर सकता था। कोशल आदि राज्योंने यद्यपि अपनी कुछ उन्नतिकी थी, परन्तु वे भी कोई विशाल राष्ट्र न बना सके।

इस अवसरसे लाभ उठानेके लिये सिकन्दरने ईस्वी सन् ३२७ पूर्व, भारत पर आक्रमण किया और वह छोटे बड़े अनेक राजाओंसे लड़ता झगड़ता पंजाब तक ही पहुंच पाया था कि छोटे-छोटे राजाओं ने भी उससे डटकर मुकाबला किया, इसी कारण मार्गके कई अनुभवोंने उसे हताश कर दिया। आगे न मालूम कितनोंसे युद्ध करना पड़ेगा, इस घबराहट के कारण वह पंजाबसे ही वापस चला गया। भारतीय राजाओंकी आंखें खोलने और उन्हे शिक्षा देनेके लिये इतनी ही ठोकर पर्याप्त थी, उन्हें अपनी छिन्न भिन्न अवस्था खटकने लगी और अन्तमें एक वीर मैदानमे आया और उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र निर्माण करनेमे सफलता प्राप्त हुई। वह ऐतिहासिक वीर था सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य।

इतिहासलेखकोंने चन्द्रगुप्तके विषयमे एक मत होकर यह लिखा है कि भारतीय इतिहासमें यही सर्व-प्रथम सम्राट है, जिसने व्यवस्थित और शक्तिशाली राष्ट्र कायम ही नहीं किया, बल्कि उसका धीरता, वीरता, न्याय और नीतिसे प्रजाको रंजित करते हुए व्यवस्थापूर्वक संचालन किया है। यह सर्वप्रथम ऐतिहासिक एवं अमर सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य जैनधर्मा-वलम्बी ही था, इस पर प्रकाश डालनेसे पूर्व उसकी संक्षिप्त जीवनीका दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा।

अनेक ऐतिहासिकोंका मन्तव्य है कि चन्द्रगुप्त, राजा नन्दके मयूर पालकोंके सरदारकी 'मुरा' नामक लड़की का पुत्र था, इस 'मुरा' शब्दसे 'मौर्य' प्रसिद्ध हुआ।

उसी समयकी बात है—अर्थात् ३४७ ई० सन् पूर्व राजा नन्दसे अपमानित होनेके कारण नीति निपुण 'चाणक्य' उसके समूल नाश करनेकी प्रतिज्ञा करके जब पाटलीपुत्रको छोड़कर जा रहा था तो मार्ग में मयूरपालकोंके सरदारकी गर्भवती लड़की 'मुरा' के चन्द्रपानके दोहलेको चाणक्यने इस शर्त पर पूर्ण किया, कि उससे होने वाला बालक मुझे दे दिया जाय। ३४७ ई० सन् पूर्व बालकका जन्म

हुआ ❀। गर्भके समय चन्द्रपानकी इच्छा हुई थी, इस लिये उसका नाम 'चन्द्रगुप्त' रखा गया। वह होनहार बालक दूजके चाँदकी तरह दिन-प्रति-दिन बढ़ता हुआ कुमार अवस्थाको प्राप्त हुआ।

'होनहार विरवानके होत चीकने पात' की कहावतके अनुसार कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त बचपन में ही राजाओं जैसे कार्य करता था। कभी साथियो से कोई खेल खेलता तो ऐसा ही, जिसमे स्वयं राजा बनकर साथियोको अपनी प्रजा बनाकर आज्ञा करता, न्याय करता और दण्ड देता। चन्द्रगुप्त लगभग आठ वर्षका हुआ तब चाणक्यकी दृष्टि उस बालक पर पड़ी और अपने पूर्व वचनके अनुसार चन्द्रगुप्तको असली राज्यका लोभ देकर साथ लिया और उसे राजाओंके योग्य उचित विद्याभ्यास कराया और नन्दके समूल नाशकी तैयारी प्रारम्भ कर दी।

प्रारम्भमे तो चन्द्रगुप्तने चाणक्यकी नीति और अपने बलसे कुछ भूमि अधिकारमें कर छोटासा राज्य बना लिया और फिर अपनी शक्तिको संगठित करना प्रारम्भ किया।

भारतसे वापस चले जाने पर विश्वविजयी सिकन्दरका बैबिलोनमे ई० सन् ३२३ पूर्व देहान्त होगया। पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा पंजाबमे यूनानी राज्य कायम रखनेके लिये जिनको सिकन्दर छोड़ गया था, उनपर चन्द्रगुप्तने अपनी प्रबल और संगठित शक्तिसे आक्रमण किया और सब प्रान्त अपने आधीन कर लिये, एवं अन्तमे चाणक्यकी नीतिसे राजा 'नन्द' पर विजय प्राप्त करनेमें चन्द्रगुप्तको सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार नन्दके मगधदेश पर अधिकार करके चन्द्रगुप्त मगधपति होगया। 'परिशिष्टपर्व' में लिखा है कि चंद्रगुप्तकी विजयके अनन्तर नन्दकी युवती कन्याकी दृष्टि चन्द्रगुप्त पर पड़ी और वह उस पर आसक्त होगई और नन्दने भी प्रसन्नतापूर्वक चन्द्रगुप्त के पास चले जानेकी अनुमति दे दी। प्राचीन भारतवर्ष (गुजराती) में डा० त्रिभुवनदास लहेरचंद शाहने भी इस घटना पर अपने विचार प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि जो इतिहासज्ञ चन्द्रगुप्तको नन्दका पुत्र लिखते हैं, उनकी यह बड़ी भूल है, चन्द्रगुप्त नन्दका पुत्र नहीं प्रत्युत दामाद था।

इस प्रकार सम्राट् चन्द्रगुप्तकी वीरतासे मौर्य सत्ताकी स्थापना हुई। लाला लाजपतरायजीके शब्दोमे—"भारतके राजनैतिक रंगमञ्चपर एक ऐसा प्रतिष्ठित नाम आता है जो संसारके सम्राटोंकी प्रथम श्रेणीमे लिखने योग्य है, जिसने अपनी वीरता, योग्यता और व्यवस्थासे समस्त उत्तरीय भारतको विजय करके एक विशाल केन्द्रीय राज्यके आधीन किया।" ❀

सेल्युकस द्वारा भेजे गये राजदूत मेगास्थनीजने चन्द्रगुप्तके राज्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है, उसके वर्णनसे यह बात स्पष्ट झलकती है कि वीर चूड़ामणि चन्द्रगुप्तने न्याय, शान्ति और व्यवस्था-पूर्वक शासन करते हुए प्रजाको सर्व प्रकारेण सुखी

❀ चन्द्रगुप्तके जन्म समयके सम्बन्धमें कुछ मतभेद प्रतीत होता है—प्राचीन भारतवर्ष (गुज०) के लेखक डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्द शाह, चन्द्रगुप्तका जन्म वीर निर्वाण सं० १५५ तथा ईस्वी सन् ३७२ वर्ष पूर्व लिखते हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'परिशिष्टपर्व' से भी इसीकी पुष्टि होती है।

❀ भारतवर्षका इतिहास—लाला लाजपतराय

एवं सन्तुष्ट किया। अपने साम्राज्यको अलग अलग प्रान्तोंमें विभाजित किया। वहांपर नगरशासक मण्डल—म्युनिसपलिटियाँ और जनपद—डिस्ट्रिक्टबोर्ड भी क़ायम किये। सेनाकी सर्वोत्तम व्यवस्था की, दूसरे देशोंसे सम्बन्धके लिये सड़कोंका निर्माण कराया, शिक्षाके लिये विश्वविद्यालय, उपचारके लिये चिकित्सालय आदिका प्रबन्ध किया। डाककी भी उचित व्यवस्था की। चन्द्रगुप्तके राज्यमें बाल, वृद्ध, व्याधिपीड़ित, आपत्तिग्रस्त व्यक्तियोंका पालन-पोषण राज्यकी ओरसे होता था। इस प्रकार प्रजाको संतुष्ट रखनेके लिये चन्द्रगुप्तने कोई कमी नहीं रक्खी थी। और इस प्रकार उसका राष्ट्र सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र था।

सम्राट् चन्द्रगुप्तके विषयमें इतिहासलेखक कुछ भ्रमपूर्ण विचार रखते हैं। कोई लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त शूद्राका लड़का था। रायसाहब पं० रघुवर प्रसादजीने अपने 'भारत इतिहास' में चन्द्रगुप्तको 'मुरा' नामक नाइनका लड़का लिख डाला है और डाक्टर हूपरने तो चन्द्रगुप्त और चाणक्यको ईरानी लिखनेकी भी भारी भूल की है, जिसे इतिहासज्ञ विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते। प्रो० वेदव्यासजी अपने 'प्राचीन भारत' में लिखते हैं कि विश्वसनीय साक्षियोंके आधार पर यह सिद्ध होगया है कि चन्द्रगुप्त एक क्षत्रिय कुलका कुमार था। बौद्धसाहित्यके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'महावंश' के अनुसार चन्द्रगुप्तका जन्म मोरियजातिमें हुआ था। श्रीसत्यकेतु विद्यालङ्कारने भी अपने 'मौर्य साम्राज्यका इतिहास' में इस सम्मति को महत्व दिया है। 'राजपुताना गजेटियर, में' मोरी वंश' को एक राजपूत वंश गिना है। अस्तु; जो हो, अधिकांश इतिहासलेखक इस निर्णय पर पहुँच गये हैं कि वह शूद्राका पुत्र नहीं था।

हाँ, धर्मकी आड़में चन्द्रगुप्तको शूद्राका पुत्र कहनेका साहस किया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है; क्योंकि चन्द्रगुप्त जैन था, ब्राह्मणोंको जैन धर्मसे द्वेष था, वह इसकी समुन्नति सहन नहीं कर सकते थे। चन्द्रगुप्तने कन्धार, अर्बिस्तान, ग्रीस, मिश्र आदिमें जैनधर्मका प्रचार किया, इस लिये ब्राह्मणोंका जैन प्रचारकको शूद्र कहना कोई अनहोनी बात न थी। तत्कालीन ब्राह्मणोंने कलिङ्ग देशके निवासियोंको 'वेदधर्म-विनाशक' तो कहा ही है, साथ ही उस प्रदेशको अनार्यभूमि भी कहकर हृदयको सन्तुष्ट किया है। उनकी कृपासे चन्द्रगुप्तको शूद्रका पुत्र कहा जाना आश्चर्योत्पादक नहीं।

'राजा नन्द' के विषयमें भी ऐसा ही विवाद उपस्थित होता है। कई इतिहासज्ञोंने उसे नीच जातिका लिख डाला है, परन्तु कुछ इतिहासज्ञ अब इस निर्णयपर पहुँच गये हैं कि वह जैन था। मुनि ज्ञानसुन्दरजी महाराजने 'जैनजातिमहोदय' में सिद्ध किया है कि नन्दवंशी सभी राजा जैन थे।

Smith's Early History of India Page 114 में और डाक्टर शेषागिरिराव ए० ए० आदिने मगधके नन्द राजाओंको जैन लिखा है, क्यो कि जैनधर्मी होनेके कारण वे आदीश्वर भगवानकी मूर्तिको कलिङ्गसे अपनी राजधानी मगधमें ले गये। देखिये South India Jainism Vol II Page 82। इससे प्रतीत होता है कि पूजन और दर्शनके लिये ही जैन मूर्ति ले जाकर मंदिर बनवाते होंगे। महाराजा खारवेलके शिलालेखसे स्पष्ट प्रकट होता है, कि नन्दवंशीय नृप जैन थे।

सम्राट् चन्द्रगुप्तके विषयमें भी इतिहासज्ञोंने कुछ

समय तक उसे जैन स्वीकृत नहीं किया। परन्तु खोज करनेपर ऐसे प्रबल ऐतिहासिक प्रमाण मिले जिससे उन्हें अब निर्विवाद चन्द्रगुप्तको जैन स्वीकृत करना पड़ा। परन्तु श्री सत्यकेतुजी विद्यालङ्कारने 'मौर्य-साम्राज्यका इकिहास'में चन्द्रगुप्तको यह सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है कि वह जैन नहीं था। परन्तु चन्द्रगुप्तकी जैन मुनियोंके प्रति श्रद्धा, जैन-मन्दिरोंकी सेवा एवं वैराग्यमें रञ्जित हो राज्यका त्यागदेना और अन्तमे अनशनव्रत ग्रहण कर समाधिमरण प्राप्त करना उसके जैन होनेके प्रबल प्रमाण है।

विक्रमीय दूसरी तीसरी शताब्दीके जैन ग्रन्थ और सातवी आठवीं शताब्दीके शिलालेख चन्द्रगुप्तको जैन प्रमाणित करते हैं।

रायबहादुर डॉ० नरसिंहाचार्यने अपनी 'श्रवण-बेलगोल' नामक इंग्लिश पुस्तकमें चन्द्रगुप्तके जैनी होनेके विशद प्रमाण दिये हैं। डाक्टर हर्तिलने Indian Antiquary XXI 59-60 मे तथा डाक्टर टामस साहबने अपनी पुस्तक Jainism the Early Faith of Asoka Page 23. मे लिखा है कि चन्द्रगुप्त जैन समाजका एक योग्य व्यक्ति था। डाक्टर टामसगवने एक और जगह यहांतक सिद्ध किया है कि—चन्द्रगुप्तके पुत्र और पौत्र बिन्दुसार और अशोक भी जैन धर्मावलम्बी ही थे। इस बातको पुष्ट करनेके लिये जगह जगह मुद्राराक्षस, राजतरंगिणी और आइना-ए-अकबरीके प्रमाण दिये हैं।

हिन्दू इतिहास, के सम्बन्धमें श्री वी० ए० स्मिथका निर्णय प्रामाणिक माना जाता है। उन्होने भी सम्राट चन्द्रगुप्तको जैन ही स्वीकृत किया है। डाक्टर स्मिथ अपनी OXFORD History of India मे लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त जैन था, इस मान्यताके असत्य समझनेके लिये उपयुक्त कारण नहीं हैं।

मैगस्थनीज (जो चन्द्रगुप्तकी सभामें विदेशी दूत था) के कथनोंसे भी यह बात झलकती है कि चन्द्रगुप्त ब्राह्मणोंके सिद्धान्तोंके विपक्षमें श्रमणों (जैन मुनियों) के धर्मोपदेशको स्वीकार करता था।

मि० ई० थामसका कहना है कि चन्द्रगुप्तके जैन होनेमें शंकोपशंका करना व्यर्थ है; क्योंकि इस बातका साक्ष्य कई प्राचीन प्रमाणपत्रोंमे मिलता है, और वे शिलालेख निस्संशय अत्यन्त प्राचीन हैं।

मि० जार्ज० सी० एम० वर्डवुड लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार ये दोनों जैनधर्मावलम्बी थे। चंद्रगुप्तके पौत्र अशोकने जैनधर्मको छोड़कर बौद्धधर्म स्वीकार किया था। एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन' मे लिखा है कि ई० स० २९७ पूर्वमें संसारसे विरक्त होकर चंद्रगुप्तने मैसूर प्रांतस्थ श्रवणबेलगोलमे बारह वर्ष तक जैनदीक्षासे दीक्षित होकर तपस्या की, और अन्तमे वे तप करते हुए स्वर्गधामको सिधारे।

मि० वी० लुइसराइस साहब कहते हैं कि चंद्रगुप्तके जैन होनेमे संदेह नहीं। श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल महोदय समस्त उपलब्ध साधनोंपरसे अपना मत स्थिर करके लिखते हैं—"ईसाकी पांचवीं शताब्दी तकके प्राचीन जैन ग्रन्थ व पीछेके शिलालेख चंद्रगुप्तको जैन राजमुनि प्रमाणित करते हैं, मेरे अध्ययनोंने मुझे जैन ग्रंथोंके ऐतिहासिक वृतान्तोंका आदर करनेके लिये बाध्य किया है। कोई कारण नहीं है कि हम जैनियोंके इस कथनको- कि चंद्रगुप्त अपने राज्यके अन्तिम भागमे जिनदीक्षा लेकर

मरणको प्राप्त हुआ—न मानें। मैं पहिला ही व्यक्ति यह माननेवाला नहीं हूं, मि० राइसने भी जिन्होंने 'श्रवणवेलगोलके शिलालेखोका अध्ययन किया है, पूर्णरूपसे अपनी राय इसी पक्षमे दी है और मि० वी० स्मिथ भी अंतमें इस ओर झुके हैं।"

सांचीस्तूपके सम्बन्धमें इतिहासकारोका मत है कि यह अशोक द्वारा निर्माण हुआ है और इसका सम्बन्ध वौद्धोसे है, परन्तु प्राचीन भारतवर्ष (गुज०) मे डा० त्रिभुवनदास लहेरचन्द शाहने उसपर नवीन प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि सांचीस्तूपका सम्बन्ध जैनधर्म और चन्द्रगुप्त से है॥। वे कहते हैं कि मौर्य-सत्ताकी स्थापनाके वाद सम्राट् चन्द्रगुप्तने सांचीपुरमें राजमहल बनवाकर वर्षमें कुछ समयके लिये रहना निश्चय किया था।

चन्द्रगुप्तने राजत्यागकर दीक्षा लेनेसे पूर्व वहाँके अनेक स्तूपोमेंसे, जो आज भी विद्यमान हैं, सबसे बड़े स्तूपके घुमटके चारो ओर गोलाकार दीपक रखनेके लिये जो रचना हुई है उसके निर्वाहके लिये लगभग २५ हजार दीनारका (२॥ लाख रु०का) वार्षिक दान दिया था, यह बात सर कनिंगहाम जैसे तटस्थ और प्रामाणिक विद्वान्ने 'भिलसास्तूप' नामक पुस्तकमें प्रकट की है। यह घटना सिद्ध करती है कि उस स्तूपका तथा अन्य स्तूपोका चन्द्रगुप्त और उसके जैनधर्मसे ही गाढ़ सम्बन्ध था अथवा होना चाहिये, यह निर्विवाद कह सकते हैं।

सम्राट् चन्द्रगुप्तने २४ वर्ष तक राज्यशासन चलाया और ई० स० २९७ पूर्व ५० वर्षकी आयुमें नश्वर शरीरका त्याग किया। जैन मान्यतानुसार बारह वर्ष का भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़नेपर चन्द्रगुप्त राज्य त्यागकर आचार्य श्री भद्रबाहुजीका शिष्य बन मैसूर की ओर गया और श्रवणबेलगोलमें उसने तपस्या एवं अनशन व्रत द्वारा समाधिमरण प्राप्त किया।

॥ अधिकाँश इतिहासज्ञ विद्वान अभी इस वातको स्वीकार नही करते क्योंकि इस निर्णयको स्वीकार करनेके लिये अधिक प्रवल प्रमाणोंकी आवश्यकता है।

---

"यह संसार काम करनेके लिये है, काम करो। कायर लोग दूसरोंके कष्ट भूलकर केवल अपने ही कष्टसे व्याकुल रहते हैं।"

"मुसीवतोंका अनुभव करना ही मनुष्यका प्रकृत स्वभाव नहीं है, किन्तु कर्तव्य यह है कि योद्धाओकी तरह दु:खका सामना करो, दु:खको चेलेंज दो।"

"अपनी इच्छासे दु:ख-दरिद्रता स्वीकार करनेमें, अभिमान और आनन्द होता है।"

"जो मृत्युकी उपेक्षा करते हैं, पृथ्वीका सारा सुख उन्हींका है। जो जीवनकेसुखको तुच्छ समझते हैं, मुक्तिका आनन्द उन्हींको मिलता है।"

"उच्च आदर्शका सुख वही कहा जा सकता है जो क्षणिक या अन्यका अनिष्ट करनेवाला न हो, और उच्च आदर्शकी भोग्य वस्तु वही कही जा सकती है, जो उस उच्च आदर्शके सुखका कारण हो और जिसे प्राप्त करनेमें पराई प्रत्याशा या अन्यका अनिष्ट न करना पड़े।"

"यह एक बिलकुल सीधी और सच वात है कि सुख मनसे सम्बन्ध रखता है, आयोजन या आडम्बरसे नहीं।"

—विचारपुष्पोद्यान

# तामिल भाषाका जैनसाहित्य

[ मूल लेखक—प्रो० ए० चक्रवर्ती एम० ए० आई० ई० एस० ]

( अनुवादक—सुमेरचन्द जैन दिवाकर, न्यायतीर्थ, शास्त्री, बी० ए० एल एल० बी० )

[ १२ वीं किरणसे आगे ]

चेरके राजकुमारकी प्रशंसा उसके मादलन् नामक ब्राह्मण मित्रने मंदिरोंकी पूजामें 'पोप्पली' नामक विशेष पवित्र विधिको दाखिल करने वालेके रूपमें की है। प्रसंगवश हम एक और मनोरंजक बातका उल्लेख करते हैं। आदि तामिलसाहित्यमें 'अंडणन्' और 'पार्प्पान्' ये दो शब्द पाए जाते हैं, इनमेंसे प्रत्येकके पीछे एक कथा है। साधारणतया इन दोनों शब्दोंको पर्यायवाची समझा जाता है। कुछ स्थलोंपर इनका प्रयोग पर्यायवाचीकी भाँति हुआ है। जब एक ही ग्रंथमें ये दोनों शब्द कुछ भिन्न भावोंमें ग्रहण किए गए हैं, तब उनको भिन्न ही समझना चाहिये। 'चरणभूषण' नामक प्रस्तुत महाकाव्यमें 'अंडणन्' शब्दका अर्थ टीकाकारने श्रावक अर्थका वाचक जैन गृहस्थ किया है। यह सूचना बड़ी मनोरंजक है। ये दोनों शब्द प्रख्यात कुरल काव्यमें भी आए हैं जहां 'पार्प्पान्' का अर्थ वेदाध्ययन करने वाला व्यक्ति किया गया है, और 'अंडणन्' का दूसरे अर्थमें प्रयोग हुआ है। उसका भाव है ऐसा व्यक्ति जो प्रेमपूर्ण हो और जीवमात्रके प्रति करुणावान् हो। यह स्पष्ट है कि आदि तामिल ग्रंथकारोंने 'अंडणन्' शब्दका व्यवहार जन्मकी अपेक्षा न करते हुए अहिंसाके आराधकोंके लिये किया है। 'पार्प्पान्' शब्द ब्राह्मण जातिको द्योतित करनेके लिये निश्चित किया गया था। आदि तामिलोंके सामाजिक पुनर्गठनके विषयमें रुचि रखने वाले विद्वानोंकी खोजके लिये यह सूचना-उपयोगी है।

जीवकचिन्तामणि—यह ग्रंथ, जो कि पंचमहाकाव्यों में सबसे बड़ा है, निःसन्देह विद्यमान तामिल साहित्यमें सर्वोत्कृष्ट है। यह कल्पनाकी महत्ता, साहित्यिक शैलीकी सुन्दरता एवं प्रकृतिके सौंदर्य वर्णनमें तामिल साहित्यमें बेजोड़ है। पिछले तामिल ग्रंथकारोंके लिये यह केवल एक अनुकरणीय उदाहरण ही नहीं रहा है, किन्तु एक स्पृहणीय आदर्श भी रहा है। महान् तामिल 'रामायण' के रचयिता 'कम्बन्' के विषयमें यह कहा जाता है कि जब उसने अपनी 'रामायण' को विद्वानोंकी परिषद्में पेश किया, और जब कुछ विद्वानोंने कहा कि उसमें 'चिन्तामणि' के चिन्ह पाये जाते हैं तब बौद्धिक साहस एवं सत्यके धारक कम्बन् ने इन शब्दोंमें अपना आभार व्यक्त किया :—

"हां, मैंने 'चिन्तामणि' से एक घूंट अमृतका पान किया है। इससे यह बात सूचित होती है कि तामिल विद्वानोंमें उस महान् ग्रंथका कितना सम्मान था। यह अतीव अद्भुत महाकाव्य, जो कि तामिल भाषाका 'इलियड' तथा 'ओडेसी' है, तिरुतक्कदेव नामक कविके यौवनकालके प्रारंभमें रचा गया कहा जाता है। ग्रंथकारके सम्बंधमें उसके नाम और इस बातके सिवाय कि उसका जन्म मद्रासप्रांतके उपनगर 'म्यलपुर' नामक स्थानमें हुआ था, जहाँ कि कुरलके रचयिता भी रहते थे, और कुछ भी ज्ञात नहीं है। तरुण कविने अपने गुरुके साथ मदुराको प्रस्थान किया था, जो पांड्य राज्यकी बड़ी राजधानी एवं धार्मिक कार्योंका केन्द्रस्थल था। अपने गुरु

की आज्ञानुसार तरुण साधु कविने मदुराकी तामिल विद्वत्परिषद् अथवा संगमके सदस्योंसे परिचय प्राप्त किया। उस परिषद्के कतिपय सदस्योंने सामाजिक चर्चाके समय उसे तामिल भाषामें शृङ्गाररसके ग्रंथ की रचना करनेकी अयोग्यताके लिये दोष दिया। इसके उत्तरमें कविने कहा कि शृङ्गाररसकी कविता करनेका प्रयत्न कुछ थोड़ेसे ही जैनी करते हैं। अन्य लोगोंके समान वे भी शृंगाररसकी बहुत अच्छी कविता कर सकते हैं, किंतु ऐसा न करनेका कारण यह है, कि ऐसे इंद्रियपोषक विषयोंके प्रति उनके अन्तःकरणमें अरुचि है, न कि साहित्यिक अयोग्यता। किंतु जब उसके मित्रोंने ताना देते हुए पूछा कि क्या वह एकाध ऐसा ग्रंथ बना सकता है, तब उसने उस चुनौतीको स्वीकार कर लिया। आश्रममें लौट कर उसने सब बातें गुरुके समक्ष निवेदन कीं। जब वह और उसके गुरु बैठे थे, तब उनके सामनेसे एक शृगाल दौड़ा हुआ गया। गुरुने उस ओर शिष्यका ध्यान आकर्षित करते हुए उसे शृगालके विषयमें कुछ पद्य बनानेको कहा। तत्काल ही शिष्य तिरुतक्कदेवने शृगालके सम्बन्धमें पद्य बना डाले, इससे उस रचनाको 'नरिविरुत्तम्' कहते हैं; उसमें शरीरकी अस्थिरता, संपत्तिकी नश्वरता और ऐसे ही अन्य विषयोंका वर्णन किया गया था। अपने शिष्य की असाधारण कवित्वशक्तिको देखकर गुरुजी प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे जीवकके चरित्रका वर्णन करने वाले एक श्रेष्ठ ग्रंथके रचनेकी आज्ञा प्रदान की। इस चरित्रमें प्रेम तथा सौंदर्यके विविध रूपोंका समावेश है। अपनी सम्मति-सूचित करनेके लिये गुरुजी ने अपने शिष्यके भावी ग्रंथमें प्रथम पद्यके तौरपर रक्खे जानेके लिये एक मंगलपद्यका निर्माण किया। इसके अनंतर उनके शिष्य तिरुतक्कदेवने सिद्धों की स्तुतिमें दूसरा पद्य बनाया, जिसे गुरुजीने अपने श्लोकसे भी सुंदर स्वीकार किया और उसे प्रथम पद्यके रूपमें रखनेको कहा, और गुरुद्वारा रचित पद्यने दूसरा स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार सिद्ध नमस्कारको लिये हुए 'मूवामुदला' शब्दसे प्रारंभ होनेवाला पद्य जीवकचिन्तामणिमें प्रथम पद्य है और अर्हन् नमस्कारवाला गुरुजी रचित पद्य, जो 'शेंपोणवरैमेल' शब्दसे प्रारंभ होता है, ग्रंथमें दूसरे नंबर पर है। इस तरह मदुरा-संगमके एक मित्र कविकी चुनौतीके फलस्वरूप तिरुतक्कदेवने 'जीवक-चिंतामणि' की रचना यह सिद्ध करनेको की, कि एक जैनग्रंथकार शृंगाररसमें भी काव्य रचना कर सकता है। इसे सभीने स्वीकर किया कि कविने आश्चर्यप्रद सफलता प्राप्त की। वह रचना जब विद्वत्परिषद्के समक्ष उपस्थित की गई, तब कहते हैं कि कविसे उसके मित्रोंने पूछा कि, तुमतो अपने बाल्यकालसे पवित्रता एवं ब्रह्मचर्यके धारक थे, तब ऐसी रचना कैसे की, जिसमें वैषयिक सुखोंके साथ असाधारण परिचय प्रदर्शित होता है। कहते हैं इस संदेहके निवारणार्थ उसने एक लोहेका गर्म लाल गोला लिया और यह शब्द कहे "यदि मैं अशुद्ध हूं तो यह मुझे भस्म करदे" किन्तु कहते हैं कि उस परीक्षामें वह निर्दोष उत्तीर्ण हुआ और उसके मित्रोंने उसके आचरणकी पवित्रताके विषयमें संदेह करनेके लिये उससे क्षमा मांगी।

जिस प्रकार पूर्वके ग्रंथ 'शिलप्पदिकारम्' में ग्रंथकारके जीवनकालमें होने वाली ऐतिहासिक घटनाओंका वर्णन किया गया है उस प्रकार इस ग्रंथमें नहीं किया गया है, बल्कि इसमें जीवककी

पौराणिक कथाका वर्णन है। जीवककी कथा संस्कृत साहित्यमें बहुलतासे पाई जाती है। जिनसेनके महापुराणका जो उत्तर भाग है और जिसे उनके शिष्य गुणभद्रने बनाया था, उसके एक अध्यायमें जीवक की कथा वर्णित है। यह कथा वादको श्रीपुराणमें भी पाई जाती है, जो कि मणिप्रवाल रीतिमें लिखा हुआ एक गद्य ग्रंथ है और पाय: इस महापुराणका अनुवाद है। क्षत्रचूड़ामणि, गद्यचिंतामणि और जीवंधरचम्पूमें भी यही कथा वर्णित है। इस विषयमें हम निश्चयके साथ कुछ भी नहीं कह सकते हैं कि इस तामिल ग्रंथकर्त्ताको अपने ग्रंथकी रचनाके लिये इन संस्कृतग्रंथोमेंसे कोई ग्रंथ आधारस्वरूप रहा है या कि नहीं।

इन सब संस्कृत ग्रंथोमें महापुराण निःसंदेह सबसे प्राचीन है और यह निश्चित है कि यह महा-पुराण ईसाकी ८ वी सदीकी रचना है, क्योंकि यह राष्ट्रकूट वंशीय अमोघवर्षके धर्मगुरु जिनसेनाचार्यके द्वारा रचा गया था। किंतु जिनसेन स्वयं पहलेके अनेक ग्रंथोका उल्लेख करते हैं, जिनके आधारपर उन्होंने अपना ग्रंथ बनाया है। कुछ भी हो, इस वातपर विद्वान् लोग आमतौरपर सहमत हैं कि यह तामिल ग्रंथ 'जीवकचित्तामणि' ईसाकी प्राय: ८ वी शताब्दीके वादकी कृति है। फिलहाल हम इस निर्णयको स्वीकार करते हैं। इस ग्रंथमें १० इलम्बक या अध्याय है। पहलेमें कथानायकका जन्म एवं शिक्षण वर्णित है और अंतिम अध्याय उनके निर्वाणके वर्णनके साथ समाप्त होता है।

नामगलइलम्बगम्—इस कथा का प्रारम्भ भरत-खण्डके हेमागद देशके वर्णनसे होता है। राजमापुरम् हेमांगद देशकी राजधानी थी। इसके राजा कुरुवंशीय महाराज सच्चंदन् थे। उन्होने अपने मामा 'श्री दत्तन्' की कन्यासे, जिसे 'विजया' कहते थे, विवाह किया था। यह 'श्रीदत्तन्' विदेह देशपर शासन करता था। राजा सच्चंदन्का अपनी अतीव रूपवती महारानी पर महान अनुराग था. इससे वह राज्य कार्योंकी उपेक्षा करके अपना सारा समय प्राय: अंत:पुरमें ही व्यतीत करता था। उसने अपने एक मंत्री 'कत्तियंगारन्' के ऊपर राज्यशासनका भार छोड़ रखा था। जब एकवार इस 'कत्तियंगारन्' ने राजत्वकी प्रभुता और अधिकारका रसास्वाद किया, तब उसकी इच्छा उसको हड़पनेकी होगई। राजाने अपने उस मंत्रीकी कुटिल नीतिको कुछ अधिक देरमे समझा, जिसको उसने मूर्खतावश राज्यका अधिकार दे रखा था। इसी बीच मे महारानीने तीन अधिक असुहावने दुःस्वप्न देखे। जब उसने राजासे उनका फल पूछा, तब उसने उसे यह कह कर सांत्वना दी, कि तुम स्वप्नोंके विषयमे चिंता मत करो। कहते हैं कि उसने अपने कृतघ्न मंत्रीके द्वारा उत्पातकी आशंकासे मयूरकी आकृतिका एक विमान, जो आजकलके वायुयानके समान था, बनवाया। यह मयूरयंत्र राजप्रासादमे गुप्तरूपसे बनवाया गया था, उसमे दो व्यक्ति आकाशमे जा सकते थे। उसने अपनी महारानीको भी यह यंत्र चलाना सिखा दिया था। जब महारानीका गर्भ प्रसव के निकट हुआ, तब कृतघ्न कत्तियंगारनने राज्यको हड़प लेनेकी अपनी कामनाको पूर्ण करनेका प्रयत्न किया और इस तरह राजप्रासादको घेर लिया। चूंकि उस मयूरयंत्रमें केवल दो व्यक्तियोका ही वजन खींचा जा सकता था और चूंकि रानीका गर्भ प्रसवके निकट था, इसलिये राजाने यंत्रको महारानीके अधिकारमें सौंप देना उचित समझा और स्वयं वहीं रह गया। जब यंत्र रानीको लेकर उड़ा, तब राजा नंगी तलवार

हाथमें लेकर आक्रमणकारीका मुक़ाबला करनेके लिये निकल पड़ा। इस युद्धमें लड़ते हुए राजाका प्राणान्त होगया और दुष्ट कत्तियंगारन् ने अपनेको राजमापुरम् का शासक घोषित कर दिया। अभी महारानी नगर के बाहर पहुँची ही थी, कि उसने यह राज्यघोषणा सुनी कि उसके पतिदेव (राजा) की मृत्यु होगई, इस से वह यंत्रका नियंत्रण करनेमें असमर्थ होगई, जिससे वह यत्र नीचे उतरा और इस नगर के बाहर श्मशान भूमिमें आ ठहरा। उस करुण वातावरण एवं अंधेरी रात्रिमें महारानी ने एक पुत्रको जन्म दिया। महारानीकी सहायता करने वाला उस समय कोई नहीं था, और वह असहाय शिशु उस श्मशान की निविड़ निशामे आक्रन्दन कर रहा था। कहते हैं कि एक देवताने रानीकी दशापर दयार्द्र होकर महल की एक सेविकाका रूप धारण किया और उसकी परिचर्या की। उसी समय उस नगरका एक व्यापारी सेठ अपने मृत शिशुको लेकर उसका अन्तिम संस्कार करनेके लिये वहा पहुचा। वहाँ उसने सुन्दर शिशु जीवकको देखा, जिसे देवताके परामर्शानुसार उसकी माताने अकेला छोड़ दिया था। 'कन्दुक्कडन्' नामक वह सेठ राजपुत्रको देखकर अत्यन्त आनंदित हुआ शिशुकी अंगुलीमें स्थित मुद्रिकासे उसने उसे पहचान लिया। उसने जीवित राजपुत्रको ले लिया और घर लौटकर अपनी पत्नीको यह कहते हुए सौंप दिया कि तेरा बालक मरा नही था। उसकी पत्नीने इस उपहारको अपने पतिसे सानन्द ले लिया और उसने अपना ही पुत्र समझकर उसका पालन-पोषण किया। यह बालक इस कथाका चरित्र नायक 'जीवक' था।

देवताके साथमे विजया महारानी दंडकारण्य पहुँची और वहाँ रानीने एक साध्वीका वेष धारण कर तापस-आश्रममे निवास किया। अपने अनेक बन्धुओ के साथ जीवकका सेठके गृहमें संवर्धन हुआ। उस बालकको आचार्य 'अच्चणंदि'ने युवककी तरह शिक्षित किया। उसने धनुर्विद्या एवं राजकुमारके योग्य अन्य कलाओंका भी परिज्ञान किया। अपने शिष्यकी योग्यतासे आकर्षित होकर गुरुमहाराजने एक दिन उसके समक्ष उसके राज्य-परिवारकी करुण-कथा सुनाई और युवक राजकुमारसे यह वचन ले लिया कि वह एक वर्ष पर्यन्त अपनी राज्यप्राप्ति एवं प्रति-शोधके लिये दौड़ धूप नहीं करेगा। इस प्रकारका वचन प्राप्त करके आचार्यने राजकुमारको आशीर्वाद देते हुए कहा कि एक वर्षके अनन्तर तुम अपने राज्यको प्राप्त करोगे और उसको अपना असली परिचय दिया। इसके अनन्तर उसको छोड़कर आचार्यश्री चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीरके चरणोंकी आराधना करके निर्वाण प्राप्तिके लिये तप करने चले गये। इस प्रकार राजकुमार जीवकके अध्ययनका वर्णन करनेवाला प्रथम अध्याय, जिसे 'नामगलइलंबगम्' भी कहते हैं पूर्ण होता है। नाम-गल्का अर्थ वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वती है।

२ गोविन्दैय्यार इलम्बगम्—जिस समय राजकुमार जीवक अपने चचेरे बन्धुओंके साथ कंदुक्कदन्के परिवारमें अपना काल व्यतीत कर रहा था उसवक्त सीमावर्ती पहाड़ी लोगोंने राजाके पशुओंका अपहरण कर लिया। गोरक्षक ग्वालोंने गायोंकी रक्षामें समर्थ न होने पर राजासे सहायताकी मांग की। राजाने अपने शतपुत्रोंको तुरन्त जाकर व्याधोसे युद्ध करके गायोंको पुनः प्राप्त करनेके लिये आज्ञा दी। परन्तु वे सब उन पहाड़ी जातिवालोंके द्वारा परास्त हुए। राजा

को यह न जान पड़ा कि अब क्या किया जाय। किन्तु ग्वालोंके अधिनायकने शहरमें यह घोषणा करादी कि जो कोई भी राजाकी गायोंको वापिस लावेगा, उससे मैं अपनी कन्या 'गोविन्दा' का विवाह कर दूँगा। जीवकने यह घोषणा सुनी, वह इन 'वेदरों' की तलाशमे निकल गया और सब गायोंको वापिस ले आया। एक क्षत्रियका एक ग्वाल-कन्या के साथ विवाह करना अयोग्य होगा, इस लिये उसने नन्दकोन नामक ग्वाल सरदारकी सम्मतिसे अपने एक मित्र वं साथी 'यदुमुहन' के साथ उस गोविन्दा का विवाह करा दिया। इस प्रकार गोविन्दाके विवाह का वर्णन करता हुआ दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

३ गन्धर्वदत्तैय्यार इलम्बगम्—गन्धर्वदत्ता विद्याधराधीश कलुषवेगकी कन्या थी। एक ज्योतिषीसे यह जानकर कि उसकी कन्या राजमहापुरमे किसीके साथ विवाह करेगी, वह अपनी कन्याको उस नगरमे भेजना चाहता था। जब वह इस अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था, तब राजमहापुरका एक सेठ, जिसका नाम श्रीदत्त था अपने जहाजमे समुद्री व्यापारके फलस्वरूप प्राप्त हुए सुवर्णको रखकर अपने घर लौट रहा था। जिस प्रकार शैक्सपियरके 'टेम्पैस्ट' नाटकमें जादूसे प्रोसपेरोके द्वारा जहाज नष्ट किया गया है, उसी प्रकार इस विद्याधरने चमत्कारिक रूपसे जहाजका विनाश प्रदर्शित किया और श्रीदत्त सेठको अपने दरबारमे आनेको बाध्य किया। वहाँ उसे यह बात बताई गई कि उसे विद्याधर राजधानीमे किस निमित्त लाया गया है। विद्याधरोंके नरेशने उससे कहा कि तुम राजकुमारी 'गन्धर्वदत्ता' को अपने साथ लेजाओ और जो उसे वीणा-वादनमें पराजित करदे उसीके साथ इसका विवाह कर देना। श्रीदत्तने गन्धर्वदत्ता राजकुमारीके साथ अपनी राजधानीमें पहुँचकर घोषणाके द्वारा वीणा-स्वयम्वरकी शर्तोंको नागरिकोंपर प्रकट कर दिया और साथ ही यह भी प्रकट कर दिया कि जो कोई वीणा बजानेकी प्रतियोगितामें राजकन्याको हरादेगा उसे वह विद्याधर-कन्या प्रदान की जायगी। यह प्रतियोगिता तत्कालीन शासक कत्तियंगारन्की अनुमति पूर्वक कराई गई थी। आदिके तीन वर्णोंके व्यक्ति उस प्रतिद्वन्दिताके लिए आमन्त्रित किए गए थे। इस राजकुमारी गन्धर्वदत्ताने प्रत्येकको पराजित कर दिया। इस प्रकार छह दिन बीत गए। सातवे दिन जीवकने, जिसे पुरवासी वणिकपुत्र ही समझे हुए थे, उस संगीतकी प्रतियोगितामें अपने भाग्यकी परीक्षा करनी चाही। जब उस प्रतिद्वन्दितामे जीवकने अपना संगीत-कौशल दिखाया तब विद्याधर कन्याने उसे विजेता स्वीकारकर अपना पति अंगीकार किया। कुछ राजकुमार जो वहाँ एकत्रित थे उन्होंने ईर्षावश राजकुमार 'जीवक' से झगड़ा करना चाहा, किन्तु वे सब पराजित हुए और अन्तमे जीवकने गन्धर्वदत्ताको अपने प्रासादमे लाकर विधिवत् विवाहक्रिया की। इस प्रकार यह तीसरा अध्याय समाप्त होता है, जो गन्धर्वदत्ताके विवाहविषयको लिये हुए है।

४ गुणमालैयार इलम्बगम्—एकबार वसन्तोत्सवमें नगरके युवक नरनारी विनोद और आनन्दोत्सव मनानेके लिये समीपवर्ती उपवनमें गये थे। इनमें सुरमंजरी और गुणमाला नामकी दो युवतियाँ भी थीं। उनमे स्नानके लिये उपयोगमे लाए जाने वाले चूर्णकी सुगन्धकी विशेषताके सम्बन्धमे विवाद उत्पन्न होगया। वे अपने अपने चूर्णको अच्छा बताती थीं। यह विषय बुद्धिमान् युवक जीवक (जीवन्धर)

के समक्ष उपस्थित किया गया, जिसने गुणमालाके पक्षमें निर्णय देदिया। इस निर्णयसे सुरमंजरी अत्यन्त खिन्न हुई और उसने अपने आपको कन्यामाद (कन्यागृह) में बन्द करनेका निश्चय किया और यह नियम लिया कि वह तबतक किसी भी पुरुषका मुख नहीं देखेगी, जब तक कि यह जीवक उसके पास जाकर विवाहके लिए प्रार्थना नहीं करेगा। जब कि सुरमंजरीने इस वसन्तोत्सवमें भाग नहीं लिया, तब अपने पक्षमें प्राप्त निर्णयसे उत्साहित होकर गुणमाला उत्सव मनानेको गई। मार्गमें जाते हुए जीवकने देखा कि कुछ ब्राह्मणोंने एक कुत्तेको इसलिए मार डाला है कि उनका भोजन इस कुत्तेने छूलिया था। जब उसने कुत्तेको मरते हुए देखा, तब उसने उस दीन पशुको सहायता पहुँचानेका प्रयत्न किया और उसके कानमें पंचनमस्कार मंत्र सुनाया, ताकि उस पशुका आगामी जीवन विशेष उज्ज्वल हो। तदनुसार वह श्वान मरकर देवलोकमें सुदक्षण नामका देव हुआ। वह सुदक्षणदेव तत्काल ही जीवकके पास अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनेके लिये आया और उसकी सेवा करनेके लिये अपनी इच्छा व्यक्त की। किन्तु जीवकने यह कहकर उसे लौटा दिया कि जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं तुम्हें बुलालूँगा। ज्योंही उसने देवको विदा किया, उसे एक भयंकर दृश्य दिखाई पड़ा। राजाका हाथी अपने स्थानसे भाग निकला और वसन्तोत्सव मनाकर उद्यानसे अपने अपने घरोंको वापिस जाते हुए लोगोंकी ओर दौड़ा। इतनेमें ही उसने अपनी सेविकाओं सहित गुणमालाको घरकी तरफ जाते हुए देखा। उस उन्मत्त गजको देखकर वे सबकी सब घबरा गई थीं। जीवक उनकी सहायताको दौड़ पड़ा और उसने राजाके हाथीको वशमें कर लिया और उसे उसके स्थानपर शान्तिके साथ पहुँचवा दिया। इस प्रकार उसने गुणमाला और उसकी सखियोंके लिए मार्ग साफ कर दिया। जब गुणमालाने सुन्दर कुमारको देखा, तब वह उसपर आसक्त हो गई। यह बात उसके माता पिताको विदित हुई, उन्होंने जीवकके साथ गुणमालाके विवाहका निश्चय किया और वह सविधि सम्पन्न हुआ। किन्तु कत्तियंगारन् नरेशको जब राजकीय हाथीको दण्डित करनेकी बात विदित हुई, तब उसने अपने साले मदनन्के साथ अपने पुत्रोंको इस श्रेष्ठिपुत्र जीवकको लानेके लिये भेजा। कुछ सैनिकोंके साथ वे कंदुक्कदन्के भवनके समीप पहुँचे और उन्होंने उसे घेर लिया। यद्यपि जीवक उनसे युद्ध करना चाहता था, किंतु उसे गुरुको दिया गया अपना वचन स्मरण हो आया कि वह एक वर्ष पर्यन्त चुप रहेगा और इससे वह आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ रहा। इस प्रकारके संकटमें उसने अपने मित्र सुदक्षणदेवको स्मरण किया, जिसने तत्काल ही आँधी और वर्षा द्वारा उसके शत्रुओंमें गड़बड़ी पैदा करदी। इस गड़बड़ीकी अवस्थामें सुदक्षणदेव उसे उठाकर अपने स्थानपर लेगया। अपनी घबराहट में जीवकको न पाकर राजकर्मचारियोंने किसी दूसरेके प्राण ले लिए और यह बात राजाको बताई कि वे जीवकको जीवित नहीं ला सके, कारण तूफानके द्वारा बहुत गड़बड़ी मच गई थी, अतएव उन्हें उसको मार डालना पड़ा। इस परिणामको ज्ञातकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें खूब पुरस्कार प्रदान किया।

---

# महात्मा गाँधीके धर्मसम्बन्धी विचार

( सं० क०—डा० भैयालाल जैन )

मेरा विश्वास है कि विना धर्मका जीवन, विना सिद्धान्त का जीवन है; और विना सिद्धान्तका जीवन वैसा ही है जैसा कि बिना पतवारका जहाज। जिस तरह बिना पतवारका जहाज इधरसे उधर मारा-मारा फिरेगा और कभी उद्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँचेगा, उसी प्रकार धर्महीन मनुष्य भी संसार-सागरमें इधरसे उधर मारा-मारा फिरेगा और कभी अपने उद्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँचेगा।

मैंने जीवनका एक सिद्धान्त निश्चित किया है। वह सिद्धान्त यह है कि किसी मनुष्यका, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, कोई काम तब तक कभी सफल और लाफदायक नहीं होगा जब तक उस कामको किसी प्रकारका धार्मिक आश्रय न होगा।

जहाँ धर्म्म नहीं वहाँ विद्या नहीं, लक्ष्मी नहीं और आरोग्य भी नहीं। धर्मरहित स्थितिमें पूरी शुष्कता है, सर्वथैव शून्यता है। इस धर्म-शिक्षाको हम खो बैठे हैं। हमारी शिक्षा-पद्धतिमें उसका स्थान ही नहीं है। यह बात वैसी ही है जैसी विना वरकी बरात। धर्मको जाने बिना विद्यार्थी किस प्रकार निर्दोष आनन्द प्राप्त कर सकते हैं? यह आनन्द पानेके लिए, शास्त्रका अध्ययन उसका मनन अथवा विचार और अनन्तर उस विचारके अनुसार आचरण करनेकी आवश्यकता है।

यदि देश-हितका भाव दृढ धार्मिकतासे जाग्रत हो तो वह देश-हितका भाव भली भाँति चमक उठेगा।

हमने धर्मकी पकड़ छोड़ दी। वर्तमान युगके ववण्डरमें हमारी समाज-नाव पडी हुई है। कोई लंगर नहीं रहा, इसी लिए इस समय इधर-उधरके प्रवाहमें बह रही है।

सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और 'अहिंसा परमो धर्मः' से बढ़कर कोई आचार नहीं है।

जो अहिंसाधर्मका पूरा पूरा पालन करता है उसके चरणोंपर सारा संसार आ गिरता है। आस-पासके जीवोंपर भी उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि साँप और दूसरे ज़हरीले जानवर भी उसे कोई हानि नहीं पहुँचाते।

जहाँ सत्य है और जहाँ धर्म है, केवल वहीं विजय भी है। सत्यकी कभी हत्या नहीं हो सकती।

सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो-धर्मः' से भारी शोध दुनियामें दूसरी नहीं है। जिस धर्ममें जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्ममें उतना ही अधिक सत्य है। हम यदि भारतका उद्धार कर सकते हैं तो सत्य और अहिंसा ही से कर सकते हैं।

# गोम्मटसारकी जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका, उसका कर्तृत्व और समय[१]

( मूल लेखक—प्रोफेसर ए० एन० उपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट० )

[ अनुवादक—पं० शंकरलाल जैन न्यायतीर्थ ]

गोम्मटसार पर अब तक दो टीकाएँ प्रकाशमें आई हैं, जिनमें पहली 'मन्दप्रबोधिका' और दूसरी 'जीवतत्व प्रदीपिका' है; और वे दोनों टीकाएँ गोम्मटसारके कलकत्ता संस्करण[२] में पं० टोडरमल्लकी हिन्दी टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' के साथ प्रकाशित हो चुकी हैं। कलकत्ता संस्करणमें मन्दप्रबोधिका जीवकाण्डकी गाथा नं० ३८३ तक दी गई है, यद्यपि सम्पादकों[3] ने अपने कतिपय फुटनोटोंमें इस बातको प्रकट किया है कि उनके पास (टीकाका) कुछ और अंश भी है। मन्दप्रबोधिकाके कर्ता अभयचन्द्र हैं और यह बात अभी तक अनिर्णीत है कि अभयचन्द्रने अपनी टीकाको पूरा किया या उसे अधूरा छोड़ा। इस लेखमें मैं जीवतत्वप्रदीपिकाके कुछ विवरण देनेके साथ साथ उसके कर्तृत्व और समयसम्बन्धी प्रश्नपर विचार करना चाहता हूँ।

वर्तमानमें केवल जी० प्रदीपिका ही गोम्मटसार पर उपलब्ध होने वाली पूरी और विस्तृत संस्कृत टीका है। वस्तुतः गोम्मटसारके अध्ययनके यथेष्ट प्रचारका श्रेय जीवतत्व-प्रदीपिकाको प्राप्त है। गोम्मटसार[४] के हिन्दी, अंग्रेज़ी और मराठीके सभी आधुनिक अनुवाद पं० टोडरमल्लकी हिन्दी-टीका 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिकाके आधार पर हैं, और इस टीकामें मात्र उस सब विषयको परिश्रमके साथ स्पष्ट किया गया है जो कि जी०प्रदीपिकामें दिया हुआ है। जी०प्रदीपिका के बहुतसे विवरण मंदप्रबोधिकाके अनुसार हैं। मं० प्रबोधिका के अधिकांश पारिभाषिक विवरणोंको जी०प्रदीपिकामें पूरी तरह से अपनालिया गया है; कभी कभी अभयचन्द्र[५] का नाम भी साथमें उल्लेखित किया गया है; जी०प्रदीपिकामें प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भिक संस्कृत पद्योंको उन्हीं पद्योंके सांचे में ढाला गया है जो मं०प्रबोधिकामें पाये जाते हैं; और जीवकाण्ड[६] की गाथा नं० ३८३ की टीकामें तो यह स्पष्ट ही कह दिया गया है कि इसके बादसे जी० प्रदीपिकामें केशव कर्णाटवृत्तिका अनुसरण किया जायगा; क्योंकि अभयचन्द्र द्वारा लिखित टीका यहां पर समाप्त हो गई है। जैसा कि मैंने सरसरी तौरसे पढने पर नोट किया है, जी०

१ यह निबन्ध बम्बई यूनिवर्सिटीकी Springer Research Scholarship की मेरी अवधिके मध्यमें तय्यार किया गया है।

२ गाँधी हरिभाई देवकरण जैन ग्रन्थमाला, ४ कलकत्ता, इसको इस लेखमें कलकत्तासंस्करणके तौर पर उल्लेखित किया गया है।

3 देखो, कर्मकाण्ड कलकत्तासंस्करणके पृष्ठ ६१५,८६८, १०३८ आदि।

४ गोम्मटसारके विभिन्न संस्करणोंके लिये, देखो मेरा लेख 'गोम्मट शब्दके अर्थविचार पर सामग्री' I H Q., Vol XVI, Poussin Number

५ देखो, जीवकाण्डकी १३वीं गाथाकी टीका, जो आगे उद्धृत की गई है।

६ गाथाओंके नम्बर कलकत्तासंस्करणके अनुसार दिये गये हैं।

प्रदीपिकामें प्राकृतके दो निष्कर्षों[७] और कुछ गद्यसूत्रादिके अतिरिक्त, संस्कृत और प्राकृतके लगभग एकसौ पद्य[८] उद्धृत किये गये हैं। उनमेंसे अधिकांशके मूल स्रोतोंका पता लग सकता है, परन्तु टीकामें उन्हें बिना किसी नाम निर्देशके ही उद्धृत किया गया है। जी० प्रदीपिकामें यतिवृषभ, भूतबलि, समन्तभद्र, भट्टाकलंक, नेमिचन्द्र, माधवचन्द्र,[९] अभयचन्द्र और केशववर्णी जैसे कुछ ग्रन्थकारों[१०] का नामोल्लेखादि किया गया है और आचारांग, तत्त्वार्थविवरण, (प्रमेयकमल) मार्तण्ड जैसे कुछ ग्रन्थों[११] का उल्लेख भी किया गया है। ब्यौरेवार वर्णनों और श्रमपूर्वक तय्यार किये गये नकशों तथा सूचिपत्रोंके कारण जी०प्रदीपिका उन अनेक विषयोंकी जानकारी प्राप्त करनेका एक बहुमूल्य साधन है, जो गोम्मटसार में सुझाये गये और विचार किये गये हैं।

जी० प्रदीपिका कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है, वास्तव में इसका प्रारम्भिक पद्य हमें स्पष्ट बतलाता है कि यह कर्णाटवृत्तिपरसे (साधन सामग्री लेकर) लिखी गई है, जिसका परिचय हम आगे चलकर मालूम करेंगे, इसमें मं० प्रबोधिकाका पूरा पूरा उपयोग किया गया है और जैसे ही मं० प्रबोधिका समाप्त हुई है जी०प्रदीपिका साफ तौर पर घोषणा करती है कि इसके आगे वह कर्णाटवृत्तिका अनुसरण करेगी—

**श्रीमदभयचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्तिविहितव्याख्यानं विश्रान्तमिति कर्णाटवृत्त्यनुरूपमयमनुवदति[१२]।**

संस्कृत जी०प्रदीपिकाका कर्तृत्वविषय प्रायः एक पहेली बना हुआ है। प० टोडरमल्ल[१३]जीकी निम्न चौपाई यह बतानेके लिये पर्याप्त है कि वे जी०प्रदीपिकाको केशववर्णीकी कृति समझते थे।

केशववर्णी भव्यविचार कर्णाटक टीका अनुसार।
संस्कृत टीका कीनी एहु जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥

उनकी 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' में अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख हैं जो इसी बातका निर्देश करते हैं। अनेक विद्वान, जिन्हें गोम्मटसारके सम्बन्धमें लिखनेका अवसर प्राप्त हुआ है, इस विचारको स्वीकृत एवं व्यक्त करचुके हैं। पं० खूबचन्द्रजी[१४] केवल इतना ही नहीं कहते कि संस्कृत जी०प्रदीपिका केशववर्णीकी कृति है, बल्कि एक कदम और आगे बढते हैं और यह लिखते हैं कि जी० प्रदीपिकामें जिस कर्णाटकवृत्तिका उल्लेख है वह चामुण्डरायकी वह वृत्ति है, जिसका उल्लेख गो०सार - कर्मकाण्डकी गाथा नं० ९७२ में 'वीर

---

[७] जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण, पृष्ठ ६१, ११८०। मुझे प्रो० हीरालालाजीसे मालूम हुआ है कि १०८० पृष्ठ पर का प्राकृत उद्धरण 'धवला' मे मिलता है।

[८] कलकत्तासंस्करण, जीवकाण्ड पृष्ठ २, ३, ४२, ५१, १८२, १८५, २८४, २८६, २९०, ३४१, ३८२, ३९१, ५२३, ६८७, ६८८, ७३१, ७६०, ७९५, ८८१, ८८४, ९५१, ९६५, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, १००६, १००९, १०१७, १०२२, १०२४, १०३३, १०९७, ११४७, ११५५, ११९१, ११९७ कर्मकाण्ड पृ० ३०, ५०, ७०८, ७१७, ७१८, ७२९, ७४२, ७४४, ७५३, ७८८, आदि।

[९] माधवचन्द्रने गोम्मटसारमें कुछ पूरक गाथायें शामिल की हैं, इसलिये उनका इतना अधिक उल्लेख हुआ है।

[१०] जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण पृ० ६१६, ७९५, ६६३, ६४८, १७८, ३६, ७५२, आदि।

[११] जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण पृ० ७६०, ६६०, ६४९।

[१२] जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण पृ० ८१२।

[१३] जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण, पृष्ठ १३२९, अन्यप्रकरणो में भी उन्होंने यह उल्लेख किया है, देखो जीवकाण्ड पृष्ठ ७५६ और कर्मकाण्ड पृष्ठ २०९६

[१४] 'गोम्मटसार', कर्मकाण्ड, रायचन्द्र-जैन-शास्त्रमाला (बम्बई १९२८) भूमिका पृष्ठ ५

मार्तण्डी' नामसे किया गया है। पं० मनोहरलाल[15] प्रो० घोषाल[16] मिस्टर जे० एल० जैनी,[17] श्रीमान् गांधी[18] और अन्य लोगोंने भी इसी प्रकारकी सम्मतियां प्रकट की हैं। गो० सारके कलकत्तासंस्करणके सम्पादक ग्रन्थके मुखपृष्ठ पर जी० प्रदीपिकाको केशववर्णीकी प्रकट करते हैं।

इस प्रकार पं० टोडरमल्लजी और उनके उत्तराधिकारियोंने, बिना किसी सन्देहके, यह सम्मति स्थिरकी है कि संस्कृत जी०प्रदीपिका का कर्ता केशववर्णी है। सम्भवतः निम्न पद्य, जैसाकि कलकत्तासंस्करण[19] में मुद्रित हुआ है, उनकी सम्मतिका अंतिम आधार है:—

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्तिं, वर्णिश्रीकेशवै' कृति'।
कृतेयमन्यथा किंचिद् विशोध्यंतद्बहुश्रुतै ॥

यह पद्य जिसरूपमें स्थित है उसका केवल एक ही आशय सम्भव है, और हम सहज ही में पं० टोडरमल्ल और उनके अनुयायिओंकी सम्मतिको समझ सकते हैं। परन्तु इस पद्यका पाठ सर्वथा प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जी० प्रदीपिकाकी कुछ प्रतियां ऐसी हैं जिनमें बिलकुल भिन्न पाठान्तर मिलता है। श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बई[20] की, जी०प्रदीपिका सहित गोम्मटसारकी एक लिखित प्रतिपर से हमें निम्न पद्य उपलब्ध होते हैं।

श्रित्वा कर्णाटिकीं वृत्तिं वर्णिश्रीकेशवैः कृताम्।
कृतेयमन्यथा किंचित्तद्विशोध्यं बहुश्रुतै ॥

श्रीमत्केशवचन्द्रस्य कृतकर्णाटवृत्तित'।
कृतेयमन्यथा किंचिच्चेत्तच्छोध्यं बहुश्रुत.॥

मालूम नहीं लगभग एक ही आशयके ये दो पद्य क्यों दिये गये हैं और इन्हें देते हुए रिपोर्टके सम्पादकने जो परिचयके रूपमें 'पाठान्तरम्' पदका प्रयोग किया है उसका क्या अभिप्राय है। पं० टोडरमल्ल द्वारा दिये गये पद्यके साथ पहले पद्यकी तुलना करने पर, हमें ध्यान खींचने योग्य भेद उपलब्ध होता है, और इन दोनों पद्योंसे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जी० प्रदीपिकाके लेखकने इनमें अपना नाम नहीं दिया, उसने अपनी टीका केशववर्णीकी कर्णाटवृत्ति पर से लिखी है और साथ ही यह आशा व्यक्त की है कि उसकी टीकामें यदि कुछ अशुद्धियां हों तो बहुश्रुत विद्वान उन्हें शुद्ध करदेनेकी कृपा करें।

उस प्रमाण (साक्षी) को जिसके आधारपर केशववर्णीको संस्कृत जी० प्रदीपिकाका कर्ता मान लिया गया है, पद्यके पाठान्तरोंने वास्तवमें बिगाड़ दिया है। यह दिखानेके लिये कि केशववर्णी संस्कृत जी० प्रदीपिकाका कर्ता है, दूसरा कोई भी प्रमाण भीतरी या बाहिरी उपस्थित नहीं किया गया, और यह तो बिल्कुल ही साबित नहीं किया गया कि यह टीका चामुण्डरायकी कर्णाटकवृत्तिके आधार पर बनी है। यह सच है कि गोम्मटसारसे हमें इस बातका पता चलता है कि चामुण्डरायने गो० सार पर एक देशी (जोकि कर्णाटकवृत्ति समझी जाती है) लिखी है। जी०प्रदीपिकामें केवल एक कर्णाटवृत्तिका उल्लेख मिलता है और उसमे चामुण्डराय के सम्बन्धका कोई भी उल्लेख नहीं है, न चामुण्डरायवृत्ति की कोई हस्तलिखित प्रति ही प्रकाश[21] मे आई है और न यह सिद्ध होनेकी कोई सम्भावना है कि संस्कृत जी० प्रदीपिका चामुण्डरायकी टीकाका अनुसरण करती है। इन

[15] गोम्मटसार जीवकाण्ड (बम्बई १६१६) भूमिका।

[16] द्रव्यसंग्रहः (S B J. I, आरा १६१७), भूमिका पृष्ठ ४१।

[17] गोम्मटसार, जीवकाण्ड (S B J V लखनऊ १६२७) भूमिका पृष्ठ ७

[18] गोम्मटसार मराठी अनुवाद सहित, शोलापुर १६३६, भूमिका पृष्ठ १

[19] जीवकाण्ड, पृष्ठ १३२६।

[20] रिपोर्ट १, वीरसम्वत् २४४६, पृष्ठ १०४–६।

[21] आर० नरसिंहाचार्यकृत 'कर्णाटककविचरिते', जिल्द १ पृष्ठ ४६–४६

परिस्थितियोंमें, यह दिखानेके लिये कि केशववर्णी संस्कृत जी० प्रदीपिकाका कर्ता है, कथित प्रमाण बाधित ठहरता है और अभी तक यह कहनेके लिये कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह जी० प्रदीपिका चामुण्डरायकी वृत्ति का अनुसरण करती है।

अब हमें यह देखना है कि संस्कृत जी० प्रदीपिकाका कर्ता कौन है और वह कौनसी कर्णाटकवृत्तिका अनुसरण करता है। मैं दो प्रशस्तियोंके प्रसंगोचित अंशोंको नीचे उद्धृत करता हूं, जिनमेंसे एक पद्यमें और दूसरी कुछ गद्यमें और कुछ पद्यमें हैं। ये दोनों प्रशस्तियां गो०सारके कलकत्ता संस्करण के अन्तमें ( पृष्ठ २०१७-८ ) मुद्रित हुई हैं।

(१) यत्र रत्नैस्त्रिभिर्लब्ध्वार्हन्त्यं पूज्यं नरामरैः।
निर्यान्ति मूलसंघोऽयं नन्द्यदाचन्द्रतारकम् ॥४॥
तत्र श्रीशारदागच्छे बलात्करगणोऽन्वयः।
कुन्दकुन्दमुनीन्द्रस्य नन्द्याम्नायोऽपि नन्दतु ॥५॥
यो गुणैर्गणभृद्गीतो भट्टारकशिरोमणिः।
भक्त्या नमामि तं भूयो गुरुं श्रीज्ञानभूषणम् ॥६॥
कर्णाटप्रायदेशेशमल्लिभूपालभक्तितः।
सिद्धान्तः पाठितो येन मुनिचन्द्रं नमामि तं ॥७॥
योऽभ्यर्च्य धर्मवृद्ध्यर्थं मह्यं सूरिपदं ददौ।
भट्टारकशिरोरत्नं प्रभेन्दुः स नमस्यते ॥८॥
त्रिविद्यविद्याविख्यातविशालकीर्तिसूरिणा।
सहायोऽस्यां कृतौ चक्रेऽधीता च प्रथमं मुदा ॥९॥
सूरेः श्रीधर्मचन्द्रस्याभयचन्द्रगणेशिनः।
वर्णिलालादिभव्यानां कृते कर्णाटवृत्तितः ॥१०॥
रचिता चित्रकूटे श्रीपार्श्वालयेऽमुना।
साधुसांगासहेसाभ्यां प्रार्थितेन मुमुक्षुणा ॥११॥
गोम्मटसारवृत्तिर्हि नन्द्यात् भव्यैः प्रवातता।
शोधयन्त्वागमात्किंचिद् विरुद्धं चेद् बहुश्रुताः ॥१२॥
निर्ग्रन्थाचार्यवर्येण त्रैविद्यचक्रवर्तिना।
संशोध्याभयचन्द्रेणालेखि प्रथमपुस्तकः ॥१३॥[२२]
यमाराध्यैव भव्यौघा प्राप्ताः कैवल्यसंपदः।
शश्वतं पदमापुस्तं मूलसंघमुपाश्रये ॥१०॥

तत्र श्रीशारदागच्छे बलात्कारगणो न्वयः।
कुन्दकुन्दमुनीन्द्रस्य नन्द्याद्दाचन्द्रतारकम् ॥११॥

तत्र श्रीमज्जिनधर्माम्बुधिवर्धन - पूर्णचन्द्रायमानश्रीज्ञानभूषणभट्टारशिष्येण सौगतसांख्यकणादभिक्षपादप्रभाकरादिप्रवादिगजगण्डभेरुण्ड प्रभाचन्द्रभट्टारकदत्ताचार्यपदेन त्रैविद्यविद्यापरमेश्वरमुनिचन्द्राचार्यमुखात्कर्णाटदेशाधिनाथप्राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीनिवासजनोत्तममल्लिभूपालप्रयत्नाद् अधीतसिद्धान्तेन वर्णिलालाविहिताग्रहाद्गौर्जरदेशाच्चित्रकूटजिनदाससाहनिर्मापितपार्श्वप्रभुप्रासादाधिष्ठितेनामुना नेमिचन्द्रेणाल्पमेधसाऽपि भव्यपुण्डरीकोपकृतीहानुरोधेन सकलज्ञातिशिरःशेखरायमाणखण्डेलवालकुलतिलकसाधुवंशावतंसजिनधर्माद्धरणधुरीणसाहसांगासाहसहसाविहितप्रार्थनाधीनेन विशदत्रैविद्यविद्यास्पदविशालकीर्तिसहायादिदं यथाकर्णाटवृत्तिव्यरचि।

यावच्छ्रीजिनधर्मश्चन्द्रादित्यौ च विष्टपं सिद्धा.।
तावन्नन्दतु भव्यैः प्रपठ्यमानात्वियं वृत्तिः॥
निर्ग्रन्थाचार्यवर्येण त्रैविद्यचक्रवर्तिना।
संशोध्याभयचन्द्रेणालेखि प्रथमपुस्तकः॥

इत्यभयनन्दिनामांकितायाम्।

इन दोनों प्रशस्तियोंपर से वृत्तमात्रका संक्षेपमें संग्रह करते हुए, हमें जी० प्रदीपिकाके कर्तृत्वविषयमें निम्न बातें मालूम होती हैं; और उनका ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की हस्तलिखित प्रतिसे समर्थन भी होता है :—

संस्कृत जी० प्रदीपिकाके कर्ता मूलसंघ, शारदागच्छ, बलात्कारगण, कुन्दकुन्द अन्वय और नन्दि आम्नाय के नेमिचन्द्र[२३] हैं। वे ज्ञानभूषण भट्टारकके शिष्य थे। उन्हें प्रभाचन्द्र भट्टारकके द्वारा, जोकि सफल वादी तार्किक थे, सूरि बनाया गया अथवा आचार्यपद प्रदान किया गया था। कर्णाटकके जैनराजा मल्लिभूपालके प्रयत्नोंके फलस्वरूप उन्होंने मुनिचन्द्रसे, जोकि 'त्रैविद्यविद्यापरमेश्वर' के पदसे

---

२२ ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बईकी लिखित प्रति परसे उद्धृतभाग, कुछ छोटे छोटे भेद दिखलाता है।

२३ पद्यात्मक प्रशस्ति उत्तमपुरुषमें लिखी गई है, इससे यह नामोल्लेख नहीं हुआ है।

विभूषित थे, सिद्धान्तका अध्ययन किया था। लालावर्णीके आग्रहसे वे गौर्जर देशसे आकर चित्रकूटमें जिनदासशाह द्वारा निर्मापित पार्श्वनाथके मन्दिरमें ठहरे थे। धर्मचन्द्र, अभयचन्द्र और अन्य सज्जनोंके हितके लिये, खण्डेलवालवंशके साह-सांग और साह सहेस[२४] की प्रार्थनापर उन्होंने अपनी संस्कृत जी०प्रदीपिका नामक टीका कर्णाटक वृत्तिका अनुसरण करते हुए, त्रैविद्यविद्याविशालकीर्तिकी सहायतासे लिखी। हमें बताया गया है कि प्रथम प्रति अभयचन्द्रने, जोकि निर्ग्रन्थाचार्य और त्रैविद्यचक्रवर्ती कहलाते थे, तय्यार की थी।

पद्यात्मक प्रशस्ति गद्यप्रशस्तिसे सभी मौलिकबातोंमें सहमत है, किन्तु यह कर्ताका नाम, अर्थात् नेमिचन्द्र, निर्देश नहीं करती, जोकि गद्यप्रशस्तिमें स्पष्टरूपमें दिया गया है। तफ़सीलकी बातोंमें पूर्ण सादृश्य होने और कोई स्पष्ट विरोध न होनेसे हर एकको यह स्वीकार करना पडता है कि प्रशस्तियोंके अनुसार नेमीचन्द्र ही जी० प्रदीपिकाका कर्ता है।

दूसरे, गोम्मटसारके अनेक अधिकारोंकी समाप्तिपर जी० प्रदीपिकाकी सन्धियां इस प्रकार पाई जाती हैं —

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनाम पंच-संग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकायां आदि।

स्वभावतः 'विरचितायां' पद 'जीवतत्त्व प्रदीपिकायां' पद का विशेषण है; और इस तरहसे भी हम जी० प्रदीपिकाके कर्तृत्वका सम्बन्ध आचार्य नेमिचन्द्रसे लगाएँगे।

तीसरे, 'आचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां' इस वाक्यांश का सम्बन्ध गोम्मटसारके साथ नहीं हो सकता। ये आचार्य नेमिचन्द्र, गो० सारके रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती से भिन्न होने चाहियें। जी० प्रदीपिकामें अनेक स्थलोंपर गो० सारके रचयिता का उल्लेख है और उनका वह उल्लेख प्रायः आवश्यकरूपमें उनकी प्रसिद्ध उपाधि सिद्धान्तचक्रवर्ती[२५] के साथ किया गया है।

चौथे, ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन की रिपोर्टके सम्पादकने, साफतौरपर जी० प्रदीपिकाका सम्बन्ध, सम्भवतः उसकी सन्धियोंके आधारपर, नेमिचन्द्रसे ठहराया है।

पांचवें, पं० नाथूरामजी प्रेमी[२६] ने, गो० सार टीकाके कर्ता ज्ञानभूषण हैं इस सम्मतिका विरोध करते हुए, यह प्रकट किया है कि उसके लेखक नेमिचंद्र हैं, और उन विवरणोंसे, जोकि उन्होंने प्रस्तुत किये हैं, यह स्पष्ट है कि उनकी दृष्टिमें जी० प्रदीपिका और उसका कर्ता रहा है।

अन्तको, पद्यात्मक प्रशस्तिमें नेमिचंद्र—विषयक उल्लेख का अभाव किसी बातको निश्चितरूपसे सिद्ध नहीं करता, और न यह कल्पनाकी किसी खींचातानीसे केशववर्णी द्वारा जी० प्रदीपिकाके कथित कर्तृत्वका समर्थन ही कर सकता है। हम केशववर्णीविषयक कुछ बातोको जानते हैं और वे प्रशस्तियोंमें दीगई बातोंके साथ मेल नहीं खातीं। इस प्रकार केशववर्णीको जी० प्रदीपिकाका रचियता बतलाने वाला कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है, प्रत्युत इसके, उपर्युक्त मुद्दे निश्चितरूपमें बतलाते हैं कि जी० प्रदीपिकाके कर्ता नेमिचंद्र हैं, और उनको गोम्मटसार[२७]के कर्ताके साथ नहीं मिलाना चाहिये।

रही यह बात कि जी० प्रदीपिकाने कर्णाटकवृत्तिका अनुसरण किया है, इसके सम्बन्धमें ऊपर उद्धृत किये गये दो पद्य निश्चितरूपसे बतलाते हैं कि केशववर्णीकी वृत्तिका अनुसरण किया गया है। इस वृत्तिकी लिखित प्रतियाँ आज

[२४] दोनों प्रशस्तियोंमें इन नामोंके कुछ भिन्न पाठभेद दिखाई देते हैं।

[२५] उदाहरणके लिए देखो, जीवकाण्ड पृ० ६४८ कर्मकाण्ड पृष्ठ ६०० कलकत्ता संस्करण

[२६] सिद्धान्तादि संग्रह' (माणिकचन्द दि० जैनग्रन्थमाला २१ बम्बई १९१२) प्रस्तावना पृष्ठ १२ का फुटनोट।

[२७] इस नामकी अर्थ व्याख्याके लिए देखो, मेरा 'गोम्मट' शीर्षक लेख जो 'भारतीय विद्या' बम्बई, जिल्द २ में प्रकाशित हुआ है।

भी उपलभ्य हैं। मैंने कोल्हापुरके लक्ष्मीसेनमठकी जीवकांड की इस वृत्तिकी एक लिखित प्रतिकी परीक्षा की है[२८]। इस कन्नडवृत्तिका नाम भी 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' है, और यह संस्कृत जी० प्रदीपिकासे कुछ बड़ी है। यह बहुतसे कन्नड पद्यों से प्रारम्भ होती है, जिन्हें स्वयं लेखकने रचा है। जिस तरह 'धवला' की रचना कुछ प्राकृतमें और कुछ संस्कृतमें हुई है उसी तरह यह वृत्ति कुछ कन्नडमें और कुछ संस्कृतमें है (जो कि मणिप्रवाल शैलीके तौरपर समझी जाती है), खासकर अपने प्रारम्भ में। इसमें स्थल-स्थलपर बहुतसे प्राकृत उद्धरण पाये जाते हैं। गो०सारकी गाथाएँ संस्कृतछाया सहित दीगई हैं और शब्दशास्त्र सम्बन्धी अनेक चर्चाएँ संस्कृतमें हैं।

केशववर्णी अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके शिष्य थे, और उन्होंने अपनी वृत्ति धर्मभूषण भट्टारकके आदेशानुसार शक सम्वत् १२८१ या ईस्वी सन् १३५९[२९] में लिखी है।

मैंने केशववर्णीकी वृत्तिकी तुलना अभयचंद्रकी मं०प्रबोधिकासेकी है और उसपरसे मुझे यह अनुभव हुआ है कि स्वयं केशववर्णीने अभयचन्द्रकी रचनाका पूरा २ लाभ लिया है। मैं केशववर्णीकी कन्नडवृत्तिमें अभयचंद्रविषयक कमसे कम एक खास उल्लेख बतला देनेके लिये समर्थ हूँ[३०]।

नेमिचंद्रकृत संस्कृत जी० प्रदीपिकाकी केशववर्णीकृत कन्नड जी० प्रदीपिकाके साथ तुलना करनेपर मुझे मालूम हुआ है कि पहली बिल्कुल दूसरीके आधारपर बनी है। नेमिचंद्रने कुछ अंशोंको जहां तहां छोड़ दिया है; संस्कृत अंश अपने उसीरूपमें कायम रखे गये हैं, और जो कुछ कन्नडमें है उसको अक्षरशः संस्कृतमें बदल दिया है। उन गाथाओंके सम्बन्धमें जिनपर कि मं० प्रबोधिका उपलब्ध नहीं है, नेमिचंद्रकी जी० प्रदीपिकामें ऐसी कोई भी बात नहीं है, जोकि केशववर्णीकी कन्नड जी० प्रदीपिकामें उपलब्ध न होती हो; और सम्भवतः यही कारण है जिससेकि नेमिचंद्र स्पष्ट कहते हैं:—'यथा कर्णाटवृत्ति व्यरचि' अथवा 'कर्णाटवृत्तितः'।

यहांपर मैं एक ध्यान खींचने वाला सार (जीवकाण्ड गाथा नं० १३) तीनों टीकाओंपरसे उद्धृत करता हूं, जिससे उन टीकाओंका पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट होजायगा।

मन्दप्रबोधिका[३१]

देशविरते प्रमत्तविरते इतरस्मिन्नप्रमत्तविरते च क्षायोपशमिकचारित्रलक्षण एव भावोवर्तते। देशविरते प्रत्याख्यानावरणकषायाणां सर्वघातिस्पर्द्धकोदयाभावलक्षणे क्षये, तेषामेव हीनानुभागरूपतया परिणतानां सदवस्थालक्षणे उपशमे च देशघातिस्पर्द्धकोदयसहिते उत्पन्नं देशसंयमरूपचारित्रं क्षायोपशमिकम्। प्रमत्तविरते तीव्रानुभागसंज्वलनकषायाणां प्रागुक्तलक्षणक्षयोपशमसमुत्पन्नसंयमरूपं प्रमादमलिनं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकम्। अत्र संज्वलनानुभागानां प्रमादजनकत्वमेव तीव्रत्वम्। अप्रमत्तविरते मन्दानुभागसंज्वलनकषायाणां प्रागुक्तक्षयोपशमोत्पन्नसंयमरूपं निर्मलं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकम्। तु शब्दः असंयतादिव्यवच्छेदार्थः। स खलु देशविरतादिषु प्रोक्तक्षायोपशमिकोभावः चारित्रमोहं प्रतीत्य भणितः तथा उपरि उपशमकादिषु चारित्रमोहं प्रतीत्य भणिष्यते।

केशववर्णीकृतकन्नड जी० प्रदीपिका[३२]

देशविरतनोळं[३३] प्रमत्तसंयतनोळं इतरनप्प अप्रमत्तसंयतनोळं क्षायोपशमिकसंयममक्कुं। देशसंयतापेक्षेयिदं प्रत्याख्यानकषायंगळुदयिसल्पट्टदेशघातिस्पर्द्धकानन्तैकभागानुभागोदयदोडने उदयमनेय्ददे क्षीयमाणंगळप्पविवक्षितनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्द्धकंगळनंत बहुभागंगळुदयाभावल (क्षण) क्षयदोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदय प्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्पुपशमसु दागुत्तिरलु समुद्भूतमप्पुदरिंदं चारित्रमोहमं

---

[२८] यह कागज पर लिखी हुई एक प्रति है। इसका परिमाण १२'५×८'५ इंच है और इसमें ३८७ पत्र हैं। प्रति लिपिका समय शक १२०६ दिया हुआ है जोकि स्पष्ट ही लिपिकारका प्रमाद है, जबकि हमें स्मरण है कि केशववर्णीने अपनी वृत्ति शक १२८१ में लिखी थी।

[२९] 'कर्णाटककविचरिते' (बेंगलौर १९२४) पृ० ४१५-१६।

[३०] देखो आगे दिया हुआ निष्कर्ष।

[३१] कलकत्तासंस्करण, पृ० ३६।

[३२] कोल्हापुरकी प्रति, पृ० १६।

[३३] यह टीका उस भाषामें लिखी गई है जो कि पुरानी कन्नड कहलाती है, जो कि कन्नड नहीं जानते, वे भी संस्कृत जी० प्रदीपिकाके साथ आसानीसे इसकी तुलना कर सकते हैं, और इसी उद्देश्यके लिये मैंने इसको देवनागरी अक्षरोंमें लिख दिया है। इसका बहुभाग कन्नड प्रत्ययोंके साथ संस्कृतमें लिखा गया है। यह होना ही चाहिये, क्योंकि लेखक विविध पारिभाषिक शब्दोंको, जो कि पूर्णतया संस्कृतके हैं, प्रयोग करनेके लिये बाध्य हुआ है।

कुरितु देशसंयममद्दु क्षायोपशमिकभावमेंदु पेलल्पट्टदु। अंते प्रमत्ताप्रमत्तर्गं संज्वलनकषायंगळ उदितदेशघातिस्पर्धकानंतैक-भागानुभागदाडने उदयमनेय्ददे क्षीयमाणंगळप्पविवक्षितोद-यनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागंगळुदयाभावलक्षण-क्षयदोडमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थाल-क्षणमप्प उपशममुंटागुत्तिरलु समुत्पन्नमप्पुदरिंदं चारित्रमोहमं कुरितिल्लियुं सकलसंयममुं क्षायोपशमिकभावमेंदु पेलल्पट्टु-देंदुदु श्रीयभयसूरिसिद्धान्तचक्रवर्तिगळभिप्रायं। अहंगेमेयु अपूर्वकरणादिगुणस्थानंगळोळं चारित्रमोहनीयमने कुरितु तत्तद्गुणस्थानगळोळु भावंगळरेयल्पड्वुवु॥

नेमिचन्द्रकी संस्कृत जी० प्रदीपिका[34]

देशविरते प्रमत्तसंयते तु पुनः इतरस्मिन् अप्रमत्तसंयते च क्षायोपशमिकसंयमलक्षणोभावो भवति। देशसंयतापेक्षया प्रत्याख्यानावरणकषायाणां उदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तबहु-भागानुभागोदयेन सहानुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषे-कसर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानामुदयाभावलक्षणक्षये तेषामु-परितननिषेकाणा अनुदयप्राप्ताना सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुद्भूतत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्य देशसंयमः क्षायोपशमिकभाव इत्युक्तम्। तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोरपि संज्वलनकषायाणा-मुदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागेन सह अनुदयाग-तक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागाना-उदयाभावलक्षणक्षये तेषा उपरितननिषेकाणा अनुदयप्राप्ताना सदवस्थालक्षोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात्चारित्रमोहं प्रतीत्या-त्रापि सकलसंयमोऽपि क्षायोपशमिकोभाव इति भणितं इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्यभिप्राय.। तथा उपर्यपि अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु चारित्रमोहनीयं प्रतीत्य तत्तद्गुण-स्थानेषु भावा ज्ञातव्या॥

इन सारसंग्रहोंसे यह स्पष्ट है कि नेमिचन्द्रने केशववर्णी का कितना गाढ अनुसरण किया है, केशववर्णीकी कन्नडशैली संस्कृत शब्दोंसे कैसी भरपूर है और वह कितनी सरलतासे संस्कृतमें अनुवादित कीजासकती है, और किस प्रकार केशव-वर्णी तथा नेमिचन्द्र दोनों हीने अभयचन्द्रका उल्लेख किया है

रही इन टीकाओंके समयकी बात, मं० प्रबोधिका ईस्वी सन् १३५९ से, जबकि केशववर्णीने अपनीवृत्ति समाप्त की थी, पहलेकी रचना है। अभयचन्द्रने अपनी मं० प्रबोधिकामें एक बालचन्द्र पंडितदेव[35] का उल्लेख किया है जिन्हें मैं वेही बालेन्दु पंडित समझता हूं जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोलके ईस्वी सन् १३१३ के एक शिलालेख[36] में हुआ है; और यदि यह बात मानली जाय तो हम उस समयको लगभग पचास वर्ष पीछे लेजानेमें समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त उनकी पदवियों—उपाधियों और छोटे २ वर्णनोंसे, जोकि उनमें दिये हुए हैं, मुझे मालूम हुआ है कि हमारे अभयचन्द्र और बाल-चंद्र, सभी सम्भावनाओंको लेकर वेही हैं जिनकी कि प्रशंसा बेलूर शिलालेखों[37]में कीगई है और जो हमें बतलाते हैं कि अभयचंद्रका स्वर्गवास ईस्वी सन् १२७९ में और बालचंद्रका ईस्वी सन् १२७४ में हुआ था। इस प्रकार हम परीक्षापूर्वक अभयचंद्रकी मं० प्रबोधिकाका समय ईस्वी सन् की १३वीं शताब्दीका तीसरा चरण स्थिर कर सकते हैं।

नेमिचंद्रने उस वर्षका, जिसमें उन्होंने अपनी जी० प्रदी-पिकाको समाप्त किया, कोई उल्लेख नहीं किया। चूंकि उन्होंने केशववर्णीकी वृत्तिका गाढ अनुकरण किया है, इस लिये उनकी जी० प्रदीपिका ईस्वी सन् १३५९ के बादकी है और साथ ही यह सम्वत् १८१८ या ईस्वी सन् १७६१ से पहलेकी है, क्योंकि इस सालमें पं० टोडरमलजीने संस्कृत जी० प्रदीपिका[38] का अपना हिन्दीअनुवाद पूर्ण किया है। यह काल अभीतक एक लम्बा चौड़ा फैला हुआ काल है, और हमें देखना चाहिये कि ये दोनों सीमाएं कहांपर अधिक निकट लाई जासकती हैं। नेमिचंद्रने ज्ञानभूषण, मुनिचंद्र, प्रभाचंद्र, विशालकीर्ति आदि अपने समकालीन बहुतसे व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख किया है, लेकिन जैनाचार्यों और साधुओंके सम्बन्धमें ये नाम इतनी अधिकतासे दुहराये गये हैं कि कोई भी ऐसी समानता जोकि केवल नामकी समानता पर ही आश्रित हो, कुछ भी मूल्य नहीं रखती, और यदि अन्य कोई प्रमाण न हो तो ऐसी समानताओंको लेकर प्रवृत्ति भी नहीं करनी चाहिये। हां, मल्लिभूपालविषयक उसका उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। मल्लिभूपालको कर्णाटकका

34 कलकत्तासंस्करण, पृ० ३६।

35 जीवकाण्ड, कलकत्तासंस्करण, पृ० १५०।

36 एपिग्रेफिया कर्णाटिका II No 65.

37 एपिग्रेफिया कर्णाटिका, जिल्द ५ संख्या १३१-३३।

38 जैनहितैषी, भा० १३ पृ० २२।

राजा और जैनोत्तम[३९] कहा गया है। ईस्वी सन् १३५६ और १७६१ के मध्यवर्ती समयमें हमें कर्णाटकके किसी ऐसे प्रधान जैन राजाका परिचय नहीं मिलता, और इसलिये हमें समझ लेना चहिये कि मल्लिभूपाल शायद कर्णाटकके किसी छोटेसे राज्यका शासक था। जैन साहित्यके उद्धरणोंपर दृष्टि डालने से मुझे मालूम होता है कि 'मल्लि' नामका एक शासक कुछ जैन लेखकोंके साथ प्रायः सम्पर्क को प्राप्त है। शुभचंद्र गुर्वावलीके अनुसार, विजयकीर्ति (ई० सन्की सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें) मल्लिभूपाल[४०]के द्वारा सम्मानित हुआ था। विजयकीर्तिका समकालीन होनेसे उस मल्लिभूपालको १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें रखा जासकता है। उसके स्थान और धर्म विषयका हमें कोई परिचय नहीं दिया गया है। दूसरे विशालकीर्तके शिष्य विद्यानन्द स्वामी[४१]के सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये मल्लिरायके द्वारा पूजे गये थे, और ये विद्यानन्द[४२] ईस्वी सन् १५४१ में दिवंगत हुए हैं। इससे भी मालूम होता है कि १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें एक मल्लिभूपाल था। हुमचका शिलालेख इस विषयको और भी अधिक स्पष्ट कर देता है—वह बतलाता है कि यह राजा जो विद्यानन्दके सम्पर्कमें था सालुव मल्लिराय[४३] कहलाता है। यह उल्लेख हमें मात्र परम्परागत किम्वदन्तियोंसे हटाकर ऐतिहासिक आधारपर लेआता है। सालुव नरेशोंने कनारा ज़िलेके एक भागपर राज्य किया है और वे जैन धर्मको मानते थे[४४]।

मल्लिभूपाल, मल्लिरायका संस्कृत किया हुआ रूप है; और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नेमिचन्द्र सालुव मल्लिरायका उल्लेख कर रहे हैं; यद्यपि उन्होंने उसके वंशका उल्लेख नहीं किया है। १५३० ईस्वीके लेख्यमें उल्लिखित होनेसे, हम सालुव मल्लिरायको १६वीं शताब्दीके प्रथमचरणमें रख सकते हैं, और उसके विजयकीर्ति तथा विद्यानन्द विषयक सम्पर्कके साथ भी अच्छी तरह संगत जान पड़ता है। इस तरह नेमिचंद्रके सालुव मल्लिरायके समकालीन होनेसे, हम संस्कृत जी० प्रदीपिकाकी रचनाको ईसाकी १६वीं शताब्दीके प्रारम्भकी ठहरा सकते हैं।

पं० नाथूरामजी प्रेमी[४५]ने नेमिचंद्रकी जी० प्रदीपिकाकी एक और प्रशस्तिका उल्लेख किया है, जोकि २६ अगस्त सन् १९१५ के जैनमित्रमें प्रकाशित हुई थी। उनके द्वारा दिये गये विवरण, ऊपर दी हुई दो प्रशस्तियोंके मेरे संक्षिप्तसारमें आजाते हैं। वे मल्लिभूपालका उल्लेख नहीं करते। चूँकि उन्होंने कोई निष्कर्ष नहीं दिया है, इसलिये हम नहीं जानते कि यह चीज़ उनसे छूटगई है या उस प्रशस्तिमें ही शामिल नहीं है। प्रेमीजीने उस प्रशस्तिपरसे यह एक ख़ास बात नोट की है कि संस्कृत जी० प्रदीपिका वीरनिर्वाण सम्वत् २१७७ में, जोकि वर्तमान गणनाके अनुसार ईस्वी सन् १६५० के बराबर है, समाप्त हुई है। यह समय मल्लिभूपाल और नेमिचंद्रको समकालीन नहीं ठहरा सकता। चूंकि असली प्रशस्ति उद्धृत नहीं की गई है, अतः इस उल्लेखकी विशेषताओंका निर्णय करना कठिन है। हर हालतमें, ईस्वी सन् १६५० जी० प्रदीपिकाकी बादकी प्रतिलिपिकी समाप्तिका समय है, नकि स्वयं जी०प्रदीपिकारचनाकी समाप्तिका समय।

साराश यह कि, संस्कृत जी०प्रदीपिकाका कर्ता केशववर्णी नहीं है; यह बताने वाला कोई प्रमाण नहीं है कि संस्कृत जी० प्रदीपिका गोम्मटसार की चामुण्डरायकृत कर्णाटकवृत्ति के आधारपर है; नेमिचंद्र, जोकि गो०सारके कर्तासे भिन्न हैं, संस्कृत जी०प्रदीपिकाके कर्ता हैं, और उनकी जी०प्रदीपिका कन्नड जी०प्रदीपिकाकी, जोकि केशववर्णी द्वारा ईस्वी सन् १३५९ में लिखी गई है, बहुत ज्यादा ऋणी है; और सालुव मल्लिरायके समकालीन होनेसे नेमिचंद्र (और उनकी जी० प्रदीपिका) को ईसाकी १६वीं शताब्दीके प्रारम्भका ठहराया जाना चाहिए।

३९ देखो, ऊपरकी प्रशस्तियाँ।

४० जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग १ किरण ४ पृ० ५४; और भण्डारकर ओरियंटलरिसर्चइंस्टिट्यूटके एनाल्स XIII, 1, पृ० ४१।

४१ जैनसिद्धान्तभास्कर, भाग ५ किरण ४ प्रशस्तिसंग्रहके पृ० १२५, १२८ आदि।

४२ डा० बी० ए० सालेटोरने विद्यानन्दके व्यक्तित्व एवं कार्यों पर अच्छा प्रकाश डाला है, देखो मिडियावल जैनिज्म (बम्बई १९३८) पृ० ३७१ आदि, 'कर्णाटकके जैन गुरुओंके संरक्षकके रूपमें देहलीके सुलतान' कर्णाटक हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग ४, १-२, पृ० ७७-८६; 'वादीविद्यानन्द' जैन एण्टिक्वेरी,४ किरण १ पृ० १-२०

४३ एपिग्राफिया कर्णाटिका भाग, VIII. नगर नं० ४६

४४ एपिग्राफिया कर्णाटिका, VIII प्रस्तावना पृ० १०, १३ ४ शिलालेखोंके आधारपर मैसूर और कुर्ग (लन्दन १९०९) पृष्ठ १५२-३ मिडियावल जैनिज्म पृष्ठ ३१८आदि

४५ सिद्धान्तसारादिसंग्रह (बम्बई १९२२), प्रस्तावना पृष्ठ १२

मुद्रक और प्रकाशक पं० परमानन्द शास्त्री वीर सेवामन्दिर, सरसावाके लिये श्रीवास्तव प्रिंटिंग प्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

# (धवल सिद्धान्त)

तीर्थंकर भगवान् की श्रुतांग वाणी से
सीधा सम्बंध रखने वाले जैन सिद्धान्त के
सब से प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रंथ के
दो भाग छप चुके हैं, तीसरा छप रहा है
और चौथा तैयार हो रहा है।

## मूल्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| शास्त्राकार प्र० भाग | १५) | पुस्तकाकार प्र० भाग | १०) |
| ,, द्वि० भाग | १२) | ,, द्वि० भाग | १०) |

नोट—शास्त्राकार प्रथम भाग की प्रतियां बहुत थोडी शेष रही है। अतएव दोनों भाग साथ लेने वालों को ही मिल सकेगी।

मंत्री
**श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,**
जैन साहित्य उद्धारक फंड
अमरावती

# आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी

द्वारा

कान्स्टीट्यूशन क्लब,

नई दिल्ली

में

आयोजित

# महावीर जयन्ती महोत्सव

का

विवरण

ता० ५ और ७ अप्रैल, १९५५

प्रकाशक:

गुलाब चन्द जैन

मंत्री, आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी

१७४९, हरदयाल गली, मालीवाड़ा, दिल्ली-६

# आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी, दिल्ली

के

# पदाधिकारी

## सन् १९५५

प्रधान : सेठ अचल सिंह, सदस्य लोक सभा, (आगरा, उत्तर प्रदेश)
उपप्रधान : सेठ श्रेयान्स प्रसाद जैन, सदस्य राज्य सभा, (बम्बई)
उपप्रधान : बाबू राजपत सिंह दूगड़, सदस्य राज्य सभा, (कलकत्ता, बङ्गाल)
उपप्रधान : सेठ आनन्द राज सुराना, सदस्य दिल्ली राज्य विधान सभा, (दिल्ली)
उपप्रधान : सेठ मोहन लाल कठोतिया, (दिल्ली)
मंत्री : श्री चीमनलाल चकुभाई शाह, सदस्य लोक सभा, (सौराष्ट्र)
मंत्री : श्री गुलाब चंद जैन, (दिल्ली)
मत्री : श्री भगत राम जैन, (दिल्ली)
कोषाध्यक्ष : श्री दौलत सिंह जैन, बी० एस.सी०, (दिल्ली)

---

प्रथमबार १५००

# भूमिका

स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली वार श्रमण भगवान महावीर का जयन्ती महोत्सव आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी के तत्वावधान में नई दिल्ली कंस्टीट्यूशन क्लब में चैत्र शुक्ल १३ मंगलवार, विक्रम सम्वत् २०१२ (५ अप्रैल, १९५५) को मनाया गया। यह विशाल आयोजन दो दिन का था। पहले दिन अर्थात् त्रयोदशी को उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, गृह मंत्री श्री गोविन्दवल्लभ पंत, संचारमंत्री श्री जगजीवन राम आदि महोत्सव में पधारे। दूसरे दिन पूर्णिमा वृहस्पतिवार ७ अप्रैल को राष्ट्रपति डा०राजेन्द्रप्रसाद, आचार्य काका साहब कालेलकर, डा० हीरालाल जैन, डा० ए० एन० उपाध्ये आदि ने पधार कर समारोह को सुशोभित किया। इनके अतिरिक्त दोनों दिन दूतावासों और केन्द्रीय सरकार के बहुत से अधिकारी, संसद सदस्य तथा अन्य विशिष्ट व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए।

सूचना और प्रसारण मंत्री डा० बालकृष्ण केसकर की कृपा से दोनो दिन के महोत्सव का पहली वार फिल्म डिविजन ने फिल्म तैयार किया। साथ ही आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र ने इस अवसर पर एक विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया। प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया और यूनाईटेड प्रेस आफ इंडिया तथा अन्य सवाददाताओं के महोत्सव सम्बन्धी विवरण सारे देश के समाचार पत्रो में प्रकाशित हुए।

इस विशाल प्रसार और प्रचार को ध्यान में रखते हुए व्याख्यानवाचस्पति श्री जैन मुनि मदनलाल जी, श्री पूज्य यतिवर श्री विजयसेन सूरि जी, हमारी कमेटी के उपप्रधान सेठ श्रेयान्सप्रसाद जैन आदि अनेक महानुभावो ने मुझ से इस महोत्सव का विवरण प्रकाशित करने का अनुरोध किया। उनके विचार में इसके प्रकाशन से भगवान महावीर की व्यापक अहिंसा, स्याद्वाद आदि सिद्धान्तो का प्रचार हो सकेगा। इससे हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू के विश्व शान्ति और पंचशील के सिद्धान्तो को भी समर्थन मिलेगा। इस लक्ष्य को सामने रखकर इस विवरण को तैयार करके प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है।

इस विवरण में जिन जिन राष्ट्र के कर्णधारो और महानुभावों के भाषण आदि संगृहीत करके प्रकाशित किये गये है उन सब को प्रेस में भेजने से पहले और वाद में अन्तिम प्रूफ दिखाकर छापा गया है।

इस सारी सामग्री को सही सही तैयार करने और जुटाने में सवसे अधिक सहयोग प्रदान करने वालो में श्री के० ऐस० मलिक, दिल्ली स्टेशन डायरेक्टर, आल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली, श्री बी० एन० कौल, प्रिन्सिपल प्राइवेट सक्रेटेरी, प्रधान मन्त्री श्री नेहरू और श्री आर० एल० हान्डा, प्रेस अटैची, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस विवरण को सुन्दर रूप से सजाने, रुचिकर वनाने और सम्पादन करने में सब से अधिक सहायता प्रदान करने वालो में मेरे घनिष्ठ मित्र राणा जंगवहादुर सिंह, सदस्य दिल्ली राज्य विधान सभा, दिल्ली, श्री जगदीशसहाय माथुर, एम० ए०, सहायक सम्पादक, "हिन्दुस्तान टाइम्स," नई दिल्ली, डा० वी० ए० सालातोर, डाइरेक्टर, नेशनल आरकाइवज आफ इंडिया, नई दिल्ली, श्री विश्वनाथ, सम्पादक, मासिक "सरिता" हिंदी और "कारवान" अंग्रेजी, नई दिल्ली और श्री यशपाल जैन है। इनके विना यह कार्य पूरा होना सम्भव न था। हमारे उपप्रधान सेठ श्रेयान्सप्रसाद की सद्भावना, प्रेरणा और सक्रिय सहयोग के परिणाम स्वरूप ही यह विवरण सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने में मै सफल हो सका हू।

अन्त में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, प्रधान मन्त्री श्री नेहरू, गृह मन्त्री श्री पन्त, आचार्य काका साहब कालेलकर, पं. वेचरदास, डा० हीरालाल जैन, मेजर जनरल श्री यदुनाथ सिंह, सैनिक सचिव तथा लेफ्टिनैन्ट करनल एम० गफरान, सहायक सैनिक सचिव राष्ट्रपति के हम अत्यन्त कृतज्ञ है। अपने सहयोगी और इस भगीरथ कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में हमारी कमेटी के प्रधान सेठ अचलसिंह उपप्रधान, सेठ श्रेयान्सप्रसाद,

श्री राजपत सिंह दूगड़ और सेठ मोहनलाल कठोतिया, मन्त्री श्री चीमनलाल चकुभाई शाह और श्री भगतराम जैन, कोषाध्यक्ष श्री दोलतसिंह जैन, लाला नन्हेमल जैन, लाला जसवन्तसिंह जैन, बाबू राजेन्द्रकुमार जैन, लाला जवाहर लाल राक्यान, श्री महताबचन्द जैन आदि के सक्रिय सहयोग को याद किये बिना मैं नहीं रह सकता। यह सब कुछ कार्य इन सब के सहयोग के परिणामस्वरूप सफल हो सका है।

इस विवरण के तैयार करने में भरसक प्रयत्न करने पर भी जो त्रुटियां रह गई हैं उनके लिये सुयोग्य पाठक उदारतापूर्वक मुझे क्षमा करें और भविष्य में सुधार करने के लिये सुझाव भेजने की कृपा करें।

२५५४ वीं<br>
महावीर जयन्ती।<br>
चन्द्रवार, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, विक्रम सम्वत् २०१३<br>
ता० २३ अप्रैल, १९५६<br>
वीर निर्वाण संवत् २४८२<br>
१७४१, हरदयाल गली, मालीवाड़ा<br>
दिल्ली-६

निवेदक<br>
गुलाब चन्द जैन<br>
मन्त्री<br>
आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी<br>
दिल्ली-६

---

विषय सूची

# महावीर जयन्ती महोत्सव

## मंगलवार, चैत्र शुक्ल १३, सं० २०१२

## ता० ५ अप्रैल, १९५५

चित्र—चार दृश्य

पृष्ठ



## बृहस्पतिवार, चैत्र पूर्णिमा, सं० २०१२

## ता० ७ अप्रैल, १९५५

चित्र—चार दृश्य

श्री जवाहरलाल नेहरू श्री राजपत सिंह दूगड़ और श्री गुलाब चन्द जैन के साथ पधार रहे हैं।

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त श्री राजपत सिंह दूगड़ और श्री गुलाब चन्द जैन के साथ पधार रहे हैं।

सेठ अचल भाषण दे हैं। कुर्सियो बायीं ओर से जगजीवन श्री गो पन्त, श्री जव लाल नेहरू, राधाकृष्णन् श्री गुलाब जैन बैठे हैं।
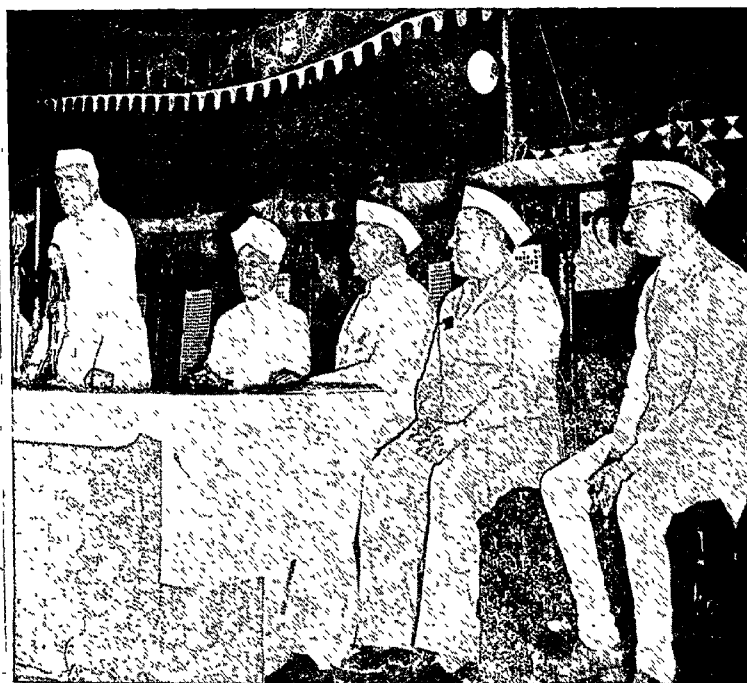
श्री नेहरू भा दे रहे हैं। कुर्सी पर बायीं ओर बैठे हुए ड राधाकृष्णन्, अचल सिंह, गुलाब चन्द और श्री राम जैन।

# श्रीमहावीरस्मृतिः

[न्यायविशारद श्री जैन मुनि न्यायविजयजी रचित]

(यह मुनि प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वान् हैं और कवि भी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्व० आचार्य श्री विजयधर्म सूरि जी के शिष्य हैं। इन्होने जैन न्याय और धर्म पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। आप बहुत बडे सुधारक और क्रान्तिकारी दार्शनिक हैं।)

## In the memory of Lord Mahavira

(*By* SHRI JAIN MUNI NIYAYA VIJAYA JI)

(He is a scholar of Prakrit, Sanskrit, Hindi and English and a poet. He is a disciple of the late Vijaya Dharam Suri Ji of international repute He has written several books on Jainism and Jain philosophy. He is a social reformer and a revolutionary philosopher)

॥ १ ॥

उच्चैर्महात्मा स दिदेश लोकान् युष्माकमाच्छेत्तुमसून् परस्य ।
नैवाधिकारः, प्रियमेव सर्वशरीरभाजां निजजीवनं हि ॥

उस महात्मा ने लोगो को जोरदार वाणी में कहा—"दूसरे के प्राण छीनने का आपको कोई अधिकार नहीं है। सभी प्राणियो को अपना जीवन प्रिय है।

To men Lord Mahavira highspiritedly preached: "You have no right whatso-ever to destroy the life of another. Life is as much dear to others as to you.

॥ २ ॥

परस्य दुःखीकरणं कषायविकारदुर्भावविवशेन हिंसा ।
प्रमादयोगः स्वयमेव हिंसा दुर्भावदृत्तिः पुनरुच्यते किम्? ॥

दूसरे को दुर्बुद्धि से दुःख देना यह भी हिंसा है। प्रमाद स्वयं ही हिंसा है तो दुर्बुद्धि का कहना ही क्या?

To give pain to others under the influence of evil feelings such as self-interest, temptation, anger or folly is also violence (HĪNSÁ). Carelessness by itself amounts to HINSA, then what to say of evil-mindedness.

॥ ३ ॥

न हिंसया सिध्यति धर्मतत्त्वं धर्मस्तु सन्तोषणतः परस्य ।
तेनैव संसिध्यति सौमनस्यं मिथो मनुष्येषु तथाऽऽत्मतोषः ॥

हिंसा से धर्मतत्त्व नहीं सधता। धर्म तो दूसरो को संतोष देने में है, इसी से मनुष्यो में परस्पर सौमनस्य (मैत्रीभाव) सध सकता है और साथ ही साथ आत्मसंतोष भी प्राप्त हो सकता है।

To attain Dharma (piety) through violence is impossible. Dharma is attained by making others happy. Mutual affectionate feelings and also self-satisfaction of men flow from the wish to make others happy.

॥ ४ ॥

हिंसाप्रसूतिः प्रतिहिंसकत्वं वैरेण वैरस्य परम्परा च ।
जगत्यहिंसाबलमुच्चकोटि विरोधिचेतांस्यपि नामयेद् यत् ॥

हिंसा से प्रतिहिंसा जन्मती है। वैर से वैर बढ़ता जाता है। जगत् में अहिंसा का बल बहुत जबरदस्त है, जो विरोधी लोगो के दिल को भी नमा सकता है।

Violence (HINSA) begets counter-violence. An act of hostility lets loose a flood of retaliatory acts The force of non-violence (AHINSÁ) is of a type so supreme that even hostile hearts may bend before it.

॥ ५ ॥

द्विजातयः क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः सर्वे विकासं स्वमलं विधातुम् ।
यावन् समुन्नन्तुमलं द्विजन्मा शूद्रोऽपि तावन्महिलाऽपि तावत् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र सभी अपना विकास साध सकते हैं। जितना विकास ब्राह्मण साध सकता उतना शूद्र भी साध सकता है और नारी भी साध सकती है।

Any one, whether he is a Brahmana, a Kshatriya, a Vaishya or a Shudra, i competent to make progress. A Shudra and a woman are as much competen to attain advancement as is a Brahmana.

॥ ६ ॥

उच्चो गुणे कर्मणि य. स उच्चो नीचो गुणे कर्मणि यः स नीचः ।
शूद्रोऽपि चेत् सच्चरितः स उच्चो द्विजोऽपि चेद् दुश्चरितः स नीचः ॥

गुण-कर्म में जो उच्च है वह उच्च है और गुण-कर्म में जो नीच है वह नीच है। शूद्र भी यदि सच्चरि हो तो वह उच्च है और ब्राह्मण भी यदि दुश्चरित्र हो तो नीच है।

Superior is he whose acts and qualities are superior, and inferior is he whos acts and qualities are inferior. A person having good character is superior, thoug he be a Shudra, and a person having bad character is inferior though h be a Brahmana.

॥ ७ ॥

आसन् द्विज-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रा भक्तेषु गेहि-श्रमणेषु तस्य[१] ।
सर्वात्मकल्याणसमानवृत्तिर्महान् क्षमी कारुणिकः स आसीत् ॥

महावीर देव के भक्त-उपासक गृहस्थों और साधुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब थे। सबकी तर कल्याणभावना जिनकी एकसरीखी है वे महावीर महान् क्षमाशील और परम कारुणिक थे।

Among the followers of Lord Mahavira, ascetics and house-holders ther were all classes of people—Brahmanas, Kshatriyas, Vaishyas and Shudras. Highl disposed to forbear and forgive and full of mercy he had but one aim, namely, t do good to all equally.

॥ ८ ॥

महावीरो विश्वप्रणतचरितो दुश्चरतपाः कृपापारावारोऽखिलजनहितारावनमनाः ।
जगद्व्यापि-श्रेयस्कर-विविधदृक्संगममयं प्रवक्ता पन्थानं निवसतु सदा नः स्मृतिभुवाम् ! ॥

समग्र जनो के हित के आराधन में मनोयोगवाले, दुष्कर तपोनिधि, कृपासिन्धु और विविध दृष्टिबिन्दुओं समन्वयरूप सर्वहितावह धर्ममार्ग के प्रवक्ता ऐसे विश्ववन्द्य चारित्रविभूति महावीर देव हमारे स्मृति-पट पर विराजमान रहो !

Let the divine Lord Mahavira be always enshrined in our hearts Mahavira who has been revered by humanity, who had practised the greates penance, who was an ocean of compassion, who had devoted his whole life t the cause of elevating mankind and who had showed the path which is universall beneficial and towards which all the differing systems of philosophy converge!

—मुनिन्यायविजयः पाटण (उत्तर गुजरात

—Muni Niyaya Vijaya, Patan (North Gujara

(स्वयम् रचयिता द्वारा हिन्दी अनुदित

(Translated into English by the author himself

(१) वीरस्य

# मंगलाचरण

(इतिहासतत्वमहोदधि आचार्य विजयेन्द्र सूरि जी द्वारा प्रस्तुत)

(यह वयोवृद्ध मुनि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त स्व० आचार्य विजयधर्म सूरिजी के सब से बडे शिष्य और उत्तराधिकारी है। भारतीय इतिहास और विशेषकर जैन इतिहास के मर्मज्ञ एवं निष्पक्ष विद्वान है। आपके पास अमेरिका, जर्मन, फ्रास, इगलैड, इटली आदि अनेक विदेशो से तथा भारतीय विद्वान जैन इतिहास व साहित्य की खोज में आते है। अन्तर्राष्ट्रीय विद्वद् जगत में आप बहुत प्रसिद्ध है। आपने सब से पहले भगवान महावीर की जन्म भूमि वैशाली पर ऐतिहासिक दृष्टि से एक "वैशाली" नाम की पुस्तक लिखी है। आपने भारतवर्ष के सभी ऐतिहासिक स्थानो का पैदल घूम घूम कर सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया है और इतिहास के विषय में कई पुस्तके भी लिखी है।)

वीर. सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीर बुधा सश्रिताः,
वीरेणाभिहत· स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः ।
वीरा-त्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल वीरस्य घोर तपो-
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचय. श्रीवीर! * भद्रं दिश ॥१॥

जो सब सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्रो से पूजित है, विद्वानो ने जिनका आश्रय ग्रहण किया है, जिसने अपने कर्म का समूह बिलकुल नष्ट कर दिया है, जिसको नित्य नमस्कार करना चाहिये। जिससे अनुपम तीर्थ का प्रचार हुआ है जिसकी तपस्या अति दुष्कर है और जिसमें विभूति, धीरज कीर्ति और कान्ति विद्यमान है ऐसे हे महावीर प्रभो! तू कल्याण दे।

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद्भुतश्रिया ।
महानन्दसरोराज,-मरालायार्हते नम. ॥२॥

जो स्वाभाविक अनन्त सुख में वैसे ही विचरण करता है, जैसे महान राज हस सरोवर में, उन अतिशयो की समृद्धिवाले श्रीमहावीर-प्रभु को नमस्कार हो ॥२॥

सर्वेषां वेद्यसामाद्य-मादिम परमेष्ठिनाम् ।
देवाधिदेव सर्वज्ञ श्री-वीर प्रणिदध्महे ॥३॥

सब ज्ञाताओ में मुख्य, पांचो परमेष्ठियो में प्रथम, देवो के भी देव और सर्वज्ञ ऐसे वीर भगवान का हम ध्यान करते है ॥ ३ ॥

* (नोट) इस श्लोक मे कवि ने भगवान की स्तुति करते हुए क्रमश सातविभक्तियो का तथा सम्वोधन करके अपनी कवित्व चातुरी का उपयोग किया है।

# आचार्य विजयेन्द्रसूरि जी महाराज का भाषण

आज से २५५३ वर्ष पहले भगवान महावीर का जन्म भया था। जन्म स्थान क्षत्रियकुण्ड था जो कि वैशाली के निकट स्वतन्त्र नगर था। पटना के उत्तर में २७ मील पर वैशाली (बसाढ) की पास बसुकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है यह विदेह देश में था जो कि गगा की उत्तर दिशा में है। वर्तमान में जो क्षत्रियकुण्ड माना जाता है वह तो लछुआड से चार मील जाने पर पर्वत के ऊपर जो स्थान है उसको माना जाता है। लछुआड़ में तो लिच्छिवियो का कभी भी राज्य नही था। बौद्ध ग्रन्थो और हिन्दुओ और आर्केआलोजीकल विभाग वाले भी सम्मत नहीं है। दिगम्बर और श्वेताम्बर शास्त्रो में विदेहदेश में ही भगवान का जन्म स्थान क्षत्रियकुण्ड में ही था न कि कुडलपुर में। भगवान राजकुमार थे पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। तीस वर्ष की अवस्था में उन्होने ससार त्याग किया था। इनके माता पिता पार्श्वनाथ भगवान के अनुयायी थे। साध्वावस्था में साढे बारह वर्षों तक तपस्या करके केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् जगत को उपदेश दिया कि किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट मत दो और पक्षपात में लिप्त न हो और अनेकान्तवाद को स्वीकार करो। यही उनके मुख्य उपदेश थे। सब के साथ मैत्रीभाव धारण करो याने ससार में किसी भी जीव के साथ बुराई मत करो और संसार में कोई भी जीव दुखी न हो और सब जीवो का कल्याण हो और स्वार्थ के लिये किसी भी प्राणी की जीवहिंसा न करो। भगवान ने जातिवाद का सर्वथा निषेध किया है। आत्मवत् सर्वभूतेषु के सिद्धान्त को धारण करो। ससार में हर एक जीव अपनी आत्मा का उद्धार करके निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। कर्म से ही ससार की वृद्धि होती है और कर्म के तोडने से ही सिद्धि होती है। इस लिये भगवान ने सब के लिये मार्ग खोल दिया है कि जिस से हर एक मनुष्य आगे बढ़सके। भगवान ने धर्म हर एक मनुष्य के लिये कहा है भगवान के उपदेश के समय सब को उपदेश सुनने का अधिकार था अतएव भगवान के मन्दिर में शुद्ध हो कर जा सकते है यह भावना भगवान के धर्म की ही थी। वर्तमान में कितनीक वस्तुयें देखने में आती है, सो सब दूसरे धर्मों का प्रभाव है। भगवान का धर्म जो आजतक जीवित है। इसका यही कारण है कि भगवान ने सब को समान भाव से देखा और जगत में जो हिंसा बढ गई थी उसको रोकने के लिए विशेष प्रयत्न किया। अतएव जैनो को भगवान के धर्म पर चलने के लिये आत्मत्याग की भावना धारण करनी चाहिये।

कर्म से ही जीव ब्राह्मण कहाता है, कर्म के कारण से ही जीव क्षत्रिय बनता है, कर्म से ही जीव वैश्य है, और कर्म से ही जीव शूद्र कहाता है। अतएव जन्म से जीव सब बराबर है। सस्कार से उसमें फेरफार होता है। अतएव मूलवस्तु पर ध्यान देना चाहिये। सक्षिप्त में जातिवाद में कुछ महत्त्व नहीं है।

---

# आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी के प्रधान सेठ अचलसिंह

का

# स्वागत भाषण

डा० राधाकृष्णन्, उपराष्ट्रपति तथा पं० जवाहरलाल नेहरू, प्रधान मन्त्री, भारत सरकार,

मैं अखिल भारतीय महावीर जयन्ती कमेटी के सदस्यो और भारतवर्ष के सारे जैनियो की ओर से आपका हृदय से स्वागत करता हूं ।

आज चैत सुदी १३ महावीर भगवान का जन्म दिन है। महावीर का जन्म आज से २५५३ वर्ष पूर्व हुआ था। यह प्राकृतिक नियम है कि जब जब ससार में घोर हिंसा, अत्याचार, अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तब तब एक ऐसे पराक्रमी, बलिष्ट, बलशाली आत्मा का इस पृथ्वी पर जन्म होता है जो उन अत्याचारो का अन्त कर दे। आज से २५०० वर्ष पूर्व इस भारत में घोर हिंसा, कलह और वैमनस्य पैदा हो गया था, यहां तक कि नरमेध यज्ञ तक होते थे। उस समय भगवान महावीर का अवतार हुआ और उन्होने अहिंसा, सत्य और प्रेम का आदर्श व सन्देश भारत के कोने कोने में पहुचाया। जिसके फलस्वरूप इस देश में अहिंसा, प्रेम और सत्य का व्यापक प्रचार हुआ।

बाद में काल की गति और अपनी दुर्बलताओ के कारण हम इन महात्माओ की शिक्षा को भूल गये और आपसी कलह और द्वेष ने हमारे देश में अपना घर बना लिया। इसकी हमें बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी, लगभग एक हजार वर्ष तक हमें गुलामी का नरक भुगतना पड़ा। पर हम भारतवासियों के सौभाग्य से महात्मा गांधी जैसा नररत्न हमारे देश में पैदा हुआ जिसने एक बार फिर हमें अहिंसा, सत्य और प्रेम के पथ पर अग्रसर करके दासता के बन्धन से मुक्त कराया। उसके फलस्वरूप आज हम एक स्वतन्त्र नागरिक की हैसियत से संसार में अपना मस्तक ऊंचा करके चल सकते है।

आज ससार दो गुटो में बंट गया है और हिंसा के मार्ग का अनुसरण कर रहा है। एक गुट एटम बम निकालता है तो दूसरा हाईड्रोजन बम। इस प्रकार वह विध्वसकारी सामान जुटा रहे है। इससे आज दुनियां में बडी अशान्ति फैल रही है। पर हर्ष का विषय है कि हमारे प्राणप्रिय प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अहिंसा, सत्य और प्रेम का मार्ग अपनाया है जिसका यह परिणाम हुआ है कि वह तीसरा युद्ध, जिसका नकशा हमारे सामने बन रहा था, अब बहुत दूर हो गया है और दुनिया की सारी ताकतें सोचने लगीं है कि हिंसामय तरीको को छोडा जाय। यह स्पष्ट है कि आज के ससार में लोगो को "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को अपनाना पडेगा। वरना ससार नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

आज अहिंसा, प्रेम, सत्य के मार्ग को अपनाने की परम आवश्यकता है। भारतवासियो को सच्चे माने में अहिंसा के सिद्धान्त को समझना होगा और उसे कार्यरूप देना होगा। साथ साथ हम को आपस के दलगत, सम्प्रदायगत, जातिगत तथा सभी प्रकार के मतभेदो को भुलाकर भगवान महावीर और राष्ट्रपिता गाधी के बताए मार्ग पर चलकर विश्व में शान्ति स्थापित करनी होगी। मैं एक बार फिर समस्त जैन ससार की ओर से आपका स्वागत करता हू और निवेदन करता हूं कि भगवान महावीर के जीवन पर दो शब्द कहने की कृपा करें।

## स्वागत

आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी के उपप्रधान सेठ श्रेयान्स प्रसाद जैन ने उपराष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, गृह मत्री तथा सचार मंत्री को कमेटी की ओर से फूल मालायें पहनाईं।

# उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

## के

## अंग्रेजी व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तर

ईस्वी पूर्व ८०० से २०० वर्ष तक का काल इतिहास का धुरीण युग माना गया है। दूसरे शब्दो में इस काल के भीतर संसार की विचारधारा सजड प्रकृति के अध्ययन से हटकर मानवीय जीवन के अध्ययन की ओर मुड गई। चीन में लाओत्से कन्फ्यूशियस; भारत में उपनिषदो के ऋषि, महावीर और गौतम बुद्ध, ईरान में जोरोस्टर, जुडिया में बड़े बड़े पैगबर और यूनान में पैथागोरस, सुकरात और प्लेटो जैसे महान दार्शनिक—इन सब महापुरुषो ने अपना ध्यान बाह्य प्रकृति से हटा कर मनुष्य की अन्तरात्मा के परिशीलन की ओर दिया।

आज हम इन्हीं महापुरुषो में से एक—भगवान महावीर—की जन्म-जयन्ती मना रहे हैं। महावीर को 'जिन' अर्थात् विजेता की उपाधि प्राप्त है। किन्तु उन्होने किसी देश को नहीं जीता। उन्होने विजय प्राप्त की थी अपने अन्तरग पर। वे 'महावीर' कहलाये—इस कारण नहीं कि उन्होने ससार के किन्हीं युद्धो में भाग लिया हो, किन्तु उन्होंने अपनी अन्त-र्वृत्तियो से युद्ध कर उन पर विजय प्राप्त की थी। दृढता के साथ तप, सयम और आत्मशुद्धि एवं ज्ञानोपासना के द्वारा उन्होने मनुष्य जीवन में ही देवत्व प्राप्त कर लिया था। अत. हम जो आज उनकी जयन्ती मना रहे हैं, उसका ध्येय यही है कि उनके उदाहरण से दूसरो को भी आत्म-विजय के उच्च आदर्श की ओर बढने की स्फूर्त्ति मिल सके।

यह देश अपने इतिहास के प्रारभ से आज तक इसी आदर्श पर अटल रहा है। जब हम मोहेन्जोदडो और हडप्पा के युग से ले कर वर्त्तमान काल तक के प्रतीको, प्रतिमाओ व सस्कृति के अन्य स्मारको पर दृष्टि डालते हैं, तब हमें इसी परम्परा का स्मरण हो जाता है कि जो कोई आत्मा के प्रभुत्व तथा उसके जड तत्त्व की अपेक्षा उत्कर्ष की भावना को स्थापित करता है वही आदर्श पुरुष होता है। आज लगभग चार पांच हजार वर्षों से यही आदर्श हमारे देश के धार्मिक वातावरण में ओतप्रोत हो रहा है।

उपनिषदो का संसार प्रसिद्ध वाक्य है 'तत्त्वमसि' जो ब्रह्म है सो तू है। इस वाक्य के द्वारा मानवीय आत्मा में देवत्व की योग्यता स्थापित की गई है। इसके द्वारा हमें इस बात को समझने के लिए सचेत किया गया है कि नश्वर देह को अथवा चचल मन को ही आत्मा मान लेने की भ्राति नहीं करनी चाहिये। भौतिक शरीर से तथा विचलित होने वाले मन से आत्मा अधिक उत्कृष्ट तत्त्व है जो प्रत्येक व्यक्ति में है, तथापि वह इन्द्रिय गोचर नहीं है। अर्थात् आत्मा मूर्त्तिमान कदापि नहीं बनाई जा सकती। मनुष्य का व्यक्तित्व कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो केवल ससार चक्र में फेंक दी गई हो। वह सजीव है जिसके कारण उसका दर्जा प्रकृति और समाज के भौतिक वातावरण से ऊचा उठा हुआ है। यदि हम मानवीय आत्मा के आभ्यन्तर तत्त्व को नहीं पहचान सकते, तो हम अपने आपको नष्ट कर बैठते हैं। हम में से अधिकाश सासारिक आसक्तियो में ही अपने को खो बैठे हैं। हम भौतिक पदार्थो—स्वास्थ्य, धन, सम्पत्ति, घर-द्वार में ही अपने को भूले हुए हैं। हम स्वयं इनके वशीभूत हो गये हैं। वे हमारे आधीन नहीं रहे। ऐसे व्यक्ति अपनी आत्मा का घात करते है—वे ही 'आत्महनो जना:' कहलाते हैं। इसी कारण हमारे देश में हमें 'स्वाधीन' बनने का उपदेश दिया गया है। 'अध्यात्म-विद्या विद्यानाम्' सब विद्याओ में अध्यात्म-विद्या ही श्रेष्ठ है। उपनिषद का कथन है 'आत्मान विद्धि' अपने आप को समझो। शंकराचार्य ने आध्यात्मिक जीवन के लिये आवश्यक बतलाया है 'आत्म अनात्म वस्तु विवेक' जड और चेतन का भेद-ज्ञान, क्योकि 'आत्मलाभान्न पर विद्यते' आत्म लाभ से बडा ससार में कोई लाभ नहीं। इसी लिये नाना ग्रथकारो ने कहा है कि वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो ससार की समस्त विभूतियो का उपयोग अपने अभ्यन्तरीभूत आत्मा के उत्कर्ष की अनुभूति के लिये करता है। उपनिषद में अनेक वाक्यो द्वारा यही प्रतिपादन किया गया है कि पति-पत्नी तथा धन-सपत्ति आदि सब आत्मानुभूति के साधन मात्र है—आत्मनस्तु कामाय। जो कोई सयम तथा निर्दोष जीवन के द्वारा अपने परम पद को प्राप्त कर लेता है वही परमात्मा है। जो सर्वथा

स्वाधीन हो जाता है वही 'अर्हत्' है, वह जन्म-मरण तथा काल के वशीभूत नहीं रहता।

भगवान महावीर हमारे सन्मुख एक ऐसे आदर्श पुरुष के रूप में उपस्थित है जिन्होने ससार के सब पदार्थों का परित्याग किया और जो भौतिक बधनो में फसकर नहीं रहे। वे आत्म तत्त्व के उत्कर्ष का अनुभव प्राप्त करने में सफल हुए। इस आदर्श पर हम किस प्रकार चले, किन साधनाओ के द्वारा हम इस आत्मानुभव और स्वाधीनता की प्राप्ति कर सकते है, इन प्रश्नो के उत्तर हमारे शास्त्रो में निहित है। हमारे शास्त्र बतलाते है कि यदि हम आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो हमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन का अभ्यास करना चाहिये। भगवद्गीता में कहा गया है—'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया' महावीर भगवान ने भी दर्शन, ज्ञान और चारित्र के निर्देश द्वारा ही इन्हीं तीन तत्त्वो का प्रतिपादन किया है। हम में विश्वास होना चाहिये, श्रद्धा होनी चाहिये कि सांसारिक वस्तुओ के परे भी कोई अधिक उत्कृष्ट पदार्थ है। केवल भक्ति—अन्ध-भक्ति से काम नहीं चलेगा। हमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जो मनन द्वारा प्राप्त होता है। चिन्तन के द्वारा ही श्रद्धा और विश्वास के आधारभूत विषयो को ज्ञान और प्रकाश के तत्त्वो में परिवर्तित किया जा सकता है। किंतु केवल सैद्धांतिक ज्ञान भी पर्याप्त नहीं है। 'वाक्यार्थज्ञानमात्रेण नामृतम्' केवल शब्द ज्ञान द्वारा अमर जीवन प्राप्त नहीं किया जा सकता। हमें उन महान सिद्धान्तो को अपने जीवन में भी उतारना चाहिये। अत चरित्र का होना भी उतना ही अनिवार्य है। हम दर्शन, प्रणिपात अथवा श्रवण से प्रारम्भ करके मनन परिप्रश्न पर पहुचते है और वहा से फिर निदिध्यासन, सेवा या चरित्र पर। जैन आचार्यों ने बतलाया है कि आत्मानुभव की प्राप्ति के लिये इन तीनो की परमावश्यकता है। चरित्र अर्थात् सदाचार के कौन से नियम है? इसके लिये विविध व्रतो के धारण करने का उपदेश दिया गया है। प्रत्येक जैन को पाच व्रत धारण करना आवश्यक होता है—अहिंसा, अमृषा, अचौर्य, अमैथुन और अपरिग्रह। किन्तु इन पाचो में अहिंसा की ही प्रधानता है। अहिंसा के कुछ उपासक तो कृषि का भी परित्याग कर देते है। क्योकि कृषि में पृथ्वी पर हल चलाने से सूक्ष्म जीवो का घात होता है। यद्यपि इस संसार में हिंसा से सर्वथा अपने को बचाना असम्भव है, इसी से महाभारत में कहा गया है—'जीवो जीवस्य जीवनम्' जीव ही तो जीवन का अन्न है; तथापि हमारा यह कर्त्तव्य है कि जहा तक हो सके अहिंसा के क्षेत्र का विस्तार किया जाए। 'यत्नाद् अल्पतरा भवेत्' अपने प्रयत्न द्वारा हिंसा के क्षेत्र का सकोच और अनुनय के क्षेत्र का विस्तार किया जाए। इस प्रकार अहिंसा वह आदर्श है जिसे हमने अपना लक्ष्य बिन्दु बनाया है।

जब हम अहिंसा के इस आदर्श को स्वीकार कर लेते है, तब उसके परिणामस्वरूप हमें उस सिद्धान्त को भी अपनाना पड़ता है जो जैन धर्म के अनेकान्तवाद में पाया जाता है। जैनियो का कहना है कि केवल ज्ञान प्राप्त करना हमारा आदर्श है। किन्तु सामान्य जीवन में हमें केवल आशिक तत्त्वज्ञान ही प्राप्त हो जाता है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है, उसके विविध पक्ष हुआ करते है, वह मिश्र रूप है, उसके नाना गुण धर्म होते है। लोगो को वस्तु के इस अग का या उस अंग का बोध होता है जिससे उनका मत एकागी प्रायोगिक सभावनात्मक ही हो सकता है। ऐसे मतों में पूर्ण सत्य नहीं पाया जाता। संपूर्ण सत्य का दर्शन तो उन्हीं को हो सकता है जिन्होने राग-द्वेषात्मक वृत्तियो पर विजय पा ली है। इस बात का ज्ञान हो जाने से हमें यह विश्वास होने लगता है कि जिसे हमने सत्य समझ रखा है वह यथार्थत. सत्य न हो। इससे हमें मानवीय धारणाओ की अनिश्चयता का बोध भी होने लगता है। इससे हमें यह भी विश्वास होने लगता है कि हमारी गभीरतम धारणाए भी परिणमनशील और अनित्य हो सकती है। जैनी छ अधे मनुष्य और हाथी के दृष्टान्त के द्वारा अपने उक्त सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करते है। एक हाथी के कान पकड़ पाता है और कहता है कि हाथी सूप के समान होता है। दूसरा उसके पैर का आलिंगन करता है और कहता है कि हाथी खभे के समान है। इस प्रकार उनमें से प्रत्येक पूर्ण सत्य के एक अश को ही हमारे सन्मुख रख पाता है। इन पाक्षिक सत्यो को परस्पर विरोधी नहीं समझना चाहिये। उनका आपस में प्रकाश और अधकार जैसा विरोधात्मक सम्बन्ध नहीं है। उन्हें विरोधी नहीं, किन्तु भिन्न ही मानना चाहिये। वे सत्य के वैकल्पिक रूप है।

आज संसार नूतन जन्म के क्लेशो का अनुभव कर रहा है। हम एक सयुक्त जगत के ध्येय को अपना लक्ष्य बना रहे है। किन्तु एकत्व की अपेक्षा भिन्नत्व ही हमारे युग का विशेष लक्षण बना हुआ है। दो ससारो की योजना में हम में से बहुतों को यह प्रलोभन होता है कि यह अच्छा है और वह बुरा है। अतएव बुरे का निराकरण किया जाय। किन्तु यथार्थत

उन्हें विकल्प अर्थात् एक मौलिक सत्य के अनेक चलायमान पक्ष मान कर चलना ही उचित है। सत्य के किसी भी एक अंश पर अधिक जोर देना उसी प्रकार दूषित है जैसा कि उक्त अन्धो का हाथी के एक अंग का स्पर्श करके उसी को पूरे हाथी के आकार की धारणा है।

वैयक्तिक स्वातंत्र्य और सामाजिक न्याय, ये दोनो ही बाते मानव हित के लिये परमावश्यक है। हम एक को बढ़ा-चढ़ा कर और दूसरे को घटा कर वर्णन कर सकते है। किंतु जैन अनेकान्तवाद, सप्तभंगी नय व स्याद्वाद का कोई अनुयायी उस प्रकार के संस्कार बंध को स्वीकार नहीं करेगा। उसकी भावना तो अपने व दूसरो के मतो में सत्यासत्य का विवेक कर उन में समन्वय स्थापित करने की होगी। यही मनोवृत्ति हम सभी की होनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान महावीर के जीवन में हम संयम की आवश्यकता, अहिंसात्मक सदाचार, सहिष्णुता तथा दूसरों के दृष्टिकोणो का समुचित मूल्यांकन आदि अनेक पाठ सीख सकते है। यदि हम इन बातो को स्मरण रख सके और इन सिद्धान्तो को अपने हृदय में भली प्रकार अंकित करके यहां से विदा हो सके तो हम उस महापुरुष के प्रति अपने ऋण का कुछ परिशोध करने में सफल हुये कहे जा सकेगे। धन्यवाद।

(अनुवादक : डा० हीरालाल जैन)

# प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू

## का

# भाषण

बहनो और भाइयो,

डाक्टर राधाकृष्णन के भाषण के बाद कुछ मुनासिब नहीं होता कि अब मैं बोलूं। बहुत सारी बातें उन्होंने कही हैं। गहरी बातें हैं जिन पर हमें और आपको विचार करना चाहिए, सोचना चाहिए, महज सुन के भूल नहीं जाना चाहिए। अलावा इसके कि जब सेठ अचलसिंह जी और कुछ और मित्र मेरे पास आये थे मेरी दावत करने यहां, तो एक इकरार पर मैंने आना स्वीकार किया था। और वह यह था कि स्पीच देने के लिये मुझे न कहियेगा। आप जानते हैं कि स्पीच देने से कुछ मैं बहुत भागता नहीं हूं अक्सर देनी पड़ती है लेकिन अब तक मेरी समझ में नहीं आया कि हम कोई उत्सव मनायें या उसको पबलिक मीटिंग समझ कर लोगों को खड़ा कर दें स्पीच देने के लिये। अजीब हालत है कि कोई और जरिया नहीं है हमारा कुछ काम करने का सिवाय स्पीच देना और सुनना। तो आप ही इस बात का इन्साफ करें कहा तक कि ये जैन सिद्धान्त हैं कि सेठ अचलसिंह जी मुझ से एक बात कहें और करें दूसरी बात यहां।

अगर कोई माने हो सकते हैं ऐसे दिनो के जब हम बड़े आदमियों की याद करते हैं; एक ही माने हैं कि जो उनका सन्देशा है उसको याद करें और उससे कुछ लाभ उठायें और तो कोई माने है नहीं। कुछ यह खयाल मुझे आता है कभी कभी कि हम उस की तरफ ध्यान कम देते हैं और ऊपर से कुछ तमाशा करने की तरफ अधिक देते हैं। हम समझते हैं कि हमारा कर्त्तव्य पूरा हो गया। हम सब यह करते हैं मैं कुछ शिकायत से नहीं कहता। हम गांधी जी का नाम बडे जोर जोर से लेते हैं और गाधी जी ने जो कहा उसकी याद कम करते हैं। तो अब आज एक बहुत बड़े महापुरुष की जयन्ती है और यह उचित है, मुनासिब है, कि हम उनकी याद करें और य भी याद करें खास कर आज कल की दुनिया में जो कि बहुत टेढ़ी दुनिया है और बहुत खतरनाक दुनिया है, क्यो खतरनाक हुई कैसे ये बड़े बडे प्रश्न उठे? अब यह तो इतिहास की बात है और हमारे ढूढने की बात है और तलाश करने की। एक दूसरे को बुरा भला कहने से तो कुछ होता नहीं या एक देश दूसरे देश को कहे कि उसका कुसूर है, आजकल तो यह बहुत होता है कि एक देश के जो नेता है वो सारा इलजाम दूसरे देशो पर लगाते हैं और दूसरा देश उन पे लगाता है। और सारा समय इसी में सर्फ होता है। ये तो एक फिजूल सी बात है। एक बात बिगड जाती है तो उसमें कुछ न कुछ बिगाडने में हाथ हर एक का होता है जिस का उसमें दखल है। तो अब ऐसे मौके पर तो और भी जरूरी हो जाता है कि कुछ हम अपने दिमाग को और दिल को टटोलें और समझें कि आखिर मामला क्या है आजकल की दुनिया में? क्या उसमें खराबी हुई क्या अच्छाई? खाली एक रटे हुये सबक को दोहराने से कोई बात नहीं होती है और हिन्दुस्तान में शायद और देशो से अधिक रटे सबको को दोहराने की आदत है। बगैर जरा सोचे समझे बडी बडी अच्छी अच्छी बातें हैं उनको हम दोहरा देंगे एक मत्र की तरह से या हम लिख देंगे जैसे चारो तरफ यहा लिखी हुई है। यह करना है, सच बोलो, दूसरों को दुख न दो, जाहिर है अच्छी बातें हैं भाई इसमें क्या सन्देह है लेकिन उस का तर्जुमा करना अपनी जिन्दगी में दूसरी बात है और इसका तर्जुमा करना खाली अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में नहीं बल्कि अपनी राष्ट्रीय कौमी जिन्दगी में और भी मुश्किल। और बढिये अन्तर्राष्ट्रीय जिन्दगी में उसका तर्जुमा करना तो बहुत ही कठिन हो जाता है और काबू के बाहर हो जाता है। लेकिन अगर हमें आज कल की बातें समझनी हैं तो यही करना है जो कुछ हम कर सकें। हम कोई दुनिया में तो बडा असर नहीं कर सकते है लेकिन आखिर एक व्यक्ति भी ठीक रास्ते पर चले तो कुछ न कुछ उसका असर होता ही है बड़े प्रश्नो पर भी। मैं तो जितना विचार करता हूं सोचता हू और मैं तो कोई आप जानते है हमारे वाइस प्रेसीडेन्ट साहब का सा मैं कोई ऊंचे दर्शन को तो नहीं जानता हू न समझता हूं, न मैं कोई फिलासफर हूं, मैं तो एक, क्या कहूं, एक

मजदूर हूं, कामगार हू, जो कि रोजमर्राह के काम में लगा रहता हू। कभी कभी, जाहिर है, फिर भी मजबूरी से सोचना पड़ता है कि आखिर यह काम हो क्या रहा है। यह काम महज झख मारना है या इसके कुछ कुछ माने भी हैं। लेकिन आमतौर से काम में फसे रहते हैं सुवह से शाम तक। बहुत सोचने की भी फुरसत होती नहीं। लेकिन सवाल उठता है कि सब काम के माने क्या है? कुछ आखिर माने हैं अपने लिये नहीं व्यक्तिगत रूप से लेकिन अपने देश के लिये या दुनिया के लिये। कहा वह हमें ले जाता है। यह दुनिया में जो खेल हो रहा है यह क्या है? तरह तरह के एटम बम, हाईड्रोजन बम का चर्चा है आखिर इसके माने क्या है? क्या जवाब है इन सब बातो का? आखिर में कोई इन जबरदस्त हथियारो का जवाब नजर नहीं आता यानी हथियार का जवाब हथियार कोई जवाब नहीं हुआ। अलावा इसके यह भी जवाब नहीं था पहले भी और अब तो जवाब हुआ ही नहीं, जब एटम बम, हाईड्रोजन बम ऐसे हो गये कि वह दुश्मन को तबाह करें तो करे, अपने को भी तबाह कर देते हैं। जो कोई उसे चलाये तो वह खुद खतरे में पड़ जाता है अपने ही हथियार से दुश्मन के हथियार को छोड़े आप। तो जवाब क्या उनका? हथियार का जवाब तो नहीं रहा। यह बात तो बहुत बुजुर्गों ने कही, महापुरुषो ने कि हथियार का जवाब हथियार से नहीं, यह सही है, लेकिन एक माने में आजकल की दुनिया में वह करीब करीब साबित होता जाता है। पहले अगर किसी के दिमाग में शक हो तो अब वह शक नहीं। जरा भी विचार करे कि एटम बम का जवाब है ही नहीं। एटम बम या हाईड्रोजन बम कुछ और चीज है, और, जवाब क्या उनका है? क्योकि बहुत बड़ा सवाल है यह दुनिया के लिये भी हमारे लिये। यह इत्तफाक है इस लडखड़ाती दुनिया में, बहुत मुल्को के मुकाबले में हम महफूज है। हम उतने खतरे में नहीं जितने और मुल्क है और उसकी बड़ी वजह यह कि हम किसी और मुल्क से लडाई नहीं लड़ना चाहते। हम अपने मुल्क में रहा चाहते है किसी और मुल्क में दखल नहीं दिया चाहते। तो हम महफूज तो हों लेकिन असल में कोई भी महफूज नहीं है जो दुनिया में आग लगे। तो फिर क्या जवाब है। बाज लोग कहते है कि एटम बम को रोक देना चाहिए कानून से। नही बनना चाहिए उसके कोई और कार्यवाही उस सिलसिले में नहीं होनी चाहिए लेकिन जितना मैं सोचता हू यह बात चलने वाली नजर नहीं आती है। कह दिया आप ने कि न हो, वह छुप के हो सकता है हर तरह से हो सकता है। न भी हो तो और बातें हो सकती है उसके सिलसिले में यानी उसको हम काम में ला सकते है। मामूली कामो के लिये हम काम लायें तो हमारे पास सारा सामान तो है उसका अगर हमारे पास उसकी एटोमिक एनर्जी को काम में लाने का सामान है, यानी शान्तिमय तरीको से, तो उसको बहुत तेजी से कोई आदमी बदल सकता है। दूसरी तरफ एक दफा तो मुश्किल है यह भी कहना कि उस को बन्द कर दो। या न करो वह तो एक चीज आ गई और आ गई तो हटती नहीं, सामने है, तो क्या करें। न उस को बन्द कर सकते है न उसका उसी तरीके से जवाब है तो जवाब दूसरी तरफ से ही हो सकता है। आखिर में जवाब उसका तो गालिबन एक ही हो सकता है वो क्या कहू आप से सिद्धान्त से उसूल से इंसान की जरा दूसरी तरफ देखना। आखिर हमने गांधी जी के नेतृत्व में तो कोई बहुत कुछ नही किया लेकिन उन्होने बडे सिद्धान्त हमारे सामने रखे थे, जो हमारे देश के महापुरुषो के है, पुराने सिद्धान्त है, कोई नये नहीं थे। खाली उसको वह राजनीति में ले आये थे। क्या था उसके पीछे कि हम एक शक्ति का, महाशक्ति का, मुकाबिला वैसे ही न करें, हम हथियार का मुकाबला हथियार से न करें, लेकिन एक दूसरी तरह की शक्ति से करें जो कि एक, क्या कहूं, एक मौरल कहिये। स्प्रिचुअल कहिये जो कुछ है एक इसान के अन्दर से जो निकले, और वह इम्तिहान हिन्दुस्तान ने पास किया। कुछ किया कुछ नहीं किया और जो कुछ किया उससे ये नतीजे हमने हासिल किये। यानी मतलब यह है कि एक बडे हथियार का मुकाबला दूसरे ढंग से हुआ। मुकाबला हुआ, ताकत से हुआ, बलिदान से हुआ, लेकिन दूसरे ढंग से हुआ। वह दूसरा ढंग ऐसा था कि जिस में हथियार का चलना उतना आसान नहीं था, मुश्किल था। इसी तरह से यह एटम बम का चलना मुमकिन है बहुत मुश्किल हो जाय अगर उसका मुकाबला दूसरे ढंग से हो। गरज कि दुनिया में एक जमाना आ गया है कि बुनियादी बातो को हरएक को सोचना है यही बुनियादी बातें कि किस तरह से आजकल के खतरो का सामना दुनिया कर सकती है। उस तरह से तो नहीं कर सकती जो मामूली समझे जाते हैं कोई दूसरा ढूंढ़ना है तो इन बातों में जो आज के दिन सबक आपके सामने जिनका जिक्र डाक्टर राधाकृष्णन कर रहे थे और उससे काफी रोशनी पडती है हमारे सोचने पर हमारे अमल पर।

जय हिन्द।

# आल इंडिया महावीर जयंती कमेटी
के
# मन्त्री श्री गुलाबचन्द जैन
का
# धन्यवाद भाषण

आज इस शुभ अवसर पर हमारे भारत के उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन्, प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू, गृहमन्त्री प० गोविन्द बल्लभ पन्त और संचार मन्त्री श्री जगजीवनराम आदि ने यहां पधार कर हमारी कमेटी को ही नहीं किन्तु भारत के सारे जैन समाज को भी कृतार्थ किया है।

श्रमण भगवान महावीर केवल जैन समाज के ही न थे अपितु वे सारे भारत और विश्व के थे। उन्होंने सारे विश्व को अपना अहिंसामय सदेश देते हुए कहा, "जिन्दा रहो और जिन्दा रहने दो"। वह दिन दूर नहीं है जब कि दुनिया को महावीर की अहिंसा के सन्देश पर विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये तन-मन-धन से अमल करना होगा। आज हमारे प्रधानमन्त्री उसी प्राचीन सन्देश को संसार के सामने पुकार पुकार कर दुहरा रहे हैं और व्यथित जगत् यह अनुभव कर रहा है कि उस पर अमल करने में ही उसका कल्याण है।

अन्त में मैं विशेष रूप से आदरणीय उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री, सचारमन्त्री व माननीय विदेशी तथा भारतीय अतिथियों के प्रति, जिन्होंने कष्ट उठा कर इस शुभ अवसर पर यहा पधारने की कृपा की है, अपनी कमेटी की ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूं। यहां की व्यवस्था में जो भी कमी रह गई हो उसके लिए अपनी कमेटी की ओर से मैं क्षमा याचना भी करता हू। साथ ही उन सब साथियो को, जिन्होंने इस उत्सव को सफल बनाने में तन-मन-धन से सहायता दी है, मैं धन्यवाद देता हूं। यह सब उनके सहयोग का ही फल है कि इतना बड़ा विशाल आयोजन सफल हो सका है। भगवान् महावीर की जय।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद सेठ अचल सिंह और श्री गुलाब चन्द जैन आदि के साथ पधार रहे हैं।

महावीर जयन्तीमहोत्सव में श्रोताओं का एक दृश्य।

राष्ट्रपति भाषण दे रहे हैं, कुर्सियो पर सेठ श्रेयान्स प्रसाद, सेठ अचल सिंह और श्री गुलाब चन्द जैन आदि बैठे हैं।

श्री गुलाब चन्द जैन भाषण दे रहे हैं। पीछे कुर्सियो पर सेठ श्रेयान्स प्रसाद, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद सेठ अचल सिंह आदि बैठे हैं।

# महावीराष्टक स्तोत्र

(कविवर भागचन्द्र कृत)

(यह १९वीं-२०वीं शताब्दी के जैन विद्वान थे। सस्कृत भाषा पर उनको अच्छा अधिकार था। वह ईशागढ, जिला ग्वालियर, (मध्य भारत) के रहने वाले थे। उनकी कृतिया 'सत्तास्वरूप", "पदसग्रह" तथा "महावीराष्टक" जैन समाज में सर्वत्र प्रचलित हैं। आपने कई ग्रथो की टीका की है। आपने विक्रम संवत् १९१९ में प्रमाण परीक्षा की टीका गोपाचल के निकट जहा सिंधिया राजा का कटक (सेना) रहता था लश्कर के पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में बैठकर लिखी थी। यह विद्यानन्दाचार्य की स्वोपज्ञ प्रमाण परीक्षा नामक ग्रंथ की हिन्दी टीका है। आप न्याय शास्त्र के विशेष विद्वान् थे। आपकी निम्नलिखित कृतिया भी उपलब्ध हैं, पर वे अभी अप्रकाशित हैं —"ज्ञानसूर्योदयनाटक", "अमितगतिश्रावकाचार", "उपदेश रत्नमाला" आदि।

# MAHAVIRASTAKA STOTRA

(BY KAVI BHAGACHANDRA)

He was a Jain scholar of the 19th and 20th centuries. He had a good command over the Sanskrit language. He belonged to Ishagarh, Gwalior District, (Madhya Bharat). His works—"Sattaswarup", "Padsangrah" and "Mahavirastaka" are very popular in the Jain community He had written commentaries on several works. In Vikram Era 1919 he wrote his commentary on "Praman Pariksha" in the Jain temple of Parshavnath near Gopachal where the army of the Scindia ruler lived. This is the Hindi commentary of Vidyanandacharya "Praman Pariksha". His skill in jurisprudence was well-known His following works are also available but they have not yet been published.—

"Gyansuryodaya Natak", "Amitgatisharvakachar" "Updesh Ratanmala" etc.

(१)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचित, सम भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिता ।
जगत्-साक्षी मार्ग-प्रकटनपरो भानुरिव यो, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु न ॥

जिनके केवल ज्ञान रूपी दर्पण में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-त्रिविध रूप से युक्त अनन्तानन्त जीव और अजीव पदार्थ एक साथ झलकते रहते हैं; जो सूर्य के समान जगत् के साक्षी हैं और सत्यमार्ग का प्रकाश करने वाले हैं, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन पथ पर विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes—Lord Mahavira in whose consciousness, as in a mirror, are reflected simultaneously the infinite (range of) animate and inanimate objects characterised by origination, permanence and destruction, and who, like the Sun, a witness to the (activities in) the world, is engaged in revealing the path (of religion)

(नोट) बहुत से सज्जन जब इस स्तोत्र को एक साथ पढ़े, तब तो 'भवतु न' कहना चाहिये। यदि कोई एक हो पढ़ने वाला हो तो 'भवतु मे' बोलना चाहिये।

( २ )

अताम्र यच्चक्षु:-कमल युगलं स्पन्दरहितं, जनान् कोपापायं प्रकटयति वाऽभ्यन्तरमपि ।
स्फुट मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वाति विमला, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

जिनके लालिमारहित और अचंचल नेत्र कमल, दर्शक जनता को, अन्तहृदय के क्रोधाभाव की अर्थात् समभाव की सूचना देते है, जिनकी ध्यानावस्थित प्रशान्त वीतरागमुद्रा अतीव शुद्ध एवं पवित्र मालूम होती है, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन पथ पर विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes—Lord Mahavira the pair of whose lotuslike eyes, which is not red, and not winking, as it were, reveals to the people the absence of anger, though it is internal, and whose taintless personality, full of peace, spreads its soothing influence.

( ३ )

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणिभा-जाल-जटिल, लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भव-ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जल वा स्मृतमपि, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु न. ॥

जिनके चरण कमल, नमस्कार करते हुए इन्द्रो के मुकुटो की मणियो के प्रभापुज से व्याप्त हैं, और स्मरण-मात्र से संसारी जीवो की भवज्वाला को जलधारा के समान पूर्णरूप से शात कर देते हैं, वे भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes—Lord Mahavira the pair of whose shining lotuslike feet, obscured by the volume of the lustre of the jewels in the crowns of the series of lords of heaven that are bowing down, is capable of extinguishing the flames of the worldly bondage of embodied beings, like water, though it is (simply) remembered.

( ४ )

यदर्च्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह, क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

भला जिनकी साधारण सी स्तुति के प्रभाव से जब नन्दन मेंढक जैसे तुच्छ भक्त भी, क्षणभर में, प्रसन्न चित्त अनेकानेक सद्गुणो से समृद्ध, सुख के निधि स्वर्गवासी देवता बन जाते हैं; तब यदि भक्त शिरोमणि मानव मोक्ष का अजर-अमर आनन्द प्राप्त कर लें, तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का? इस प्रकार परम दयालु भगवान् महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes—Lord Mahavira by the power of whose worship, the Frog, glad at heart, became a god endowed with a multitude of virtues, and a treasure of bliss, in a moment, then what wonder is there, if good devotees attain the fund of ultimate bliss?

( ५ )

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो, विचित्रात्माऽप्येको नृपतिवर-सिद्धार्थ-तनयः ।
अजन्माऽपि श्रीमान् विगत-भव-रागोऽद्भुत-गतिर्महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

जो तप्त स्वर्ण के समान उज्ज्वल कान्तिमान् होते हुए भी अपगत तनु=शरीर के मोह से रहित थे, ज्ञान के पुंज थे, विचित्र आत्मा=विलक्षण आत्मा होते हुए भी एक=अद्वितीय थे, राजा सिद्धार्थ के पुत्र होते हुए भी अजन्मा=जन्मरहित थे, श्रीमान्=शोभावान होते हुए भी संसार के राग से रहित थे, अद्भुत ज्ञानी थे, वे भगवान महावीर स्वामी सर्वदा हमारे नयन-पथ पर विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes--Lord Mahavira who is an embodiment of knowledge, devoid of body, though possessed of lustre of shining gold, one, though of mysterious spirit, the son of the great king Siddhartha, possessed of fortune though devoid of birth, whose attachment for world is lost and who is of mysterious ways

( ६ )

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल-विमला, बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

जिन की वाणी की गंगा विविध प्रकार के नयो की अर्थात् वचन पद्धतियो की तरंगो से विमल है, अपने अपार ज्ञान जल से अखिल विश्व की संतप्त जनता को स्नान कराकर शांति देती है=भवताप हरती है, आज भी बडे बडे विद्वानरूपी हंसो द्वारा सेवित है, वे भगवान महावीर स्वामी हमारे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes--Lord Mahavira whose speech-Ganges is clear with the waves in the form of various Nayas or points of views and which (i.e. Ganges) bathes the people in the world by the water of great knowledge and which even now is associated with the swans in the form of wise men.

( ७ )

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः, कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः ।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

संसार में कामरूपी योद्धा कितना अधिक विकट है? वह त्रिभुवन को जीतने वाला है, उसके वेग को महान् से महान् शूरवीर भी नहीं रोक सकते। परन्तु जिन्होने अपने आध्यात्मिक बल के द्वारा, उस दुर्दान्त कामदेव को भी नित्यानन्द-स्वरूप प्रशम पद के राज्य की प्राप्ति के लिए, भरपूर यौवन अवस्था में पराजित किया, वे भगवान महावीर स्वामी हमारे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes--Lord Mahavira by whom was conquered the excellent warrior in the form of cupid, of irresistible force and conquerer of the three worlds, even in his boyhood, because of his power, for the attainment of the kingdom of the stage where eternal bliss and peace are shining

( ८ )

महामोहातंक-प्रशमन-पराऽऽकस्मिक-भिषग्, निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गल-करः ।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो, महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु नः ॥

जो मोहरूपी भयंकर रोग को नष्ट करने के लिए जनता के आकस्मिक वैद्य बन कर आए थे, जो विश्व के नि:स्वार्थ बन्धु थे, जिनका यश त्रिभुवन में सर्वविदित था, जो जगत का मगल करने वाले थे, जो संसार से भयभीत साधु पुरुषों को एक मात्र शरण देने वाले थे, जो एक से एक उत्तम गुणों के धारक थे; वे भगवान महावीर स्वामी हमारे नयन-पथ पर सदा विराजमान रहें।

Let (that) Lord Mahavira be within the range of my (or our) eyes—Lord Mahavira, who came as an unrivalled physician of the people capable of curing the highly dangerous disease of delusive attachments, who was a selfless friend of the virtuous mankind, whose power in the three worlds was self-evident, who was the benefactor of the world, who gave protection to the monks afraid of the world, and who exemplified in himself the excellence of all virtues,

(९)

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या "भागेन्दुना" कृतम्।
य. पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्॥

भगवान महावीर स्वामी का यह आठ श्लोकों वाला स्तोत्र, 'भागचंद्र' ने बडी भक्ति के साथ बनाया है। जो साधक इस स्तोत्र को पढेगा अथवा सुनेगा, वह परम गति को प्राप्त करेगा।

Whoever recites, or hears, devotedly this hymn, consisting of eight stanzas in praise of Lord Mahavira composed by **Bhagendu,** attains the highest goal.

(हिन्दी अनुवादक जैनमुनि उपाध्याय कविवर श्री अमरचन्दजी)
(Translated into English by Dr. A. N. Upadhye, Kolhapur)

# "परम गुरु जैन कहो क्यों होवे"

## मुनि कविवर वाचक श्री यशोविजयजी उपाध्याय रचित

### (गायनाचार्य श्री जयदेव गुप्त द्वारा प्रस्तुत)

*राग धनाश्री—तीन ताल (पद तीन)*

(श्री वाचक जैन मुनि यशोविजय जी उपाध्याय—समय १७वीं शताब्दी। पिता का नाम—नारायण व्यवहारी—वणिक। माता का नाम—सौभाग्यदेवी। जन्म स्थान का नाम—कनोडु गाव—पाटन (उत्तर गुजरात) के पास। दो भाई थे, जसवन्त और पद्मसिंह। गुरु का नाम नयविजय वाचक। दीक्षावस्था का नाम यशोविजय।

यह बडे विद्वान थे। इन्होने काशी और आगरा में रह कर न्याय, अलकार और व्याकरण शास्त्र का गभीर तलस्पर्शीय अध्ययन किया था। काशी में ही विद्वत् सभा में जय प्राप्त करके "न्याय विशारद" की पदवी पाई थी। जैन समाज में यह दूसरे हेमचन्द्राचार्य हुए हैं, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें अधिकतर तर्कप्रधान दर्शन शास्त्र सम्बन्धी हैं और अन्य ग्रन्थ अध्यात्म विषय के हैं। भाषा में भी इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है और बड़े बडे मार्मिक स्वाध्याय, भजन व रास लिखे हैं। तर्क के गहन विषयो को भी इन्होंने भाषा में उतार कर अधिक सरल रीति से दर्शाया है।

न्याय खडन खाद्य, न्यायालोक, गुरुतत्त्व विनिश्चय, आध्यात्ममत परीक्षा, पातजल योग सूत्र की—वृत्ति प्रभृति इनके सैंतीस ग्रन्थ तो मुद्रित हो चुके हैं और दूसरे ऐसे ग्रन्थ आज तक अमुद्रित पडे हैं। कितने ही तो उपलब्ध न होने के कारण दुष्प्राप्य से हो गए हैं। प्रस्तुत कवि जब काशी से लौट कर अहमदावाद आये तब गुजरात के उस समय के सूबेदार मोहब्बत खा ने इनका वडा स्वागत किया। यशोविजयजी अवधान भी करते थे। वह बडे तार्किक और प्रतिभा सम्पन्न कविराज थे और सर्व धर्म समभावी आध्यात्मिक पुरुष थे। इनका स्वर्गवास डभोई (वडौदा) में हुआ। जहा उनकी समाधि वनी हुई है।)

(१)

जैन कहो क्यो होवे।

परम गुरु जैन कहो क्यों होवे, गुरु उपदेश बिना जन मूढा,<br>
दर्शन जैन बिगोवे, परम गुरु जैन कहो क्यो होवे। टेक।

हे परम गुरु! आप अनुग्रह करके यह बताइये कि जैनत्व का वास्तविक लक्षण क्या है? जो जन गुरु के सद् उपदेश को नहीं सुन पाते वे मूढ कहाते हैं। जैन दर्शन की शुद्ध धारा को वे दूषित करते हैं।

(२)

कहत कृपा निधि सम जल झीले, कर्म मयल जो धोवे,<br>
बहुल पाप-मल अग न धारे, शुद्ध रूप निज जोवे।

कृपानिधि गुरुदेव कहते हैं कि समत्व के निर्मल जल में स्नान कर जो अपना कर्म-मल धो डालता है और फिर कभी पाप-मल से लिप्त नहीं होता वह ही अपने शुद्ध स्वरूप को देख पाता है।

(३)

स्याद्‌वाद पूरन जो जाने, नय गर्भित जस वाचा,
गुन पर्याय द्रव्य जो बूझे, सोई जैन है साचा ।

जो स्याद्वाद् के सिद्धान्त को पूर्ण रूप में जानता है, जिसकी वाणी नय विचार गर्भिता है और जिसे द्रव्य, गुण व पर्याय का बोध हो गया है, वस्तुतः वही सच्चा जैन कहा सकता है ।

(४)

क्रिया मूढ़मति जो अज्ञानी, चालत चाल अपूठी,
जैन दशा उनमें ही नाही, कहे सो सब ही जूठी ।

जिस अज्ञानी की बुद्धि जड क्रिया से विवेक विकल बन गई है और जो विपरीत पथ पर चल पड़ा है उसमें जैनत्व का लवलेश भी नही है, वह जो कुछ भी कहता सुनता है, सब झूठ ही झूठ है ।

(५)

पर परनति अपनी कर माने, किरिया गर्वे गहेलो,
उनकुं जैन कहो क्युं कहिये, सो मूरख में पहिलो ।

जो पुद्‌गल परिणति ही आत्म परिणति मान बैठा है, और जो जड़ क्रिया में अगुआ होने का गर्व करता है, उसे जैन कैसे कहा जा सकता है? वह तो मूर्खों में भी पहला मूर्ख है ।

(६)

ज्ञान भाव ज्ञान सब मांही, शिव साधन सर्द्दहिये,
नाम वेषसू काम न सीझे, भाव-उदासे रहीये ।

शिवत्व के उपकरणो में मुख्य भावेन ज्ञान ही श्रद्धा के योग्य कहा गया है । नाम मात्र से और वेष मात्र से लक्ष्य की संसिद्धि नहीं हो सकती । अन्तर मन में अनासक्ति का होना भी परम आवश्यक है ।

(७)

ज्ञान सकल नय साधन साधो, क्रिया ज्ञान की दासी,
क्रिया करत धरतु हे ममता, याहि गले में फांसी ।

सर्व दृष्टियो से ज्ञान की साधना करो । क्योकि क्रिया तो ज्ञान की चेरी है । ज्ञान शून्य क्रिया ममत्व भाव को बढाती है और वास्तव में ममता ही तो गले की फांसी है ।

(८)

क्रिया विना ज्ञान नहीं कबहुं, क्रिया ज्ञान बिन नाहीं,
क्रिया ज्ञान दोऊ मिलत रहतु है, ज्यो जल रस जल मांही ।

विना क्रिया के ज्ञान नहीं और न कभी विना ज्ञान के क्रिया होती है । ज्ञान और क्रिया में वैसा ही सुमेल है जैसा कि जल में जल का अपना रस रमा रहता है ।

(६)

क्रिया मगनता वाहिर दीसत, ज्ञान शक्ति जस भांजे,
सद्‌गुरु सीख सुने नहीं कबहुं, सो जन जनतें लाजे ।

वाहर में तो जो क्रिया में मग्न दीखता है परन्तु भीतर में जिस की ज्ञान शक्ति भग्न हो चुकी है और कभी अपने सद्‌गुरु की सीख नहीं सुनता वह पाखंडी साधक जन जन के सामने लज्जा भार से अवनत होता है।

(१०)

तत्त्व बुद्धि जिन की परनति है, सकल सूत्र की कूंची,
जग जसवाद वदे उनही को, जैन दशा जस ऊची ।

हे यश! जिसकी तत्त्व बुद्धि रूप परिणति सकल शास्त्र की कुजी है और जिस का जैनत्व भाव उच्च स्तर का है समूचा ससार उसका ही यशोगान करता है।

(हिन्दी अनुवादक :—श्री विजयमुनि जी, साहित्यरत्न)

———

# आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी के प्रधान सेठ अचलसिंह का स्वागत-भाषण

आदरणीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद,

मैं अखिल भारतवर्षीय महावीर जयन्ती कमेटी के सदस्यो और समस्त जैन जगत् की ओर से आप का हृदय से स्वागत करता हू।

भगवान महावीर का जन्म दिवस चैत सुदी १३ है, इस अवसर पर भारत में अनेक स्थानो में जयन्ती सप्ताह मनाया जाता है। वह तीन दिन पेश्तर और तीन दिन बाद तक मनाया जाता है। उसी के अनुसार आज महावीर जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है।

आज से २५५३ वर्ष पूर्व बिहार प्रदेश में वैशाली में भगवान महावीर का जन्म हुआ था। भगवान महावीर के पिता का नाम राजा सिद्धार्थ और मातेश्वरी का नाम त्रिशला क्षत्राणी था। भगवान ३० वर्ष गृहस्थ आश्रम में रहे। १२॥ वर्ष घोर तपस्या की। केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद ३० वर्ष तक विहार करके लाखों स्त्री पुरुषो को अहिंसा, सत्य, और प्रेम का सन्देश दिया। जिसके फलस्वरूप भारत में अहिंसा और सत्य का साम्राज्य हुआ।

बिहार प्रदेश एक पुण्य भूमि है जिसने समय समय पर अनेक महापुरुषो को जन्म दिया। जैसे महात्मा बुद्ध, अशोक, बिम्बसार, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त आदि। वर्तमान समय में हमारे राष्ट्रपति जी को जन्म देने वाला भी यही प्रदेश है।

राष्ट्रपति जी, आपने अपने त्याग, शान्ति और सरल स्वभाव के कारण भगवान महावीर के अहिंसा व प्रेम-मय सन्देश को अपनाया है। वास्तव में आप का दर्जा उनके अनुयायियो में बहुत ऊचा है।

प्राचीन जैन साहित्य से आपको बडा प्रेम है। आप इसकी खोज करा रहे है और साथ साथ प्रकाशन की व्यवस्था भी करा रहे हैं। मैं आपकी जैन समाज की ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूं और विश्वास दिलाता हूं कि वह हर प्रकार से आपका हाथ बंटाने को तैयार है।

भगवान महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व भारत को अहिंसा, सत्य और प्रेम का सन्देश दिया जिसके फलस्वरूप सैकड़ो वर्षों तक वह वातावरण चलता रहा।

पर बाद में काल की गति और अपनी कमजोरियों के कारण हम इन महात्माओ की शिक्षा को भूल गये और आपसी कलह और द्वेष ने हमारे देश में अपना घर बना लिया। जिसकी हमें बड़ी महगी कीमत चुकानी पडी, जिसके कारण लगभग एक हजार वर्ष तक हमें गुलामी का नरक भुगतना पडा। पर हम भारतवासियो के सौभाग्य से महात्मा गान्धी जैसे नररत्न हमारे देश में पैदा हुए जिन्होने एक बार फिर हमें अहिंसा, सत्य और प्रेम के पथ पर अग्रसर करके हमें दासता के बन्धन से मुक्त कराया। उसके फलस्वरूप आज हम स्वतत्र हुए और एक स्वतत्र नागरिक की हैसियत से संसार में अपना मस्तक ऊंचा करके चल सकते है।

आज ससार दो गुटों में बंट गया है और हिसा के मार्ग का अनुसरण कर रहा है। एक गुट एटम बम निकालता है तो दूसरा हाईड्रोजन बम, इस प्रकार वह विध्वसकारी सामान जुटा रहे है। इस से आज दुनिया में बडी अशान्ति फैल रही है। पर हर्ष का विषय है कि हमारे प्राणप्रिय प्रधान मंत्री प० जवाहरलाल नेहरू ने अहिंसा, सत्य और प्रेम का मार्ग अपनाया है जिसका यह परिणाम हुआ कि जो तीसरा युद्ध, जिसका नकशा सामने बन रहा था, वह अब बहुत दूर हो गया है और अब दुनिया की सारी ताकतें सोचने लगी है कि हिंसामय तरीकों को छोड़ा जाय। यह स्पष्ट है कि आज के संसार में "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को अपनाना पड़ेगा, वरना ससार नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

आज अहिंसा, प्रेम, सत्य के मार्ग को अपनाने की परम आवश्यकता है। भारतवासियो को सच्चे माने में अहिंसा के सिद्धान्त को समझना होगा और उसे कार्यरूप देना होगा। साथ साथ हम को आपस के दलगत, सम्प्रदायगत, जातिगत, सभी प्रकार के मतभेदों को भुला कर, भगवान महावीर और राष्ट्रपिता गाधी के बताए मार्ग पर चलकर विश्व में शान्ति स्थापित करनी होगी। मैं एक बार फिर समस्त जैन संसार की ओर से आपका हृदय से स्वागत करता हूं।

# राष्ट्रपति का स्वागत और साहित्य भेंट

आल इडिया महावीर जयन्ती कमेटी के उप प्रधान सेठ श्रेयास प्रसाद जैन ने राष्ट्रपति को कमेटी की ओर से फूल माला पहनाई ।

इसके पश्चात् आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी के उप प्रधान सेठ मोहनलाल कठोतिया- ने निम्नलिखित जैन संस्थाओ की ओर से राष्ट्रपति को उनका साहित्य भेंट किया ।

(१) भारतीय ज्ञान पीठ, बनारस (उत्तर प्रदेश) ।
सेठ शान्ती प्रसाद जैन के सौजन्य से ।

(२) श्री जैन मिशन सोसायटी, बगलौर (मैसूर) ।
श्री के पारस मल, मन्त्री, के सौजन्य से ।

(३) श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा ।
श्री रतनलाल जैन, मन्त्री, के सौजन्य से ।

(४) श्री यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर (सौराष्ट्र) ।
श्री जगजीवन भगवानदास शाह, मन्त्री, के सौजन्य से ।

(५) अणुव्रत समिति, दिल्ली ।
सेठ मोहनलाल कठोतिया के सौजन्य से ।

(६) अग्रेजी भाषा में सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र (Manuscript Illustrations of the Uttaradhyayana Sutra)
सम्पादक—डा नार्मन ब्राउन (Dr W Norman Brown)
प्रकाशक—अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी, न्यू हेविन, कोनेक्टीकट, (American Oriental Society, New Haven, Connecticut)
की एक प्रति आल इडिया महावीर जयन्ती कमेटी की ओर से ।

# आचार्य काका साहब कालेलकर

का

# भाषण

भगवान महावीर स्वामी के प्रति अपनी श्रद्धा व भक्ति अर्पण करने का यह मौका मुझे मिला है और उसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं।

महात्मा गाधीजी के साबरमती आश्रम में रह कर मैंने गांधीजी की अहिंसा समझने की कोशिश और साधना की, और हिंसात्मक क्रान्ति का मार्ग छोड़ कर अहिंसात्मक सत्याग्रह की ओर मुड़ा। मेरा अहिंसा का अध्ययन केवल दार्शनिक नहीं था। मैं अपना जीवन अहिंसामय करने की कोशिश करता था। स्वाभाविक था कि गुजरात के अनेक जैनों से मेरा परिचय बढा। उन्होने मुझे अपनी बिरादरी में ले लिया। यहां तक कि पर्युषणपर्व में व्याख्यान देने के लिये मेरे बम्बई के मित्र मुझे वर्षों से बुलाते आये है। अहमदाबाद, इन्दौर, कलकत्ता, बनारस आदि अनेक स्थानो पर मैंने अहिंसा पर व्याख्यान दिये है। क्षुल्लक श्रीगणेशप्रसादजी वर्णी जैसे जैनधर्म के प्रचारक को अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पण करने के लिये मुझे बुलाया गया था। इस तरह से जैन स्नेही मुझे अपनाते गये और धीरे धीरे मैं भी मानने लगा कि मैं उनका हूं। एक जैन कन्या ने मेरी पुत्रवधू बन कर उस भावना को मजबूत किया। मैं अनेक जैन मन्दिरो में श्रद्धाभक्ति से गया हू और वहां प्रेम और आदर से मेरा स्वागत भी हुआ है। पालिताणा के पास शत्रुञ्जय के पहाड पर भी जैन मन्दिरो की यात्रा मैंने की। पावापुरी और आबू के जैसे कई जैन मन्दिरो की शिल्पकला का भी आस्वादन मैंने लिया है।

लेकिन हरिजन और देवद्रव्य का सवाल लेकर जैनियो में शायद कुछ परिवर्तन हो रहा है। कुछ दिन हुए मैं अजमेर में जैनियो के सुवर्ण मन्दिर में गया था। इसके पहले भी एक बार गया था। अबकी बार देखा तो जैनेतरों को मन्दिर के अन्दर प्रवेश नहीं है। ऐसा नोटिस वहां लगा था। मैंने कहा कि नोटिस के अनुसार शायद मैं अंदर नहीं जा सकता हू, लेकिन दर्शन की अभिलाषा है। मुझे नहीं जाने दिया। मेरे साथ पदमचन्द्र सिंघी थे। वे जा सकते थे लेकिन वे अंदर नही गये। अजमेर में मुझे अनुभव कराया गया कि मैं जैनेतर हू।

आजकल चन्द जैन कहने लगे है कि वे हिन्दू नही है। मरजी उनकी। मैं तो हिन्दू उसे कहता हूं जिसका चित्त हिंसा से दुखी होता है।

मैं जानता हूं कि 'हिन्दू' शब्द सिन्धु से आया है। वह हुई हिन्दू शब्द की व्याख्या। व्याख्या और निरुक्ति अलग होती है। निरुक्ति में शब्दो के अक्षरों में कुछ अर्थ देखा जाता है और उस पर से शब्द का भाव प्रगट होता है। हिं और दू इन दो अक्षरो से हिन्दू शब्द बनता है। हिं माने हिंसा, दू माने दु:ख—हिंसया दूयते चित्तं यस्यासौ हिन्दुरिति—हिंसा से जिसका चित्त दु:खित होता है वही सच्चा हिन्दू है। तो क्या जैनी हिन्दू नहीं है ?

अहिंसा मनुष्य जाति के मन में धीरे धीरे प्रगट होती है, पहले स्थूल रूप में बाद में सूक्ष्म रूप में होती है। हरएक युग में अहिंसा कुछ आगे बढती है। भगवान महावीर ही एक ऐसे थे जिन्होंने अपने जमाने से बहुत आगे आकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहिंसा का उपदेश किया।

जिस जमाने में कहीं कहीं मनुष्य का मांस खाने वाले लोग भी थे। मनुष्य को गुलाम बना कर बेचा जाता था, सैन्यो के बीच युद्ध होते थे, और पशुमांस का आहार तो करीब सार्वत्रिक था, ऐसे जमाने में, पानी में और हवा में जो सूक्ष्म जन्तु होते है उनके प्रति भी आत्मीयता बतलाना और सारे विश्व में अहिंसा की स्थापना करने का अभिप्राय रखना और यह विश्वास रखना कि इतनी व्यापक अहिंसा भी मनुष्यहृदय कबूल करेगा और किसी दिन उसे सिद्ध भी

करेगा, यह उच्च कोटि की आस्तिकता है। ईश्वर पर या शास्त्र पर विश्वास रखना गौण वस्तु है। मनुष्य हृदय पर विश्वास रखना कि वह विश्वात्मैक्य की ओर अवश्यमेव बढ़ेगा, यह सबसे बड़ी आस्तिकता है। इसी लिये मैंने भगवान महावीर स्वामी को आस्तिक शिरोमणि कहा है। उनका जमाना किसी न किसी दिन आयेगा ही।

आप हिन्दू का संकुचित अर्थ क्यों करते है ? सनातनी, वैदिकधर्मी, रूढिवादी तक हिन्दू धर्म सीमित नहीं है। श्रमण और ब्राह्मण, बौद्ध और जैन, लिंगायत, सिक्ख, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी आदि सब मिल कर हिन्दूसमाज बनता है। इस विशाल हिन्दू परम्परा में जीवन को अखण्ड और अनुस्यूत माना है। जीवन की यह अखण्ड धारा पवित्र है। सबके प्रति आत्मीयता रखनी है'—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम्।
न हिनस्ति आत्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

यह गीता का श्लोक भी इसी भावना का एक उद्गार है।

ऐसी व्यापक आत्मीयता में ऊंच नीचभाव और अस्पृश्यता को स्थान नहीं हो सकता। सनातनियो में जो मलिनता आ गई थी, उसे दूर करने के लिये गौतम बुद्ध और महावीर जैसे धर्म सुधारको ने बडा पुरुषार्थ किया। उन्हीं के अनुयायी अगर संकुचित बन जायें तो कैसे काम चलेगा?

एक वक्त मै नागपुर के पास रामटेक गया था। वहा के एक जैन मन्दिर के द्वार पर मैने बन्दूक, तलवार और सिपाही देखे। दु.ख के साथ आश्चर्य भी हुआ। अहिंसा के परम प्रचारक महावीर स्वामी के मन्दिर की रक्षा के लिये हिंसा के शस्त्र और प्रतिनिधि क्यो आ गये ? जवाब मिला कि मन्दिर में महावीर के साथ उनके गहने भी है। यानी कुबेर की उपासना हो रही है। (सम्पत्ति को मै लक्ष्मी नहीं कहूगा। लक्ष्मी तो कुदरत की समृद्धि है, पवित्रता की शोभा है। लक्ष्मी तो परम मंगल सौभाग्य की प्रसन्नता है। स्वयं शुभ और पावन है।) इधर धन दौलत तो बड़े पेट में समाया हुआ सामाजिक द्रोह है। उसका प्रतीक तो कुबेर ही हो सकता है।

इस कुबेर की उपासना सारी दुनियां में चलती है। इसी लिये ऐटम बम और हाइड्रोजन बम तक शस्त्रास्त्र की तैयारी करनी पड़ती है।

ऐसी दुनिया में विश्वव्यापी अहिंसा का आदर्श और आग्रह भारत ने रखा है। भारत की सरकार दुनिया के सब देशो में कौटुम्बिक भाव लाकर हिंसा को रोकना चाहती है।

हमें, हरिजन तो क्या, दुनिया के किसी भी देश के और जाति के, पंथ के या वंश के मनुष्य का बहिष्कार नहीं करना है।

और जैनमन्दिरो में तो भोग और प्रसाद, कच्ची पक्की रसोई का कोई झंझट नहीं है। कोई अजैन जैनमन्दिर में गया तो उसे अहिंसा की दीक्षा मिलने की सम्भावना अधिक है। मन्दिर या मन्दिर की मूर्ति भ्रष्ट कैसे हो सकती है ? जब सारा भारत, हमारे पूज्य राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री विश्व में परमधर्म अहिंसा का प्रचार कर रहे है, ऐसे समय में जैनियो का कर्तव्य क्या है ? जैन शास्त्रो का सम्पादन करना, उन पर व्याख्या और टीका टिप्पणी लिखना, प्राचीन जैनग्रंथों का संशोधन और अध्ययन करना यह सब अच्छा है। लेकिन इतने से सन्तोष नहीं मानना चाहिए। समस्त दुनिया के सामने जो महान् आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और वांशिक सवाल खड़े हुए है, उनका हल अहिंसा के द्वारा यानि प्रेम धर्म के द्वारा कैसे हो सकता है। और इसके लिये कौन सी तपश्चर्या आवश्यक है, इसका चिन्तन होना जरूरी है। हम प्रार्थना करें कि विश्व सेवा की हमारी इस साधना में भगवान महावीर का प्रसाद और आशीर्वाद हम सब को प्राप्त हो और हमारी अहिंसा वृत्ति सब कोई अपनावे।

# डा० हीरालाल जैन

## का

# भाषण

आदरणीय राष्ट्रपति, बहनो और भाइयो,

जब किसी को कर्त्तव्य-पालन का सुअवसर और सम्मान एक साथ मिले तो वह उसका परम सौभाग्य समझना चाहिए। मुझे ऐसा सुअवसर मिल रहा है, इसे मैं अपना बड़ा पुण्य समझता हूं। महावीर भगवान की जन्म-जयंती के अवसर पर उन्हें अपनी श्रद्धाजली अर्पण करना मेरा कर्त्तव्य है। उसके साथ ही मुझे जो भारत की राजधानी के नागरिकों के समक्ष आज यह भाषण करने का आमंत्रण मिला है उसे मैं अपना बडा गौरव मानता हूं। इसके लिए मैं आल इंडिया महावीर जयंती कमेटी के मत्री श्री गुलाब चंद जैन तथा उनके सहयोगी अन्य सदस्यों को धन्यवाद देता हूं।

इस उत्सव के प्रसंग का विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योकि यहां जो सज्जन एकत्र हुए है वे सब सुशिक्षित और सुसस्कृत है। अतएव इस अवसर का उन्हे ज्ञान होना स्वाभाविक है। किन्तु इस अवसर पर जो लोग यहा उपस्थित है उन्हे और उनके द्वारा जो लोग यहां उपस्थित नहीं है उन्हें भी संक्षेप में यह बतला देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि भगवान महावीर ने भारतीय सस्कृति के निर्माण में क्या योग-दान दिया है।

भारत की जनता ने राजनैतिक क्रान्तियो में कभी बहुत रुचि नहीं दिखलाई। किन्तु विचार और संस्कृति के क्षेत्र में यहां बड़ी बड़ी उत्क्रातियां हो चुकी है। आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के भारतीय सामाजिक ढांचे की कल्पना कीजिए। उस समय यज्ञ की विधियों का बाहुल्य था। 'स्वर्गकामः यजेत', 'पुत्रकामः यजेत', 'धनकामः यजेत' ये ही लौकिक और धार्मिक जनोक्तियां प्रचलित थीं। इन्हीं यज्ञविधियों में असंख्य मूक पशुओं के बलिदान द्वारा राजाओ को सम्राट् पद प्राप्त कराया जाता था और लोगों की नाना अभिलाषाओं की पूर्ति का दावा किया जाता था। इस प्रकार बलिदान ही परमोत्कृष्ट 'कर्म' माना जाता था। इन यज्ञविधियों के पुरोहितो द्वारा वर्णाश्रम व्यवस्था भी की गई जिससे समाज में उच्च और नीच वर्गों का प्रादुर्भाव हो गया। इन विधियों और व्यवस्थाओ के मानसिक और सामाजिक परिणामो का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

उस समय यज्ञविधियो के पोषक ब्राह्मणो के अतिरिक्त ऐसे श्रमण भी थे जो वेदों को प्रमाण नहीं मानते थे, यज्ञ के फलाफल तथा दैवी प्रकोप व प्रसाद में विश्वास नहीं करते थे एवं वर्णाश्रम के सामाजिक भेदभाव को उचित नहीं समझते थे। प्राचीन जैन पुराणो की साहित्यिक परम्परा के अनुसार जिस श्रमण ने सर्वप्रथम वैदिक परम्परा का उक्त प्रकार विरोध किया वे आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभनाथ थे, जिनका वैदिक पुराणो में भी वर्णन पाया जाता है और जो स्वयंभू मनु की सन्तान में उनसे पांचवी पीढी में हुए कहे गए है। उनके विषय में यह भी बतलाया गया है कि वे वात-रशना मुनियों की परम्परा में हुए थे। वात-रशना मुनियो का उल्लेख ऋग्वेद की अनेक ऋचाओ में पाया जाता है, और ऋग्वेद से प्राचीन कोई भारतीय साहित्य पाया नहीं जाता। ऋषभदेव के पश्चात् तेईस तीर्थंकर और हुए ऐसी जैनियो की मान्यता है। इनमें भगवान महावीर अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर हुए। उनसे ढाई सौ वर्ष पूर्व तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए थे जिनका कीर्ति-ध्वज बिहार राज्य के हजारीबाग जिले के पार्श्वनाथ पर्वत कहलाने वाले शिखरो पर अब भी फहरा रहा है। पार्श्वनाथ से पूर्व बाइसवे तीर्थंकर नेमिनाथ हो चुके थे। ये महाभारत में प्रख्यात व गीता के उपदेशक भगवान कृष्ण के चचेरे भाई थे, और उनकी स्मृतिया काठियावाड के गिरनार पर्वत पर अनेक विशाल मन्दिरो के रूप में आज तक विद्यमान है। तीर्थंकरो की इस परम्परा में भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए, और उन्होने उक्त धार्मिक व सामाजिक उत्क्रांति को उसके उच्चतम शिखर पर पहुचा दिया।

भगवान महावीर राजकुमार थे। किन्तु राज्य का उन्हे कोई प्रलोभन नहीं था। उन्होने तीस वर्ष की युवावस्था में

राजमहल का परित्याग कर दिया। अगले बारह वर्ष तक एकान्त वन में रह कर उन्होने घोर तपस्या और गभीर आत्म-चिन्तन किया। उन्होंने जीवन और प्रकृति के गूढ़ तत्त्वो को समझने का प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप अन्ततः उन्हे सर्वज्ञता या कैवल्य की प्राप्ति हो गई। इसके पश्चात् ही उन्होने उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने अपने विचारो के प्रचार द्वारा जिन नैतिक तत्त्वों और सामाजिक आचरणो को जनता के जीवन में उतारा वे आज तक भी भारतीय सस्कृति की सुदृढ नींव के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

भगवान महावीर ने जीवन की स्वतन्त्रता तथा उसमें परमात्म-पद प्राप्त करने की योग्यता का प्रतिपादन किया। चूंकि प्रत्येक प्राणी में परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है, अतएव यह बात स्वय सिद्ध होती है कि किसी भी जीव का अविवेक रूप से घात करना पाप है, चाहे वह मनुष्य हो और चाहे अन्य कोई प्राणी। जहा तक हो सके, प्रत्येक प्राणी को अपने जीवन का विकास स्वयं करने देना चाहिए; इसमें बाहर से हिंसा व अत्याचार द्वारा बाधा डालना उचित नहीं है। हिंसा करने की प्रवृत्ति हमें इस भावना से उत्पन्न होती है कि कोई क्रिया या मत हमें हमारे विरुद्ध दिखाई देता है। भगवान महावीर ने अपने अनेकान्त सिद्धान्त द्वारा यह समझाया है कि जिन्हें हम भेद और विरोध मान बैठते हैं, वे यथार्थत. विरोधात्मक न हो कर अनन्त-धर्मात्मक यथार्थ वस्तु-स्वरूप के नाना तथ्यांश मात्र हैं। चतुराई इसमें है कि उनके विरोधाभास से क्षुब्ध और विचलित न हो कर उन में अन्तर्निहित समन्वय की भूमिका पर पहुंचने का प्रयत्न किया जाए, जिससे विरोध मिट कर सामजस्य उत्पन्न हो सके। भगवान महावीर के इस समन्वय शासन को ही आज से कोई डेढ़ हजार वर्ष पूर्व आचार्य समन्तभद ने 'सर्वोदय तीर्थ' कहा है, और उन्होने उस के जो गुण बतलाये हैं वे सर्वोदय सेवको के आज भी ध्यान देने योग्य हैं।

अब उन यज्ञविधियों का जीवन में कोई प्रभाव व उपयोग नहीं रहा। समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के स्थान पर भारतीय नागरिकता का सब को उपलभ्य समान अधिकार स्थापित किया जा चुका है, तथा वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार के लिये अहिंसा तत्त्व को आधार नीति स्वीकार कर लिया गया है। महात्मा गांधी के अक्रिय प्रति-रोध और शान्त असहयोग के साधन, पंडित नेहरूजी का शान्तिमय सहजीवन का सिद्धान्त तथा आचार्य भावेजी का भूदान आदर्श—ये सब यदि विश्लेषण करके देखे जाएं तो पता चल जाता है कि वे यथार्थतः भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के देश, काल व उद्देश्यानुसार प्रयोजित रूप हैं। भगवान महावीर ने राज्यवैभव का परित्याग करके अत्यन्त अकिंचन वृत्ति स्वीकार की और परिग्रह-परिमाण का सब गृहस्थो को उपदेश दिया; इस प्रकार उन्होंने आज के सामाजिक ढाचे के राज्य-निर्माण की पूर्व-पीठिका तैयार की थी। भगवान महावीर ने अपने समय की शिष्ट भाषा संस्कृत को छोड कर लोक भाषा द्वारा धर्म प्रचार किया, और इस प्रकार उन्होंने इस देश की नाना प्रदेशो में भिन्न भिन्न काल में प्रचलित अनेक भाषाओं को विस्मृति से बचा लिया। इन विविध भाषाओ की जो रचनायें जैन साहित्य में पाई जाती है उनके द्वारा ही तो आज की प्रचलित भाषाओ सम्बन्धी दो हजार वर्ष के विकास-क्रम को स्पष्टतः समझा जा सकता है। भारत का सब से प्राचीन जो पाषाण लेख पढ़ा जा सका है वह भगवान महावीर का ही स्मारक है। देश की प्राचीनतम मूर्त्तियां और प्रतिबिम्ब भी जैन धर्म की देन पाई जाती है। भगवान महावीर के अनुयायियो ने जिस साहित्य और कला का सृजन किया है वह अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय है, और उनके द्वारा भारतीय सस्कृति का मस्तिष्क सदैव गर्व से ऊंचा उठा रहेगा।

भारतीय इतिहास का यह महापुरुष इस देश में भगवान् बुद्ध, चीन में कन्फ्युसियस और यूनान में सुकरात का सम-कालीन था और उस की सांस्कृतिक देन इन अन्य महापुरुषो की देनो से किसी प्रकार कम नहीं है। इस महापुरुष की उपेक्षा करना भारतीय शासन और जनता के लिए कहां तक वांछनीय है इस पर उन्हें गभीर विचार करना आवश्यक है।

इस प्रसग में यह पूछा जा सकता है कि जब महावीर के उपदेश इतने व्यापक है, तब आज स्वय उनके अनुयायी एक संकुचित मनोवृत्ति दिखा कर अस्पृश्यता-निवारण व हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि द्वारा भारतीय समाज के एकीकरण में क्यों बाधक हो रहे हैं। काका साहब कालेलकरजी ने अभी स्वयं कहा है कि उन्हे अजमेर के जैन मन्दिर में जाने से इसलिये रोका गया क्योकि वे अजैन हैं। इस सबंध में मै काका साहब से क्षमा-याचना करता हुआ यह बतलाना

आवश्यक समझता हूं कि जैन समाज ही नही, किन्तु सभी समाजों में सदैव कुछ व्यक्ति ऐसे हुआ ही करते है जो भ्रम में पड़कर अपने विचारों और कार्यों में भूल कर बैठते है। किन्तु इन व्यक्तियो को उस समाज के पूरे प्रतिनिधि समझ लेना भूल है। दूसरे, यह जाति-पाति व छुआछूत का भेद जैन धर्म का मौलिक अंग नहीं है। जहां वह पाया जाता है वहा वह जैन समाज में उन्ही लोगों से आया है जिनमें यह दूषण धार्मिक मान्यता का एक आवश्यक अंग है, और जिनके साथ जैनियों का चिरकालीन सामाजिक सम्पर्क रहा है। काका साहब ने यह परिभाषा की है कि जिसे हिंसा से दुख हो वह हिंदू (हिं-हिंसा; दु-दुख)। किन्तु दुर्भाग्य से उनकी इस परिभाषा का अन्य कोई समर्थन नहीं करता। यदि यह परिभाषा प्रामाणिक स्वीकार कर ली जाय तो जैनी गर्व से अपने को हिन्दु कहना स्वीकार करेंगें।

काका साहब ने सिद्धान्त और आचार के विरोध का एक उदाहरण यह दिया है कि उन्होंने रामटेक के जैन मन्दिर में द्वार पर सशस्त्र रक्षक देखे। इस सम्बन्ध में मैं विनयपूर्वक उनका ध्यान एक बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। जो बौद्ध धर्म किसी समय जैन धर्म से भी अधिक प्रबल हो गया था, उसका इस देश से ऐसा नामोनिशान मिटा दिया गया कि न यहां उस का कोई एक भी अनुयायी बचा और न उस साहित्य का एक भी ग्रंथ शेष रहा। ऐसी भीषण धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में भी यदि यहां जैन धर्म जीवित रह सका है तो केवल इसी कारण कि उसके अनुयायी अपनी अनेकान्त की नीति से लाभ उठाते रहे हैं। उन्होंने अपनी सस्थाओ के संरक्षण में देश, काल और लोक भावना के अनुसार उचित उपायो का अवलम्बन लेने की व्यावहारिक बुद्धि का कभी परित्याग नहीं किया। मुझे भरोसा है कि वे तब तक भले प्रकार जीवित रह सकेंगे जब तक वे अपनी इस उदार नीति का अनुसरण करते रहेंगे। किन्तु मैं काका साहब को तथा उन्हीं के समान अन्य विचारको को विश्वास दिलाता हूं कि जैन मन्दिरो के सशस्त्र रक्षक वहां हिंसा करने के लिये नहीं, किन्तु रक्षा करने के लिये है, और वे हत्या करने के लिए गोली चलाते हुए कभी नहीं पाये जायेंगे।

भगवान महावीर के अनुयायी राष्ट्रीय भावना व विश्व-जनीनता में किसी से पीछे रहने वाले नहीं है। वे उन सब प्रयत्नो में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे जिनके द्वारा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, संहारक शस्त्रो का निषेध, राष्ट्र का समाजवादी ढांचे पर पुनःसंगठन तथा जाति, धर्म व सम्प्रदाय आदि नामो द्वारा समाज को विभाजित रखने वाली समस्त प्रवृत्तियों का निषेध आदि सुधारो को व्यापक और क्रियात्मक रूप दिया जाना आवश्यक है, क्योकि ये सब बातें तो भगवान महावीर के उपदेशों के मूलाधार है। भगवान महावीर के अनुयायियो से मेरी प्रेरणा है कि वे भगवान के सच्चे उपदेशो की ओर अधिक ध्यान दें और अपना आचरण ऐसा बनाएं जो उनके धर्म की ख्याति के अनुरूप हो। जो सत्ता और सम्मान के पदो पर आरूढ़ हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे अपने मूल्यांकन और निर्णयो में ईमानदारी से काम ले, और व्यक्तियो, सिद्धांतो तथा सस्थाओं को समान दृष्टि से देखते हुए देश की सांस्कृतिक रचना में उन्हें उनका समुचित स्थान प्रदान करे। अन्य सब भाइयो से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वे भगवान महावीर के जीवन और उनके मानवीय सुख, शान्ति और समुन्नति सम्बन्धी विचारो की देन का व्यवस्थित अध्ययन करें और उन्हे भले प्रकार समझें।

भगवान महावीर का यह जयंती-दिवस हम सब को वह प्रेरणा और उत्साह प्रदान करे जिससे हम सब भारत के भाग्य में निहित विश्व-बन्धुत्व के आदर्श को पूर्ण करने में सुचारु रूप से अग्रसर हो सके।

# राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद

## का

# भाषण

सभापति महोदय, बहिनो और भाइयो,

मैं कुछ कहने के लिये नहीं आया था। मैंने तो सोचा था और वह मेरी आशा कुछ हद तक पूरी भी हुई कि यहां पर आकर मैं भगवान महावीर की जीवनी के सम्बन्ध में उनकी शिक्षा और उपदेश के सम्बन्ध में कुछ सुनूंगा और कुछ सीखूंगा और यह आशा मेरी पूरी इसलिए हुई कि कुछ भाइयो ने ऐसी ऐसी बातें कहीं कि जिन का असर दिल पर पडे बिना रह नहीं सकता। इसलिये मैं केवल एक ही बात आप सब से कहना चाहता हू। यो तो इस देश में पच्चीस सौ वर्षों से जैनी लोग प्रचार करते आये हैं और एक परम्परा अटूट तरीके से उस वक्त से आज तक चली आ रही है। बहुतेरे ग्रन्थ लिखे गये हैं और मैं समझता हूं कि आज भी विद्वान लोग, मुनि लोग, साधु लोग ग्रन्थ लिखते जा रहे है और प्रचार करते जा रहे हैं। तो भी यह एक दु:ख के साथ कहना पड़ेगा कि चाहे हमारे जीवन में हमने जितना भी अंश महावीर स्वामी की शिक्षा और दीक्षा का ग्रहण कर लिया हो मगर उनके साहित्य से परिचय बहुत लोगों को नहीं है। जो जैनी है वे तो अवश्य उस साहित्य को पढ़ते हैं पर दूसरे जो अपने को जैनी नहीं कहते हैं उनका उस साहित्य से परिचय कम होता है। यद्यपि जैसा कहा गया है उनके जीवन पर उसका असर आज से नहीं पच्चीस सौ वर्षों से पड़ता आया है और एक प्रकार से उनका जीवन बहुत हद तक उसी सिद्धान्त में ढल भी गया है।

मैं चाहूंगा कि आपके जयन्ती मनाने का एक फल यही हो कि उस साहित्य का प्रचार इस देश में और सारे संसार में अधिक हो। ग्रन्थों की कमी नहीं है मैंने सुना है कि हजारो और लाखो प्रतिया हस्तलिखित जैन साहित्य की इस देश में बिखरी पड़ी हैं। और एक स्थान पर नहीं जिधर जाइये उधर ही, पुस्तकालयो में और पुस्तकालयो से भी अधिक संग्रहालयों में, उनको सुरक्षित रखने के लिये बहुत ग्रन्थो को छुपा कर ले जा कर के रखा गया है। मैं अभी आज ही राजस्थान के दौरे से लौट कर आया हूं और जैसलमेर में मुझे जाने का मौका मिला था तो वहां जाकर मैंने देखा कि कितनी खबरगीरी के साथ, कितनी चिन्ता के साथ, उन ग्रन्थों को सुरक्षित रखने के लिये किस तरह से जमीन के नीचे तहखाने और तहखाने में तहखाने के भीतर ले जा कर के उन ग्रन्थों को रखा गया है और इसी वजह से वे ग्रन्थ सुरक्षित रह सके। इस प्रकार से मैं समझता हू कि अन्यत्र भी बहुत से हजारों ग्रन्थ आपके पड़े हुए है जिनका सर्वसाधारण को ज्ञान नहीं है। उनका प्रकाशन एक अत्यन्त आवश्यक काम है।

इस वक्त जैसा आपने कहा जैन विचारो की ओर लोगों का झुकाव है और जैसा उस दिन हमारे प्रधानमन्त्री ने कहा था कि आज संसार में यदि उस सिद्धान्त को हमने कबूल नहीं किया तो बडा भारी दुष्परिणाम संसार को होने वाला है। इसलिये यह और भी आवश्यक हो गया है कि उसके जितने ग्रन्थ है, जो कुछ उसमें मिल सकता है, वह सब लोगों के सामने आये। लोग उनको देखें, समझें, विश्लेषण करें और जहां तक हो सके, जो अध्ययन से लाभ हो सकता है वह लाभ उठायें, और अध्ययन के बाद अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। मुझे यह आज एक खबर मिली जिससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

अभी आपने कहा कि महावीर स्वामी का जन्म वैशाली में हुआ। उनका निर्वाण भी पावापुरी में हुआ और जो १२ बरस उन्होंने तपस्या की मैं समझता हूं कि यदि उन स्थानो को जहां जहा पर वे गये आज खोज करके निकाला जाय तो उनमें से बहुतेरे स्थान उसी के आस पास मिलेंगे जिनका आज हमको शायद बहुत पता नहीं है। वहीं उसी विहार भूमि में यह ख्याल लोगो का हुआ कि जैन साहित्य का अध्ययन किया जाय और उसके लिये वहा एक प्रतिष्ठान कायम किया गया है। आज वहा के गवर्नर का मेरे पास पत्र आया है जिसमें उन्होने लिखा है कि जैन साहित्य के अध्ययन के लिये प्रतिष्ठान कायम करने का निश्चय हो गया है उसके लिये पाच लाख रुपये एक-मुश्त और २५ हजार सालाना का वचन भी मिल गया है।

तो ये काम वहां आरम्भ हो गया है। प्रकाशन का काम दूसरी संस्थाएं भी कर रही हैं और करना चाहती हैं। मैं तो आशा करूंगा कि अब जैन साहित्य खोजने के लिये जैसलमेर की गुफा के अन्दर किसी को जाने की जरूरत नहीं रह जायेगी बल्कि वह चीजें घर घर में पहुंच जायेंगी और सब लोग, जो इसमें कुछ भी दिलचस्पी रखते हैं, उन को पढ़ सकेंगे और लाभ उठा सकेंगे। मैं इतना ही आप से कहना चाहता हूं कि आप के जो विद्वान लोग हैं उनका यह काम है कि अच्छे से अच्छे ग्रन्थों को चुन कर के उनके प्रकाशन में वह सहायता दें जो आप के पास धनवान हैं, और ईश्वर की कृपा से आप में बहुत ही लोग धनवान हैं, वे पैसे देकर के उनके प्रकाशन में मदद करें और जो मामूली लोग हैं वह उनका अध्ययन करके उनको अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें, और इस तरह से मदद करें। और जो दूसरे लोग, जिनको जैनेतर कहा जा सकता है, क्योंकि उनके नाम के साथ जैन नहीं जुड़ता, वे लोग भी इस से जहां तक हो सके लाभ उठायें और अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। अगर इतना हुआ तो इस प्रकार के उत्सव का महत्त्व और उसकी सफलता दोनो सब लोग समझ सकेंगे।

# आल इंडिया महावीर जयन्ती कमेटी
# के
# मंत्री श्री गुलाबचंद जैन
# का
# धन्यवाद भाषण

आज इस शुभ अवसर पर भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने यहां पधार कर हमारी कमेटी को ही नहीं किन्तु सारे जैन समाज को कृतार्थ किया है। श्रमण भगवान महावीर ने कहा है कि जिन्दा रहो, और जिन्दा रहने दो। आज की दुनिया में महावीर का विश्व प्रेम और अहिंसा का सन्देश चाहे कुछ अजीब कल्पना की सी बात लगती हो, पर यदि मानवता को विनाश से बचना है, तो महावीर के सन्देश को और उनके बताये हुये मार्ग को ग्रहण किए बिना काम नहीं चलेगा।

भारत को सगठन के अभाव में कड़वे अनुभवो के कड़वे घूंट पीने पड़े है। भारत उत्थान और पतन के हिंडोले में झूला है। किन्तु पतन में भी, गुलामी के बोझे के नीचे कई सौ वर्षों तक दबे रहने पर भी, वह मरा नहीं। क्योंकि भारत की बोलचाल और रस्मोरिवाज की विभिन्नता में भी एक सांस्कृतिक एकता है। किन्तु आज इस स्वतन्त्र भारत में वह दलित सांस्कृतिक एकता ही पर्याप्त नहीं। भारत को राष्ट्रीय जीवन प्राप्त करने के लिये पूर्ण सक्रिय एकता की आवश्यकता है। जैन समाज ने जन समाज की क्या सेवा की है, इसको जानने के लिये सुदूर इतिहास को अलग रहने दीजिये; केवल गुजरात, मारवाड़, मेवाड़, कर्नाटक, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो का एक बार भ्रमण कीजिये, इधरउधर खंडहरों के रूप में पड़े हुए ईंट पत्थरो पर नजर डालिये, पहाड़ों की चट्टानो के शिला लेखो को पढ़िये, जहा तहां देहात में फैली हुई जैन उक्तियां सुनिये, आप को मालूम हो जायगा कि जैन संस्कृति क्या है और उसके साथ जन सेवा का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। जहां तक मैं समझ पाया हूं, संस्कृति व्यक्ति की नहीं होती है, समाज की होती है, और समाज की संस्कृति का अर्थ यह है कि समाज अधिक से अधिक सेवा भावना से ओत प्रोत हो। सस्कृति का यह विशाल आदर्श जैन समाज में पूर्णतया घट रहा है। मैं आशा करता हू कि आज का जैन समाज अपने महान अतीत गौरव की रक्षा करेगा, और भारत की वर्त्तमान विकट परिस्थिति में विना जाति, धर्म या कुल के भेद भाव के मानवता की सेवा में अग्रणी भाग लेगा।

अन्त में मैं अपने माननीय अतिथि राष्ट्रपति तथा अन्य सब अतिथियो और सहयोगियो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। साथ ही यहां की व्यवस्था में जो भी कमी रह गई है उसके लिये क्षमा याचना करता हू।
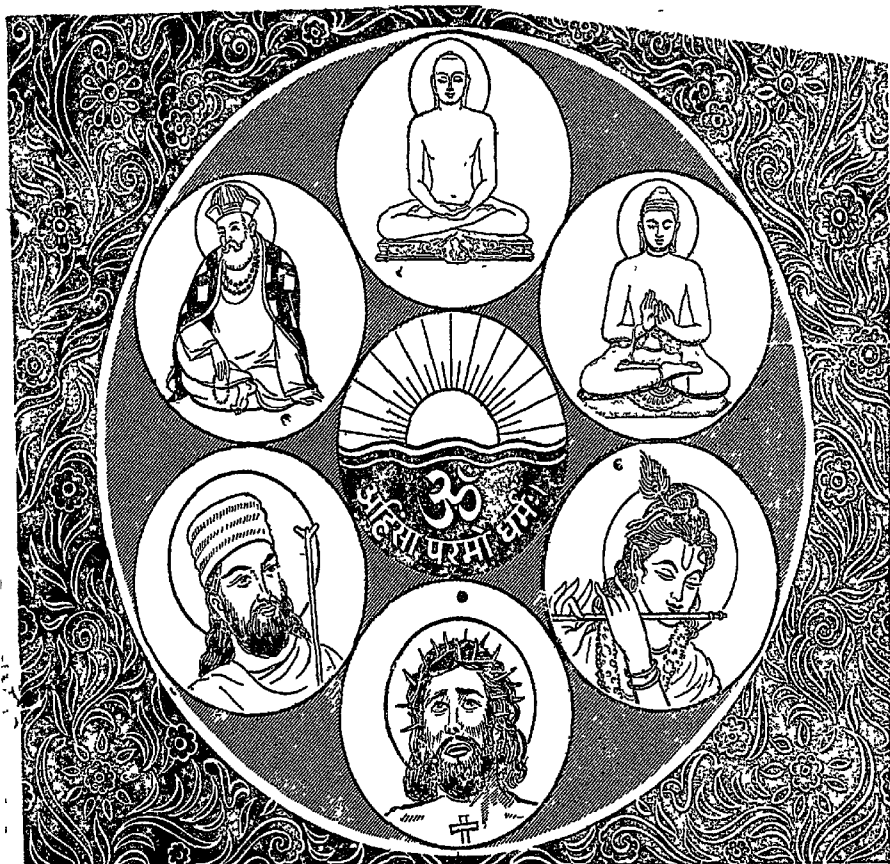
ॐ
अहिंसा परमो धर्मः
मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।
अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।
हिंसाविरोध
अंक १
एक प्रति ≈)
सम्पादक वालाभाइ गीरधरलाल शाह
श्री रतिलाल घुळाचंद शाह
वर्ष ५
शुल्क १॥)
हिंसा-विरोधक संघ, अहम

## श्वान तालीम केन्द्र

श्वान रक्षा केन्द्र मे कुत्तों को तालीम दे सके ऐसा निष्णात व्यक्ति की आवश्यकता है।

## पाठकों से विनन्ति

हिंसा विरोध पत्र में कौनसा लेख आपको ज्यादा पसन्द आया आदि अभिप्राय भेजनेके लिए विनति है।

## सुचित करें

१ धर्म के नाम पर जहा २ जिस २ जगह पर हिंसा होती हो उसकी सूचना विस्तार से कार्यालय मे भेजने की कृपा करें।

२ घोड़ागाड़ी बैल, घाची के बैल वगैरह जानवरों को चादा का रोग हुआ हो, अगर बीमार हो उनकी दवा के लिये संघको खबर भेजो और जानवरों के पर त्रास गुजारनार उनके रखने वाले मालीकों का नाम और गाडीका नंबर लिखके कार्यालय को सूचित करें। कार्यालय योग्य करेंगे।

## पक्षी घर

सघ एक पक्षी घर खोलना चाहते हैं, उन मे बीमार, अशक्त, लूले-लंगडे पक्षीओं की सारवार की जायगी। उन की देख भाल और डाक्टरी के लिये एक निष्णात की आवश्कता है।

## धर्माचार्यों से निवेदन

अहिंसा प्रचार से ही विश्व को शाति हो सकती है इसी लिये आपश्री, जहाँ २ धर्मका उपदेश करो, जनता की समक्ष कम से कम बीस (२०) मिनिट अहिंसा मास-मदिरा त्याग पर अपना भाषण करे।

## येलार्टी उरस

येलार्टी (ता॰ कुर्नुल) में अभी २ उरस हो गया। उन में करीबन ३०,००० की तादाद में दूर दूर से लोगोंने भाग लिया। हर साल हजारों पशुओं की बली होती थी, किन्तु इस साल आंध्रीय जीवदया मडल और भारत की सभी जीवदया मंडलीओं के प्रयास से और प्रचार से ऐसी भयंकर कत्ल को अटकाने के लिये भारी आदोलन किया। सरकारने भी पुरा साथ दिया। इसके फलस्वरुप जो, हर साल ५००० पशुओं की हत्या होती थी, मगर इस साल सिर्फ ४१६ जानवरों का बलिदान हुआ है। ऐसी आशा रखी जाती है कि आगामी वर्ष में प्राणीओं का बलिदान बिलकुल नहिं होगा। आंध्र सरकार इस बारे मे सहयोग देंगे। हिंसा विरोधक सघने भी आंध्र सरकार को तार तथा पत्रव्यवहार किया था।

## संघ के प्रचारक

१ श्री मंगलदास बुलाखीदास शाह
२ श्री मणिलाल नहालचद शाह
३ श्री केशवलाल शकरभाई शाह
४ श्री लखमशी चोथाभाई, मुबई विभाग
५ श्री रसीकलाल एन-शाह ,, ,,

## हिंसा-विरोध के नियम

१ हिंसा-विरोध प्रतिमास अंग्रेजी महीने की ८ ता॰ को प्रकाशित होगा।
२. हिंसा विरोध का वर्ष दिसम्बरसे शुरू होता है।
३ प्रकाशन के लिये जो रचनायें भेजी जाय वे हाशिया छोड़कर कागज के एक ही ओर साफ लिखी जाव।
४ किसी भी रचना को प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने या बढाने का अधिकार सम्पादक को होगा।
५ अप्रकाशित लेख आदि टिकट भेजने पर ही वापस किये जायेंगे।
६. ग्राहक अपना नाम-पता स्पष्ट लिखने के साथ-साथ अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।
७ लेख आदि में व्यक्त किये गये विचारों के लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।
८ यदि अंक १२ ता॰ तक न मिले तो अपने डाकखाने से पता करके ही कार्यालय को सूचित करें।

---

पता—हिंसा-विरोधक संघ, जमनाभाई बिल्डिंग, माणेकचौक, । टे. नं ५१५९
प्रकाशक : वालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद मंत्री, हिंसा-विरोधक सघ, अहमदाबाद।
मुद्रक जादवजी मोहनलाल शाह, नील कमल प्रिन्टरी, घीकांटा रोड, सिविल हॉस्पिटल के सामने, अहमदाबाद।

# हिंसा विरोध

वर्ष ५ ] अहमदाबाद, डिसेम्बर, १९५५ [ अंक १

सम्पादकिय

## अहिंसा के आलोक में

'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्'

पुण्य-जीवनको यदि भव्य भवन कहा जाए तो अहिंसा-तत्त्वज्ञान को उसकी नींव मानना होगा। अहिंसात्मक वृत्तिके बिना न व्यष्टिका कल्याण है और न समष्टिका। साधनाका प्राण अथवा जीवनरस अहिंसा है। देशने पराधीनता के पाशसे छुटने के लिए अपनी कि कर्त्तव्यविमूढ अवस्थामें अहिंसात्मक पद्धति को एकमात्र अवलम्बन माना था। और इसीलिए रक्तपात के बिना राष्ट्रने प्रगति के पथ पर द्रुतगतिसे अपना कदम बढाया और स्वाधीन भी हो गया।

फ्रांस के विश्व विख्यात विद्वान् रोम्यां रोलां इस अहिंसा के विषय में बहुत उपयोगी तथा प्रबोधप्रद बात कहते हैं,—जिन सन्तों ने हिंसा के मध्य अहिंसा सिद्धान्त की खोज की, वे न्यूटन से अधिक बुद्धिमान थे तथा विलिंगटन से बडे योद्धा थे। जिस प्रकार हिंसा पशुओं का धर्म है, उसी प्रकार अहिंसा मनुष्य का धर्म है।

एक विद्वानने कहा है "सब से ऊँचा आदर्श, जिस की कल्पना मानव मस्तिष्क कर सकता है, अहिंसा है। अहिंसा के सिद्धान्त का जितना व्यवहार किया जायगा, उतनी ही मात्रा सुख और शान्ति की विश्व—मण्डल में होगी" उनका यह भी कथन है कि "यदि मनुष्य अपने जीवनका विश्लेषण करे, तो इस परिणाम पर पहुँचेगा कि सुख और शान्ति के लिए आन्तरिक सामंजस्य की आवश्यकता है।" यह अन्तःकरणकी स्थिति तब ही उत्पन्न होती है, जब यह सब प्राणियों के प्रति प्रेम और अहिंसा का व्यवहार करता है।

संसार के धर्मोका यदि कोई गणितज्ञ महत्तम-समापवर्तक निकाले तो उसे अहिंसा धर्म ही सर्वमान्य सिद्धान्त प्राप्त होगा।

# मैंने "पशु क्रूरता निवारक बिल" क्यों प्रस्तुत किया ?

## (श्रीमती रुकमणी देवी अरुण्डेल का वक्तव्य)

मैं विधेयक पशु क्रूरता निवारणार्थ प्रस्तुत कर रही हूँ, क्यों कि मैंने एक लम्बे काल से यह अनुभव किया है। यद्यपि हमारा देश वह भूमि है जहां अहिंसा शब्द सार्वजनिक रूप में प्रयुक्त किया जाता है किन्तु सहस्रों प्रकार से हिंसा अथवा निर्दयता निरतर जारी है। सरकार अथवा जनता इस विषय को अति आवश्यक न समझती हो तो जीवदया सघ, पशु क्रूरता निवारक समितियां (S. P. C. A.) आदि सस्थाएँ और अन्य कार्यकर्ता इस असहनीय क्रूरता को रोकने में असमर्थ हो जायेंगे, जो भारत का प्रत्येक शहर और ग्रामो में प्रगति कर रही हैं। भारत ने अशोक चक्र को अपना चिन्ह स्वीकार किया है और गांधी जी हिंसा विरुद्ध काफी कह चुके हैं। अतिरिक्त इसके हम इस निर्दयता को रोकने में समर्थ नहीं हैं। वस्तुतः निर्दयता बढ़ रही है। इन सबको द्रष्टिगत रखते हुए मैंने बिना किसी धर्म या जाति के विचार विमर्श किये यह विधेयक रखने की चेष्टा की है।

### जीव हत्या

मैंने उन सभी धाराओं को एकत्रित करने का यत्न किया है, जिसे मैं उचित और आवश्यक समझती हूँ। यद्यपि मैं हत्या में विश्वास नहीं करती और पूर्णतया शाकाहारी हूँ। फिर भी मैंने एक धारा प्रस्तुत की है जब कि पशुओं का बध खुराक के लिए होता है। मुझे आश्चर्य होता है कि कितने मांसाहारी उन दुखों को अनुभव करते हैं? जो कि उन के सामने मांस आने से पूर्व होते हैं। उन पशुओं को बध शाला में ले जाते हुए किस निर्दयी तरीकों से घसीटा जाता है और उन्हें किन दुखद उपायों द्वारा अन्य पशुओं के सामने वध किया जाता है? पशु हमारी अपेक्षा अत्यन्त भावुक और समझदार होते हैं। वे हमारे इन अत्याचारों से बचने का उपाय करते हैं; किन्तु मनुष्य उनसे कहीं शक्ति शाली है। हमें अनेकों दृश्यों से ज्ञात होता है कि बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बूचड़ खाने में किस दर्दनाक और निर्दयता पूर्वक उन्हें रखे जाते हैं और उन्हें वध करते समय जीवितावस्था में किस ढग उनका चमड़ा उतारा जाता है। जब तक उनके गले का घाव पूर्णतया गहरा नहीं हो जाता। जैसा कि अधिकतर होता है। पशु १५ मिनट से लेकर कई घन्टे तक चेतन रहता है, किन्तु इस ओर ध्यान दिये बिना उसी तेजी से चमड़ा उतारा जाता है।

इगलेन्ड और अन्य कई देशों में जीव हत्या सम्बन्धी कानूनी धाराएं बनाई गई हैं जो उन पशुओं पर लागू होती हैं जिनका बध किया जाता है। उन्हे यन्त्रों द्वारा कम से कम कष्ट दिया जाए और अचेतना लाई जाए। इस धारा को १९३३ में पास किया गया था। अभी भी कुछ ऐसे लोग हैं जो इसका विरोध करते हैं। कुछ एसे हैं जो हत्या को निर्दयता-पूर्वक नहीं रहने देना चाहते और कुछ ऐसे हैं जो कतई बन्द करना चाहते हैं। किन्तु पशुओं की खुराक के लिए हत्या की जाती है और जब तक वह रहेगी, प्रत्येक सभ्य मनुष्य जिसने कि इस विषय में सोचा है इस बध क्रियाका विरोध अवश्य करेगा।

### पशु बलि

अन्य दूसरी धारा पशु बलि को रोकने की है। बहुत से ऐसे लोग हैं जो यह विश्वास करते हैं कि धर्म उनका अपना बलिदान नहीं चाहता; अपितु उन अभागे और असहाय जीवों की बलि चाहता है। नैतिक द्रष्टि से देखा जाय कि भगवान, जिसे हम दीनानाथ कहते हैं, के सामने पशु बध कहां तक उचित है? अतिरिक्त इसके पशुओं के बलिदान से पूर्व उन्हें जो अमानुषिक यंत्रणाएं सहनी पड़ती हैं, कभी तो उन यत्रणाओं के कारण बेचारा पशु तड़प-तड़प कर स्वयं ही मर जाता है। मैं विश्वास करती हूँ कि अधिकांश भारतीय सभी धर्मावलम्बी विचारकों सहित, इस अन्ध विश्वास से आगे बढ़ गये हैं, कि भगवान

क्रूरता के विरुद्ध कार्य करने और पशु बलि से प्रसन्न नहीं होते हैं। वैसे के गांधीजीने कहा था कि "यदि हम अपने सभी प्राणियों के साथ दया का व्यवहार नहीं करते, दैनिक प्रार्थना में किसी प्रकार का आशीर्वाद मांगना व्यर्थ है।"

भारतीय संविधान में सभी धर्मों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। किसी कार्य पर, जिस को कि अधिकांश जनता अव्यवहारिक एवं अमानुषिक मानती हो, प्रतिबन्ध लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। सैकड़ों धार्मिक रूढ़ियों के जो कि समाज के लिए हानिप्रद थी, कानून द्वारा समाप्त कर दिया है। आज धर्म के नाम पर पशु बलि पूर्णतया जर्जरित व वृद्ध हो चुकी है। जिस के अन्त के लिए समय अनुकूल है।

## अनुसंधान के लिये निर्यात

आज एक मुख्य एवं विशेष बात यह है कि पशुओं को अनुसंधान के लिये निर्यात किया जा रहा है! मुझे सन्देह है कि भारतीय जनता यह जानती है कि, हजारों पशुओं को औषधि अनुसंधान हेतु विदेशों में निर्यात किया जाता है। मुझे सन्देह है कि जनता इस खोज कार्य में होनेवाले भयभीत तरीकों से परिचित है! हजारों जीवों को बिना अचेत किये चीर फाड़ की जाती है कुछ को चीर फाड़ के दौरान में अचेत किया जाता है। किन्तु इस चीर फाड़के दौरान में उन्हें समस्त कष्ट उठाने पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर इंगलैंड में सन् १९५१ में १९१९४२४ (प्रयोगों में से २११६११ पशुओं पर अचित-अवस्था का प्रयोग किया गया था। [illegible]४७५ पर चीर फाड़ के दौरान में अचेतना लाई गई और शेष १६६५१०० (८५ प्रतिशत) पर कोई औषधि प्रयुक्त नहीं की गई। अमेरिका में जहां पशुओं पर अनुसंधान कार्य में कोई नियंत्रण नहीं है और न कोई अंक ही प्राप्त हैं। अनुमान लगाया जाता है कि लगभग ६ लाख पशुओं की प्रत्येक वर्ष अनुसंधान कार्य में चीर फाड़ की जाती है। जिन में केवल ११ प्रतिशत पर अचेतन अवस्था का प्रयोग किया जाता है, शेष साधारण तरीके से। यह विचार की इस प्रणाली द्वारा पशुको कोई कष्ट या तकलीफ नहीं पहुँचती हो, सर्वथा गलत है। (क्रमश:)

## बंदरोंके प्रति क्रूरता

बम्बईसे एक मित्रने 'नफेन' द्वारा प्रसारित निम्नलिखित समाचार की कतरन भेजी है।

लन्दन, १७ अक्तूबर

चीरफाड़-विरोधी सारी समितियां इस सप्ताह, लन्दन के वेक्सटन हालमें सामुदायिक संमेलन में एकट्ठी हो रही हैं। उनका उद्देश्य चीरफाड़-सबंधी प्रयोगों के लिये दूसरे देशों से विविध पशुओं के खास करके भारत से बन्दरों के भेजे जानेका विरोध करने का है।

चीरफाड़-विरोधी राष्ट्रीय मंडल के मंत्रीने 'नफेन' के प्रतिनिधि को बतलाया कि "यद्यपि हम लोग इस विषय में कुछ कर सकने में असमर्थ हैं, लेकिन हम भारत-सरकार को, बंदरों के साथ इन प्रयोगों में कैसा निर्दय व्यवहार किया जाता है, इस संबंध की सारी जानकारी लगातार देते रहते हैं।"

डॉ० डबल्यु० लेन-पेटर, जो कि 'रिसर्च डिफेन्स सोसायटी' के मंत्री हैं—यह संस्था संशोधन-कार्यों के लिये बंदरों के उपयोग को सर्वथा उचित मानती है और उसका समर्थन करती है—आजकल संशोधन के हित में बदरों का निर्यात बढ़ाने के उद्देश्य से विदेशों में घूम रहे हैं।

इस संबंध में नफेन' के प्रतिनिधिने पशुओं के प्रति होनेवाली क्रूरता को रोकने वाली 'रॉयल सोसायटी' के मंत्री से भी भेंट की। उन्होंने बताया कि भारत से होनेवाले बंदरों के निर्यात के सवाल के संबंध में उनकी सोसायटी की ओर से एक शिष्ट-मंडल अभी कुछ दिन पहले भारत के लन्दन-स्थित हाई कमिश्नर से मिला था और कहा कि "यद्यपि बन्दरों का निर्यात बन्द करवाने के अपने प्रमुख उद्देश्य में हम लोग सफल नहीं हुए लेकिन बन्दर जिस तरह भेजे जाते हैं, उस के तरीके में सुधार करवाने में सफल हुए हैं।"

भारतने इस सारे सवाल पर विचार करने और उपयुक्त कानून का निर्माण करने की दृष्टि से एक

विशेष समिति भी नियुक्त की है। इस समिति के अध्यक्ष श्री व्ही० के० कृष्ण मेनन हैं। वे बहुत बुद्धिमान व्यक्ति हैं और हम आशा करते हैं कि उन की अध्यक्षता में यह समिति इस संबंध में बहुत कुछ सुधार करेगी।

इस समाचार पर अपना मत प्रगट करते हुए उपर्युक्त मित्र बहुत ठीक कहते हैं कि विदेशी मुद्राकी प्राप्ति के लिये बदरों का इस तरह बेचा जाना निरी क्रूरता है। हम लोगों के लिये, जो गर्वपूर्वक घोषित करते हैं कि हम बुद्ध और गांधी की भूमि की सन्तान हैं, यह बात बहुत अनुचित है। क्या हम आशा करें कि हमारी सरकार भगवान् की सृष्टि के इन मूक प्राणियों के प्रति होनेवाली इस क्रूरता को बंद करेगी!

## प्राचीन भारत में चमडेका व्यवहार और खपत

लेखकः श्री कन्हैयालाल मिण्डा 'शान्तेश'

पशु की त्वचा या चामड़ी को खाल कहते हैं और मुर्दार पशुओं की खाल की उस बदली हुई हालत को चमड़ा कहते हैं, जो शीघ्र सड़ता या गलता नहीं तथा जिससे काम की चीज बनाई जा सकती हों। चमडे की यही साधारण सी परिभाषा है।

चमडे की चीजों का व्यवहार अभी आरम्भ हुआ हो ऐसी बात नहीं है। धार्मिक ग्रन्थों तथा भारत वर्ष के इतिहास में चर्मकार का नाम तथा चर्म वस्तुओं का उल्लेख आता है। इससे यह स्वतः सिद्ध है कि चमडे की चीजों का प्रयोग पहिले से ही होता रहा है।

भगवान श्री शंकरजी बाघ अम्बर काम में लेते थे। प्रायः तपस्वीगण मृग छाला बरतते थे। तेल रखने के लिए चमडे से बने बडे बडे कुप्पे होते थे। रथ या मंझोली में चमड़ा लगता था, तराजू के पलडे चमडे के बनते थे, चरस और रस्से चमडे के होते थे, ऊँट या घोडे की जीन में भी चमड़ा लगता था, कुर्सी मुढ्ढों पर भी चमड़ा मंढा जाता था, ढोल, नगाडे, सितार, ढफ, सारंगी, इकतारे पर भी चमड़ा लगता था। बात यह है कि चमडे की चीजों का व्यवहार तो पहले भी होता था, परन्तु पहले अपनी मौत मरे पशुओंका चमड़ा होता था इसलिए उसे बरतने में कोई बाधा नहीं थी। वह चमड़ा पशु रक्षक होता था। क्योंकि उस चमडे से जो आय या लाभ होता था वह पशुओं के लिए ही न था परन्तु अब तो चमडे की चीजें नहीं बनाई जाती पशुओं की चीजें बनाई जाती हैं" जो भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

प्राचीन समय में चमडे का कोई व्यापार विशेष न था, अपने आप मरे हुए पशुओंका चमड़ा मिलता था वह बेकार न जाय इस द्रष्टि से उसके उपयोग के लिए साधारण सी उपरोक्त वर्णित चीजों का व्यवहार होता था। चमड़ा मिलता था इसीलिए उसकी चीजें बना ली जाती थीं अन्यथा न तो चमड़ा विदेशों को ही भेजा जाता था और न ही इसके लिए पशु हत्या की जाती थी। जितना चमड़ा अपनी मौत पर मरे पशुओं का होता वही काफी था।

प्राचीन भारत में साधारण जनता की सादगीमय जीवनचर्या के अनुसार प्रायः करके एक ही चर्म वस्तु की विशेष आवश्यकता होती थी जिसका व्यवहार जीवन में नितान्त आवश्यक था और वह थी वर्ष भर में केवल एक जोड़ी जूती! यद्यपि उस समय की धार्मिक जनता इससे भी घृणा हि किया करती थी तथापि पांवों की रक्षा का यह एक उत्तम और सुलभ साधन था इस बिना काम चलना कठिन सा था तो भी बहुधा लोग खड़ाऊँ पहिना करते या मूज के जूतों का प्रयोग भी किया करते थे वा नंगे पांव रहते थे आज भी देश के कुछ भागों के निवासी ऐसे रहते हैं।

प्राचीन भारत में धार्मिकता साम्राज्य था। प्राणी मात्र को दुःख देना तो पाप समझा ही करते थे, गाय को तो मां के समान मानते थे। गाय के प्रति लोगों का यह निश्यत जीवन मन्त्र था कि:—

"जो मनुष्य गाय या उसके शरीर से बनी हुई चीजें बेचने के लिए गाय की हिंसा करते हैं,

जो निरंकुश होकर खाते हैं और जो धन के लोभ से इसका अनुमोदन करते हैं.—वे सब गाय के शरीर में जितने रोम होते हैं इतने ही वर्षो तक नर्क में पचते रहते हैं।"

गाय के प्रति तो लोगों की यह दृढ धारणा थी ही किन्तु अपनी सुख सुविधा के लिए अन्य पशुओं को कत्ल करवाना तो परे रहा, सताने तक में पाप समझा करते थे। गांव में यदि किसी से भूलवश कोई चींटी या अन्य जानवर अनजाने में पांव के नीचे दब कर या और किसी तरह मर जायें तो भी उसे धिक्कारते हुए कहते हैं—

"हे पापी! हे गोची!! जीवते जानवर को क्यों मारा!" यह थी धार्मिक सद्भावना लोगों की जीवों के प्रति। इस प्रकार सुन्दर भावना के बल पर न अन्न व दूध की कमी रहती थी और न चमडे की। जनता के बल पर पशु और पशुओं के बल पर जनता खूब स्वस्थ रहती और दीर्घ जीवि होते थे न किसी प्रकार का पाप था, न ही अभाव। इस तरह रामराज्य था।

## अहिंसक चमडा कैसे प्राप्त होता था?

प्राचीन समय में देश में अगणित पशु थे। जिस प्रकार आजकल का स्वार्थान्ध धनिक वर्ग अनेकों पशु भक्षी मिलोंका अधिपति है और जिनके सचालन के लिए लाखों पशुओं की बलि की सालाना आवश्यकता पडती है उसी प्रकार उस समय का धर्म परायण धनाढय वर्ग लाखों पशु रखा करता था। उनकी तात्कालीन मिल या श्रेष्ठि सम्पदा पशु ही थे।

पशुओं में गाय विशेष उपयोगी तथा श्रेष्ठ है। तादाद में भी यह शुरू से ही ज्यादा रहती आयी है। और अब भी ज्यादा है। गाय उत्तरोत्तर बढता धन है। धार्मिक दृष्टि से तो सर्व साधारण के लिए लाभदायक है ही, देश की प्रायः ७८ फीसदी जनता भी इसे माता तुल्य मानती है। इसी कारण पहिले भी गोवंश की ही प्रधानता थी और अब भी है। अतएव भारतीय संस्कृति के अनुसार गौपालन और गौदान एक महान यज्ञ समझा जाता है। गोदान देने तथा सांड छोड़ने की प्रथा आजकल भी है। पहले तो यह मामूली बात थी। एक एक सम्पन्न परिवार लाखों गऊवें दान में दे दिया करता था।

पहिले भी था और आज भी भारतीय राष्ट्र की श्रेष्ठनिधि गाय, बैल, भैंस, ऊंट, भेड़, बकरी, घोडे आदि ही हैं। इन में बैल का विशेष महत्व है क्योंकि अन्न और चारा बैलों से ही प्राप्त होता है, बोझ भार भी बैल ही ढोते हैं, रहट कुओं और, कोल्हुओं में बैल चलते हैं। पहाड हों या हीले, खेती तो बैलों से ही होती है। सवारी का एक बड़ा साधन बैल ही थे और अब भी है और ज्यादातर इस लिये हैं कि गांवों में इसका कोई बदल नहीं है। घी, दूध दही, लस्सी अधिकतर गायों-भैंसों तथा बकरियों से ही मिलती थी। इस प्रकार भारतीय राष्ट्र का जीवनाधार पशु माने जाते थे। पशु अच्छे तथा अधिक होने के कारण ही भारत में दूध की गगा बहती थी, पानी की जगह दूध से सत्कार किया जाता था और दूध बेचना पूत बेचने के समान हेय समझा जाता था और पशुओं की बहुतायत के कारण चमड़ा भी बड़ी सुविधा से प्राप्त होता था।

जो पशु अपनी मौत अपने आप मर जाता था उसे अलग अलग निर्धारित रिवाजों के अनुसार भंगी, चमार, या धाणक आदि उठा कर मुर्दा-घाट पहुँचाया करते थे और वे ही खाल निकाल कर गावों के खटीक या रेगर से वृक्षों की छालों द्वारा रंगवया करते थे। वह खाल चमार के पास रहती थी। चमार उस खाल की मृतक पशु के मालिक के परिवार के लिए जूतियां बनाया करता था और फटे पुराने जूतों की मरम्मत किया करता था अथवा हल, ऊंट की जीन आदि कामों में जहाँ थोड़ा बहुत चमड़ा लगा करता है वहाँ चमार स्वयं जा कर लगा आया करता था। चमार के जितने यजामान होते थे उन सब के मृतक पशुओं की खालें चमार को ही मिला करती थी। यजमानों के काम के अतिरिक्त जो खालें बच जाती थीं उनको चमार मोची को बेच देता था। इस प्रकार

चर्मकार और जमींदार में यह संधि थी कि चर्मकार वर्ष-भर यजमान को अनाज निकालने के समय खेत के खलियान में ही चमार को बुलाकर उसके साल भर के परिश्रम और काम को लक्ष्यगत रखते हुए परिवार के लिए अन्न और उसके पशुओं के लिए चारा देता था जिनका पेशा खेती न था वे नकद या अन्न वस्त्रादि के रूप में दे दिया करते थे। प्रायः गांवों में अब भी ऐसे रस्मों-रिवाज हैं।

नगरों या शहरों में जूती प्राप्त करने का साधन मोची थे। मोची रंगा हुआ चमड़ा खरीदते थे और उन का समूचा परिवार जूती बनाने का ही काम करता था। ये लोग बहुत हल्की २ और सुंदर व मुलायम जूती की जोड़िया बनाया करते थे। इनका पेशा ही जूती बेचना था, इसी में इन का निर्वाह चलता था। ये लोग मरम्मत का काम नहीं करते थे। इनकी जूती बनाने की कला प्रसिद्ध थी और अब भी है।

पुराने जमाने में अपनी मौत पर मरे पशुओं का चमड़ा बहुतायत से मिलता था और वनस्पतियों (दरख्तों) की छाल से रगा जाता था। न खाल के लिए पशु वध की आवश्यकता थी और न ही रंगने के लिए खून की। इस प्रकार उस समय में केवल अहिंसक चमड़ा ही होता था जो कि पशु रक्षा का एक साधन रूप था।

## बहादुर की अहिंसा

निवे: सहतंत्री

एक गाँव की सीमा पर हम थोडी देर ठहरे। यह गॉव हमारे रास्ते में पडता था। जिस लिए उसके बारे में विस्तार से जानकारी पाने का लोभ हो आया। ज्योंही ठहरे कि तुरन्त गाँव के लोग दौडकर हमारे पास आये। दो-चार आदमी तो मानो पलभर में हमारे पास पहुँच गये। हमने उनसे थोडी पूछताछ की। समय हो रहा था, इसलिए हमने फिर चलना शुरु किया। गाँव के लोगों में से कुछ ने दूर से हमारा स्वागत किया। कुछ लोग हमारे साथ चलने लगे। एक कुआं आया। उसके पास की जमीन धस गई थी, इस से कुएं को भारी नुकसान पहुँचा था उसका वर्णन चल रहा था। इतने में एक आदमी की तरफ हमारी नजर गई। उस के हाथ की उगलियां कटी हुई मालुम होती थीं। हम पूछे उससे पहले ही उस भाईने अपनी राम कहानी शुरु की। एक द्रष्टि से वह बात छोटी थी, दूसरी द्रष्टि से बड़ी थी। 'जिला कर जीओ' इस सूत्र के बनिस्बत 'मरकर जिलाओ' यह सूत्र ज्यादा मूल्यवान है। आज अणुबम या उस से भी ज्यादा भयंकर हथियारों पर श्रद्धा रखनेवाले देश लोकशाही और मानवता की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। भारत जब न्याय पक्ष लेकर तटस्थ रहता है, तब उसकी हँसी उडाते हैं। ऐसी स्थिति में एक गाँव में घटी हुई-सी घटना भी हममें कितनी बडी आशा का संचार कर देती है!

बात यह थी कि एक शिकारी एक मनोहर मोर पर अपनी बन्दूक का निशाना लगा रहा था। इतने मे एक करुण चित्कार सुनाई दी। "ठहरो भाई, ठहरो! तुम अपने शौक के लिए इस निर्दोष, निरीह प्राणी को क्यों मारते हो?" शिकारी की बन्दूक हिल गई। उसके हृदय को गहरा आघात लगा। लेकिन उसका असर थोड़ी देर ही टिका। उसने फिरसे बन्दूक तानी और निशाना लगाया। वह बोलनेवाला नजदीक आ गया और कहने लगा—'मुझ में प्राण हैं, तब तक मैं इस मोर को नहीं मरने दूंगा।" यह बोलनेवाला गाँवठी आदमी था। ठाकरड़ा (आज कल क्षत्रिय ठाकुर कहलाने वाली) नाम की हलकी मानी जानेवाली जातिका वह एक सीधा, भोला-भाला आदमी था। वह न तो किसी बड़ी संस्था का सदस्य था, न वह कोई अहिंसा का झण्डाधारी सैनिक था। वह तो एक साधारण मनुष्य था। कूदते-खेलते मोर की इस बिना कारण होती हुई हत्या को देख कर उसके भीतर की आत्मा तिलमिला उठी थी। वह शिकारी भी कोई साधारण आदमी नहीं था। वह गुस्से से जल रहा था। ऐसे मन पसन्द शिकार को मारने में गाँव के ऐसे मामूली आदमी के रुकावट डालने से रुक जाना उसे स्वाभिमान के खिलाफ मालूम हुआ। उस का अहं इसे सह न सका। उसने चुनौती देते हुए कहा—"ए बेवकूफ हट जा सामने से। वर्ना अपने को मरा हुआ ही समझ लेना।" बस फिर

क्या था? वह बहादुर ग्रामवासी उसकी बन्दूक और मोर के बीच आकर खड़ा हो गया और बोला— "चलाओ बन्दूक" और बन्दूक छूटी। मोर बच गया और वह आदमी गोलियों से छिद गया। शिकारी हारा इतना ही नहीं, बल्कि निष्प्राण जैसा हो गया। उस के पश्चात्ताप का पार न रहा। लेकिन अब क्या हो सकता था? बन्दूक तो छूट चुकी थी। दूसरा कोई होता तो इस घटना से होनेवाली प्रति क्रिया से पहले ही भाग जाता। लेकिन वह शिकारी नही भागा। वह उस ग्रामवासी की भक्ति पूर्ण हृदय से सेवा करने लगा। गाँव के लोग दौडकर आ पहूँचे। छर्रे तो बहुत से लगे थे। लेकिन सौभाग्य से वह बहादुर ग्रामवासी बच गया। उसने उत्तेजित बने हुए अपने गाँव के लोगों को ठण्डा किया। शिकारी के दिल पर इसका गहरा असर क्यों न हो? घायल हुआ साधारण मनुष्य उसे कितना महान लगा होगा। घायल मनुष्य ने शिकारी को विदा किया। शिकारी गया और घायल की सार-सम्भाल के लिये पैसे देता गया। घायल थोडे ही समय मे अच्छा हो गया। उंगलियों, हाथ वगैरा पर छर्रों के निशान रह गये। वे निशान '**अहिंसक के जीवन**' के जीते-जागते प्रतीक ही थे न?

मैं ने सोचा, कुदरत कितनी रहस्यमयी है! शहर मे ऐसा हुआ होता तो, इस कहानी के बहादुर नायक की अखबारों में कितनी तारीफ होती, उस की बहादुरी का कैसा आकर्षक वर्णन छपता। लेकिन इस बहादुर ग्रामवासी के लिए ऐसा कुछ भी नहीं हुआ होगा। गाँवों में ऐसे कितने ही-रत्न छिपे पडे होंगे। हमारे कुछ देर के लिये रुक जाने से कितना लाभ हो गया। ऐसा सोचते हुए हम आगे बढे।

(गुजराती विश्ववात्सल्य से)

## मा हिंस्यत् सर्वभूतानि.

### ले. पूज्य रघुनाथजी महाराज के शिष्य पूज्य श्री शुक्ल मुनिजी

मनुष्य में दूसरे प्राणियों से प्रज्ञा की विशेषता है। दूसरे प्राणियों मे भी होती है, लेकिन मनुष्यों में जो प्रज्ञा होती है, जिससे कि वह अपने ज्ञान में वृद्धि करता है। इसका पशुओं मे अभाव होता है। पचास वर्ष पूर्व हाथी जैसे जगल में झुंण्ड बनाकर रहते थे, वैसे आज भी बनाते हैं। पक्षी जिस तरह पहले घोंसले बनाते थे, वैसे आज भी बनाते हैं। लेकिन अपने पूर्व अनुभवों से आगे बढ़ने की शक्ति पशु अथवा पक्षियों में नहीं हैं। यह शक्ति मानव में है: जिसे कि हम प्रज्ञा कहते है, लेकिन जैसे २ मनुष्य की प्रज्ञा बढती जाय, वैसे २ उसी परिणाम में यदि अहिंसा न बढे तो वह प्रज्ञा तारक के बदले मारक (नाशक) बन जाती है। उद्धारक के बदले घातक सिद्ध होती है। विज्ञान आज बहुत बढ़ा है, लेकिन उसके साथ अहिंसा नही बढी। अत आज वह उद्धारकके बजाय संहारक बन गया है। अगर उसमें अहिंसा या दयाका संवर्धन होता तो वह आज संहारक के बजाय संरक्षक होता। अहिंसा चारित्र का सबसे पहाला अग है। अहिंसा इतनी व्यापक चीज है, कि उसे सर्व प्रथम मिला है। पापो में जैसे हिंसा सबसे खराब कही गई है, वैसे चारित्र में अहिंसा सबसे अच्छी मानी गई है। अहिंसा का सीधा सा अर्थ हम यह करते है, कि किसी भी प्राणीका वध नहीं करना। जीना सब को प्रिय है, और मरना कोई नहीं चाहता। अत. किसी का घात नही करना चाहिये। घातसे मतलब किसी प्राणिको जानसे मार डालना ही नही है, लेकिन किसी कामसे अगर दूसरों को दूःख होता होतो वह भी हिंसा ही है। अहिंसा हमारे देश मे ही नहीं विदेशो में भी बहूत प्रचार था। ग्रीस में भगवान महावीर से पहले भी झेनो नामक एक ऐसे तत्त्ववेता हो गये हैं, जो अपने शरीर में कीडे पड़जाने पर भी मरने के भय से उन्हें नहीं निकालते थे वे कीडे गिर भी जाते तो वे उन्हें वापिस डाल लेते थे। इस तरह अहिंसा को सभी देशों के धर्मोंने माना है और उसे जीवन मे सर्वोपरिस्थान दिया है। Thau Shalt Not Kıll—तू किसी को मारना नहीं—बाईबल की दस आज्ञाओं मे से यह आज्ञा है। इसी तरह हिंदु आदि अन्य धर्मोंने भी अहिंसाको माना है। जैसे कि—**मा हिंस्यत् सर्व भूतानि**। किसी को भी दूःख देना हिंसा है, और कष्ट नहीं देना अहिंसा है।

## अपना घर संभालो

**ले: श्री. पानाचंद मो. शाह**

प्रमुख—हिं. वि. संघ.

'हिंसा विरोध'-हिंदी के गत अंक में 'अहिंसा' नामक लेख में चर्चा की है, लेकिन यह विषय अत्यंत महत्त्व पूर्ण है। अतः विस्तृत रुप में लिख रहा हूँ। लिखने का आशय किसी व्यक्ति समाज और जाति या संस्था से नहीं है। और न तो किसी का जी दुभाने की बात। आशय यह है कि—दूसरे के कहने से पूर्व ही हमको अपना घर संभाल लेना चाहिये। कोई ऐसा न कहे कि पहले अपने पैरों की ओर तो देखो। तुम्हारे पैरों के नीचे तो पानी का रेला है, औरों की बातें क्यों करते हो? पहले अपनी स्वयं की आग बुझाओ, फिर दूसरों को शांति का पाठ सिखाओ। जिस २ समाज में और व्यक्तिओं में मांसाहार निषेध था, जिस २ समाजमें मांसाहार के प्रति घृणा थी, तिरस्कार था, उन कुटुंब और समाज में भी अभी २ कितने ही अंश में मांसाहार होने लगा हैं।

अमुक धर्म, जाति या कौम का उल्लेख नहीं कर रहा हूं। सभी को समज लेने मात्र की विनंति करता हूँ। कई धार्मिक, और कई गृहस्थ कुटुंब, और समाज, जहाँ मांसाहार का नाम तक नहीं था ऐसे ऊंच्च और खानदान कुटुंबों में भी कई ऐसे हैं जो इरानी और कोस्मोपोलिटन रेस्टोरां और होटलो में जहाँ मांस की चीजें बनती हैं अंडे की खाद्य सामग्री बनती हैं, वहाँ जाना सीख गये हैं। कितने ही शिक्षित, और कॉलेजी शिक्षा प्राप्त होते हैं, यही नहीं ऐसे शिक्षित लोग यह दिखाते फिरते हैं कि वे शिक्षित हैं, रुआबदार हैं। स्वच्छ कपडे पहनकर मांसाहारी होटलों में प्रवेश करते हैं। कितने ही सवर्ण कुटुंबों में भी खुले आम मांसाहार का उपयोग होने लगा है।

अभी अभी स्वयं को अच्छा माननेवाले जवान भी अंडे का उपयोग करने लगे हैं। ऐसे आचार-विचार रखनेवाले धार्मिक प्रवृत्तिवाले, अच्छी जातिवाले, कुटुंबवाले, लोगों में मांसाहार बिलकुल बंद होना चाहिये। जब हमारे धर्मी लोग, कुटुंबी लोग और जाति के लोग ही साफ नहीं हैं तो फिर हम उन लोगों को, जिन में मांसाहार परंपरा से होता आता है, उन्हे किस आधार पर शिक्षा दे सकते हैं? ऐसी कौम के जो युवक, युवती सीधे और सच्चे मार्ग से विचलित हो गये हों, अथवा विचलित हो रहे हों, और उल्टे रास्ते पर जाने में फैशन मानते हों, उन्हे ठीक रास्ते पर लाने के लिये विनन्ति करो। उनकी देख-रेख रखो। जो २ नौजवान इस पतन के प्रति घृणा करते हों उन्हे यह चाहिये कि वे बाहर आवें और स्वयं के कुटुम्ब के, पडोसी के कोई भी भाई-बहन इस गलत रास्ते पर गये हों उन्हें ठीक रास्ते पर लानेकी विनति करो। ऐसी विनन्ति है यह काम धर्म का हैं। समाज सुधारका है। युवक मंडल, सेवा समाज आदि इस काम को अपने हाथ में ले ले। जाति का, समाजका, संघका, पंचायतका, महाजनोंका, आदि के आवेगको ऐसे पतन में से स्वजनोंको उगारे और इस दिशा में प्रयत्न करे।

मेरे डॉक्टर बंधु-विशेष कर जैन कुल में, वैष्णव कुल मे और जिस २ कौममें मांसाहार के प्रति घृणा है ऐसे कुटुम्ब या धर्म के हों, उन्हें चाहिये कि वे शारीरिक स्वास्थ्य ताकात या सुधार के लिये अंडा, कोडलीवर ओईल, मीट ज्युस, एसेन्स ऑफ चिकन्स लीवर एक्स ट्रेक्ट आदि अभक्ष्य पदार्थ जिन में पशु-पक्षीयों की हिंसा समाई होती है—ऐसे पदार्थ खिलाने की बात न करे और न ही आग्रह करे। जरा महेनत करके शरीरको पुष्ट करे, ऐसे हिंसा रहित पदार्थों का अभ्यास करो और ऐसे पदार्थोंकी अपने दर्दीयों और उनके सगेवालों को सलाह दो। मानव के लिये अन्य प्राणियोंका भक्षण करना मानवता नही है लेकिन अन्य प्राणीयों की भी रक्षा स्वयं के समान मानना इसी में मानवता है, और मर्दानगी है। प्रत्येक धर्मशास्त्र में ऐसे ही उदाहरण है और वे ही हमारे आदर्श होने चाहिये। पश्चिमी संस्कृति और संशोधन सभी अपनाने लायक नहीं है। वेक्सीन और शीरा प्राणीयों के प्राण लेकर, उन्हे परेशान कर करके तैयार

किया जाता है। वे यहां तक घातकी और अमानुषी रूप तक पहुँचे हैं। युरोप, अमरिका आदि पश्चिमी देशों में कई व्यक्ति और संस्थाओं की ओरसे ऐसे प्रयोगों को बन्द करने के प्रयत्न चल रहे हैं। मेरे देश बधुओ हमारे देशकी संस्कृति हमारे देशका धर्म अहिंसा की नींव पर आधारित है। और उसी में सच्ची मानवता का निवास है। अपने देशकी अमुक जाति, जो उच्च कोटि की मानी जाती है—उन्हें चाहिये कि वे अपना अहिंसा का आचार विचार चालू रखें। मनुष्य देहको मांसाहार से अपवित्र मत करो। उसे पवित्र रखो और दूसरों को रखने दो।

लीवर एक्स ट्रेक्ट लीवर में से उत्पन्न किया हुआ वीटामीन बी अडेका रस, कोडलीवर ऑईल आदि पदार्थ न लो, या हिंसासे पैदा हुई वेक्सीनो या सीरा का इन्जेक्शन मत लो तो तुम्हारा दर्द नहीं मिटे-ऐसा अपने बीमारों को कहने से पूर्व सौ बार विचार करो। उसके बदले बिना हिंसा की वस्तुओंका अभ्यास करो और वही अपने बीमारों को भी दो।

धर्मधुरंधर, धर्माचार्य, सत, साधु-सन्यासी, धर्मोपदेशक, मंदिर-मठाधिश आदि सबसे विनन्ति करता हूँ कि आप जब २ व्याख्यान दें, भजन

कीर्तन करें या धर्मका उपदेश दे—उस टाईम कम से कम २० मिनिट मांसाहार और अहिंसाके विषय पर भी विवेचन करें। सरल भाषाओं में मांसाहार विरूद्ध पुस्तिायें छपाये और मांसाहारियों में बिना मूल्य के ही वितरित करो! एसा करने से मासाहार का सर्वथा त्याग करना सीखेंगे और मानवता का उच्च आदर्श अपनावेंगे।

शाकाहारी, अन्नाहारी और निरामिषाहारी सादा, शुद्ध और आवश्यक पौष्टिक खूराक नियमित लें, कसरत करें और स्वय का स्वास्थ्य ठीक रखें जिससे मांसाहारियों पर इस बात का प्रभाव पडे कि बिना मांसाहार के भी अच्छा स्वास्थ्य रक्खा जा सकता है। जब २ आपके पास कोई ऐसी बात की दलील करे कि मांसाहार से शक्ति बढती है, तब हाथी, घोडे, बैल, गाय, भैंस, पाडा, आखला आदि निरमांसाहारी प्राणियों का उदाहरण देना चाहिये और कहना चाहिये कि ये प्राणी अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बलशाली और निरोगी होते हैं। खूराक के निष्णाताओंने विभिन्न प्रकारकी अन्न और खाद्य वनस्पतियों का पृथक्करण करके-उसमें कितने ही पौष्टिक और जीवन तत्त्वोंका समावेश किया है। उसे बाहर लाना, जिससे जनताको उसके उपयोग की बात ज्ञात हो, समझ में आये।

ईरानी और कॉस्मोपोलिटन होटल का उपयोग करने वाले यह दलील करते हैं कि उसमें अन्य हॉटलोंकी अपेक्षा स्वच्छता अधिक होती है। खास करके यह बात ठीक है, लेकिन इस प्रकार की दलील के अन्तर्गत व्यक्तिगत रूपसे मासाहार होता है। इसे रोकने के लिये निरामिष हॉटल अथवा रेस्टोरन्ट के मालिकों से विनन्ति है कि वे भी ईरानी होटलों की भाँति अधिक स्वच्छता रखें। उसे आकर्षक बनावें, जिससे हमारे नवजवान भाई अन्य स्थानों पर न जावें। यहाँ मुझे कहना चाहिये कि—मैं स्वय तो हॉटल, रेस्टोरन्ट लोज आदि में खाने की हिमायत नहीं करता हूँ। अपने घरमें रहते हुए भी बहार खानपान करना अच्छा नहिं। बल्कि स्वय के घरकी ओर का असंतोष आलस्य और घरकी ओर उपेक्षा का ही परिणाम है फिरभी बाहरसे आने वाले एकल दोकल मनुष्यो के लिये बडे शहरों में ऐसे स्थान अनिवार्य बन गये हैं।

बौद्ध धर्म मानने वाले भाईयों से विनंति है कि परम तपस्वी श्री गौतम बुद्धने बौद्ध धर्म की नींव अहिंसा पर रची है, फिर भी बौद्ध धर्मी भाई मांसाहार करे और धर्मी कहलावें यह असंगत है। उन्हें तो मांसाहारका सर्वथा त्याग करना ही चाहिये। मुस्लीम, ख्रिस्ती, यहुदी, पारसी आदि धर्म और कौमके ऐसे कितने ही सज्जन हैं जिन्हें पशु-पक्षी आदि प्राणियों के प्रति अत्यन्त दया और प्रेम है और मांसाहार के प्रति घृणा है। इन्हें चाहिये कि वे एकत्र होकर मासाहार के विरुद्ध आंदोलन करें और श्रेष्ठ जीवन जीकर

दिखाना चाहिये। और श्रेष्ठ जीवन जीकर दिखाना चाहिये। जिससे अन्य लोग अनुकरण करें मानव समाज के प्रत्येक व्यक्ति को विनन्ति है कि वे खाद्य सामग्री और फल शाकभाजी आदि को अधिक मात्रा में पैदा करने की कोशिष करें, जिससे जहाँ जहाँ अन्न की कमी है वहाँ अन्न पहूँचाया जा सके। अन्न सस्ता और सुलभ हो। मत भूलो—मांसाहार जगलीपन की निशानी है। वह मावन की शेष अज्ञानता, कूरता, निर्दयता और हैवानियत है।

## सच्ची अहिंसा कब समझी जावेगी?

लेः श्री रायचद मगनलाल शाह. मुंबई

अहिंसा प्रधान इस आर्यावर्त देश की सस्कृति, जो विश्व के लिए सिरताज स्वरूप, और इतिहास के पृष्ठों पर अमरता प्राप्त की हो तो उसका प्रधान कारण वास्तव में दया-धर्मही है। भेदभावभरी आर्यावर्तकी सस्कृति दया की है। लेकिन प्राणी-मात्रक लिए दया और प्रेम रखना यही आर्य-संस्कृति की दया है।

अहिंसा का अपूर्व सिद्धान्त अर्पण कर सभी जीवों की ओर पूर्ण प्रेम और दया प्रदर्शित करनेवाले, करुणा के अवतार अमर तिर्थंकर भगवान महावीर स्वामी इस देशमें हो गये हैं, दया के भंडार महात्मा बुद्ध और अत में अहिंसा के बल पर राज्यों को पराजित कर सकने वाले महात्मा गांधीजी जैसे महा पुरुष अपनी द्रष्टि के सामने इसी देश में हो गये।

वर्तमान समय में अपने देश के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरूने अहिंसा, और जगत से विग्रह दूर करने की नीति अपना कर, भारत की कीर्ति का विजय डंका समस्त-ससार में निनादित किया है। इसीसे ऐसा लगता है कि हिंसा के बनिस्बत अहिंसा में अत्यन्त अधिक शक्ति है। हिंसा निर्बल है अहिंसा में दैवीय-शक्ति है।

फिलहाल राजकीय-क्षेत्र में जिस अहिंसा का उपयोग होता है वह ठीक है, लेकीन वास्तव में वह मात्र अहिंसाका एक अग है। अहिंसा एक सिद्धांत है, सत्य है। उसकी व्याख्या सच्चे रुप में और पूर्ण रुपमें जैसी होनी चाहिए वैसी न होकर, अमुक कार्य और समयपूर्ति मर्यादित काम चलाऊ और औपचारिक रीति से होने वाली प्रतीत होती है जो इष्ट नहीं है।

सत्य बोलना, चोरी न करना आदि सिद्धान्त हैं, अतः अमूक कार्य के लिए ही सत्य बोलना या अमूक वस्तु की ही चोरी न करनी—यह संभव नही है। अगर ऐसा करते हैं तो सत्य केसिद्धान्त की अवहेलना होती है। उसी प्रकार अहिंसा मात्र किसी वर्ग विशेष के लिए या मनुष्य मात्र के लिए ही हो—तो अहिंसा के सिद्धान्त की भी अवहेलना ही होती है। लेकिन वास्तविकता कुछ और है। अहिंसा सर्व सिद्धान्तों का परम सिद्धान्त है। दया, धर्म का मूल है। और प्राणी मात्र के लिए करुणा और प्रेम प्रदर्शित करना यही अहिंसा का सच्चा-स्वरूप और सिद्धान्त है।

आज के युग में एक ओर अहिंसा की आवाज लग रही है—उसी समय दूसरी ओर घोर-हिंसा की पिशाचलीला का प्रदर्शन बढ़ते जा रहा है। एक ओर अहिंसा का काम चलाऊ उपयोग किया जा रहा है—तो दूसरी ओर अहिंसा-सिद्धान्त का ही खून किया जा रहा है। अहिंसा मानों वर्तमान समय के लिए मात्र युद्ध बंद करने की दवा हो। और दया, तो मानों मानवी की आजीविका पूर्ति ही मर्यादित हो। ऐसी ही धारणा रखकर उसका महत्त्व कम कर दिया है। केवल मांसाहार करनेवालों को प्रसन्न रखने के लिए अहिंसा सिद्धान्त को नष्ट किया! यह उचित नही है। फिरभी वर्तमान अहिंसा का अर्थ—मानव दया के नाम पर अथवा जिस में सच्ची मानव-दया नहीं, उतने पूर्ति मर्यादित बना दिया है।

सत्यत: अहिंसा की समाप्ति इस प्रकार कभी हो नहीं सकती. और महात्मा गांधी जी की अहिंसा इस प्रकार पूर्ण वीराम पाती नही! परन्तु स्वय के स्वार्थ के लिए अहिसा की ओर उपेक्षा वृत्ति रखने वालों ने ही इस विषम स्थिति को जन्म दिया हैं।

आश्चर्य की बात है कि-अहिंसा की अपूर्ण और मिथ्या दृष्टि से ऐसे लोगों ने निरपराध मूक

प्राणियों की कत्ल में हिंसा दिखाई नहीं देती। और अगर दिखाई देती है तो जानबूझ कर, द्रव्य और जीवित रहने की लालसा से उसकी उपेक्षा की जाती है।

दुःख की बात तो यह है कि भारत की गुलामी के समय में भी पशुओं की जितनी हिंसा होती थी, उसके बनिस्वत कई गुना अधिक हिंसा आजादी के समय में हो रही है। एक और संसार की शांति के लिए हम अहिंसा की बात कहते हैं, अहिंसा के महान प्रतीक रुप अशोक-चक्र का चिन्ह अपने राष्ट्र ध्वज में रखकर, चुनाव के समय बैल जोड़ी का चिन्ह रख कर मत माँगते हैं और दूसरी ओर पशुओं की हिंसा को उत्तेजना देते हैं। इन्हीं बैलों और गायों को कत्ल करते हैं। इनके खून और माँस का व्यापार कर, परदेश में निकास करके, परदेशियों को भी इस ओर अग्रसर करते हैं।

विचारे गाय, बैल, भैंस, बकरे, घेटा, मछली आदि लाखों-करोडों जीवों के प्राण लेकर उनकी घोर हत्या करते हैं। जीवित वानरों को भूखा मार-मार कर मार डालते हैं—केवल कुछ पैसों की लालच के कारण उन्हे परदेश में धकेल देते हैं। और बिना किसी बहाने के वानर, रींछ, हरिण आदि जंगल में रहनेवाले और प्रकृति के आधार पर आनन्द मनानेवाले जानवरों को शिकार द्वारा मार डाला जाता है। म्युशंस के नीचे निरपराधी कुत्तों का नाश कर दिया जाता है। यह समस्त प्रकार की अहिंसा की नीति कैसे समझाना, कुछ समझ में नहीं आता।

दिन प्रति-दिन देश में कत्लखानों की वृद्धि हो रही है। पशुओं को काटने के कई प्रकार के यंत्र भी सामने आ रहे है। मछली पकडने की हाथजाल के स्थान पर बडे यंत्र और जहाज बने हैं। एक साथ लाखों मनुष्यों को प्रचंड अग्नि में जीवित जलाने के लिए, एटमबंब की खोज हुई। क्षण भर में ही एक ही बंब लाखों मनुष्यों, पशु-पक्षी का आदि प्राण ले सकता है। इसी प्रकार के हैं ये यंत्र-जहाज -जो विचारे लाखों-करोडों मछलियों के लिए-तो एटमबंब के समान ही है।

अनाज की कमी के समय, झुठे बहाने बनाकर मछली मारने के हिंसक और पापी धंधे को प्रोत्साहन दिया इसमें से पैसा कमाने की लालसा जागी। अनाज की कमी के स्थान पर पूर्ति हो गई फिर भी मछली मारना बंद नहीं हुआ। उलटी उसमें वृद्धि ही हुई है। पैसे का लोभ बढा, यंत्र-जहाजो में वृद्धि हुई। हिंसा, पाप और अधर्म समझा, फिर भी उसे एक प्रकारका उद्योग कहा! अरे सौराष्ट्र जैसे दया प्रधान प्रदेश, जहाँ की ९८% वस्ती शुद्ध शाकाहारी हैं, वहाँ पर तीन-तीन फीशरीज डालने की तैयार हो रही है। क्या अन्य उद्योगों की कुछ कमी है? जिससे मछली मारनेका धंधे में से आय हो रही है? इसे किस जाति की अहिंसा समझनी चाहिए?

जो लोग कल तक बिलकुल अहिंसक थे, अभी-तक अहिंसा की आवाज लगाते हैं, उन्होंने ही अपने हाथों से ऐसा निर्दय कार्य कैसे किया होगा? कैसे होता होगा? उनके हृदय में अहिंसा की सच्ची द्रष्टि क्या होगी? जीव संबधी उस की मान्यता क्या होगी? उन की अहिंसा की व्याख्या क्या होगी? अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकारनेवाले मांसाहार को किस प्रकार ठीक माना जा सक्ता है? बिलकुल नहीं।

जैसा मनुष्य में जीव है—वैसा ही पशुओं में और अन्य प्राणियों में है। जीवित रहना जैसे मनुष्य को अच्छा लगता है वैसे ही प्राणियों को भी अच्छा लगता है।

इस विश्व में जितना अधिकार मनुष्य को जीवित रहने का है उतना ही अधिकार प्राणी मात्र को जीवित रहने के लिए है।

जिस सुख-दुःख की लागणी मनुष्य में है वैसे ही अन्य प्राणीयों में भी है। आँख कान, नाक आदि जितनी इद्रियाँ मनुष्य में है उतनी ही, उसी प्रकार अन्य प्राणियों में भी है। रोग, शोक, भय, जन्म-मरण प्रजा-उत्पत्ति, नर, मादा आदि, जैसा मनुष्य में है उसी प्रकार अन्य प्राणी में भी है।

मृत्यु के भय के समय तडफडाना, कंपित होना, वेदना, आँसू, निश्वास, चीख आदि दुःख जैसा मनुष्यों

को होता है वैसा ही प्राणियों को भी होता है। मनुष्य को काटते समय खून, हड्डी, मॉस अतड़ियाँ, कलेजा, हृदय, मगज आदि जो होता है, वैसा ही प्राणियों को काटते समय भी होता है। उनके भी खून, मॉँस, हड्डी आदि निकल आते हैं। यानी जो दुःख मनुष्य को काटते समय होता है वही दुःख प्राणी को काटते समय होता है इस में संदेह नहीं।

एकबार स्वयं के लिए कल्पना करके देखलो! किसी भी दर्द और दुःख से पीड़ित मानवी को पूछ देखो तो समझ में आवेगा कि मरना किसी को भी अच्छा नहीं लगता! क्योंकि मृत्यु से बढ़कर कोई दुःख नहीं है।

बिचारे प्राणी मूक हैं! वाणी हीन हैं। वे बोल नहीं सकते। शब्दों द्वारा उनका दुःख व्यक्त नहीं होता! लेकिन समझदार व्यक्ति जिस प्रकार गूँगे मनुष्य का दुःख समझ लेता है—और उसका वध नहीं करता, उसी प्रकार मूक प्राणी का वध करना भी किसी प्रकार उचित नहीं है। क्या मनुष्य अन्य का जीव लेकर नया जीव उत्पन्न करने की शक्ति रखता है?

मनुष्य में बुद्धि है। ईश्वर ने आहार के लिए वनस्पति और अन्न उत्पन्न किया है। उसके दिए गये आहार से जीवित रह सकते हैं। प्रत्येक वनस्पति का भिन्न २ स्वाद होता है और अलग २ गुण होते हैं। मनुष्य के मन को, विचार को, शरीर को और आत्मा को जिन गुणों की आवश्यकता है, वे सब वनस्पति आहार में है। इस लिए शुद्ध वनस्पति आहार ही आज मनुष्य के लिए सच्चा आहार है। मॉँस मनुष्य के आहार की वस्तु ही नहीं है। अगर मॉँस आहार की वस्तु माना जायगा तो मनुष्य का मांस भी आहार बन जायगा। और अगर मनुष्य का मांस आहार के लिए न हो तो, किसी प्रकार से प्राणी का मॉस किस प्रकार से प्राणी का मास आहार के निमित्त माना जा सकता है?

मांसाहारी मनुष्य जीवित रहने की लालसा के लिए मांस खाता है। लेकिन उसे खूब गहराई से विचार करने की जरूरत है। स्वयं के बर्तन में पड़ा हुआ मास क्या है? जीवित पशु को कत्ल कर के उस के मृत शरीर के काटे हुए टुकड़े ही तो हैं! जब इस पशु को कसाईने काटा होगा तब उसकी वेदना और दर्द कैसा हुआ होगा? कैसी निश्वासे उसने डाली होगी? उसकी आँखें में से आंसुओंकी धार कैसी बही होगी? क्या यह हृदय-द्रावक दृश्य मांसाहारी को मालुम नहीं है? अपवित्रता का विचार करो। पेशाब, मल, विष्टा, रक्त और अन्य अपवित्र वस्तुओं से सराबोर काया के टुकड़े पेट में भरते हुए क्या कुछ भी विचार नहीं आता?

हमें भी मरना है और पुनर्जन्म प्राप्त करना है। इस मनुष्य योनी के बाद न जाने कौनसी योनी मिलेगी, कौन जानता है। लेकिन जैसा कर्म किया होगा वैसा ही जन्म प्राप्त होगा, यह निश्चित है! पशु-पक्षियों में भी पुनर्जन्म होगा, और तब हमारे शरीर के टुकड़े कर के मासाहार करेंगे, अतः उससे बचने के लिए भी अभी से सम्हलने की आवश्यकता है। (क्रमशः)

## अहिंसा समाचार

### साहित्य-प्रचार के लिए सहायता की आवश्यकता

मांसाहारीओं में अहिंसक साहित्यक का प्रचार विना मूल्य करने के लिये, सघ की ओरसे सस्ता साहित्य की पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीया है। अतः जीवदया प्रेमी भाई-बहनों से निवेदन है कि वे इस कार्य में भाग लें और मदद करें, जिससे मांसाहारीयों में उसका अधिकाधिक प्रचार हो, और वे लोग मांसाहार का त्याग करें।

### लेखकों से विनंति

पूज्य साधु-साध्वीजी श्री म. सा. तथा अहिंसा प्रेमी भाई-बहनों से विनंति है कि समाज में अहिंसा का प्रचार हो सके इसलिये अहिंसा विषय पर अपने लेख भेजनेकी कृपा करें।

## हिंसा-विरोधक संघका गुजराती साहित्य

**१ चामडानी करुण कहानी अने पशु-वध**—इस पुस्तिका मे यह बताया गया है कि चमडे के लिये कितनी निर्दयता से और कितनी संख्या में गाय, वैल, सॉड, वछडे, भैंस आदि मूक एव निर्दोष पशुओं को कतल किया जाता है। पृष्ठ संख्या १६, मूल्य दो पैसे। प्रचारार्थ चालीस् प्रतियों का मूल्य १), डाकखर्च ≶)॥

**२ हिंसक दवाओ अने डाक्टरो**—इस पुस्तिका में यह समझाया गया है कि अंग्रेजी दवाओं और टीकों के लिये पशुओं पर क्या-क्या अत्याचार किये जाते हैं, कितना रुपया खर्च होता है और उन से क्या हानि पहुँचती है। पृष्ठ सख्या १६, मूल्य दो पैसे। चालीस प्रतियों का मूल्य एक रुपया और डाकखर्च ≶)॥

**३ अहिंसानी विभूतिओ**—इस मे मूक प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले और उनकी रक्षा के लिये अपने सुख और जीवन का त्याग करनेवाले जैन व जैनेतर महापुरुषों की बाईस कथाएँ सरल और रोचक भाषा में दी गयी हैं। पृष्ठ सख्या १३०, मूल्य ।) डाकखर्च ।)

**४. गाय अने नेहरू (सचित्र)—गाय** वनाम नेहरू का सरल गुजराती भाषान्तर है, जिसे श्री रतिलाल धुलाचंद शाह ने किया है और जो सघ के एक अनूभवी कार्यकर्ता हैं।

आकार आठपेजी, पृष्ठ सख्या ६०, मूल्य ≈)॥, डाकखर्च ≈)॥

### पाठकों से विनन्ति

हिंसा-विरोध पत्र के पाठकों को अधिक आनन्द हो उसी प्रकार जनता में उसके विषय में कैसः प्रेम है, उसकी जानकारी सवधी सूचना और उसमें कौनसा लेख उन्हे अधिक पसंद आया आदि अभिप्राय लिख भेजने के लिए विनन्ति है !

### साहित्य-प्रचार के लिए सहायता की आवश्यकता

हमने अहिंसक-साहित्य का प्रचार करने के लिए, जो बिना मूल्य है, विभिन्न रूपों में सस्ता-साहित्य प्रकाशित किया है। अतः जीव-दया प्रेमी भाई बहनों से विनन्ति है कि वे इसकार्य में भाग लें और रकम पहुँचा दें, जिससे मासाहारियों में उसका अधिकाधिक प्रचार हो, और वे लोग मांसाहार का त्याग कर दें।

### लेखकों से विनन्ति

पूज्य साधु-साध्विजी श्री म. सा. तथा अहिंसा को मान्यता देने वाले भाई-बहनों से विनन्ति है कि, वर्तमान समय में समाज में साहित्य के द्वारा अहिंसा प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः अनुरोध है कि अहिंसा विषयक अपने लेख भेजने की कृपा करेंगे, जिससे उन विचारों का प्रचार समाज में हो सके।

लेख, फुलस्केप कागज की एक ओर सुन्दर अक्षरों में लिखा जाना चाहिए !

### शुल्क जमा कराने के स्थान

(१) हिंसा-विरोधक सघ, जमनाभाई बिल्डिंग,
माणेकचोक, अहमदावाद

(२) श्री मेघजीभाई पूंजाभाई घीवाला,
२६१, भात बाजार, मुबई न० ९

(३) श्री छगनलाल लक्ष्मीचंद,
३२५, वडगादी, मुबई न० ३

(४) श्री रविचदभाई सुखलाल,
C/o श्री प्रकाश स्टोर्स, डी' सील्वा रोड,
दादर, B B. मुंबई न० २८

(५) श्री कल्याणजी ऍंड को०,
५२३, कॉटन ऐक्सचेन्ज बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड, मुबई न० २

(६) श्री मंगलदास कस्तूरचंद (मुनीम)
C/o श्री लालबाग मोतीशा जैन ट्रस्ट पेढ़ी
लालबाग (माधुबाग) भूलेश्वर, मुंबई न० २

(७) श्री पं० ईश्वरलाल जैन,
आनन्द प्रिन्टग प्रेस, गोपालजी का रास्ता,
जयपुर

## गाय की ललकार

तुम गोपालक, तुम गोचारण, क्या गौरक्षक हो भूप तुम्हीं ?
बोलो बोलो राम राज्य के, धरणी पर प्रतिनिधि हो तुम्हीं ?
प्राणों के ग्राहक आज बने, जो थे मेरी रक्षा कारक ?
राम गोरक्षक कुल के पुत्र के, बने आज तुम को ही मारक ?
मेरे बेटे के बल पर ही तो, देश तुम्हारा है जीवित ।
सींच सींच जिनकी गर्दन से, खेत तुम्हारे आज हरित ॥
लूट चुका संस्कृति का स्वाभिमान, कह चुका हमरा देश सारा ।
सड़कों पर भटकता फिरता मानव, दूध खातिर मारा मारा ।
अब भी मेरा वध बन्द करो, नहीं तो फिर पछताओगे ।
हैं दूध-दहीं के दरशन दुर्लभ, अन्न भी पूरा नहीं पाओगे ।
मेरी हत्या बन्द न की तो, घटना अनहोनी आवेगी ।
मेरी रक्षा हित कुरु क्षेत्र में, महा भारत मच जावेगे ।
मेरे रूखे अस्थिजाल से, वज्र बनेगा महा भयंकर ।
श्री कृष्ण चन्द्र को ईर्षा होगी, नेत्र नया खोलेंगे शंकर ।
सुन सुन करुण क्रन्दन मेरा, चामुण्डा पकड़ेगी खप्पर ।
देख देख कहती मुझको, ताण्डव नृत्य करेंगे शंकर ।
मिट जावेगी सत्ता तेरी, पर मेरी हस्ती आबाद रहेगी ।
पर तेरी इन करतूतों की, दुख में कायम याद रहेगी ।

---

Regd. No. B. 7126

Licenced to post without prepayment.
L. No. 154

प्रेषक —
'हिंसा-विरोध' कार्यालय
माणेक चौक
अहमदाबाद-१

सेवा में—

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसाविरोध

वर्ष ७ अङ्क १०
डिसेम्बर : १९५८

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १२ नये पैसे
वार्षिक शुल्क रु १–५० नये पैसे

# बारह सौ गायों के त्राता

## श्रीकरशनभाई

"कीर्तिदान की अपेक्षा अनेक गुण श्रेष्ठ होते हुए भी अज्ञात ऐसे दान का एक किस्सा हालार जिला के खंभालियां तालुका के मोवाण ग्राम में घटित हुआ है।"

"मोवाण गाँव में करशनदास कालोभाई नाम के एक लुहाणा गृहस्थ रहते हैं। विगत फाल्गुन मास की संध्या के समय ओखा तरफ के देहातों से दस-बारह गायों को लेकर अकिंचन-जैसे लोगों का एक टोला मोवाण के प्रान्तर से होकर निकला।"

"करशनभाई को संदेह हुआ कि इन गायों को ये लोग कसाईखाने में ले जा रहे है; इसलिये उन्होंने उन गायों को खरीद लिया। ओखा तालुका में और मुख्यतया कल्याणपुर महाले के कुछ गाँवों में घास-चारे की कमी के कारण लोग पशुधन को, उसमें मुख्यतया गायों को छोड़ देते थे। इस प्रकार परित्यक्त वे गायें जैसे-जैसे मोवाण के प्रान्तर से होकर निकलती थीं वैसे वैसे करशन भाई उन गायों को खरीद लेते थे। खरीदी हुई इन गायों की संख्या पाँच सौ तक पहुँची।"

इन गायों का रखना जरूरी था और इस के लिये आर्थिक उत्तरदायित्व कोई साधारण नहीं था, इसलिये उन्हों ने बम्बई में रहने वाले अपने दोनों पुत्रों को अपने जीवन की अन्तिम इच्छा सूचित की। 'चाहे जितना खर्च लगे फिर भी भूखी गायों को बचाना'—इस प्रकार के अपने पिता के सत्संकल्प से से दोनों पुत्र संमत हुए। गायों की संख्या बढ़ती जा रही थी और साथ-साथ आर्थिक उत्तरदायित्व भी बढ़ता जा रहा था। गायों की संख्या लग भग १२८५ तक पहुँची, और उनके घास चारे में करशन भाई के पुत्रों ने एक लाख रूपये से भी अधिक खर्च किया।

"इन गायों के लिये घास की १२०० गाँठे बाहर से मँगवानी पड़ीं। अपनी ३० बीघे की बाड़ी में भी करशन भाई ने घास उगाने का प्रयत्न किया, परन्तु पानी के अभाव के कारण उनकी बाड़ी में घास नहीं पैदा हुआ, इसलिये उन्हे दूसरों की बाड़ियों से घास लेना पड़ा।'

"बम्बई से उन्हों ने २५० बोरे गेहूँ की भूसी मँगवायी और दुर्बल गायों के लिये कपास और खली की भी व्यवस्था की। पशुओं के रहने के लिये १००–१३० फीट का बाडा भी बनवाया।"

"अच्छी वृष्टि पड़ने के बाद करशन भाई ने उन गायों को उनके मालिकों को दे देने का विचार किया। इसके बाद उन्हों ने १२८५ गायों में से ८०० जितनी गायें मूल मालिकों को और दूसरे लोगों को भी जो गाय पालने के लिये उत्सुक थे दे दिये।"

"उन्होंने सौ गायों को स्वयं अन्त तक पालने का निश्चय किया है। इन की पालित प्रायः सभी गायें प्रसव कर चुकी हैं। बीमार गायों की चिकित्सा के लिये इन्होंने डा० नरसिंह प्रसाद केशवजी को नियुक्त किया था।"

"इस प्रकार मूक पशुओं के ऊपर दया कर के एक लाख से भी अधिक के खर्चे से इनका पालन-पोषण करने वाले एक अप्रसिद्ध दानी का यह अज्ञात चरित्र सभी के लिये आश्चर्यकारी बना रहेगा। समाचार पत्र में प्रसिद्धि के निमित्त जब उनकी तस्वीर उन से माँगी गयी तब उन्होंने कहा—मैं यह जो कुछ कर रहा हूँ अपनी प्रसिद्धि के लिये नहीं, किन्तु ईश्वरीय प्रेरणा से कर रहा हूँ।"

अहिंसा या दया की लम्बी-चौड़ी बातें करने की अपेक्षा उसे यत्किंचित् अपने आचरण में लाना ही सर्वाधिक आवश्यक है।

# हिंसा विरोध

वर्ष ७ ] अहमदाबाद, डिसेम्बर १९५८ [ अङ्क १०

## उठो ! हिन्दुओ

उठो ! हिन्दुओं एक बार फिर
गोमाता की लाज बचा लो

[1] आदि काल से जो हम सब का, सेवन जीवन भर करती है।
अन्न नहीं खाती यह तो, तिनका और घास चरती है॥
स्वयं कष्ट का अवतारन कर, दुनियाँ का पालन करती है।
निज व्यतीत कर पशु का जीवन, दुनियाँ को अमृत देती है।
उठो ! हिन्दुओ एक बार फिर

पशु होकर भी माँ हम सब की, जीवन अमर बनाती है।
तिल-तिल निज जीवन का जलाकर, गौ का गौ रह जाती है।
शास्त्र वेद सब हिन्दू घरों में, मां कह पूजी जाती है।
उस माता की हाल आह क्या, कही नहीं यह जाती है॥

कहाँ पूज्य माता हम सब की, छुरी गले पर चलती आज।
नहीं विदेशी राज रहा अब, अब तो अपना ही है राज॥
भूल रहे हैं पथ हम अपना, भूल रहे हैं माँ की लाज।
होते जाते सभी विदेशी, नहीं स्वदेशी पर है नाज॥

स्थान रहा जो गौ माता का, भूल रहा है हिन्दु समाज।
बढ़ते जाते गौ- हत्यारे जब से आया है यह स्वराज॥
वे पुत्र बड़े नाकाबिल हैं, लुटाते निज माता की लाज।
नहीं चाहिये आज हमें वह, गौ- हत्यारा काँग्रेसराज॥

रहना है यदि दुनियाँ में तो, माँ के हित मरना होगा।
हिन्दू बन यदि जीना है, हिन्दुत्व अमर करना होगा॥
है दुध पिये गौ माँ का तो, यह ऋण चुकता करना होगा।
ऋण जैसे भी चुकता होवे, जीवन देकर भरना होगा॥

हर घर में वह आग लगा दो, दावाग्नि धधक पड़े जिससे।
दुनियाँ के कोने कोने के, सब शत्रु चीख पड़े जिससे॥
अत्याचारी सब जल जाये, 'दुख जाल' जले माँ का जिससे।
अब देर नहीं, बस निकल पड़ो माँ का बन्धन काटो झटसे॥
उठो ! हिन्दुओ एक बार फिर

हंसनारायण सिंह मिरजापुर (उ प्र.)

# भूरा बैल

केशवदेव मिश्र 'कमल'

रायपुर गाँव के सागर किसान को कौन नहीं जानता ? जानवरों के मामलों में सागर बहुत जानकार है। राह चलते जानवर को एक निगाह में परख लेना उसके बाँयें हाथ का खेल है। इसीलिये जब किसी को कोई बैल, बछिया खरीदनी होती है, तो वह सागर का ही आश्रय लेता है।

सागर का यह "भूरा बैल' नया नहीं है। वह जीवन के उत्तरार्द्ध में चल रहा है। भूरा ने बहुत जमाना देखा है। सुख के दिन देखे और दुःख के भी देखे है। अकाल देखे और सुकाल देखे है और इन सबकी अनुभूतियों को लेकर वह गर्व से अपना माथा उठाये जीवन-पथपर बढता आया है। सागर का कृपा-कांक्षी रहकर भूरा ने अपना मन मैला कभी नहीं किया। हँस-हँस कर उसने खेत जोते, और उछल-उछलकर गाडियाँ चलाई हैं। बारातों में जब-जब साबका पड़ा है, तब-तब भूरा ने हमेशा बाजी मार कर दिखाई है।

एक दिन 'भूरा' के जोटिया बैल ने भूरा से पूछा—"भाई ! तुम किधर के रहने वाले हो, और सागर के यहाँ कब से काम कर रहे हो ?"

भूरा ने नम्रतापूर्वक कहा—"भैया ! मैं तो इसी गाँव का बाशिन्दा हूँ। यहीं जन्मा, बड़ा हुआ और जवानी पाई। अब बूढा भी हुआ। मेरी माँ इसी खूँटे पर मरी। और अब मैं भी....!"

जोटिया बैल ने कृतज्ञभाव से कहा—"तब तो तुम भाई बड़े भाग्यशाली हो। एक खूँटे पर रहने का सौभाग्य सब को नहीं मिलता। मुझे ही देखो, मै हरियाना का रहने वाला और आ पड़ा इधर। जन्मभूमि छूटी, भाई-बन्धु छूटे। सब कुछ ही छूट गया और इधर आकर भी कभी स्थिर होकर नहीं बैठ पाया।

भूरा ने गम्भीर होकर कहा—" सो तो भैया मै भी कई बार बाल-बाल बचा हूँ। अहमद बनजारा मेरे पीछे एक मुद्दत तक हाथ धोकर पड़ा रहा। पर मालिक ने बेचने की कभी 'हाँ' नहीं भरी। बनजारा मेरी मुँह मांगी कीमत देने को तैयार था। जब मालिक किसी प्रकार बेचने को राजी नहीं हुआ तब बनजारा अन्त में यह कह कर चला गया कि "जब कभी बेचने का इरादा हो, तो भूरा को देना मुझे ही।"

सागर ने भूरा को अपने लड़के की तरह पाला था। बचपन में दूध पिलाया और जवान होने पर हरी घास, रातब और सानी के अतिरिक्त कोई गंदी चीज मुँह में नहीं जाने दी। स्वयं कष्ट उठा लिया, भूरा को दुखी नहीं रखा। इसीलिये तो भूरा का कभी कोई मुकाबला नहीं कर सका। लोगों ने भूरा को पाने के लिये बहुत प्रयत्न किये, पर जब मालिक बेचने को राजी नहीं तब कोई कर ही क्या सकता था ? कुछेक मनचलों ने सागर को यह भी धमकी दी कि 'भूरा को बेच दो, नहीं तो उसे चुराकर रातोंरात यमुना पार भिजवा दिया जायेगा।' लेकिन

इन धमकियों पर भी सागर भूरा को बेचने का विचार कभी मनमें न ला सका था।

इस साल वर्षा बिल्कुल नहीं हुई। खेती चौपट हो गई। न चारा न अन्न। किसान मुसीबत में पड़ गये। गाँवों में हलचल मच गई। जिनके पास फालतू जानवर थे वे उन्हे सस्ते में हटाने लगे। सामने मुँह-बाये खड़ी मुसीबत को देखकर सागर का भी दिल हिल गया। उसने अपने घर में बँधे सारे जानवरों पर निगाह डाली—ये दो खेती के बैल हैं, सो ये तो हटाये नहीं जा सकते। यह भैस है, जो दूध देती है। गृहस्थी का सहारा, इसे बेचना भी मूर्खता होगी। यह गाभिन गाय, जो अगले साल बच्चा देगी। फिर किसको बेचा जाये? चारे की बहुत कमी है। कड़वी का भाव पूरा रूपया है, छीलने को घास भी कहीं नहीं, जिससे जानवरों का पेट भरा जा सके। उधेड़-बुन में पड़े सागर की निगाह एकाएक छप्पर में बन्धे भूरा बैल पर जा पड़ी। वह सोचने लगा—"भूरा ही इन सबमें फालतू लगता है। बूढ़ा है, इससे कठिन मशक्कत के काम का भी नहीं। खूँटे पर बाँधा-बाँधा खाता ही है। इसे ही बेच देना चाहिये।" यह निश्चय कर एक बार सागर ने फिर जुगाली कर रहे उस भूरा बैल पर दृष्टि डाली। उसकी आँखे भूरा की आँखों से जा मिलीं। सागर ने अपनी आँखें झट अभियुक्त की तरह नीची करलीं। उसको लगा कि, भूरा मानो कह रहा है--"ओह मेरे मालिक! इस बुढ़ापे में भूरा के लिये यह तुम क्या सोच रहे हो?"

इतने पर भी सागर ने अपना निश्चय बदला नहीं। कई दिन बाद इधर उधर घूमता-घामता बैलों के समूह को साथ लिये अहमद बनजारा आया तो सागर ने कहा—"अहमद! अबकी तो बहुत दिनो में आये? क्या कहीं दूर निकल गये थे?"

अहमद ने कहा—अब की हिसार की तरफ चला गया था। माल खरीद लिया, पर लदान नहीं हो सका, सो काफी परेशानी हुई माल सब पैदल लाया हूँ। देख नही रहे हो, थकान से बछड़े सब कैसे मरे-मरे से हो रहे हैं? चाहो तो एक बछड़ा ले लो।"

सागर ने गर्दन हिलाकर कहा—"नहीं भाई! इस बार तो नहीं, चारे की बड़ी कमी है। मैं तो अबकी अपने भूरा को ही बेच रहा हूँ। उसे तुम ले जाओ। किसी भी छोटे-मोटे किसान को सौंप देना। दाम जो मुनासिब समझो, सो देना।" यह कहकर भूरा की रस्सी सागर ने अहमद के हाथ में पकड़ा दी।

अहमद ने भूरे को ले जाकर दूर किसी गाँव में बेच दिया और कीमत सागर को लाकर दे दी। पन्द्रह दिन भी न बीते होंगे कि भूरा रस्सी तुड़ाकर रातोंरात चलकर अपने पुराने ठिकाने पर आ पहुँचा। सुबह उठकर सागर ने देखा, तो छप्पर के नीचे बैठा भूरा जुगाली कर रहा था। एक टूटी रस्सी उसके गले में लटक रही थी। सागर ने भूरा की ओर साश्चर्य देखकर कहा—"भूरा, तुम तो अब पराये हो चुके! अब तुम यहाँ क्यों आये? तुम्हे तो वहीं रहना चाहिये।" यह कहकर सागर ने उसे फिर नये मालिक के घर भिजवा दिया।

वहाँ पहुँच कर नये मालिक ने भूरा को काफी

डराया-धमकाया और पीटा भी। फिर सन की एक मजबूत रस्सी लेकर उसके गले में बाँध दी। एक सप्ताह बीतने के बाद एक रात को फिर उसने गले की रस्सी तोड़नी चाही, पर रस्सी मजबूत थी, टूट नहीं सकी। अधिक जोर पड़ने पर नाक में पड़ी नथ (नकेल) ट गई और नथुना लहू-लुहान हो गया। फिर वह उसी रात-ही-रात चलकर अपनी पुरानी जगह पर आ गया। सागर ने सुबह उठकर देखा तो भूरा छप्पर में बैठा हुआ था और नाक से खून गिरने से जमीन लाल हो गई थी।

सागर भूरा के पास जा बैठा। पीठ पर हाथ फेरा, और फिर गद्‌गद् कण्ठ से बोला—"भूरा, बार-बार तुम यहाँ क्यों भाग आते हो? जानते हो कि तुम्हारा मैं अब कोई नहीं हूँ। मुझे तुम भूल क्यों नहीं जाते हो? अपने नये मालिक के पास रहो। तुम्हे बेचकर मै पैसे ले चुका हूँ। देखो, अपने नये मालिक के आगे मेरी ओछी मत कराओ।

पर भूरा अपनी विथा किससे कहे? कह नहीं पाता, इसीसे सही नहीं जाती। क्या वह सागर की ओछी चाहता है? उसे सह सकता है? भूरा की आँखों में आँसू छलछला आये। उसने मानों कहा—"मालिक! मै तीस रूपये में बिक गया हूँ, सो तो मैं जानता हूँ। मेरा शरीर तुमने बेच दिया, सो क्या मन भी बेच दिया है? मन से अलग इस खाली शरीर को लेकर नया मालिक मेरा करेगा भी क्या? इस दशा में मै उसके काम का बिल्कुल नहीं हूँ।"

सागर नीची गर्दन किये भूरा की नाक पर जमा खून पोंछ रहा था।

भूरा ने मानों फिर कहा—"यह तो मेरी जरा-सी नाक फूट गई है। खींचतान में शरीर भी चिर जाय, तो भी मै यहाँ आकर दम लूँगा। सुख में जब तुम्हारे साथ रहा, तो क्या अब दुख में तुम्हारे साथ मै नहीं रह सकता हूँ। मुझे आधा पेट रखो, सो स्वीकार है। पर रखो यहीं। वहाँ की मुझे भरपेट सानी भी मंजूर नहीं है। मैं प्राण रहते तुम से अलग नहीं रह सकता। अपने इस भूरा को तुम क्या अब भी नहीं परख पाये हो, मेरे मालिक!"

सागर से अब ज्यादा नहीं सहा गया। आँसू पोंछते हुए वह उठा। उठकर भूरा को सहलाया। फिर घर से तीस रुपये लेकर भूरा के नये मालिक के पास भिजवा दिये और कहला दिया, "यह लो अपने रुपये! भूरा तो अब इसी खूँटे पर मरेगा।"

## संघ का प्रचार कार्य—७ जीवों को अभयदान

ता० २२ ११-५८ के दिन ११३-१२ देकर कसाइयों के कब्जे से सात बकरों को छुडाया।

## संघ के प्रतिनिधि एवं प्रचारक—

(१) वैद्यराज अमरचन्द्रजी जैन (गोलछा) खींचन वाला—आप आयुर्वेदके अच्छे ग्याता है। (२) रणजीत के शाह शिवगंज (३) बालकृष्ण ओझा,

# बर्मा जीवदया मण्डल की ओरसे वायुप्रवचन

## मानद् मन्त्री श्री चुनीलाल भावगार का वक्तव्य

आज तारीख चार अक्तूबर है। आज समस्त विश्व "पशु दिवस" मना रहा है। पशुओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त करना, उनकी हत्या न करना, हिंसा से दूर रहना और अहिंसा को अपनाना यही धर्मों का कहना है।

"अहिंसा परमो धर्मः"

तथागत भगवान बुद्धने पञ्चशील का पहला आदेश में यही बताया है "पानातीपाता वीरमनी सिक्खापदम समाधियामी"

(I observe Lord Eudde's fist to ab-sbain from any couduct which involves killing.)

1. killing yourself (कीढाइ)
2- Cause Other to kill (टाईटुन)
3. To Praise killing (चिन्म)
4 To Concent killing (सेईटु)

मानसिक दृष्टि से माँसाहार हिंसक है। माँसाहार सब अनिष्टों का उत्पादक है। अनाज, साग, सब्जी, फल, फलोंदु, घी, दूध, ये सब मानव जाति के लिये कुदरती खुराक है। मांसाहार हर तरह से हानिकार और कुदरत के विपरीत खुराक है। चार पाँव वाले पशु भी भूख से भले ही मर जाँय मगर माँसाहार कदापि नहीं करते। गाय, हाथी जैसे प्राणी घास और फलों पर निर्भर रह कर जीवित रहते हैं।

शेर, सिंह और अन्य जानवर जो मांस भक्षण करते है तथा अन्य पशुओं को मार कर उनका मांस भक्षण करते है उनकी गणना हिंसक पशुओं में होती है।

इसी प्रकार जो मानव मांस-भक्षण करता है उनकी गणना हिंसक मानव में होती है। जिस देश में माँस भक्षण करने वाली प्रजा रहती है उस देश की गणना अहिंसक देश के रूप में नहीं होती। रंगून जैसे बडे शहरों में मारपीट और खून के किस्से होते है। खास कर मांस भक्षण करने वाले मनुष्यों में अधिक देखने को मिलते हैं। मांस भक्षण करने से मानव का मन खूनी और हिंसक पशुओं जैसा बन जाता है। यही बात सत्य है।

शारीरिक दृष्टि से विचार करने से मांसाहार सब रोगों का उत्पादक है। विशेष कर क्रेसर, झटा, टाई-फाईड, दाँत की पीडा, अपेन्डीसाइटिस, पायोरिया, आँख के दर्द, छाती के दर्द, शरीर में चर्बी बढ जाना और सभी पीडाये मांसाहार करने वालों में और उनसे उत्पन्न होने वाली सन्तानों में विशेष रूप से अधिक देखने को मिलती है। मांसाहारियो का खून हमेशा के लिये कुदरत के विरुद्ध शरीर में बनता है इस का मतलब यह है कि वह खून अस्वच्छ और शाका-

हारी मनुष्यों के खून से प्रतिकूल बनता है। इस लिये मांसाहारियों में अधिक रोग उत्पन्न होता है।

कतलखाने में जिन पशुओं का वध होता है वे सब जानवर खास करके किसी न किसी रोग से पीडित होते है। क्षय, और केन्सर जैसे रोगों से ग्रस्त जानवरों के मांस के भक्षण से दुनियाँ में ज्यादा रोग फैलता है। मांसाहारी स्त्रीजाति को शरीर में अकुदरती चरबी बढ जाती है और उससे प्रसुतिकाल में अधिक वेदना होती है। विश्व के बडे बडे डाक्टरों ने और वैज्ञानिकों ने मांसाहार को एकदम रोगिष्ठ और मानव जाति के लिये अप्राकृतिक आहार बताया है। पश्चिम के देशों की प्रजा अपने अनुभव से और पूरे ख्याल से मांसाहार छोड़ कर शाकाहारी जीवन व्यतीत करने की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर रही है।

अमेरिका और यूरोप के देशों के लाखों मनुष्यों ने शाकाहार अपनाना शुरू किया है। तन्दुरस्ती के लिये मांसाहार खतरनाक है और शाकाहार से शरीर तन्दुरस्त रहता है। ऐसा पश्चिमी देशों के डाक्टरों ने अनुभव से स्वीकार किया है। साथ ही साथ इन डाक्टरों ने बताया है कि माँसाहार से अनेक लाईलाज रोगो का प्रकोप होता है। यह भी कहा गया है कि मांसाहार मानव-जाति के लिये अकुदरती और खतरनाक अहार है और यह भी कहा है कि माँसाहारी मनुष्यों से शाकाहारी मनुष्य अधिक मजबूत, शान्त और ताकत वाले होते है।

आर्थिक दृष्टि से यदि सोचा जाय तो साग, सब्जी और अनाज की अपेक्षा मांस का दाम अधिक पड़ता है अमेरिका और यूरोप के सभी अर्थ–शास्त्रियों ने बताया है कि मांस का दाम अनाज और साग, सब्जी से ज्यादा कीमत का होता है। खुला जमीन में साग, भाजी और अनाज उत्पन्न करने से मांस की अपेक्षा अधिक प्रमाण में सस्ते दाम से उपलब्ध होगा।

मांसाहारियों को मांस खाने की आदत सी पड़ जाती है। इसलिये मांस खाना वे छोड़ नहीं सकते। और ज्यादा मांसाहार करने से ज्यादा रोग होता है। इस तरह मांस महँगा होने के साथ-साथ हानिकारक भी है। आर्थिकदृष्टि से मांसाहार अपने देश के लिये अत्यन्त घातक है।

प्रोटीन की दृष्टि से डाक्टरों ने सावित किया है कि साग, सब्जी दूध अनाज और फल में जितने प्रमाण में प्रोटीन हैं उनकी तुलना में मांस में कम प्रोटीन है। ब्रह्मदेश और भारत की सरकारों ने अण्डे मच्छली और मांस भक्षण करने का जो आवाहन किया है, इससे प्रजा को गलत रास्ता बताया है। शायद उन्हें मालूम नहीं होगा कि मांसाहारी जनता अधिक रोगों से दुःखित होती है और ऐसे रोगवाले मांसाहारियो को डाक्टर भी शाकाहार से रोग नष्ट होने की सलाह देते है। और ऐसे मांसाहारियों के लिये शाकाहार दवा के समान है। बर्मा और भारत जैसे देश की हवा के लिये मांस प्रतिकूल और रोगिष्ठ आहार है। इन दोनों देशों की सरकारों को भली भाँति सारी बातों का अध्ययन कर मांसाहार निषेध करना चाहिये और मांसाहारी जनता से शाकाहारी बनने का आग्रह करना चाहिए और पर्याप्त अनाज उत्पादित कर जनता को सस्ते दाम में अनाज देना चाहिये।

धार्मिक दृष्टि से विचार करने से तो मांसाहार पाप है। मांस कोई जड पदार्थ की वस्तु नहीं है।

घास, लकड़ी और पत्थर से यह नहीं बनता है। मांस एक जीवित प्राणी मार कर उसे कत्ल कर तैयार किया जाता है। इसलिये मांसाहार महान पाप है। पशु-वध करनेवाले, पशुओं का मांस खरीद ने वाले और विक्री करने वाले, मांस को पकाने वाले और उसको परोसने वाले तथा उसे खाने वाले सभी कोई प्राणियों को मारने के समान दोषित है, किन्तु सबसे ज्यादा दोषित तो मांस खाने वाला है! मांस खाने वाले मांस छोड़ दे तो पशुवध नहा होगा। और पाप को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। पशु वध करना अहवान और घातकी मनुष्य के काम है। विश्व के हर एक प्राणीमात्र को इस संसार में जीने का हक है। विश्व के सभी धर्मों के शास्त्रों ने कहा है कि, किसी जीव को मारना या दुःखी करना महान पाप है। और ऐसा करने वाले ईश्वर की निगाह में गुनहगार हैं।

इस तरह विचार करने से मालूम होता है कि मांसाहार मानव जाति के लिये अकुदरती खुराक है और मनुष्य के लिये घातक है। जब तक दुनियाँ में मांसाहार होता रहेगा, तब तक जगत में युद्ध का भय बना रहेगा। और हिंसा का बोलबाला रहेगा। दुनियाँ वालों की लड़ने की मनोवृत्ति दूर नहीं होगी। विश्व की प्रजा नीरोग नहीं बन सकेगी और सुख-शान्ति नहीं मिल सकेगी। इस तरह सब दुःखों का कारण मांसाहार है। जनता मांस, मछली, अण्डा खाना छोड़ दे, इससे जीवन को सच्चा सुख मिलेगा। जगत सच्चा अहिंसक बनेगा।

परम कृपालु परमात्मा से प्रार्थना है कि जनता को सदा सुखी रखें।

आज हम पशुदिवस मना रहे है इसके पीछे भी अहिंसा—जीवदया की भावना देखने मिलती है। अहिंसा का यह भी एक अङ्ग है। आज के दिन हम सब प्रार्थना करें और प्रतिज्ञा करें कि "मै कभी भी जीवहत्या नहीं करूँगा और जो कोई भी हत्या करता होगा उससे प्रार्थना करूँगा कि वह भी इस हिंसात्मक कृत्य से दूर रहे।"

## मांस-मदिरा के सेवन के पाप से जैन भी बचे नहीं!

जैन मांस खाते है—यह सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा? अहिंसा के पुजारी, दया-करुणा और मैत्री भाव में मग्न रहनेवाले जैन बडे चाव से माँस खाते है, यह बात कितनी अनर्गल है। जो धर्म कन्द-मूल खाने में पाप मानता है, उसी धर्म के अनुयायी मांस खावे, और वह भी प्रशंसा कर करके खावें क्या यह मानने जैसी बात है? परन्तु आजकल मानने या नहीं मानने की बात ही कहाँ रही। भौतिक उन्नति में ही सुख माननेवाले विज्ञान के युग में अपने को इस प्रकार की बहुत सी बातें देखनी पडेंगी और माननी पडेगी।

मनुष्य के जीवन में आहार सब से प्रधान वस्तु है, जिसका प्रभाव शरीर पर अनिवारित पड़ता है, तो भी यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि आहार का प्रभाव विचारों के ऊपर भी पड़ता है, इसीलिये कहा जाता है कि 'जैसा आहार वैसी डकार।' विचारों

का प्रभाव वाणी और व्यवहार पर भी पड़ता है, अत एव ज्ञानी पुरुषो का कहना है कि 'सादा, सात्विक और पथ्य आहार करो।' शास्त्रों में कन्द-मूल को अभक्ष्य माना गया है, परन्तु आजकल जैनलोग शास्त्र की अवगणना करके उन्हें खा रहे है तो फिर वे ही जैन लोग धीरे-धीरे यदि मांस-मदिरा का सेवन करने लगें तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या ?

पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा से परिचर्चित बुद्धिवाले और अपने को सुधारक माननेवाले वर्ग की यह मान्यता है कि 'मांस, मछली और अण्डे आदि पदार्थ अवश्यमेव भक्ष्य है'। क्योंकि आजकल पौष्टिक आहार मिलता नहीं, इसलिये ऐसे आहार लेने से लोगोंको इनसे विटामिन मिलती रहेगी और उससे शक्ति बढेगी, इस प्रकार की कितनीक युक्तियां आमिष आहार करनेवाला वर्ग देता रहता है। बडे बडे शहरो में जैनोंकी संख्या प्रचुर परिमाण में होती है, जिसमें प्रत्येक संप्रदायके वर्ग मिलते है। इन में से कुछेक जैन भाई आजकल मांस, मछली और अंडा आदि खाना सीख गये है, और खाने वाला वर्ग नहीं खानेवाले वर्ग को युक्ति-प्रयुक्तियों द्वारा धीरे-धीरे खाने वाला बनाता जा रहा है। सबेरेके जलपान में 'आम लेट' तो आजकल सर्वाधिक ग्राह्य हो गयी है। जीभ के स्वाद से, अथवा दाँतों की खजुलाहट से, या तो विटामिन के भूतावेश से कितनेके जैनभाई मांसभक्षी हो गये है।

जिन कुलों में जन्मते ही चारों ओर अहिंसामय वातावरण गुञ्जित होता हो, कुटुम्ब के सभी लोग करुणा—दया के उपासक हों, जहाँ दीर्घतपस्वी अहिंसा के वेषधारी शान्त स्वाभाव जैन मुनिओं का आना-जाना होता हो, उस कुल के जैन—नामधारी लोग मांसभक्षी बनें. यह कितने आश्चर्य की बात है ? कितने'क निर्लज्ज जैन-युवक तीर्थंकरों के ऊपर भी मांस भक्षण का दोषारोपण करते हैं।

मांस—मदिरा सेवन करने वालों की प्रकृति तामसी होती है, बात—बात में उनके मस्तिष्क की समतुला नष्ट हो जाती है.और वे लड़ने—झगड़ने लगते है। जैन लोग सात्विक आहार करने के कारण स्वभावतः शान्त और पाप भीरु माने जाते हैं। परन्तु आधुनिक जैन इस सर्व साधारण मान्यता को असत्य सावित कर देगे। क्या जैन लोग इस बात पर लक्ष देंगे ?

वस्तुतः यदि वणिग्बुद्धि से यह प्रश्न विचारा जाय तो भी जैन लोग मांस खाने से उगर सकते हैं। जिस व्यापार में बिल्कुल हानि ही हानि हो, ऐसे व्यापार करने वाले को क्या व्यापारी कह सकते हैं? आइये; व्यापारियों की दृष्टि से अपने इस विषय पर विचार करें—

१—मांस-मदिरा का सेवन करने वाला नियमतः नरक-गामी होता है—इस प्रकार शास्त्र में कहा गया है।

२—मदिरा-सेवन करने वाले का अनन्त संसार बढता है, अर्थात्—जन्म मरण का चक्र बढता जाता है।

३—मांस-मदिरा-सेवियो के हृदय में से दया-करुणा आदि सद्गुण लुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर कठोरता क्रूरता एवं निर्दयता आदि दुर्गुण निवास करने लगते हैं।

'४—मांस-मदिरा-सेवी अमितव्ययी होता है, इससे उसके घर में दरिद्रता आती है और उसका फल कुटुम्ब के अन्य सभ्यों को भोगना पड़ता है।

५—मांस-मदिरा का सेवन करने वाला तामसी प्रकृति का हो जाता है, इससे उसमें सार-असार के विचारने की शक्ति नहीं रहती।

६—मांसभक्षी रोगग्रस्त और मदिरा पायी निश्शक्त हो जाता है।

उपर्युक्त हानियों के होते हुए भी जैन लोग यदि उनका सेवन करते हैं तो समझना चाहिये कि वे पतन के मार्ग पर चल रहे है। हारा हुआ जुआड़ी दुगुना दाव लगाता है उसी प्रकार शिक्षा देने पर कितने'क लोगों की दुर्वृत्ति दुगुनी बढ जाती है। लोगों में यह कहावत प्रचलित है कि 'रोकने से नहीं रुकता, लेकिन ठोकर खाने से रुकता' सो इस कहावत के अनुसार मांस-मदिरा सेवन के कटु फल मिलते ही थे सीधे रास्ते पर आ जायेंगे।

बड़े शहरो में और उनमें भी खाश करके आधुनिक शिक्षा सम्पन्न जैन युवकों में यह बुरी आदत अधिकतर देखने में आ रही है। होटल-रेस्तराँ में और पार्टी आदि में जाना, और वहाँ पर भी मांस खाना यह आजकाल की सभ्यता हो गयी है। मांस नहीं खाने वाले लोगों की ये मजाक उड़ाया करते है। ऐसी स्थिति में जैन समाज यदि शीघ्र नहीं जगेगा तो जैनधर्म निन्दित होगा। साधुओं और साध्वियों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे जब बड़े शहरों में जाँय तो वहाँ मांस और मदिरा से अलग रहने का प्रभावशाली उपदेश देते रहे और पच्चक्खाण कराते रहें कि जिससे जैन लोग अधोगति जाने से बचें।

भीतर-भीतर प्रत्येक जैन अपनी सन्तानों को इस प्रकार के पापों से बचाने के लिये सभी प्रकार के समुचित उपायों द्वारा उनको अपने अनुशासन में रखें कि जिससे उनकी मांस-मदिरा सेवन की दुष्प्रवृत्ति रुके, यही मेरी अभ्यर्थना है।

**बी० के० बावटीआ**

**अनुवादक-ब्रजनन्दन मिश्र**

# जिला गोहत्या निरोध समितियों के लिये सूचनायें

(१) आगामी १३, १४ दिसम्बर को यह सम्मेलन दिल्ली में होगा। समस्त प्रतिनिधियों को दिनांक १२ की रात्रि तक दिल्ली पहुँच जाना इष्ट होगा। अधिक से अधिक दिनांक १३ को प्रातःकाल पहुँचने वाली गाड़ियों से सब को पहुँचना आवश्यक है ताकि प्रात: ९ बजे शुरू होने वाले सम्मेलन की कार्यवाही में वे भाग ले सके। दिनांक १४ की रात्रि को सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त होगी और कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्र को लौट सकेंगे।

(२) समस्त प्रतिनिधियों एवं अन्य निमन्त्रितों को एक साथ रहने की व्यवस्था तम्बुओं में की गई है। यह शिविर नगर के विशाल रामलीला मैदान में लगेगा। उसी मैदान में अधिवेशन के मण्डप तथा गोचित्र प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई है। भोजनादि की व्यवस्था भी वहीं की गई है। दिनांक १२ की रात्रि से दिनांक १४ की रात्रि तक सब के ठहरने व भोजन करने का प्रबन्ध शिविर में रहेगा। दिनांक १५ को प्रातः शिविर विसर्जन होगा।

(३) प्रत्येक जिला से कम से कम एक प्रतिनिधि, सम्मेलन में अवश्य पहुँचना चाहिये। यदि अधिक सख्या में प्रतिनिधि आवेगे तो उनका भी स्वागत होगा और शिविर में प्रवेश मिलेगा। जो कार्यकर्त्ता और प्रतिनिधि आवेंगे उन्हे अपने निजी काम करने के लिये दिनांक १३, १४ को शिविर से छुट्टी नहीं मिलेगी। अधिवेशन समाप्त होने तक सम्मेलन के ही कार्यक्रमों में उनका पूरा समय खर्च होगा। प्रतिनिधि शुल्क ५) रुपये है।

**प्रकाशक :** बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद् मन्त्री हिंसा-विरोधक सघ, अहमदाबाद।
**मुद्रक :** वैद्यराज खावनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, काकरिया रोड, अहमदाबाद।

## पुराने ग्राहकों से एक आवश्यक अनुरोध

"हिंसा विरोध" पत्र के पुराने ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो गया है। अतएव जीवदया तथा अहिंसा के प्रेमी भाई-बहनों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि इस अंक को पाते ही वे अपना शुल्क रु० १॥ शीघ्र मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें और अपने मित्रों को भी ग्राहक बनाकर सहयोग प्रदान करें। दयालु पाठकों से भी सादर प्रार्थना है कि गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया प्रचार के कार्यमें भेट मदद भेजकर पुण्य तथा यश के भागी बनें।

---

**अहिंसा भवन में रू. १०१ दे कर नाम अमर करें**

### जीवों की पुकार

कहती मछली मैं जलप्राणी स्वच्छ बनाती हूँ निजनीर।<br>
बिना दोष धीवर संहारे मुझे बचाओ, हे नरवीर!॥

गौ कहती चिल्ला चिल्ला कर मुझको कहते जगकी मात।<br>
माता कहकर पूज रहे हो तो भी करते मेरी घात॥<br>
मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में सहाय करते दिनरात।<br>
वधस्थान में मारे जाते मुझे बचाओ, मेरे तात!॥

कुत्ता कहता पहरा देता निजस्वामी का खाकर अन्न।<br>
विष देकर यह क्रूर घातकी मुझको करता है अवसन्न॥

मैं मैं कहकर बकरी कहती मैं हूँ दीन दुखी अत्यन्त।<br>
देवी के बलि हित, हा! मेरे प्राणों को क्यों करते अन्त॥

ईद के दिन में मानव करते लाखों जानों की कुर्बान।<br>
धर्मनाम पर कर के हिंसा मान रहे निजको इन्सान!॥

भेड़ी कहती मैं चलती हूँ सिर नीचे कर अपनी राह।<br>
बिना दोष मारी जाती हूँ दिलमें आती इसकी आह॥

कहता रोझ कि मैं वनवासी जंगल में ही रहता हूँ।<br>
मार रहे क्यों मुझे शिकारी क्या बिगाड़ मैं करता हूँ!॥

मृग कहता मैं वनचर प्राणी प्रिय मुझको अतिशय संगीत।<br>
मुझे न मारो, हे मनु-सन्तति! समझो मुझको अपना मीत॥

मुर्गी कहती अंडे खाकर क्यों करते मम वंश-विनाश।<br>
अन्य महौषध खाओ बल-हित, करो न मेरा सत्यानाश॥

वानर कहता पवनपुत्र की वंशज है यह मेरी जात।<br>
उदर हमारा चीर रहे हो, कहते रामराज्य की बात॥

मूक जीव सब आर्तनाद कर कहते मेरा करो बचाव।<br>
'दया' धरो मन में हे मानव! यही अहिंसा का है भाव॥

---

Regd N0. B. 7127

Licenced to post without prepayment
L. N0. 61

प्रेषक—
'हिंसा-विरोध' कार्यालय
माणेकचौक
अहमदाबाद-१

सेवामें श्री [illegible]

ॐ अहिंसा परमो धर्मः

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ अङ्क २

एप्रिल : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे

वार्षिक शुल्क रु. १–५० नये पैसे

# अन्न-संकट का सरल समाधान

लेखक श्री सुखदेव पुण्डीवाला पोस्ट गजनेर, ज़िला बीकानेर

आज कल हमारी सरकार अन्न-संकट को दूर करने के लिये बड़ी परेशान दिखाई दे रही है। बड़े बड़े लीडर इकट्ठे होते हैं, बड़ी बड़ी मीटिंगें होती है और विचित्र विचित्र प्रकार की योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

कोई कहता है अन्न कम खाओ, कोई कहता है रोजाना सिर्फ एक समय खाओ, तो कोइ कहता है सप्ताह में एक उपवास करो। कोई सलाह देता है आलू और शकरकन्द अधिक खाओ तो कोई फल या घी दूध ज्यादा खाने पर जो देता है।

इस तरह बेतुकी और बेसिर-पैर की बातें सुन कर हमें अपने देश के कर्णधारों के दिमाग पर तरस आ रहा है। जिस देश के निवासियों को ६ आने सेर का चावल या गेहूँ भी भर पेट खाने को न मिले, उन्हें घी दूध या फल आदि खाकर अपना पेट भरने की सलाह देना वैसा ही मूर्खता पूर्ण लग रहा है जैसा कि एक बार फ्रांस की रानी ने भूख से व्याकुल विद्रोहियों को 'रोटी दो' के नारे को सुन कर अपने मन्त्री से कहा कि आप इन्हें यह क्यों नहीं कह देते कि 'अगर रोटी नहीं मिलती तो मक्खन और टोस्ट खाओ'।

अन्न समस्या को हल करने के लिये "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन भी किये गये, पर सिवा रुपये की बरबादी के अन्य कोई फायदा हमें नहीं हुआ। क्योंकि जनसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही हैं। और भूमि जो थी वही की वही है। भले ही आप आलू उपजाएँ या शकरकन्द अथवा अन्न।

अगर देश को अन्न-संकट से बचाना है तो उसका एकमात्र उपाय है गोरक्षा! पर दुःख है कि आज तक किसी नेता का ध्यान इस ओर नहीं गया! महात्मा गाँधी के देश में आज भी हर साल लाखों की संख्या में गायें कतल की जा रही है।

अतः जब तक सारे देश में गोहत्या सम्पूर्णतया बन्द नहीं की जाती, तब तक देश को अन्न-संकट से बचाया जा सकना सर्वथा असम्भव है।

गोहत्या-बन्दी के विषय में मैंने उक्त विचार धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं, विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से प्रकट किये हैं, क्यों कि गाय को एकबार में काट कर कुछ ही व्यक्ति अपनी उदरपूर्ति कर सकेंगे, पर इसे जीवित रखेंगे और इसका पोषण करेंगे तो इस दहीसे इसकी सन्तानों द्वारा दिये जाने वाले दूध से हज़ारों लाखों व्यक्तियों का पोषण होगा।

साथ ही देश के नेताओं का ध्यान इस अनुभव-सिद्ध पूर्ण तथ्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ कि जो व्यक्ति सिर्फ अन्न खाते हैं वे घी खाने वाले व्यक्ति से अधिक अन्न खाते हैं, और शारीरिक तथा मानसिक शक्ति में भी उसकी अपेक्षा कमजोर होते हैं तथा जो व्यक्ति घी दूध ज्यादा खाते हैं वे सिर्फ अन्न खाने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अन्न कम खाते हैं और उनकी अपेक्षा शारीरिक मानसिक शक्ति में भी तेज होते हैं।

अतः प्रत्येक देश भक्त से मेरा निवेदन है कि अगर वे जनता के सच्चे सेवक हैं, उसे सुखी देखना चाहते हैं, उसे स्वास्थ देखना चाहते हैं और अन्न-समस्या को हल करके देश को उन्नत करना चाहते हैं तो सबसे पहले वे गोरक्षा करें।

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ ] - अहमदाबाद, एप्रिल १९५९ [ अङ्क २

## हमारी प्रतिज्ञा हो यही !

—एक गो-सेवक—

गाय का वध देश में अब बन्द करवायेंगे हम ।
नाश करके जुल्म का फिर धर्म-युग लायेंगे हम ॥

जिस ने पाला राम को, मुरली-मनोहर-श्याम को ।
उसकी माता के पुजारी बनके दिखलायेंगे हम ॥

जिसके रक्षक थे शिवाजी, प्रताप-सिंह और गोविंद ।
शीश उस माता की खातिर अपने कटवायेंगे हम ॥

अब चलने न देंगे हम, इस पर छुरी जल्लाद की ।
गो-वध को रोकेंगे सभी, तूफानसे टकरायेंगे हम ॥

गौका कत्ले आम हो, 'गोपाल' ही के देश में ।
यह कभी होने न देंगे, ढाल बन जायेंगे हम ॥

जिसका गौरव गान करते, देव-ऋषि-मुनि-गण सभी ।
उसकी रक्षा के लिये, सब मिलके जुट जायेंगे हम ॥

अपनी ही सरकार है, और अपने ही हैं रहनुमा ।
फिर भी गौ-वध हो रहा, यह पाप हटवायेंगे हम ॥

'दूध की नदियाँ बहें', फिर भी चाहते गर भारती ।
'गो-वंश की हत्या रुके', कानून बनवायेंगे हम ॥

# आत्म स्नेह

मूल लेखकः—मफतलाल संघवी

अनुवादकः—मनमोहनाचार्य शास्त्री

भारत सहित जगत में बढ़ती हुई हिंसा यह जगत की वर्तमान संस्कृति का बड़े से बड़ा कलंक है।

सुख मनुष्य के विवेकपूर्ण प्रयत्नों का आभारी है, नहीं कि प्रवर्तमान उटपटांग विचारसरणी का।

मनुष्य को सुखी करने की सिर्फ धुन में ही सुख के सच्चे राज मार्ग को सर्वथा उलंघन करके हजारों भयस्थानोंसे भरपूर ऐसे असमतल और पथरीले मार्ग पर अपने राष्ट्रजनों को चलाने का मिथ्या आग्रह को मानने वाले स्त्री पुरुष यह क्यों भूल जाते हैं कि आन्तरिक धर्मों से रहित एकान्तिक प्रयासों से कभी भी सुख नहीं मिलता।

सरकारी कार्यों से इस देश में अद्यतन ढबके कारखानों को शुरू करने की योजना जो हवा पकड़ती जा रही है वह स्पष्ट बताती है कि भारतीयों की अहिंसा के प्रति निष्ठा कम होती जा रही है। हिंसा में उनको नफरत होगी इसकी होना नहीं है परन्तु उस नफरत में जो प्रबलता होनी चाहिये, वह न होने के कारण इस देश के वातावरण में हिंसा का बल बढता जा रहा है।

हिंसा से बाहर का वातावरण दूषित है, इतना ही नहीं, परन्तु अन्तर में भूमिकम्प जैसा भयानक आँचका हिंसा के सीधे प्रत्यघात में से उत्पन्न होता है। जीवन की सत्वसमृद्धि को हिंसा के हमले से लकवा हो जाता है। विशुद्ध भावना की उर्मियाँ हिंसा की घटाटोप छाया में मृतप्रायः बन जाती है। जिसके मन में हिंसक विचारसरणी उत्पन्न हो जाती है उसकी जीवन बल हिमपात से जले हुए वृक्ष की तरह कालीश्याम पड़ जाती है।

अहिंसा के अमृत छिड़कने से विकास करता है जीवन का सहस्र दलपद्म, अहिंसक भावना के प्रकटी करण सिवाय जीवन में न तो सच्चा प्रेम ही उत्पन्न होता है और न सेवा की लगन ही। चैतन्यता के उर्ध्वीकरण को सर्वाधार अहिंसा के विकास पर टिका हुआ है। कारण कि सर्व जीवों को सुखी करूं; आत्मशासन का रसिया करूँ; यह मौलिक गीत है आत्मा का यह गीत अहिंसा के अवलम्बन बिना विश्व में विस्तृत नहीं ही हो सकता और इसके बिना चैतन्य का उर्ध्वीकरण कभी भी सम्भव नहीं है।

मानव जीवन में जमी हुई जड़ता हिंसा के आश्रय द्वारा अधिक दृढ बनती जाती है और उससे ही जीवन हिंसा के अत्यन्त दुःख दर्दजनक प्रसंगों में भी आज का मानव नितान्त से श्वास ले सकता है।

विकास की दशा में आगे बढता आत्मा को जीव हिंसा द्वारा पीछे हटने की प्रधान प्रवृत्ति जिसके मन वचन और शरीर पर कब्जा कर रही है। ऐसे मानव होशयार, चतुर, बुद्धिशाली और प्रतिभाशाली होने का बहुमान प्राप्त करें, यह किस तरह की सूचना है? जल में निर्भय पूर्वक रमती हुई निर्दोष मछलियों को निर्दयता से मारडालने जैसी महान् हिंसक प्रवृत्ति को 'मत्स्य उद्योग' जैसा हिंसक नाम दिया जाय और इस पर भी कोई उसके विशुद्ध प्रबल विरोधी स्वर न निकाले; यह क्या बताता है?

स्नेह समर्पण और सद्भावना की पवित्र सुगन्ध से यह युग प्राचीन महान् राष्ट्र के वातावरण को क्रूरता, निष्ठुरता दुर्भावना, विषय और प्रमाणुओं द्वारा अधिक दूषित होने से रोकने के लिये भारतीय स्त्री पुरुष और बालक बालिकाओं को अपने जीवन के मौलिक, अध्यात्मलक्षी दृष्टिकोण को पुनः समय पर धारण कर लेना चाहिए। जहाँ तक भारतीय जनता के जीवन के ऊपर सम्पूर्ण प्रभुत्व जमाया हुआ अनात्मलक्षी वर्तमान भौतिक दृष्टिकोण नहीं बदले वहाँ तक हिंसा को रोकने का अहिंसा को टिकाने का अपने सभी प्रयत्न निष्फल जायेंगे।

गयी कल तक सच्चा पवित्र और और अहिंसक जीवन के प्रति हमें जो प्रेम था। उसमें भौतिक जीवन की सर्वोपरिता के विचार का ज़हर मिलाने के कारण से अपनी स्थिति अत्यन्त नाजुक बन गयी है। विश्वव्यापी जीवन की आराधना के लिये अपने लक्ष्य को चूक कर यदि हम दूसरे के हरे भरे जीवन बाग को उजाड़ कर अपने जीवनबाग को पुष्पपत्र और मंजरी से युक्त करने के पाश्वी विचारों में डूबते जायंगे तो अपने इस पुराने और पवित्र राष्ट्र की प्रजा के ऊपर आस्मान का अन्धेरा इकट्ठा ही उत्तर आयगा। इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं है।

विद्युत प्रवाह का झटका लगने से शरीर की जो स्थिति घटी है वही स्थिति हिंसा के विचार के झटके से अपने मनकी नहीं होय; तब तक हमको समझाना है कि अपने जीवन में हिंसा का पक्षपाती बल विशेष है।

मन वचन और शरीर में अहिंसा के दिव्य तेज का प्रकाश करना और मन से वचन से अन्त में शरीर से मानव प्रयत्न को बन सके उस सीमा तक हम सब को अहिंसा की ही आराधना करनी चाहिये। उगते हुए हिंसा के मृत्युसंवृत्त वातावरण को संसार में से नामशेष करने के लिये आत्मस्नेह ही बड़ी से बड़ी दवाई है। क्या आत्मस्नेह का पाठ चतुर भारत वासी को नवा सिखाना पडेगा?

विश्वमैत्री के अमृतपान से पोषित हुआ भारत वासी किन प्रबल कारणों से हिंसा के जलते हुए वातावरण में अपने जीवनोद्यान को उजाड़ ने के लिये तरस रहा है।

# अहिंसक भारत में पशुओं की हिंसा में वृद्धि

[ श्रीमती राजलक्ष्मी गौड़ ]

अहिंसक महात्मा गाँधी के भारत में आज हिंसा का साम्राज्य छाया हुआ है। महान् अहिंसक महाराज अशोक के सिंहचक्र को राष्ट्रीय चिन्ह बनाकर भी आज का भारत उनकी शिक्षाओं से लाखों मील दूर है। महाराज अशोक के शासन-काल में समस्त भारत में पशुहत्या बन्द कर दी गई थी। परन्तु आज कल भारत में पशुओं की हत्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। अंग्रेजी राज्य समाप्त हो जाने पर भी पशुओं की हत्या में कमी नहीं हुई, बल्कि वृद्धि ही हुई है। अंग्रेजी शासन में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ गायों की हत्या होती थी, जबकि भारत अविभाजित था। पाकिस्तान बन जाने के कारण पशुओं का एकतिहाई भाग पाकिस्तान में चला गया यदि अंग्रेजी शासनकाल की दर से हिसाब लगाया जाए तो भारत के नाम

६७ लाख की संख्या होनी चाहिए। लेकिन १९५५-५६ ई० की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि कत्ल किए गाय और बछड़ों की ८० लाख ७० हजार खालों का निर्यात भारत ने किया। यह सब खाल रूस, अमरीका तथा इन्गलैड आदि देशों को भेजी गई। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में जूते बनाने वाली कुछ विदेशी (अब शायद स्वदेशी) कम्पनियाँ कत्ल किए गये गायों और होनहार बछड़ों की लगभग ५० लाख खालें प्रतिवर्ष खर्च करती है। इस हिसाब से भारत में अंग्रेजी शासन से दूना गोवध हो रहा है। इन दुष्कृतियों को देखकर स्वर्ग में महात्मा गांधी की पवित्र आत्मा को कितना दुःख होता होगा।

## गोवंश के अंगों का निर्यात

सन् १९५३-५४ ई० की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त काल में कत्ल किए गये गाय और बछड़ों की आंतों को २५ लाख रुपये में दूसरे देशों को भारत ने बेचा। यह संख्या प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सन् १९५५-५६ ई० में ४७ लाख रुपये से भी अधिक की आंतें, बाहर भेजी गई थीं।

भारत में २२ बन्दरगाह हैं। यहां मै कुछ बन्दरगाहों का विवरण प्रस्तुत करना चाहती हूँ, जहाँ से गाय और बछड़ो की आंतें उनकी जीभ और उनके जिगर तथा अन्य अङ्ग विदेशी राष्ट्रों के लिए भेजे गए सन् १९५३-५४ ई० की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त समय में बम्बई, कलकत्ता और मद्रास इन तीन बन्दरगाहों से ५६ लाख ३८ हजार रुपयों की गाय व बछडों की आंतें, जीभ तथा जिगर आदि अङ्ग बाहर भेजे गये। ये केवल तीन बन्दरगाहों के भी आंकड़े हैं। यदि शेष बन्दरगाहों के भी आंकडे प्राप्त हो जाएँ तो यह संख्या कई गुनी बढ़ जायगी।

## मांस के लिए पशुओं का संहार

भारत सरकार की राष्ट्रीय आय कमेटी ने १९५४ में जो रिपोर्ट दी थी उसके अनुसार १९५०-५१ ई० में २२ करोड़ रुपयों का गौ मांस तैयार हुआ। ये अंक केवल सरकारी कसाईखानों के हैं। शेष जो गो वध स्वतन्त्र या प्रच्छन्न रूप से होता है यदि उसके भी आंकडे प्राप्त हो जाएँ तो यह संख्या और भी बढ़ जाएगी।

भैंस का मांस ९ करोड़ ५० लाख रुपये का तैयार हुआ। भेड़ और बकरी का मांस ४४ करोड़ रुपये का तैयार हुआ। सूअर का मांस ४ करोड़ ७५ लाख रुपये का तैयार हुआ। मुर्गी और बत्तख के अण्डे १० करोड रुपयो के तैयार किए गये। मुर्गी का मांस ८ करोड रुपये का तैयार हुआ। मछली ३६ करोड रुपयों की तैयार हुई। सब आंकडे सरकारी स्तर पर किए गए पशु-संहार के हैं। स्वतन्त्र या प्रच्छन्न रूप से की गई हत्याओं के आंकडे भी यदि इसमें जोड दिए जांय तो इनकी संख्या दूनी हो जायेगी।

खाद्य तथा कृषि मंत्रालय ने १९५६ ई० में मांस बाजार रिपोर्ट प्रकाशित की है। उसके अनुसार सरकारी तौर पर मांस का उत्पादन तथा प्रचार बढ़ाने के लिए गोवध जारी रखने का सुझाव दिया गया है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने फरवरी १९५५ ई० में गाय, बैल आदि के भिन्न-भिन्न अंगों से दवा तैयार कराने के लिए राज्य सरकारों को लिखा। १० अप्रैल १९५६ ई० को लोकसभा में उद्योग-मन्त्री ने बत-

लाया कि सरकार इस काम के लिए बम्बई तथा दिल्ली में विशाल कसाईखाने खोलने का विचार कर रही है।-

## मांस भक्षण के लिए प्रोत्साहन

मांस-भक्षण के लिए भारत सरकार जनता को विशेष रूप से प्रोत्साहित कर रही है। सन् १९३८ ई० में कांग्रेस ने नेहरू जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति बनाई थी। इस समिति की पशुनसल सुधार उपसमिति ने भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर ३१ जनवरी १९४८ ई० को जो रिपोर्ट प्रकाशित की उसमें यह सुझाव दिया गया है कि लोगो की भोजन की आदतों और धार्मिक भावनाओं में क्रान्ति करके फालतू गाय आदि पशुओं को भोजन के स्थान पर काम में लाना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में गोवध जारी रखने का उल्लेख है। इस योजना में मछली उत्पादन के लिए १२ करोड रुपये व्यय करने का उल्लेख है। मुर्गियों और उनके अंडों के उत्पादन के लिए ३ करोड रुपये की व्यवस्था है।

स्वराज्य प्राप्त होने से पूर्व भारत में मांसहारियों की संख्या बहुत कम थी, परन्तु आज तो उन को संख्या सरकारी सहयोग और प्रोत्साहन के कारण दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। बनारस जैसे तीर्थ स्थान में यह स्वराज्य से पूर्व की अपेक्षा आजकल पचास गुना बढ़ गई है। शायद ही कोई चाय का दुकान होगी जहाँ अण्डे न बिकते हों। इसी प्रकार कुछ ही होटल आपको ऐसे मिलेगे जिनमें मांस न पकता होगा। आप जिस होटल में जायें वहां मांस और मछली पकने की दुर्गन्ध आपको मिलेगी। जब बनारस जैसे तीर्थ-स्थान की यह अवस्था है तब शेष नगरों की क्या हालत होगी, इसका स्वयं अनुमान लगाया जा सकता है।

जिन विदेशियों को भारतवासी म्लेच्छ तक कहते हैं ये लोग तो गायों की इतनी सेवा करते हैं कि उनके यहाँ दूध और घी की इफरात है। वे दूध-घी इतना उत्पन्न करते है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी भारत को लाखों टन दूध, घी और मक्खन भेजते है। पर 'गोविन्द हरे, गोपाल हरे' का गीत गाने वाला भारत विदेशियों को अमृत के बदले में गौमाता के चमडे, आंत, जिगर, चर्बी आदि भेजता है। जिस देश में विदेशी अतिथि पानी मांगने पर दूध से भरा हुआ गिलास पाते थे, वही देश भारत आज विदेशियों को गो-मांस आदि भेज रहा है। विदेशियों के दुर्गुणों का अनुकरण तो बहुत किया जाता है लेकिन उनके गुणों का अनुकरण बिल्कुल नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए अमरीका में 'काउलार्ड एसोसिएशन' अर्थात् 'गोपति-मण्डल' जैसी संस्थाओ की स्थापना हुई,-जहां उस देश के नागरिक गोवंश की सेवा और उन्नति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। परिणामस्वरूप उनके यहाँ गोवंश की वृद्धि हो रही है तथा घी और दूध की बहुलता हो रही है। अमरीका आदि समुन्नत देशों में गोवंश को हानि पहुँचाने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था है। रूस की भी एक घटना उल्लेखनीय है। वहां की एक दुग्धशाला में मैनेजर की असावधानी से बीस गायें मर गई, उस मैनेजरकी इस लापरवाही के कारण न्यायालय ने उसे दोषी बनाया और अन्त में उसे फांसी की सजा दी।

## विदेश दूध भेजते हैं और भारत मांस

यह कैसी विड़म्बना है कि हिंसक प्रवृत्ति वाले

भौतिकवादी राष्ट्र भारत को शुद्ध दूध, घी, मक्खन, अन्न और फल भेजते हैं और अहिंसावाद का डंका पीटने वाला आध्यात्मवादी भारत उन देशों को गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि निरीह प्राणियों के चमडे, मांस, आंतें जिगर और हड्डी आदि भेजता है। क्या विदेश में पशु नहीं है? विदेश क्या उन पशुओं से मांस आदि की अपनी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकते? उत्तर साफ है कि वे राष्ट्र भारत जैसे बुद्धी हीन नहीं है कि अपने देश के पशुओं का संहार करें

सन् १९५५–५६ ई० की सरकारी आयात-निर्यात रिपोर्ट के अनुसार ज्ञात होता है कि उक्तकाल में भारत ने ३७,८८,७६,०७६ रुपये लेकर गाय बछड़े, भेड़, बकरी, भैस, आदि के चमड़े, हडी, मांस चर्बी, सुखाया हुआ खून मछली आदि प्राणीजन पदार्थ विदेशी राष्ट्रों के हाथ बेचा। इसके लिये करोड़ों निरीह प्राणियों की हत्या की गई। १९५४–५५ ई० में निर्यात की यह संख्या केवल ३६ करोड़ २ लाख रुपये तक ही थी। इससे ज्ञात होता है कि कत्ल के लिए गए पशुओं की संख्या में डेढ लाखकी वृद्धि हुई केवल दो वर्षों में ही हो गई। इस गति से यदि इन निरीह पशुओं की हत्या होती रही तो यह देश एक दिन रसातल को पहुँच जाएगा।

अब देखिए, विदेशी भारत को क्या देते हैं। सन् १९५३–५४ ई० की आयात रिपोर्ट के अनुसार ४५९,११,२१ रुपये का दूध पाउडर तथा लगभग ६ लाख रुपये का घी विदेशों से आया। इस संख्या में दो ही वर्षों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई। १६५५–५६ में ५,८८,३५६८८ रुपयेका दूध पाउडर तथा १,५८,२३,५६६ रुपये का घी अन्य देशोंसे भारत में आया। इसके अतिरिक्त केवल अमरीका ने लाखों रुपए का घी तथा दूध का पाउडर बिना मूल्य लिए हुए भारत को उपहार स्वरूप प्रदान किया।

भारत ने एक और नया व्यापार अपनाया है, जिसका आधार केवल हिंसा ही है। वह बन्दरों को विदेश भेजता। ये निरीह बन्दर अपने परिवार सहित जंगलों और बागों में फल-फूल तथा पत्तियां खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इन मूक प्राणियोंका लाखोंकी संख्या में पकडवा कर दूसरे देशों में भारत बेचता है, जहां निर्दयता पूर्वक उन्हें घोर कष्ट देकर मार डाला जाता है।

सन् १९५४–५५ की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ज्ञात होता है कि उक्त समय में १,००,३३० बन्दर भारत ने अमरीका तथा अन्य देशों को भेजे। १९५५–५६ में १,१६,२९६ बन्दर विदेशों को भेजें गए। यह संख्या पिछले साल से भी काफी अधिक है। पहले भारत के निवासी इन बन्दरों को हनुमान का वंशज समझ कर सैकडों मन चना और गुड़ खिलाया करते थे। तब अनाज की पैदावार भी इतनी अधिक होती थी कि इसे कोई अपव्यय नहीं समझता था। आज यह हालत है कि इन बन्दरों को कृषि का शत्रु समझ कर भारत सरकार हिंसा के लिए यह विदेशियों के हाथ बेच देती है और फिर भी यह हालत है कि विदेश से अन्न मंगाने पर भारत में खाद्य की महर्घता बनी हुई है।

यह अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी की जन्म भूमि भारत की हिंसात्मक प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन मात्र है। क्या भारत महात्मा गांधी के मार्ग का अनुसरण कर रहा है? क्या भारत को अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है? क्या भारत समस्त प्राणियों पर दया और करुणा

की भावना जागृत करनेके लिए सारे विश्वको सन्देश दे सकता है ? उत्तर साफ है कि अहिंसा का केवल नाम लेना और भगवान बुद्ध तथा महात्मा गांधी की जयन्तियां मनाने मात्र से संसार में अहिंसा की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। महात्मा गांधी का जीवन क्रियात्मक था। आज के भारत को भी यथार्थ रूप में क्रियात्मक अहिंसावादी होना पडेगा, तभी वह महात्मा गांधी के सन्देश को घर घर पहुँचाने में समर्थ हो सकेगा और स्वर्ग से महात्मा गांधी की आत्मा का आशीर्वाद भी ले सकेगा।

## बच्चों का पशुप्रेम

लेखकः—रतीलाल मफाभाई ( मांडल )

अनुवादकः—मनमोहनाचार्य शास्त्री

अपना भारत देश आध्यात्मिक देश होने से अहिंसा का विकास जितना इस क्षेत्र में हुआ है, उतना और कहीं भी नहीं हुआ ; और आज भी यह प्रक्रिया रुकी नहीं है। सब के पश्चात महात्मा जी ने अहिंसा को सामुदायिक रूप देकर अहिंसा के क्षेत्र में एक नवीन लक्ष्यांक किया है और इस प्रकार अहिंसा की बाबत में हमने ठीक ठीक विकास को साध कर जगत को भी नया मार्गदर्शन कराया है। लेकिन यह अहिंसा की नीव है त्याग और अपरिग्रह। हम इसको धनवैभव की लालच में पड़ कर भूलने लगे हैं। जिस अहिंसा के बल पर हमने आजादी प्राप्त की उस अहिंसा को केवल कुछ लाख रुपयों की लालच में पड़ कर अपनी सरकार बन्दरों की निकास द्वारा भूलने लगी है, ऐसा कहा जाय तो इसमें कुछ भी अयोग्य नहीं है। कारण कि जिस तरह यह क्रूर कतल होती है; इस से पश्चिम के देश भी पुकार उठे हैं। लेकिन अपनी सरकार जागती ही नहीं है। प्रत्युत दूसरी ओर अपने बालकों में जो पशु प्रेम देखा जा रहा है वह अपने लिये एक आश्वासन का मार्ग है कि भविष्य की प्रजा अहिंसा को अन्धेरे में नहीं आने देगी और सरकार को भी जाने का सच्चा मार्ग दिखा कर नया असर पैदा करेगी। ऐसे बच्चों की २-३ सत्य घटनाओं को यहाँ लिखा जा रहा है जो प्रेरणादायिक हैं।

प्रसंग (१) गिरीश नामका एक ९-१० वर्ष का बालक महाजनों से रोज रोटियाँ लेकर कुत्तों को खिलाया करता था। चाहे जैसा भी काम हो उसको छोड़ कर वह रोटियाँ लाने की फिक्र करता था और श्वानों को खिलाने के पश्चात ही खाता था। इस तरह का इसका पशु प्रेम था। एक बार इसको रास्ते में मै मिला; और अरे गिरिया कहा गया था ? इतना पूछ कर इसने अपनी बात कहनी प्रारम्भ की।

गिरीश—गुरुदेव ! रसोडे में से रोटियाँ लेने गया था। यदि मैं नहीं जाऊँ तो कौन जाय ? विचारे कुत्ते भूखे ही मर जाएँ न।

हूँ—हर रोज तुम्हीं जाते हो, दूसरा कोई तुम्हारे बदले में नहीं है ? स्कूल का समय हो उस वक्त भी तुम्हीं जाते हो ? देर हो जाय तो क्या करते हो ?

गिरीशः—देर हो तो भले हो यदि मैं न जाऊं तो विचारा कुत्ता तो मर ही जायगा न। मै बाहर गाँव गया तो रमला को कहा था कि रोज रोटियाँ ले आना, भूलना नहीं; लेकिन उसको क्या पड़ा है ?

विचारा कुत्ता और पिल्ले तो भूखे ही मर रहे थे। मैं आया तो सूख कर आधा रह गया था। मुझे देख कर पिल्ला मुझसे भेट कर रोने लगा।

हूँ—कुत्ता भी कभी रोता होगा?

गिरीशः—तुमको क्या खबर? टप टप आँसू पड़ रहे थे। मुझे तो यह देख कर कुछ का कुछ हो गया। इस लिये मै तो तुरन्त ही दौडता दौडता हलवाई की दुकान पर गया और २ आने का गाँठियाँ ले आया और जब पिल्ले को खिलाया तभी वह विचारा रोते हुए बन्द हुआ। इसको कैसी भूख लगी होगी? मै जल्दी न आया होता तो इस विचारे का क्या हुआ होता?

हूँ:—परन्तु मोहल्ला वाले तो खाने को डालते ही होंगे न?

गिरीशः—लेकिन मेरे विना खाता ही नहीं है? यदि थोड़ा खाय भी तो परन्तु इस विचारे को कौन प्रेम करे, कौन ध्यान रख कर पानी पिलाये?

प्रसंग (२) आठ वर्ष की एक लडकी झूठा दाल भात लेकर गाँव के बाहर जा रही थी। चंचल आँखों से मैंने इसको देखा और पूछा अरी प्रवीणा! दाल भात लेकर कहाँ जा रही हो। और तुम्हारी दाल भात तो झूठा लगता है।

प्रवीणाः—उस जीन में अपने पिल्लों को खिलाने जा रही हूँ। विचारा भूख से ही मर जाय न, इनको कौन खिलाये? हम खाएँ और ये भूखे रहें।

हूँ:—तब रोज उनको कौन खिलाता हैं। तु रोज उनको खिलाने को जाती है?

प्रवीणाः—हम सब जीन में रहते है; इस लिये रोज इनको खिलाते है। परन्तु मेरे महिपत मामा का विवाह है। अतः अभी गाँव में रहते है। अब इनको खिलाये कौन?

हूँ:—तो तु रोज खिलाने के लिये जाती है?

प्रवीणाः—जाना ही पडे न। गाँव में रहूँगी तब तक रोज खिलाने को जाऊंगी। नहीं तो यह विचारा भूख से ही मर जायगा न! हम लड्डू खाएँ और यह विचारा भूखा रहे क्यों?

प्रसंग (३) मैंने अपनी भैंस बेच डाली। इस भैंस की एक नन्हीं पाडी थी। मेरी छोटी लड़की भारती को पाडी के विना चैन ही नहीं पडे। इसने पडोसी अभीराम पौस्टमेन को पूछा। हमारी पाडी कहाँ होगी और वह क्या करती होगी?

अभिरामः—क्या कहती होगी भला विचारी खड़ी खड़ी रोती होगी। गाव में जब मै डाक देने गया था। उस वक्त वही खडी थी और तुम्हें याद-कर रोती थी।

भारतीः—कहो न सत्य, वह रोती थी? मुझे याद करती थी?

अभिरामः—हां तुम को तो वह बहुत ही याद करती थी और रोती तो थी इतनी कि आँसू बन्द ही नहीं होता था। यह सुन कर भारती ने जोर जोर से रोना शुरू कर दिया और मेरे पास आकर कहने लगी। काका! तुमने मेरी पाडी को क्यों बेच दिया? वह विचारी मेरे विना किस तरह रोती होगी। जाओ न और उसको पीछे लेआओ न। मुझे तो इसके बिना कुछ अच्छा ही नहीं लगता। मुझे तो भोजन भी नहीं रुचता। काका! तुमको पाडी याद नहीं आती? मेरी आँखे लड़की का प्रेम देख कर अश्रूपूर्ण होगयीं।

इस प्रकार बच्चों में रहा हुआ पशुप्रेम जीव-मात्र के प्रति आत्मीयता की झांखी दिखा कर हमको भी सभान कराता हैं। हम इस में से कुछ सीखें तो ही बहुत है।

# पिलखुवा की पुलिस ने २१४ गायों को काल के मुँह में जाने से बचाया

## ६ मुसलमान वंजारे गोधन सहित रंगे हाथों गिरफ़्तार

पिलखुवा—स्थानीय पुलिस सब इंस्पैक्टर श्री परमानन्द शर्मा को जब यह सूचना प्राप्त हुई कि पास के गोहत्या के प्रमुख केन्द्र गाम नाहल के कसाइयों को गायें बेचने के लिये कुछ मुसलमान वंजारे भारी संख्या में गोधन लाये हैं—तो आपने रात्रि के लगभग १० बजे पुलिस दल के साथ बड़ी कुशलतापूर्वक उन्हें घेरकर गायों पर अत्याचार करते हुये व वध करने के लिये कसाइयों के हाथों बेचने का प्रयत्न करते हुए गिरफ्तार कर लिया।

जिस समय पुलिस इन गोहत्यारे मुसलमानों को २१४ गायों सहित पिलखुवा थाना लाई तो हिन्दू जनता में रोष की लहर दौड़ गई। हजारों हिन्दू गायों को देखने के लिये उमड़ पड़े। गोहत्या निरोध समिति के अध्यक्ष पं० आचार्य भगवानदासजी त्रिपाठी एम० ए०, श्री वालमुकुन्दजी शर्मा, श्री श्यामलालजी आदि अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं ने थाना पहुँच कर स्थिति की जाँच की। ग्वालियर हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री गङ्गाधर ... रुँढवते व भक्त रामशरणदासजी भी ... आ गये ... श्री ...

गोपालजी की अध्यक्षता में गोहत्या निरोध समिति की एक बैठक हुई। भूखी प्यासी गायों के चारे आदि की व्यवस्था करने के लिये ५१ व्यक्तियों की एक उपसमिति का गठन किया गया। प्रातः नगर के गोहत्या निरोध समिति के पचासों कार्यकर्त्ताओं ने बाजार से चन्दा एकत्रित किया और हिन्दू जनता ने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार हृदय खोलकर इस पुनीत कार्य में सहयोग दिया। ला० गनपतरामजी श्री जुगलकिशोरजी बिरला, ला० वृजनन्दनजी पं० जैरामजी शर्मा, पं० मंगतराम जी शर्मा, ला० श्रीराम जी व श्री महेशचन्द्रजी पटवारी लाला रामगोपालजी आदि अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ताओं ने दिन भर लगाकर चारे व पानी की व्यवस्था कर एक अद्भुत आदर्श उपस्थित किया।

४ दिन तक गायों को गोहत्या निरोध समिति की तरफ से अपने संरक्षण में रखा गया ... ९०० रुपया एकत्रित हो गया। बा... को हापुड़ की गोशाला में पहुँचा... जहाँ पुलिस सब इन्...

... बताया जाता है ... परन्तु उन्हें कई-कई ... के कारण उनकी स्थिति ... रात्रि को श्री ...

# ...निरोध

...दक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे
वार्षिक शुल्क रु १-५० नये पैसा

...हिंसा विरोधक संघ, अहमदाबाद

# पक्षीपर दया

**कल्याण से**

एक फ्रेंच लड़का रोलफोनस् जंगली जानवरों से, खास करके पक्षियों से बहुत प्रेम करता है। उसका सबसे अधिक प्यार है आकाश में गाती हुई उड़ने वाली लवा ( Skylark ) नामक चिड़ियों से। एक दिन वह रास्ते से जा रहा था, उसको लार्क का संगीत सुनाई पड़ा। उसने आस–पास देखा तो उसे दिखायी दिया कि एक चिड़ियाबेचनेवाले के पिंजरे से वह ध्वनि आ रही है। उसे लगा– इस गान में दुःख भरा है। वह चिड़िया बेचनेवाले के पास गया तो उसे पता लगा कि वहाँ के लोग इस चिड़िया का मांस खाना बहुत पसंद करते है और इसी लिये बेचने लाया है। लड़के ने उसके दाम पूछे, पर उतने पैसे उसके पास नहीं थे। लड़के ने उससे कहा, ' भाई, तुम ठहरो, मैं अभी घर से पैसे लेकर आता हूँ " उस से यों कहकर लड़का दौड़ा हुआ घर गया। दुपहरी की बड़ी तेज धूप पड़ रही थी। घर जाने पर पता लगा कि मा बाहर गयी है और वह भोजन के समय से पहले नहीं लौटेगी। रोलफोनस् को बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा तबतक तो वह लार्क बिक जायगी और काट भी दी जायगी। उसे दयालु धर्म गुरु जैकस(Father jacques)की याद आयी और वह तुरन्त दौड़ा हुआ श्रीजैकस के पास पहुँचा। बड़ी तेज धूप थी और उसके सिर में दर्द हो रहा था, पर उसने कुछ परवा नहीं की। रोलफोनस् ने सारा हाल सुनाकर पादरी महोदय से बड़े करुण-स्वर में कहा कि ' शीघ्र पैसे नहीं मिलेंगे तो लार्क के प्राण बचने सम्भव नहीं हैं। ' दयालु पादरी जैकस महोदय ने रुपये देते हुये लड़के से कहा—' तुम इस कड़ी धूप में दौड़–धूप करके बीमार हो गये हो, मैं तुम्हें इसी शर्त पर रुपये देता हूँ कि तुम तुरंत चिड़िया खरीदकर ले जाओ और सीधे घर जाकर आराम से पलँगपर लेट जाओ।'

लडके ने शर्त स्वीकार कर ली और रुपये लेकर तुरंत वहां पहुँचा। जाकर देखा तो एक मेमसाहेब लार्क को खरीदने के लिये मोल–तोल कर रही थी और उसके मुहपर पानी आ रहा था। रोलफोनस् ने तुरंत रुपये हाथ में देकर पिंजरा ले लिया। लार्क को मानो प्राणरक्षक प्रेमी बन्धु मिल गया। वह पिंजरा लिये घर पहुँचा और घर में घुसते–घुसते गरमी के कारण बेहोश होकर बाहर बगीचे के दरवाजे पर गिर पडा

पादरी महोदय को लडके की बडी चिन्ता थी। वे देखने आये तो देखा बेहोश लडके के बिछौने के पास बैठी उसकी मा भयभीत हुई रो रही है। पादरी ने उसको धीरज दी और कहा–' तुम घबराओ नहीं, जो दूसरे को बचाता है, उसे भगवान् बचाते है।' लडके ने एक बार आँखें खोलीं, पर वह फिर बेहोश हो गया। होश आनेपर उसने देखा लार्क पक्षी का पिंजरा टेबलपर रखा है और वह ऐसा मीठा स्नेहभरा गीत गा रहा है मानो बेहोश लडके को बचाने के लिये ईश्वर से प्रर्थना कर रहा हो।

कुछ देर में लडका स्वस्थ हो गया और उसने उठकर पिंजरे को बडी खिडकी के पास लेजाकर खोल दिया। पक्षी गाता हुआ मुक्त आकाश में उड चला। वह अपनी प्रेमभरी चितवन से अपने प्राणरक्षक उस लडके की ओर कृतज्ञताभरे हृदय से देखता गया।

# हिंसाविरोध

वर्ष ८ ] ओकटोवर १९५९ अहमदावाद, [ अङ्क ८

## गाय का महत्व

ह० हंसनारायण सिंह

जिस गौ को हम सब मा-कहते, क्यों उस पर छुरी चलाते हो।
पी कर अमृत तुल्य दूध, गुणगान भी जिसका गाते हो ॥
जब राज्य था औरों का तब तो, थी पूर्ण विवशता हम सब की।
अब पूर्ण करें जब हैं स्वतन्त्र, सारी शर्तें रावी तट की ॥
जिस मां के मरने जीने पर भी, सब अंग हमारा साथी है।
गोबर उसका कितना पवित्र, चमडे की बनती भाथी है ॥
आज देश के लोग सभी, फिर मौन हुये क्यों जाते हैं?
घी, दूध, मलाई कौन कहे मट्ठा भी कभी न पाते हैं ॥
क्या सुख का समय रहा होगा, जब लोग स्वस्थ रहे होंगे।
जिस काम को करते आज 'इंजिन' उसको खुद ही करते होंगे ॥
सौ वर्ष तभी तो जिते थे दुनियां नत मस्तक होती थी।
उस समय हम्हीं हँसते थे, सारी दुनियां जब रोती थी ॥
गायें भी दूध खूब देती, घर-घर में पूजा पाती थी।
भूखी ना रहती मातायें, इस तरह न मारी जाती थी ॥
हिन्दू भाई क्यों भूल रहे, अपना वैभव अपना अतीत।
वह समय अभी भी ला सकते, जिसको तुमने कर दिया व्यतीत ॥
तुम जिसकी करते हो, वे भी तेरी ही सेवा में।
सुख से रह कर रहने देते, ऐसा गुण है इस सेवा में ॥

# रेशम और अहिंसा

यह सवाल हमारे लिये कोई नवीन नहीं है। रेशम हिंसक रीति से तैयार होता है। उसके उपयोग से अवश्य ही हिंसा का दोष लगता है, इसलिये अहिंसा पालने वाले लोगों को चाहिए कि वे लोग रेशम को त्याग करें। भगवान की सेवा-पूजा में रेशम के वस्त्र को उपयोग में लेना और धार्मिक क्रिया-कर्म में उसका उपयोग करना, अथवा उपयोग के लिये आग्रह करना, इत्यादि बातें अहिंसा धर्मियों के लिये शोभा नहीं देती हैं। इसकी चर्चा अपने यहाँ वर्षों पहले हो चुकी है।

इस प्रकार से होते हुये व्यक्तिगत मौज-शौक में, लग्नप्रसंग में, धार्मिक विधि-विधान में, अपने जीवन के साथ रेशम का उपयोग इस प्रकार से जोड़ा हुआ है, उसका उपयोग किये बिना हमारे धार्मिक कृत्य चलेंगे, इसकी कल्पना हम नहीं कर सकते है। उससे कितने वर्षों पहले अहिंसा पालन के अनुसन्धान में रेशम का उपयोग बन्द करने के लिये ठीक-ठीक चर्चा, और उहापोह होने पर भी, रेती से तेल निकालने के समान निरर्थक है और अहिंसा धर्मियों के घर में रेशम का उपयोग खूब ही होता है।

परन्तु अपने को अनुकूल पडे कि न पडे, अपने लोग इच्छा रखें कि न रखें, ध्यान देने के लिये तैयार है या नहीं है, तो भी जो वस्तु अहिंसा की दृष्टि से सर्वदा अनुचित है और सर्वदा अनुचित रहने की है, उसकी तरफ दुर्लक्ष करके यदि उसका उपयोग करते रहेंगे तो हिंसा के दोष से हम मुक्त नहीं रह सकेंगे। दोष को जानते हुये और करते हुये उस से मुक्त रहना असम्भव है।

रेशमी वस्त्रों की तैयारी में जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उसके लिये लाखों पिण्डों को खौलते हुये गरम पानी में डाल कर, जिस प्रकार नाश करने में आते है, वह दृश्य वास्तविक दिल को कम्पा देने वाला है। यह क्रूरकर्म अपने समक्ष में नहीं होता है, इसलिये इसका उपयोग हिंसा के दोषों से मुक्त है ऐसा मान लेना, भारी अज्ञानता है। यदि इस प्रकार से कोई भी वस्तु को हिंसा के दोषों से मुक्त करना हो तो बहुत सी हिंसक चीजें अहिंसक बन जावें।

रेशम में रही हुई इस घोर हिंसा की तरफ अपना ध्यान रहते हुये भी जब हमलोगों ने इसका त्याग नहीं किया और अपने धर्मगुरुओं ने भी स्व-अनुयायी वर्ग को सावधान नहीं किया, इतना ही नहीं वे लोग अपने उपकरण में भी रेशम का उपयोग करते रहें, तब समझना चाहिये कि हम लोग अहिंसाधर्म के बदले हिंसा की रूढ़ि से ग्रस्त होकर हिंसक धर्म पालन कर रहे है। यदि अहिंसा का पालन एक धर्म तरीके हम लोगों के मन में होता तो अपनी अहिंसा सतत प्रगतिशील रहती और जिस कार्य से अहिंसा का वेग मिलता उसको स्वीकार करते एव जिस कार्य से अहिंसा का वेग नहीं मिलता उसको स्वीकार नहीं करते परन्तु समय तथा अहिंसा पालन को देखते हुये कहना पड़ता है कि अपनी अहिंसा वृत्ति वांझणी होगई है। प्राचीनकाल से चलती हुई प्रथा प्रमाणे हम लोग अमुक वस्तु में हिंसा, अमुक वस्तु में अहिंसा मानने लगे, इसी में रेशम का भी प्रकरण है।

यदि अपनी अहिंसा गतिशील होती तो इस समय मौज-शौक के लिये, शोभा-शृंगार के लिये, औषध के लिये प्राणियों की हिंसा से अनेक वस्तुए तैयार होती हैं, इसको हम लोग ठीक तरह से समझने

पर भी उपयोग करते रहते हैं, इस प्रकार का उपयोग यदि हमलोग कभी नहीं करते और इस प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में आवाज उठाते हुये और उसका उत्पादन नहीं होने देते। तब हम लोग अहिंसावादी पूर्ण रूप से माने जाते। जब हम लोग उक्त प्रकारों के दोषों से युक्त हैं तो दूसरों को किस प्रकार रोक सकते है ?

सभी कार्यों में जब हिंसा—और अहिंसा का दर्शन ज्ञानपूर्वक हो तब समझ लेना चाहिये कि श्रेयस्कर समय आगया है। उस दिन से प्रातः काल समझ कर पुनः हिंसा सेवन न हो, उसके लिये जागृत होना चाहिये। यदि ज्ञान न हो तब तक हिंसा का सेवन चालू रहे और बात है, परन्तु ज्ञान होते हुये हिंसा का सेवन नहीं करना चाहिये।

रेशम के उत्पादन में होती हुई हिंसा तो प्रसिद्ध है। विशेष कहने की कुछ भी आवश्यकता नहीं दिखती है।

परन्तु विशेष ध्यान में रहे कि जो रेशम, कीड़ा के बिना बनता है, उसके लिये यह लेख नहीं है। उससे बनाया हुआ वस्त्र प्रेमपूर्वक उपयोग में ले सकते है। वह अहिंसा धर्म में बाधक नहीं है। इसे प्रत्येक शुभ कार्य में लेना मांगलिक है।

परन्तु अपने समाज में और संघ में बहुत समय से जिस प्रकार से बिना विचारे रेशम का प्रयोग किया जाता है और व्यवहार में लिया जाता है, उस में हिंसक और अहिंसक रेशम का विवेक भाग्य से ही देखने में आता है।

## पशुओं के साथ बन्धुत्व भाव बढाइये

**अगर चन्द नाहटा**

मनुष्य और पशुओं में बहुत से प्राकृतिक धर्म समान है। इसीलिये कहा गया है "आहार—निद्राभयमैथुनं च समानमेतत् पशुभिः नराणाम्।" अर्थात आहार, निद्रा, भय और मैथुन, ये चारों संज्ञाएं मनुष्यों और पशुओं में समान रूप से रही हुई है। मानसिक और बौद्धिक विकास ही मनुष्य मे अधिक है और मन की विशेषता से ही उसका नाम मानव या मनुष्य पड़ा है। शारीरिक शक्ति में तो कई पशु पक्षी मनुष्य से भी अधिक बलवान है पर उन पशुओं पर मनुष्य विजय एवं शासन करता है अपने बौद्धिक बल से। मनुष्य ने प्रकृति प्रदत्त अनेक शक्तियो का चरम विकास किया और नये—नये आविष्कारों से पशु जगत को ही नहीं, मानव जगत को भी चमत्कृत कर दिया, क्योंकि सभी मनुष्यों में भी बौद्धिक शक्ति का विकास भी एकसा नहीं होता। एक बुद्धिशाली व्यक्ति कोई नया आविष्कार करता है तो उसका लाभ या नुकशान सभी उठाते है।

पशुओं का जीवन प्रकृति के बहुत अधिक समीप है। यद्यपि पशु—पक्षी भी विशेष चालाक-चतुर होते है, पर प्रायः वे प्राकृतिक जीवन ही बिताते हैं। स्वयं अन्न आदि का उत्पादन नहीं कर सकते, अतः घास, फल—फूल या अपने से कमजोर को मारकर अपनी क्षुधा निवृत्ति करते है; या मनुष्य दया करके या स्वार्थवश विशेष लाभ उठाने के लिये उन्हें जो कुछ डाल देता है, वे खा लेते है। इधर—उधर बिखरे धान आदि को खा करके भी वे अपना गुजारा करते

हैं। नदी, तालाव आदि के जल से अपनी प्यास बुझा लेते है। समय होने पर सो जाते हैं और बिना घड़ी के ही समय पर जग जाते हैं, अपने से विशेष बलवान से भय खाते है, आत्मरक्षा का प्रयत्न करते है। अपने जाति के भिन्न-लिंगी से प्रेम करते है। घोंसले, बिल आदि बनाते है, सन्तान उत्पन्न करते है और उनका थोडे समय तक पालण भी करते है। दुःख सुख के भाव को व्यक्त करते हैं। उपकारी की सेवा एवं घातक से रोस धारण करते है, ये सब मनुष्यवत् क्रियाएं हैं।

मनुष्यों ने जब अपने चारों ओर पशु-पक्षियों को देखा कि बन, जंगल और पहाड़ों में विचरते हुये पशु-पक्षियों ने उनको आकर्षित किया तो अपनी बुद्धि-बल से उनको पालतु बनाकर, उनसे विविध प्रकार के काम लेना आरम्भ किये। बैलों को हल एवं गाड़ी में जोते। हाथी, घोडे पर सवार होगये। कई पक्षियों को मनोरंजन का साधन बनाया और बहुत को मारकर खाने का। इस तरह विविध प्रसंगों को लेकर मानव पशु-पक्षी जगत से सम्बन्धित हुआ, और उनसे अनेक प्रकार के लाभ उठाने के साथ ही उनके उपकार का बदला चुकाना भी उसने आवश्यक समझा अतः गाय को माता के समान पूज्य माना। उसमें ३३ करोड़ देवताओं का निवास मान लिया। अनेक देवी-देवताओं को बाहन के रूप में, नदी बैल आदि की भी पूजा की गई। पशु-पक्षियों ने तो मनुष्य का दाना खाकर और प्रेम पाकर, स्वयं अनेक कष्ट उठाकर भी अपने पोषक का हित सम्पादित किया। युद्ध में हाथियों और घोड़ों का मध्यकाल में, बड़ा महत्व रहा है। रथों पर मनुष्य और गाडियों पर सामान को ढोने या खेती करने आदि में बैल का विशेष महत्व रहा है। गायों और भैसों के दूध से तो सचमुच मनुष्य ने बहुत अधिक लाभ उठाया। दूध से अपना, अपने बच्चों, और परिवार का शरीर पुष्ट किया। दूध से दही, मक्खन घी, छाछ, आदि पदार्थ बनाये, जो विविध रूपों में खाने-पीने के काम में आये। राजस्थान जैसे रेतीले प्रदेश में ऊँट ने भी मनुष्य की बड़ी सेवा की। भेड़ों बकरियों और ऊंटों के बालो को काटकर मनुष्य ने अपने पहनने, ओढने, बिछाने व वस्तुओं को भरने, लेजाने योग्य वस्त्र आदि निर्माण किए। कुत्तों ने भी मनुष्य का दाना खाकर स्वामी-भक्ति का परिचय दिया। इस तरह जिन-जिन पशुओं से मनुष्य जो-जो लाभ उठा सकता था, उन मूक और अबोध जीवों को कष्ट देकरके भी उसने खूब लाभ उठाया।

सभी पशु-पक्षी मनुष्य के लिये लाभदायक ही हो, ऐसी बात नहीं है। कुछ हिंसक क्रूर और उपद्रव कारक, मनुष्य को नुकशान पहुँचाने वाले पशु-पक्षी भी हैं। उन सिंह, सर्प आदि को मार डालना भी आवश्यक हो गया। हरिण भी सम्भवतः धान के खेतों में आकर फसल नुकशान करते होंगे अतः उनका शिकार करना आरम्भ हुआ। इसी तरह सियार आदि अन्य कई पशुओं का भी शिकार किया जाने लगा। और उनका मांस खाकर जिह्वा की लोलुपता से निरपराधी, निरुपद्रवी पशुओं के शिकार की प्रवृत्ति बढ़ी। पहले पत्थरों आदि से फिर धनुष-बाण और आगे चलकर बन्दूक आदि से अनेक जीवों का शिकार करने का क्षत्रियों को व्यसन सा लग गया। इधर मांसभक्षी लोगों ने अनेक जीवों का विनाश करना प्रारम्भ किया। इस तरह एक ओर पशु-पक्षियों का संरक्षण हुआ, दूसरी ओर उनकी हत्या। धर्म के नाम से यज्ञों

में खूब पशु हिंसा होने लगी और देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिये बलि के रूप में भी हजारो बकरे भैसों आदि को निर्ममता से मौत के घाट उतारे जाने लगे।

जब पशु–पक्षियों का इस तरह भयंकर संहार होने लगा तो करुणामयी आदि कोमल वृत्तियों के पुरुषों का हृदय द्रवित हो गया और इस हिंसा के विरुद्ध उन्होंने बुलन्द आवाज उठाई। सभी प्राणियों में जीव है, सभी को मारने से दुःख और बचाने से सुख होता है। कोई मरना नहीं चाहता, दुःख नही चाहता। हमें कोई किसी भी प्रकार की पीड़ा देता है तो कष्ट से कराह उठते है, तो हमारे जैसा ही इन पशु–पक्षियों में भी जीव है अतः उन्हें पीडा देने से, उन्हें भी हमारे जैसा ही दु ख होता है। इसलिये किसी भी प्राणी का हिंसा करना पाप है। करुणा व दया भाव रखना, मरते हुये को बचाना, उनके पीडाओं को कम करना, भूखे–प्यासे को खाना–पीना देना, पुण्य और धर्म है। जैन तीर्थंकरों का उपदेश अहिंसा प्रधान ही रहा है। महात्माबुद्ध भी करुणाशील थे। उन्होंने भी अहिंसा को प्रधानता दी थी। इसका प्रभाव ऋषि–मुनियों एवं वैष्णव धर्म पर भी विशेष रूप से पड़ा। फलतः यज्ञों में की जाने वाली हिंसा तो प्रायः बन्द होगई और बलि प्रथा में भी काफी कमी हुई। ऋषि–मुनियों के आश्रमों में बड़े ही आत्मीय भाव से हिरणों आदि का पालन–पोषण होता था। लाखों मांसभक्षी व पशु बलि देने वालों को जैनाचार्यों ने अहिंसा धर्म का उपदेश देकर जैनी बना लिया। ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल, खंडेलवाल पालीवाल, आदि वर्त्तमान जैन जातियाँ उन महान् जैनाचार्यों के धर्म प्रचार का सुपरिणाम है। उनका अलग संगठन हो जाने से मास–भक्षी व बलि देने वाले हिंसक जातियों से उनका रोटी–बेटी का व्यवहार बन्द होगया।

जैन तीर्थंकरों और आचर्यो एवं मुनियों के उपदेश से पशु–पक्षियों के साथ बन्धुत्व भाव की अभिवृद्धि हुई। अपना नुकशान करने वाले जीवों को भी न मारने का उच्च भाव प्रचारित हुआ। महाकवि भास के 'यह फल नाटक' में एक ग्रामीण वृद्ध व्यक्ति से लक्ष्मण का संवाद योजित है, उसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रसंग उपस्थित किया गया है कि महामुनि विश्वामित्र और राम–लक्ष्मण एक गांव में पहुँचते है तो एक वृद्ध ने उन्हे अपने घर पर पधारने की प्रार्थना की। उनकी अभ्यर्थना करते हुये राम लक्ष्मण के हाथों में धनुष–बाण देखकर, उसने पूछा कि इन्हे क्यो धारण कर रखा है? उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि हरिणों आदि के तथा हिंसक जीवों से रक्षा करने के लिये। वृद्ध ने कहा कि यहाँ वन में अथवा गांव में मृगो को नहीं मारना तब लक्ष्मण ने कहा कि ये तो तुम्हारी खेती को हानि पहुँचाते है। वृद्ध ने उस का उत्तर देते हुये कहा कि खेती की हानि पहुँचाने पर भी उनको नहीं मारना। उनको तो होहल्ला करके या पत्थर आदि फेंक कर भगा देने है। तब लक्ष्मण ने कहा कि अपकार करने वालों के प्रति भी आपका यह पक्षपात क्यों है? इसके उत्तर में वृद्ध ने कहा कि हमारे साथ रहने से ये हमारे भाई–बन्धु होगये है। हमें ये दौड़ते हुए बड़े सुहावने लगते है। यह सुन कर विश्वामित्र बोले कि देख इनका दयाभाव पशुओं से बन्धुत्व भाव। अपकारी होने पर भी ये उन पर क्रोध नहीं करते, बल्कि उनके गुणों की प्रशंसा करते है। राम ने भी कहा कि सचमुच इनका मन देवताओं के तुल्य है।

इससे भारतीय विश्वबन्धुत्व की संस्कृति का कुछ आभास मिलता है। पशु–पक्षियों के साथ भी हमारा व्यवहार बन्धुत्व का होना चाहिये। मानव बन्धुओं की तरह उनका भी पालन–पोषण व रक्षण करना हमारा कर्तव्य होना चाहिये।

# दलाईलामा की मुलाकात

ले० श्रीरघुवीरसिंहजी

ता० ९ जुलाई को १० बजे हम सात व्यक्ति श्रीउपाध्याय, श्रीदेवजी, स्वामी श्रीब्रह्ममुनिजी, स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी, डा. स्वामी श्रीआनन्ददेवजी तथा कविराज सच्चानन्दरामजी, आदि मिलकर श्रीदलाईलामा के पास पहुँचे। श्रीदलाईलामा अंग्रेजी नहीं जानते, इसलिये एक सिक्कमवासी नवयुवक दुभाषिया हम लोगों के साथ था। उसके द्वारा हमलोगों का प्रश्नोत्तर होने लगा। हम लोग दुभाषिया को अंग्रेजी भाषा में कहते थे, वह श्रीदलाईलामा को तिब्बती भाषा में कहता था, दलाईलामा का उत्तर वह दुभाषिया अंग्रेजी में हम लोगों को समझाता था।

सर्व प्रथम हमलोगों ने कहा कि हम आर्यसमाजियों को विश्वास है कि मानव–सृष्टि का मूल स्थान तिब्बत है और वहाँ से आर्य लोग सम्पूर्ण विश्व में विभक्त हैं इस प्रकार तिब्बत का इतिहास गौरवमय है।

इसके बाद हमलोगों ने कहा कि आर्य शब्द का अर्थ श्रेष्ठ है। इसलिये श्रेष्ठ सदाचारी व्यक्ति महात्मा बुद्ध ने आर्य शब्द का प्रयोग पुनः पुनः किया है। जैसे कि आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग आदि शब्दों का प्रयोग है। हमलोग मानते हैं कि बुद्धदेव आर्य सुधारक थे, जिसने प्राचीन आर्य धर्म के ऊपर स्थित अज्ञान आवरण को दूर करके विशुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार किया था। विशेष रूप से जाति भेद तथा यज्ञ में पशुवध आदि अत्याचारों का विशेष विरोध भी किया था। वैदिक धर्म की शिक्षा प्राणी मात्र के लिये है; इसलिये आर्यसमाज जातिभेद और अस्पृश्यता आदि का कट्टर विरोधी है। दलितोद्धार स्त्रीशिक्षा और शिक्षाप्रचार एवं स्वतन्त्रता की भावना का आन्दोलन आदि कार्य आर्यसमाज ने श्रेष्ठ कार्य समझ कर किया था, बाद में अन्य नेता तथा संस्थाओं ने अपनाया है। संसार का उपकार करना आर्यसमाज में मुख्य कर्तव्य माना गया है। इन सब कार्यों की पूर्ति के लिये संसार भर में आर्यसमाज की संस्था बनाई गई है।

आर्यसमाज एक ईश्वरोपासक है, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सर्व व्यापक है। ईश्वर की सत्ता सम्बन्धी विश्वास, मनुष्य को पाप से मुक्त करता है। हम लोग एक ही परमेश्वर के पुत्र है। हम लोग प्राणी मात्र के साथ मित्रभाव उत्पन्न करें। वेद, माता पिता की तरह अपनी बाल सृष्टि को सर्व प्रथम सार्वभौम उपदेश देता है। मैक्समुलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया कि वेद, मानव पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ है।

## बुद्ध मत तथा मांस भक्षण

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा को परम धर्म बताया है। बौधधर्म रचना में अहिंसा मूलकारण है। ऐसी स्थिति में उनके अनुयायी लोग मांसभक्षण करते है तो अहिसा धर्म का कोई उचित स्थान नहीं माल्रम होता है।

## श्रीदलाई लामा का उत्तर

सिद्धान्त के रूप में यह बात ठीक है। तिब्बत में पशुसरक्षण कानून है और शहरों में, गामों में एवं जंगलों में भी पशुओं को नहीं मारना चाहिये, इस प्रकार का कानून बनाया गया है। इस नियम

के अनुसार बहुत लोग मांस नहीं खाते है। परन्तु उन्होंने कहा कि बौधधर्म में दो संम्प्रदाय है। एक हीनयान सम्प्रदाय और दूसरा महायान सम्प्रदाय। इन दोनों में खूब ही मत–भेद है। महायान पन्थी मांसाहार को दोषपूर्ण नहीं मानते है। इसकी पुष्टि में महायानग्रन्थ में लंकावतार सूत्र के मांसभोजन परिवर्तन नाम के अध्याय से कितने ही गाथाओं का अंग्रेजी अनुवाद के साथ उदाहरण देकर आपने बाद में कहा कि मांसाहार की प्रबल विरोधी गाथा भी है।

उन्होंने बचाव करते हुये कहा कि हम लोग इस प्रकार से खाते नहीं; इसलिये हिंसा के पाप से मुक्त है। इस सम्बन्ध में दलाईलामा ने इस ग्रन्थ में से दूसरा उद्धरण देते हुये कहा कि पशुओं की हिंसा करना महापाप, इतना ही नहीं किन्तु इनका मांस खाना भी पाप है, क्योंकि हिंसा, मांस खाने वालों के लिये ही करनी पड़ती है।

उन्हों ने आगे चल कर कहा कि लोग प्रेमपूर्वक भेंट करते हैं, इसलिये हम स्वीकार करते है, परन्तु जब सब लोगों को मालूम पडेगा कि भगवान बुद्ध की इच्छा के विरुद्ध मांस नहीं खाना चाहिये तब सब लोग पीछे हम लोगों को इस प्रकार की भिक्षा देंगे ही नहीं मांस खाना, प्रत्यक्ष रूप से हिंसा का प्रोत्साहन है। उसके लिये उक्त ग्रन्थ का प्रमाण पर्याप्त है।

जो व्यक्ति लोभ वश होकर प्राणियों को हनन करता है, वे दोनों ही पापी है और रौरव नरक की प्रचण्ड आग में शेका जाता है।

मांस खाने वाले कितने ही अज्ञानीलोग इस प्रकार से दलील करते है कि महात्मा बुद्ध ने भी मांस खाने के लिये अनुमति दी है, जिसको कोई देख न सके, सुन न सके जिसकी कल्पना न हो सके ऐसा मांस मिलना असम्भव है, इसलिये मांस–भक्षण निषेध हैं।

यह बात सर्वथा मिथ्या है कि मांस खाने का उपदेश बुद्ध ने दिया है। आर्य गृहस्त, साधारण मनुष्य के खाने की सभी वस्तुओं को भी खाते नहीं है तो, पीछे मांस अथवा रक्त पीने की कल्पना करनी नहीं चाहिये। बौद्ध लोग धर्मानुमोदित भोजन करके संसार में जीवित है। मै जो सभी प्राणियों को अपना पुत्र कह कर पुकारता हूँ तो मेरे पुत्र का मांस किस प्रकार से मै खाऊँ गा? अथवा किसी भी प्राणी के मांस को खाने के लिये उपदेश देना, अपने पुत्र के मांस को खाने के आदेश के समान अनर्थ है।

दलाईलामा को ऐसा भी कहा गया कि आपके विषय में परम्परा से ऐसी मान्यता प्रचलित है कि भगवान बुद्ध की आत्मा आपमें निवास करती है और आप उनके प्रतिनिधि है, तो आप बतावे कि आपके स्थान में भगवान बुद्ध हों तो, क्या वे मांस खाने के लिये आदेश देते? क्या आप मांस खाने के लिये उनके आसन पर बैठे है? आपको तो बुद्ध के मांसाहार त्याग का अदर्श प्रचार करना चाहिये। स्वयं नहीं खाना चाहिये और आपके अनुयायियों को मांसाहार त्याग का उपदेश देना चाहिये। बुद्ध भगवान के साधु लोग मांस खाते है, ऐसा सुनकर भारतीय लोग आश्चर्य में पड़ जाते है।

इन सब बातों को सुनकर श्रीदलाईलामा ने कहा कि मै इस विषय पर गम्भिरता पूर्वक विचार करूंगा।

बाद में हम लोगोंने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेद और महात्मा बुद्ध के एक से एक आर्य सुधारक संस्कृत, हिन्दी ग्रन्थ भेंट की।

यह चर्चा १। घन्टे तक चली थी। दलाईलामा प्रसन्न चित्त में दिखाई पड़ते थे।

# गोहत्या कैसे बन्द हो ?

भारत की पुण्य भूमि पर कहीं भी गोहत्या नहीं होनी चाहिये, पर जिस बम्बई राज्य में धर्म और संस्कृति के माननेवाले गुजराती और छत्रपति शिवाजी के वीर मराठे बसते हों, उस बम्बई राज्य में गोवंश की हत्या का होना एक कलंक है। आश्चर्य है कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, और विहार जैसे पिछडे क्षेत्रों में जहाँ गोरक्षा की भावना बम्बई से कम है वहां कानून और बम्बई राज्य में वार्षिक लाखों वैलों और गायों की हत्या होती रहे। बम्बई राज्य में गोभक्तों की कमी नहीं। कितने ही जीव दया मंडल और गोशालायें, बम्बई निवासियों के धन से चलती हैं, पर दुख है कि इतने प्रभावशाली गोभक्तों के होते हुये भी बम्बई राज्य की भूमि पर गोरक्त की धारा बहती है।

भारत के किसी भी राज्य में चीनी, चावल कपडे की तरह गोहत्या का साप्ताहिक कोटा निश्चित नहीं, पर बम्बई की गांधीवादी सरकार ने हर एक कसाईखाने में कतल किये जाने वाली गाय, वैल, वछडी का कोटा निश्चित किया हुआ है। नासिक और पंढरपुर जैसे तीर्थ स्थानों में भी वार्षिक सैंकडों गाय वैलों की गर्दन पर छुरी चलती है।

श्रीमुराजी देसाई जिनकी प्रशंसा कितने ही स्वार्थी गोभक्त भी करते हैं, उन के समय में बम्बई सरकार की कसाईखाना सुधार कमेटी (१९५९) ने गाय वैल आदि पशुओं के भिन्न-भिन्न अंगों से दवाई बनाने की शिफारिश की। भारत सरकार ने इसे स्वीकार करते हुये सब राज्य सरकारोंको अमल करने के लिये लिखा

जुलायी १९५२ से जून १९५३ तक ५६ ३८ ४५२) रुपये को गाय वैल की आन्ते, जिव्हा, जिगर गोमांस निर्यात तीन बन्दरगाहों से हुआ, इस में से केवल बम्बई की बन्दरगाः से ३१, ६६, ९६६) रुपये का गोमांस आदि भेजा गया।

बम्बई राज्य में बडे-बडे तिलकधारी, वैष्णव और अहिंसा के ठेकेदार जैन रहते हैं। वैष्णवों की बडी बडी हवेलियां और जैनियों के स्थानक हैं। अहिंसा और जीवदया के प्रचारकों की भी भरमार है, फिर भी बम्बई का राज्य आज गोहत्या का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है और यह बम्बई राज्य के निवासियों के मस्तक पर बहुत बडा कलंक है।

बम्बई राज्य में कानून न बनने के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम कांग्रेस की बढ़ी हुई शक्ति, कांग्रेस नेताओं के गोरक्षा प्रचार पर झूठे भाषण और धोखा देनेवाले प्रचार। गो हत्या के विरोधी लोग इन कांग्रेसी नेताओं को आगे करके जनता को धोखा देना। जो कांग्रेसी शासक और नेता श्रीनेहरूजी के डर से या मुसलमानों के वोट लेने के लिये गो-हत्या को जारी रखना चाहते हैं उन्हीं के द्वारा गोरक्षा की सभाओं में गोरक्षा का प्रचार करवाना जनता को नहीं अपने आपको और गऊ को धोखा देना है।

द्वितीय जबतक कानून के द्वारा गोहत्या सम्पूर्णतया बन्द न हो तबतक दूध उत्पादन, नसल सुधार आदि की बात कहना और करना जनता को पथभ्रष्ट करना है। दुग्धोत्पादन से एक भी गाय के प्राण नहीं बच सकते। कुछ अज्ञानी और स्वार्थी लोग जो गोशालायें गोवध निषेध अपंग एवं वृद्ध गायों की सेवा के लिये

बनी हैं उनका दुरुपयोग कर रहे हैं और इन स्वार्थी लोगों के प्रचार से जनता की यह भावना बनती जारही है कि गोहत्या निषेध की आवश्यकता नहीं, दुग्धोत्पादन ही करना चाहिये। जिस राज्य में गोहत्या जारी रहे वहां दुग्ध के उत्पादन की बात करना दूध नहीं गाय के खून करने के बराबर है।

अतः जो लोग गौ को माता मानते हैं गौ का धार्मिक महत्व समझते हैं उन्हें जबतक उनके राज्य में कानून के द्वारा गोहत्या सम्पूर्णतया बन्द न हो तबतक दुग्धोत्पादन के काम में नहीं पड़ना चाहिये। अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि कितने ही काँग्रेसी सज्जन जो गोरक्षा की भावना रखते हैं, जो गोभक्त हैं पर काँग्रेस के भय से कोई ठोस काम नहीं कर सकते। कितनी ही बार तो इनकी स्थिति बड़ी खराब हो जाती है। उचित होगा वह ईमानदारी से गोवध निषेध का काम करें या गोरक्षा के नाम न लें।

श्रीविनोबाजी को लोगों ने सौराष्ट्र की ३० हजार विघे जमीन दी थी जो गोपालक रहबारियों को सरकार ने देने का वचन दिया था। सन्त बालजी के अनशन करने पर वह भूमि गोपालकों से छीन कर भूदान में दिलादी गई अतः विनोबाजी के भक्तों से भी कोई आशा न करे।

श्रीविनोबाजी ने गांधीजी की सम्मति के विरुद्ध अपनी गीता प्रवचन पुस्तक में महर्षि वशिष्ठ पर वछडे का मांस खाने का दोषारोपण किया है।

गडगांव जिले में उनके बसाये हुये मेव मुसलमानो ने लाखों गायों की हत्या की। ऐसे श्रीविनोबाजी और उनके शिष्यों से गोरक्षा की आशा नहीं की जा सकती।

चाहे थोडी संख्या में हों पर जो सज्जन गौ के सच्चे भक्त हैं, जो गोवध को महान पाप मानते हैं वह गोहत्या निरोध समितियों द्वारा संगठित हो कर निम्नलिखित प्रार्थना पर ध्यान दें-

(१) बम्बई राज्य में जहाँ-जहाँ गोहत्या होती है उसका विवरण मालूम करके लिखें।
(२) जो गोभक्त हैं और अपना समय दे सकते हैं उनके नाम पते भी मालूम कर के भेजें।
(३) गौशालाओं और जीवदया मंडल के कार्यकर्ताओं से मिलकर प्रेमपूर्वक उनको समझावें कि जबतक बम्बई राज्य में कानून द्वारा गोहत्या सम्पूर्णतया बन्द न हो तबतक दुग्धोत्पादन और नसल सुधार जैसे कार्यों के लिये न समय दें और न एक पाई भी खर्च करें।
(४) जो कांग्रेसी सज्जन सच्चे गोभक्त हैं उनसे मिलकर गोहत्या की जिम्मेवार कांग्रेस का सम्पर्क छोड़ने की प्रार्थना करें
(५) श्रीविनोबाजी के भूदान जैसे गौ को नुकसान पहुँचाने वाले आडम्बरों में सहयोग न दें।
(६) जो सज्जन कांग्रेस के मन्त्री, उपमन्त्री या प्रभावशाली सदस्य हैं उनके चुनाव क्षेत्रों में विशेष प्रचार करके जनता को उन्हें गोहत्या बन्दी के लिये बाध्य किया जावे और ऐसे वायुमण्डल का निर्माण हो कि कांग्रेस सरकार आनेवाले चुनाव में और आज भी यह अनुभव करें कि जबतक गोहत्या को बन्द नहीं करेंगे जनता उन्हें आराम से नहीं बैठने देगी।
(७) सभाओं और साहित्य द्वारा गांव में गो-हत्या बन्दी का प्रचार किया जावे और ऐसी स्थिति उत्पन्न की जावे कि जनता स्वयं गोवध निषेध के लिये कार्य करें। किसी की हिम्मत गोहत्या करने की न हो

प्रकाशक : बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद् मन्त्री हिंसा-विरोधक संघ, अहमदाबाद।
मुद्रक : वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद।

## विशेष निवेदन

श्रीवैद्यराज पं अमरचन्द्रजी जैन खीचन वाले पुनः प्रचार मन्त्री पद पर नियुक्त—

हमारे पाठकों से विनम्र निवेदन है कि हमारे संघ के भूतपूर्व प्रचार मन्त्री वैद्यराज पं अमरचन्द्रजी जैन-हिंसा विरोध संघ के पुनः प्रचार मन्त्री के पद पर नियुक्त किये गये हैं। गत जुलाई अंक में संघ की तरफ से जो प्रकाशन आपके विषय में हुआ था, वह गलतफहमी से होगया था, मगर पीछे से मालूम हुआ कि आप बिलकुल निर्दोष थे। अतएव संघ आपके प्रचार कार्य से पूर्णरूप से सहमत है तथा आपकी ईमान-दारी से पूर्णतया संतोष का अनुभव कर रहा है। इस लिये पाठकगण प्रचार कार्य में खुले दिल से अर्थ का सहयोग देकर एवं पत्र के ग्राहक बनकर संघ के हाथ पुष्ट करके पुण्य के भागी बनेंगे। ऐसी आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण आत्म विश्वास है।

आपका विनीत

मन्त्री

हिंसा विरोधकसंघ

अहमदाबाद

## सन्त फ्रान्सीस का अहिंसादिन

चार अक्तूबर को सन्त फ्रान्सीस का अहिंसादिन. हिंसाविरोध संघ की तरफ से नगरसेठ की वण्डा अहमदाबाद स्थानकवासी उपाश्रय की वाडी में खूब ही उत्साह के साथ मनाया गया। उस दिन ८॥ बजे प्रातःकाल में एक सभा का आयोजन था। उस सभा में महाराज श्रीदयामुनि ने प्रार्थना के बाद सन्त फ्रान्सीस के जीवन के ऊपर एक विस्तृत व्याख्यान दिया। इस सभा में बहन तथा भाइयों की संख्या लग-भग एक हजार की थीं।

सदानन्दमुनि, श्रीछोटालालजी तथा आर्याजी, सुमतिकुंवरजी आदि लोगों ने सन्त फ्रान्सीस के जीवन पर प्रकाश डाला। उस दिन सात बकरे और पांच भेड़ों को मृत्यु के मुख से अभयदान दिया गया। सन्त फान्सीस के जीवन झरमर की ३५ कापियां बेचने में आई थीं। इस प्रकार से सभा का कार्य क्रम पूर्ण हुआ

## मध्यप्रदेश का पशु संरक्षण कानून

मध्यप्रदेश का कृषि पशु संरक्षण (संशोधन) विधेयक १९५९ पर राष्ट्रपति महोदय ने २४ जुलाई १९५९ को स्वीकृति दे दी है और यह कानून मध्य प्रदेश के सरकारी राज-पत्र दिनाङ्क १४ अगस्त १९५९ मे प्रकाशित हो गया है। विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि कानून लागु करने के लिये उप-नियम आदि तैयार किये जा रहे है और तैयार होते ही इसे लागु कर दिया जायगा।

Regd N0. B. 7127

Licenced to post without prepayment
L. N0. 61

प्रेषक—
'हिंसा-विरोध' कार्यालय
अहिंसा भवन नगरशेठका।
अहमदाबाद

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसाविरोध

र्ष ८ अङ्क ४

ुन : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे

वार्षिक शुल्क रु १-५० नये पै

# क्या अहिंसक समाज जागृत होगा ?

जीवदया को नहीं समझने वाले विदेशी राज्य-कर्त्ता अंग्रेजों को गये हुए और स्वतन्त्रता प्राप्त हुए ११ वर्षों के अन्तर्गत जो देश अहिंसक और शाकाहारी है, उसी देश में जो पंचवर्षीय योजना द्वारा खाद्यपदार्थों में मांसाहार का अधिक उपयोग करने के लिये सरकार एवं उसके कर्मचारी अविरल प्रयत्न कर रहे हैं, आर्थिक परिस्थिति में वृद्धि करने के लिये मांस उत्पादन समिति बनाना और अन्य देशों में भारत से मांस भेजना इत्यादि।

मांस का निरन्तर व्यापार कर 'हुंडी' कमाने की कोशिश करना, अन्य देशों से भोग-विलास की चीजों की आयात करने के लिये, निःसहाय पशुओं की कुर्बानी हो! अपितु सरकार इसके लिये (पशु-वध के लिए हिंसा गृह आधुनिक रूप से बना कर वार्षिक उत्पादन ४६ लाख टन का जो है, उसको बढ़ाकर ९२ लाख टन तक पहुँचावे, ऐसा कहा जाता है!

देश में अहिंसा प्रायः लुप्त हो गई है। १९५७ नवेम्बर के विश्वशाकाहारी परिषद् में पचीस देशों के प्रतिनिधि मिले। उसमें मांसाहार का प्रचार न करने के लिये कृषिमन्त्रियों तथा आरोग्य मन्त्रियों को मिले और सरकार मांसाहार का प्रचार नहीं करती है और नहीं करेगी, इस तरह निर्णय करने पर भी स्वयं प्रधान ही प्रचार करें, योजना बनायें, एवं मांस का निर्यात व्यापार करे!

अपने देश का प्रभाव आज तक क्या है उसका एक ही उदाहरण काफी है। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रधान देश के दर्शन लिये अमेरिकन शिक्षिता युवती श्रीविनोवा के साथ भूदान यज्ञ में आई थी। जिस समय वह इस देश में आई, उसी समय वह श्वास लेते हुए सजल नेत्रों से बोली क्या यह वही भारत है जहाँ कि गायों की पूजा होती है? मैं क्या देखने के लिये आई थी और क्या देख रही हूँ? पशुओं के लिये कतल खाना! यह हिन्दु नारी की संस्कारिता। इस तरह से मानसिक वेदना व्यक्त करके वह भारत छोड़ कर चली गयी।

अन्य देशों में यह है हमारी अहिंसा की छाप। यह है हमारी सांस्कृति! क्या अहिंसा के प्रेमी सज्जन महानुभाव और सन्नारियाँ इस तरह से कुर्बानी होते देख कर बैठी रहेंगी? हिंसा के सामने घर–घर से ग्राम–ग्राम से विरोध होना चाहिये।

भारत में पशुओं की कुर्बानी बन्द होनी चाहिये। ऐसी हमारी संगठित बुलन्द आवाज, असरकारक होकर सरकार के कानों तक पहुँचनी चाहिये।

---

## पुनः प्रवेश हुए

श्री रतीलाल धुलाचन्द शाह संघ के पूर्व कार्यकर्त्ता हैं। पहले ७ वर्ष तक उन्होंने संघ की सेवा की है। समस्त देश में भ्रमण करके आपने संघ का प्रचार किया था। गततीन वर्षों से आपने निज कार्यवसात् संघ से अवकाश ले लिया था, जो दिनांक १ ६–५९ के दिन संघ में पुनः प्रवेश हुए हैं। अतएव जीवदया प्रेमी भाई-बहन जैन संघ के कार्यकर्त्ताओ पूज्य आचार्य म. श्री तथा पूज्य मुनिवर्यों को नम्रनिवेदन है कि उन्हें सम्पूर्ण सहयोग दें वे।

बाला भाई जी० शाह
मानद मन्त्रि
हि०–वि०–संघ।

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ ] अहमदाबाद, जुन १९५९ [ अङ्क ४


## करुण—क्रन्दन


(लेखिका—कु० सुशीला आर्या एम० ए०, नरवाना)


सुनो सुनो हे भारत वाले गौ माता की करुण कहानी।
किस मुँहसे मैं तुम्हें सुनाऊँ सुना रही है अपनी जबानी।

"कहते थे" अंग्रेज राज में पाप हो रहा भारी,
दिन चढ़ने से पहले कटती लाखों गौ बेचारी"

अब तो ताज व राज तुम्हारा और प्रजा भी सारी,
फिर अपने हाथों अपना वध करने की क्यों ठानी ?
सुनो सुनो . ...

देती दूध, दही, घी, मक्खन, सूखा भूसा खाती,
गाय बैलों से घर भरती मर कर भी काम आती,

जब चाहा सौंपी घातक को तनिक न काँपी छाती,
टका धर्म और कम समझते करते हो मनमानी।
सुनो सुनो . ...

मेरे उपकारों का तुमने बदला खूब चुकाया,
मिट्टी से सोना उपजाती इसका ध्यान न आया।

पात पात को रहे सींचते जड़ को नहीं सरसाया,
दूध पिलाती मैं तुम को तुम तलवारों का पानी।
सुनो सुनो .

वैजिटेबल खा खाकर खुद बुला रहे हो टी० बी०,
'पापी' पालते भूले पालना खाना दूध और घी की।

गोपालक के भारत में बहार अण्डे मछली की,
औषधियाँ और गम खाते हो पीते खारा पानी।
सुनो सुनो .. ... .. ..

मेरी रक्षा करे देश तो घर घर रोज दीवाली,
रूखा सूखा भूख मिटे हो कण कण में हरियाली।
गौशालाएँ बन जाएँ जो हस्पताल हों खाली,
जगत गुरु, फिर तू बन जाए कोई रहे न खाली।
सुनो सुनो ... ... ...

आजादी का मीठा फल भारत तब चख पाएगा,
घर घर होंगे यज्ञ राम राज्य आगा आएगा।
दानवता तज मानवता को मानव अपनाएगा,
अमृत वर्षा होगी स्वस्थ सुखी होंगे सब प्राणी।"
सुनो सुनो ... ... ...

## गलत इलाज

अंग्रजी में एक कहावत है—

"Treatment is dangerous than deacease" (मर्ज से इलाज खतरनाक)। इस लोकोक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं आज के हमारे अनुभव हीन शासक। इनलार्ड मैकाले के चेलों को यह मालूम नहीं कि भारतवर्ष सदा से धर्म प्रधान क्षेत्र रहा है। यहाँ भौतिक विकास को विशेष महत्ता नहीं दी गई। यहाँ का आदर्श था—तप, त्याग, पूर्ण संयमी जीवन। धर्म की प्रधानता के कारण यहाँ न कभी जटिल समस्याएँ उपस्थित हुईं न उनका हल सोचने की कभी जरूरत महसूस हुई? रोटी का प्रश्न तो भारत के सामने आया ही नहीं। आवे क्यों? जब कि सारा देश धन्य-धान्य से परिपूर्ण था। पयस्विनी गौएँ मन-माना दुग्ध प्रसवती थीं, जिनसे घर घर में दूध, दही, घी के भण्डार भरे रहते थे। अतिथियों को जल के स्थान में दूध पिलाया जाता था। वन कंद—मूल, फलों से भरे हुए थे। जहाँ जंगल में मंगल की कहावत पद-पद पर चरितार्थ होती थी। कदाचित् अन्न की कमी हुई तो उसकी पूर्ति दूध दही से मजे में हो जाती थी। आज के से गन्दे ख्याल हमारे पूर्वजों को स्वप्न में भी नहीं आये थे कि अन्न नहीं मिलता तो अण्डे, मुर्गी, मछली, मांस खाओ। तब का समाज कैसा पवित्र सर्वाङ्गसम्पन्न था। इसे मानसकार के शब्दों में सुनिये—

वह सुख सम्पत्ति समय समाज,
कहि न सके शारद अहिराज।

× × ×

वह शोभा समाज सुख, कहत न बने खगेश,
वरणे शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश।

× × ×

ऐसे ही परम पवित्र समुन्नत समाज में, समाजवाद अपने आप आता था। जो सोने में सुगन्ध का काम करता था।

तब के नागरिक कैसे थे—इसे भी सुन लीजिये—

× × ×

**पुर नर नारि सुभग सुचि संता,**
**'धरमशील' ज्ञानी गुणवन्ता।**

\+ + +

तब के नागरिकों के लिये धर्मशील होने की खास शर्त थी। यही कारण था। तब—

**"मांगे वारिद देहि जल"**

मेघ मांगने पर जल वर्षाते थे। इसीलिए—

**"शस्य सम्पन्ना सदा रही धरणी"**

कृषि अन्नपूर्णा थी। इस कृषि में हल भी धर्महल चलते थे। धर्म हल उसे कहते है जहाँ प्रत्येक हल में ८ बैल बारी २ से जोते जावें। जिससे बैलों को विश्राम मिलता रहे। हमारे पूर्वज रोग का ठीक ठीक निदान जानते थे। उनकी दी हुई दवा रोग को सदा के लिए नष्ट कर देती थी। उनका भौतिक उपचारों की अपेक्षा आध्यात्मिक साधनों पर ज्यादा विश्वास था। उन्हे विदित था—प्रत्येक दुःख पाप का परिणाम होता है। दुःख से छुटकारा पाना हो तो पुण्यमय जीवन व्यतीत करो। रोग अपने आप शान्त हो जायगा।

\+ + —

कहावत है—**नीम हकीम खतरे जान।**
**नीम मुल्ला खतरये ईमान।**

— । —

आज के नीम हकीम तो रोग का निदान जानते है, न रोग के कारणों को। उनकी दी हुई दवा का एक ही नतीजा होता है—

**"मर्ज रहे न मरीज"**

यही हाल आज के हमारे नादान दोस्तों का है। वे हमारी भलाई चाहते है। हमें खत्म करके। रोग कुछ है और दवा कुछ, परिणाम में होता है—

**"मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"**

रोग है—भूख का, भूख क्यों बढ़ी—अन्न न मिलने से। अन्न की अत्यन्त कमी क्यों हुई? कृषि के नीरसा हो जाने से। खेती ने हड़ताल क्यों की—उस पर पाप का भार बढ़ जाने से। रोग दूर कैसे होगा? पुण्य की प्रबल प्रवृत्ति से। पहले यही खेती ज्यादा अन्न क्यों देती थी—अन्न प्राप्ति के सारे साधन धर्ममय थे—'यतो धर्मस्ततो जय' जहाँ धर्म है वहीं विजय है। जहाँ पाप है—वहीं पराजय है जिस गौवंश की बदौलत कृषि हरी भरी रहती थी उन्हीं के खून से आज जमीन सींची जा रही है। फिर भी आशा की जाती है—ज्यादा से ज्यादा अन्नोत्पादन की। यह तो मोटा सिद्धान्त है। धर्म से वृद्धि होती है पाप से ह्रास। जब तक पाप का प्रवाह नहीं रोका जायगा हजार प्रयत्न करिये, देश में धन-धान्य की वृद्धि हरगिज न होगी। उलटा मर्ज बढता जायगा। नादान दोस्तो! मर्ज का ठीक इलाज करो, रोग को पहिचानो, कारणों की तह तक जाओ। अण्डा, मुर्गी, मांस मछली रोग को बढ़ाने वाला गलत उपचार है। ये तो मर्ज मरीज दोनों को समाप्त कर देगा। जिस भारत के तुम भाग्य-विधाता बन बैठे हो, वह है धर्म क्षेत्र। यहाँ धर्म सदा फला फूला है। जब जब धर्म को ठुकराया गया है—भारत को यहीं दुर्दिन देखने पड़े है। याद रक्खो जब तक भारत में ये हत्या काण्ड जारी रहेंगे। हजार वैज्ञानिक

साधन जुटाइये देश हरगिज सुखी न हो सकेगा। उल्टा मर्ज बढता जायगा।

यदि तुम्हारी हार्दिक इच्छा है कि देश सुख समृद्धियो से सम्पन्न हो तो हिंसा से हाथ खींचो। अहिसा का ईमानदारी से अनुगमन करो। शासन को धर्मनिरपेक्ष नहीं धर्म नियत्रित बना डालो। तब तुम देखोगे-भाग्य लक्ष्मी जो तुमसे रूठ गई थी, तुम्हें बरने के लिये तुम्हारी ओर दौड़ी चली आ रही है। हिंसा के जिस पातक ने तुम्हारे शासन को कलंकित बना दिया है, अहिंसा देवी की आराधना से वह कलंक सदा के लिये धुल जायगा। तब तुम्हारा साधन भी यशस्वी बनेगा और तुम भी कीर्ति के पात्र बन जाओगे। बढ़ते हुए रोग का यही एक रामबाण इलाज है, दूसरा नहीं। अन्त में निवेदन है कि गलत इलाज से हाथ खींचो। सच्चे इलाज की तरफ बढ़ो।

## व्याघ्र–वानर सम्बाद

(तामील भाषा का कम्बन रामायण का व्याघ्र और वानर संबाद कुछ परिवर्तन के साथ नीचे दिया जाता है।)

बन्दर—

आज की संध्या अति मनोहर है। कल प्रथम वर्षा के कारण सम्पूर्ण वन धूल गया है। अति प्रसन्नता होती है। सत्यत. इन मनुष्यों के लिये मुझे खूब आश्चर्य होता है। कल कोयल बहन कह रही थी और पर्सों कागा भाई कह रहा था ये लोग इस प्रकार एक दूसरे के साथ झगड़ते क्यों है? मेरे तेरे करके परस्पर द्वेष भाव क्यों फ़ैलाते हैं। इतने वर्ष हुए मै इस झाड़ पर रहती हूँ। यह मेरा घर है। पंक्षियाँ भी इस झाड पर रहती हैं। हम लोगो का परस्पर में झगड़ा नहीं होता है? मुझे मालूम होता है कि इन मनुष्यो की संस्कृति ही कुछ विचित्र है।

अरे—यह कोलाहल कैसा है? यह तो कोई भील अपने प्राण को बचाने के लिये कह रहा है। एक बाघ उसके पीछे पड़ा है। ओह—यह तो वृक्ष पर चढ रहा है। शाबाश—आओ भील भाई—ऊपर आओ यह मेरा घर है। यहाँ तुमको किसी से भय करने का कोई भी कारण नहीं है। (भील हाँफते-हाँफते ऊपर आता है)

आओ आराम करो।

भील—मेरी रक्षा करो। बाघ मेरे पीछे पड़ा है।

बन्दर—मैने झाड़ के ऊपर से यह देखा। तुम ऊपर चढ़ आये यह अच्छा हुआ। बाघ यहाँ आने में असमर्थ है। यह घर तुम्हारा ही मानो। हम बन्दर लोग सभी को अपना भाई जानते हैं।

बाघ—(ओ बन्दर भाई! इस दुष्ट मनुष्य को तुम क्यों रक्षा करते हो? यह तो तेरा और मेरा और सभी का शत्रु है। देख भाई मुझे तो खूब भूख लगी है। इस मनुष्य को नीचे धकेल दो। मेरा काम हो जायगा और हम सभी बन वासियों के दुश्मन का नाश होगा। एक पंथ दो काज होगा।

बन्दर—देखो बाघ यहाँ शरण में आये हुए प्राणी को मरने देना यह बन्दर धर्म में अति

अनुचित समझा जाता है। यानि किसी भी परिस्थिति में मै इस भील को तुम्हारे उदर अन्तरगत नहीं दे सकता हूँ। तुम्हारा आहार नहीं दे सकता हूँ। तुम--किसी भी अन्य तरह से अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते हो।

यहाँ तुम्हारा दाल नहीं गलेगी। भील की ओर देख कर---देखा तुमने बिलकुल निश्चित होकर यहाँ बैठो। यहाँ तुम्हारे लिये किसी का भय नहीं है। अब मुझे निन्द आती है। मै सो जाता हूँ। कल मै तुम्हारे लिये थोड़ा फल लादूँगा।

भील---मै तुम्हारा बहुत ऋणि हूँ। ( बन्दर सो जाता है )

बाघ---(नीचे से भील को) भील भाई क्या वह धर्मान्धबन्दर सो गया? मेरी सलाह सुनलो। तुम भूखे पेट आराम रहित इस वृक्ष पर कब तक बैठे रहोगे? जब तक मुझे कुछ खाने को नहीं मिलेगा। तब तक मै यहाँ से नहीं जाऊँगा। तुम एक काम करो तो मै तुम्हारा पीछा छोड़ दूँ। देखो, इस सोए हुए बन्दर को नीचे गिरा दो। मै इसे लेकर अपने घर चला जाऊँगा और पीछे तुम भी नीचे उतर कर अपने घर जा सकते हो।

भील---किन्तु जिसने मुझे आश्रय दिया है, उसके साथ मै विश्वासघात करूँ?

बाघ---अरे! इसमें क्या बड़ी बात है? तुम तो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ मानव हो, यह तो एक शैतान बन्दर है। इसको बलिदान देकर तुम्हारा प्राण बचाना कोई पाप नहीं है। क्या तुम लोग तुम्हारे सुख--सम्पत्ति और ऐश्वर्य के लिये यज्ञ में पशुओं को भोग नहीं देते हो?

भील---तुम्हारा बात सत्य है, किन्तु---

बाघ--किन्तु- कुछ नहीं जल्दी निश्चय करो। यह बन्दर जग जायगा तो अपना दाव खाली जायगा। तुम अपने बाल बच्चों का तो विचार करो। तुम्हारे रास्ता देखते होंगे।

भील-- मेरी पत्नी .... बाल बच्चो .... .... कुछ नहीं तो उन सबों के लिये तो जल्दी करना ही चाहिये। तुम्हारी बात सत्य है।

( भील सोये हुए बन्दर को नीचे गिराने के लिये धक्का मारता है किन्तु, बन्दर नीचे गिरते पहले ही जग जाता है। और सौभाग्य से उसके हाथ में डाली आ जाती है, जिसे पकड़ कर वह नीचे गिरने से बच जाता है।)

बन्दर--( धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता हुआ ) ऐसे एका-एक मै क्यों सरक पड़ा? आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ। ईश्वर की कृपा से एक डाली हाथ में आ गयी यह अच्छा हुआ, इसी से तो बच गया।

बाघ--( नीचे से ) अरे बन्दर; जरा तुम इस मेहमान से तो पूछ कि तुम किस तरह गिर पडे। इसने तो तुझे नीचे धकेल दिया था कि जिससे मै तुझे खाकर, अपनी क्षुधा शान्त करूँ और इसका पीछा छोड़ दूँ।

बन्दर--( दु:ख के साथ भील को कहा ) क्या तुमने ऐसा काम किया।

भील--( सर्मिन्दा होकर आँखें नीचे गिराते हुए। मेरी भूल हुई, मुझे माफ करो। )

बाघ---( बन्दर! अब तो कृतघ्न मनुष्यो को नीचे धक्का दो। क्या अभी भी तुम इसे कृपा का पात्र समझते हो। अब तो निश्चय हुआ न कि मनुष्य

तो बाघ का खुराक ही बनने के योग्य है ।

बन्दर---( गम्भिरता पूर्वक ) स्वगतः अरेरे-- कितना पतन, अब मै मनुष्यों के दुःख का कारण समझा । एक मात्र बुद्धि के ही कारण कोई भी प्राणी श्रेष्ठ नहीं बन सकता है । हृदय की सच्चाई ही प्राणी को श्रेष्ठ बना सकती है ।

( बाघ को ) बाघ महाराज ! मानव संस्कृति चाहे जैसा हो । मैं तो बन्दर संस्कृति को मानता हूँ। शरण में आये हुए चाहे जैसा भी प्राणी हो, तथापि मै उसका विश्वासघात नहीं कर सकता हूँ । किसी को भी मै अपनी कृपा का पात्र बनाने वाला मैं कौन हूँ ! मुझे तो, मेरा अपना धर्म निभाने का है। बाकि तो ईश्वर सब कुछ देखने वाले समर्थ हैं। इस भील को नीचे धकेलने की झूठी आशा में नहीं रहना । तुम और किसी शिकार की खोज में चले जाओ । उसमें ही तुम्हारी बुद्धिमत्ता है । मैं इस झाड़ का फल लाकर इस भील को कितने ही दिनों तक रख सकता हूँ ( बाघ निराश होकर चला जाता है ।

भील---बन्दर श्रेष्ठ मुझे क्षमा करो ।

बन्दर---मुझे बन्दर श्रेष्ठ नहीं कहो । तुम्हारे मनुष्यों में श्रेष्ठ और कनिष्ठ की भावना होगी । हम बन्दर तो सब समान ही होते है । हम सबों का धर्म भी एक ही है । इस लिये हम लोगों में झगड़ा-लड़ाई या तकरार होता नहीं है । मुझे केवल बन्दर कह कर सम्बोधन करो और क्षमा करने वाला मै कौन हूँ । मैंने तो अपने धर्म का पालन किया है ।

अब इतनी रात्रि को घर जाना खतरे से खाली नहीं है । सुबह होते ही मै तुम्हारे लिये फल लाऊँगा, तथा भय रहित निर्भय मार्ग भी बता दूँगा ।

( भील अपने आँसु को रोक नहीं सका )

## अहिंसक भारत हिंसा की ओर

**श्रीमती राजलक्ष्मी**

( ८ फरवरी १९५९ के 'हिन्दुस्तान' में एक लेख छपा है, जिस में भारत सरकार की ओर से हिंसा को किस प्रकार बढावा मिल रहा है, इस सम्बन्ध में श्रीमती राजलक्ष्मी गौड ने दिलचस्प आँकडे दिये है । 'श्रमण' ऐसी हिंसा के खिलाफ बराबर आवाज बुलन्द करता आ रहा है । पिछले दिनों बन्दर निर्यात के बारे में लोकसभा में चर्चा हुई थी । पर अहिंसा का ढिंढ़ोरा पीटने वाली भारत सरकार इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही है । )

– संपादक

अहिंसक महात्मा गांधी के भारत में आज हिंसा का साम्राज्य छाया हुआ है । महान् अहिंसक महाराज अशोक के सिंहचक्र को राष्ट्रीय चिन्ह बनाकर भी आज का भारत उनकी शिक्षाओं से लाखों मील दूर है । महाराज अशोक के शासन-काल के समस्त भारत में पशुहत्या बन्द कर दी गई थी । परन्तु आजकल भारत में पशुओं की हत्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है । अंग्रेजी राज्य के समाप्त हो जाने पर भी पशुओं की हत्या में कमी नहीं हुई, बल्कि वृद्धि ही हुई है । अंग्रेजी शासन में प्रति वर्ष लगभग एक करोड गायों की हत्या होती थी, जब कि भारत अविभाजित था । पाकिस्तान बन जाने के कारण पशुओं

का एक तिहाई भाग पाकिस्तान में चला गया। यदि अंग्रेजी शासन काल की दर से हिसाब लगाया जाय तो भारत के नाम ६७ लाख की संख्या होनी चाहिए लेकिन १९५५-५६ ई० की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि कत्ल किये गए गाय और बछड़ों की ८० लाख ७० हजार खालों का निर्यात भारत ने किया। ये सब खालें रूस, अमरीका तथा इन्लैंड आदि देशों को भेजी गई। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में जूते बनाने वाली कुछ विदेशी ( अब शायद स्वदेशी ) कम्पनियाँ कतल किए गए गायों और होनहार बछडों की लगभग ५० लाख खाल प्रतिवर्ष खर्च करती हैं। इस हिसाब से भारत में आज अंग्रेजी शासन से दूना गोवध हो रहा है। इन दुष्कृतियों को देखकर स्वर्ग में महात्मा गांधी की पवित्र आत्मा को कितना दुःख होता होगा।

### गोवंश के अंगों का निर्यात

सन् १९५३–५४ ई० की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त काल में कतल किए गए गाय और बछडों की आंतों को २५ लाख रुपए में दूसरे देशों को भारत ने बेचा। यह संख्या प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सन् १९५५-५६ ई. में ४७ लाख रुपए से भी अधिक की आँतें बाहर भेजी गई थीं।

भारत में २२ बन्दरगाह हैं। यहाँ मै कुछ बन्दरगाहों का विविरण प्रस्तुत करना चाहती हूँ, जहाँ से गाय और बछड़ों की आँतें, उनकी जीभ और उनके जिगर तथा अन्य अंग विदेशी राष्ट्रों के लिए भेजे गए सन् १९५३–५४ ई. की सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि उक्त समय में बम्बई, कलकत्ता, और मद्रास इन तीन बन्दरगाहों से ५६ लाख ३८ हजार रुपयों की गाय व बछडों की आँते, जीभ तथा जिगर आदि अंग बाहर भेजे गए। ये केवल तीन बन्दरगाहों के आँकडे है। यदि शेष बन्दरगाहों के भी आंकडे प्राप्त हो जाए तो यह सख्या कई गुना बढ जाएगी।

### मांस के लिए पशुओं का संहार

भारत-सरकार की राष्ट्रीय आय कमेटी ने १९५४ में जो रिपोर्ट दी थी उसके अनुसार १९५०-५१ इ. में २२ करोड रुपयों का गो-मांस तैयार हुआ। ये अंक केवल सरकारी कसाईखानों के हैं। शेष जो गो-वध स्वतन्त्र या प्रच्छन्न रूप से होता है यदि उसके भी आँकडे प्राप्त हो जाएं तो यह संख्या और भी बढ जाएगी।

भैस का मांस ९ करोड ५० लाख रुपये का तैयार हुआ। भेड और बकरी का मांस ४४ करोड रुपये का तैयार हुआ। सूअर का मांस ४ करोड ७५ लाख रुपये का तैयार हुआ। मुर्गी और बतख के अन्डे १० करोड रुपयो के तैयार किए गए। मुर्गी का मांस ८ करोड रुपयों का तैयार हुआ। मछली ३६ करोड रुपयों की तैयार हुई। ये सब आँकडे सरकारी स्तर पर किए गए पशु-संहार के है। स्वतंत्र या प्रच्छन्न रूप से की गई हत्याओं के आँकडे भी यदि इसमें जोड दिये जाएँ तो इनकी संख्या दूनी हो जाएगी।

खाद्य तथा कृषि मंत्रालय ने १९५६ ई० के मांस-बाजार की रिपोर्ट प्रकाशित की है। उसके अनुसार सरकारी तौर पर मांस का उत्पादन तथा प्रचार बढ़ाने और गाय व बछडों की आन्तोंका निर्यात बढाने के लिए गोवध जारी रखने का सुझाव दिया गया है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने फरवरी १९५५ ई में गाय, बैल आदि के भिन्न-भिन्न अंगों से दवा

तैयार कराने के लिए राज्य सरकारों को लिखा । १० अप्रैल १९५६ ई० को लोकसभा में उद्योग-मन्त्री ने बतलाया कि सरकार इस काम के लिए बम्बई तथा दिल्ली में विशाल कसाई खाने खोलने का विचार कर रही है ।

## मांस भक्षण के लिए प्रोत्साहन

मांस-भक्षण के लिए भारत सरकार जनता को विशेष रूप से प्रोत्साहित कर रही है । सन् १९३८ में कांग्रेस ने नेहरूजी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति बनाई थी। इस समिति की पशु-नस्ल सुधार उपसमिति ने भारत के स्वतंत्र हो जाने पर ३१ जनवरी १९४८ ई० को जो रिपोर्ट प्रकाशित की, उसमें यह सुझाव दिया गया है कि लोगों की भोजन की आदतों और धार्मिक भावनाओं में क्रान्ति किरके फालतू गाय आदि पशुओं को भोजन के स्थान पर काम में लाना चाहिए ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में गोवध जारी रखने का उल्लेख है । इस योजना में मछली उत्पादन के लिए १२ करोड रुपये व्यय करने का उल्लेख है। मुर्गियों और उनके अन्डों के उत्पादनके लिए ३ करोड रुपये की व्यवस्था है ।

स्वराज्य प्राप्त होने से पूर्व भारत में मांसाहारियों की संख्या बहुत कम थी, परन्तु आज तो उनकी संख्या सरकारी सहयोग और प्रोत्साहन से दिन-दूनी रात चौगुनी बढ रही है । बनारस जैसे तीर्थस्थान में यह स्वराज्य से पूर्व योजित की अपेक्षा आज कल पचास गुना बढ़ गई है । शायद ही कोई चाय की दुकान बची होगी जहाँ अन्डे न बिकते हों । इसी प्रकार कुछ ही होटल आपको ऐसे मिलेंगे जिनमें मांस न पकता होगा । आप जिस होटल में जाएँ वहाँ मांस और मछली पकने की दुर्गन्ध आपको मिलेगी । जब बनारस जसे तीर्थस्थान की यह अवस्था है तब शेष नगरों की क्या हालत होगी, इसका स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है ।

जिन विदेशियों को भारतवासी म्लेच्छ तक कहते है वे लोग तो गायों की इतनी सेवा करते हैं कि उनके यहाँ दूध और घी की इफरात है । वे दूध-घी इतना उत्पन्न करते है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी भारत को लाखों टन दूध, घी और मक्खन भेजते है । पर 'गोविन्द हरे, गोपाल हरे' का गीत गानेवाला भारत विदेशियों को अमृत के बदले में गोमाता के चमडे, आँत, जिगर चर्बी आदि भेजता है । जिस देश में विदेशी अतिथि पानी माँगने पर दूध से भरा हुआ ग्लास पाते थे, वही देश भारत आज विदेशियों को गो-मांस आदि भेज रहा है । विदेशियों के दुर्गुणों का अनुकरण तो बहुत किया जाता है, लेकिन उनके गुणों का अनुकरण बिल्कुल नहीं किया जाता । उदाहरण के लिए अमरीका में 'काउ-लार्ड एसोसिएशन' अर्थात् 'गोपति-मण्डल' जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जहाँ उस देश के नागरिक गोवंश की सेवा और उन्नति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते है । परिणामस्वरूप उनके यहाँ गोवंश की वृद्धि होती रही है तथा घी और दूध की बहुलता हो रही है । अमरीका आदि समुन्नत देशों में गोवंश को हानि पहुँचानेवालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था है । रूस की भी एक घटना उल्लेखनीय है । वहाँ की एक दुग्धशाला में मैनेजर की असावधानी से बीस गाएँ मर गई, उस मैनेजर की इस लापरवाही के कारण न्यायालय ने उसे दोषी ठहराया और अन्त में उसे फांसी की सजा दी ।

## विदेश दूध भेजते हैं, और भारत मांस

यह कैसी विडम्बना है कि हिंसक प्रवृत्ति वाले भौतिकवादी राष्ट्र भारत को शुद्ध दूध, घी, मक्खन, अन्न और फल भेजते हैं और यह अहिंसावाद का डंका पीटने वाला आध्यात्मवादी भारत उन देशों को

गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि निरीह प्राणियों के चमड़े, मांस आँतें, जिगर और हड्डी आदि भेजता है। क्या विदेश में पशु नहीं हैं ? विदेशी क्या उन पशुओं से मांस आदि की अपनी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकते ? उत्तर साफ है कि वे राष्ट्र भारत जैसे बुद्धिहीन नहीं हैं कि अपने देश के पशुओं का संहार करें।

सन् ११५५-५६ ई० की सरकारी आयात-निर्यात रिपोर्ट के अनुसार ज्ञात होता है कि उक्त काल में भारत ने ३७,८८,७६,०७९ रुपये लेकर गाय, बछड़े, भेड़, बकरी, भैंस आदि के चमड़े, हड्डी, मांस, चर्बी, सुखाया हुआ खून तथा मछली आदि प्राणिजन्य पदार्थ विदेशी राष्ट्रों के हाथ बेचा। इसके लिये करोड़ों निरीह प्राणियों की हत्या की गई। १९५४-५५ ई० में निर्यात की यह संख्या केवल ३६ करोड ३२ लाख रुपये तक ही थी। इससे ज्ञात होता है कि कतल किए गये पशुओं की संख्या में लगभग डेढ़ लाख की वृद्धि केवल दो वर्षों में ही हो गई। इस गति से यदि इन निरीह पशुओं की हत्या होती रही तो यह देश एक दिन रसातल को पहुँच जाएगा।

अब देखिए, विदेशी भारत को क्या देते हैं। १९५३-५४ ई० की आयात रिपोर्ट के अनुसार ४,५९,११,३७१ रुपये का दूध का पाउडर तथा लगभग ६ लाख रुपये का घी विदेशों से आया। इस संख्या में दो ही वर्षों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई। १९५५-५६ में ५,८८,३५,६८८ रुपये का दूध का पाउडर तथा १,५८,३३,५४६, रुपये का घी अन्य देशों से भारत में आया। इसके अतिरिक्त केवल अमरीका ने लाखों रुपये का घी तथा दूध का पाउडर बिना मूल्य लिये हुए ही भारत को उपहारस्वरूप प्रदान किया।

भारत ने एक और नया व्यापार अपनाया है, जिसका आधार केवल हिंसा ही है। वह है बन्दरों का विदेश भेजना। ये निरीह बन्दर अपने परिवार सहित जंगलों और बागों में फल-फूल तथा पत्तियाँ खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इन मूक प्राणियों को लाखों की संख्या में पकड़वाकर दूसरे देशों में भारत बेचता है, जहाँ निर्दयतापूर्वक उन्हें घोर कष्ट देकर मार डाला जाता है।

सन् १९५४-५५ ई० की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ज्ञात होता है कि उक्त समय में १,००,-३३० बन्दर भारत ने अमरीका तथा अन्य देशों को भेजे। १९५५-१९५६ में १,१६,२९६ बन्दर विदेशों को भेजे गये। यह संख्या पिछले साल से काफी अधिक है। पहले भारत के निवासी इन बन्दरों को हनुमान का वंशज समझकर सैकड़ों मन चना और गुड़ खिलाया करते थे। तब अनाज की पैदावार भी इतनी अधिक होती थी कि इसे कोई अपव्यय नहीं समझता था। आज यह हालत है कि इन बन्दरों को कृषि का शत्रु समझकर भारत-सरकार हिंसा के लिये विदेशियों के हाथ बेच देती है और फिर भी हालत यह है कि विदेश से अन्न मँगाने पर भी भारत में खाद्य की कमी बनी हुई है!

यह अहिंसा के अवतार महात्मा गाँधी की जन्म-भूमि भारत की हिंसात्मक प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन मात्र है। क्या भारत महात्मा गाँधी के मार्ग का अनुसरण कर रहा है? क्या भारत को हिंसा पर पूर्ण विश्वास है? क्या भारत समस्त प्राणियों पर दया और करुणा की भावना जागृत करने के लिये सारे विश्व को संदेश दे सकता है? उत्तर साफ है कि अहिंसा का केवल नाम लेने और भगवान बुद्ध तथा महात्मा गाँधी की जयन्तियाँ मनाने मात्र से संसार में अहिंसा की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। महात्मा गाँधी का जीवन क्रियात्मक था। आज के भारत को भी यथार्थ रूप में क्रियात्मक अहिंसावादी होना पड़ेगा, तभी वह महात्मा गाँधी के संदेश को घर-घर पहुँचाने में समर्थ हो सकेगा और स्वर्ग से महात्मा गाँधी की आत्मा का आशीर्वाद भी उसे प्राप्त हो सकेगा।

**प्रकाशक :** बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद मन्त्री हिंसा-विरोधक संघ, अहमदाबाद।
**मुद्रक :** वैद्यराजस्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद।

## पुराने ग्राहकों से एक आवश्यक अनुरोध

" हिंसा विरोध " पत्र के पुराने ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो गया है । अतएव जीवदया तथा अहिंसा के प्रेमी भाई-बहनों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि इस अंक को पाते ही वे अपना शुल्क रु० १॥ शीघ्र मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें और अपने मित्रों को भी ग्राहक बनाकर सहयोग प्रदान करें । दयालु पाठकों से भी सादर प्रार्थना है कि गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया प्रचार के कार्यमें भेंट मदद भेजकर पुण्य तथा यश के भागी बनें ।

---

## अहिंसा भवनमें रू. १०१ देकर नाम अमर करें

[illegible]

कहती [illegible] जिनवीर ।
बिना दोष धीवर सहारे [illegible] ॥

गौ कहती चिल्ला चिल्ला कर तुमको कहते जगती मात ।
माता कहकर पूज रहे [illegible] वो भी करते मेरी घात ॥
मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में सहाय करते दिन रात ।
वधस्थान में मारी जाती मुझे बचाओ, मेरे तात ! ॥

कुत्ता कहता पहरा देता निजस्वामी का खातिर खास ।
विष देकर यह क्रूर घातकी मुझको करता है अवसान ॥

मैं मैं कहकर बकरी कहती मैं हूँ दीन दुखी अत्यन्त ।
देवी के बलि हित, हा ! मेरे प्राणों को क्यों करते अन्त ॥
ईद के दिन में मानव करते लाखों जानों की कुर्बान ।
धर्मनाम पर कर के हिंसा मान रहे निजको इन्सान ! ॥

भेड़ी कहती मैं चलती हूँ शिर नीचे कर अपनी राह ।
बिना दोष मारी जाती हूँ दिलमें आती इसकी आह ॥
कहता रोझ कि मैं वनवासी जंगल में ही रहता हूँ ।
मार रहे क्यों मुझे शिकारी क्या बिगाड़ मैं करता हूँ ? ॥

मृग कहता मैं तृणचर प्राणी प्रिय मुझको अतिशय संगीत ।
मुझे न मारो, हे मनु-संतति ! समझो मुझको अपना मीत ॥

मुर्गी कहती अंडे खाकर क्यों करते मम वंश-विनाश ।
अन्य महौषध खाओ बल हित, करो न मेरा सत्यानाश ॥

वानर कहता पवनपुत्र को वंशज है यह मेरी बात ।
हृदय हमारा चीर रहे हो, कहते रामराज्य की बात ॥
मूक जीव सब आर्तनाद कर कहते मेरा करो बचाव ।
'[illegible]' धरो मन में हे मानव ! यही अहिंसा का है भाव ॥

---

Regd NO. B. 7127

Licenced to post without prepayment
L. NO. 61

प्रेषक—
**'हिंसा-विरोध' कार्यालय**
माणेकचौक
अहमदाबाद—१

सेवामें ______________________

______________________

ॐ अहिंसा परमो धर्मः

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसाविरोध


अङ्क ३ : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १२ नये पैसे

घार्पिक शुल्क रु १-५० नये पैसे

# चुल्लू भर पानी में डूब मरो

## सेठ गोविन्द दासजी का लोक सभा में भाषण

गाय के प्रश्न को गौण दृष्टि से देखा जा रहा है। गाय का सवाल हमारा सांस्कृतिक और धार्मिक सवाल तो है ही, इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु उसी के साथ आर्थिक दृष्टि से भी सब से महत्वपूर्ण यह सलाह हो गया है। स्वराज्य प्राप्त हुए बारह वर्ष हो गये। बारह वर्ष का एक युग बीत गया और हम देखते हैं कि यह प्रश्न अभी तक सुलझा नहीं है। इतना ही नहीं वह अधिक से अधिक उलझता जा रहा है।

पहले गौ वध के सवाल को लीजिए। यह सर्वविदित है कि मैं सम्पूर्ण गोवधबन्दी का पक्षपाती हूँ, परन्तु यदि इस प्रश्न को एक ओर रख दिया जाये तो भी प्रश्न यह है कि क्या उपयोगी पशुओं की रक्षा बिना गौवध बन्दी हो सकती है मैं अनेक बार इस बात को सिद्ध कर चुका हूँ उपयोगी पशुओं की रक्षा गोवध के कतई बन्द होने पर ही सम्भव है। कहा जाता है कि स्वराज्य के बाद जहाँ तक गौवध का सवाल है, वह कुछ कम होता जा रहा है। यह बात भी गलत है। पहली बात चमड़े के निर्यात के सम्बन्ध में लीजिए १९४६-४७ में कुल ७,४५,००० चमड़ों का निर्यात हुआ, जिस में ६,२५,००० गायों का चमड़ा था और १,२०,००० बछड़ों का चमड़ा था। १९५१-५२ में यह संख्या ६४,००,००० तक पहुँच गई थी जिस में से १८,५३,००० बछड़ों का चमड़ा था और ४५,००००० का चमड़ा था। ११९५५ ५६ में यह संख्या करीब ८०,००,००० तक, पहुँच गई जिस में से २६,००,००० बछड़ों का चमड़ा था और ५३, ९२, ००० गायों का चमड़ा था। स्वराज्य प्राप्ति के समय चमड़े का निर्यात ७, ४५, ००० था और नौ दश वर्ष के बाद १९५५-५६ में वह ८०, ००, ००० तक पहुँच गया और उसमें बछड़ों का चमड़ा २६, ०० ००० हैं मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या बछड़े अनुपयोगी कहे जा सकते है। इस के सिवा जिन गायों का चमड़ा जाता है वे गाय अच्छी से अच्छी होती हैं गौ माँस का निर्यात यहाँ पर बन्द हो गया था। अभी २८ मार्च को ही एक प्रश्न का उत्तर देते कृषि मन्त्री जी ने कहा——

हमारे ये विशेषज्ञ कोई अपनी विशेष राय नहीं रखते एक समय इनकी एक राय होती है दूसरे समय इनकी दूसरी राय हो जाती है। ऐसे विशेषज्ञों को जब ऐसे काम सोंपे जाते है तब उसमें सुधार न हो कर बिगाड़ ही होता है। मैं एक बहुत बड़े विशेषज्ञ का नाम ले रहा हूँ श्रीमान नन्दा जी। गुलजारी लाल नन्दा से नहीं यह एक दूसरे नन्दा जी है जिनका नाम प्राणनाथ नन्दा है। ये सरकार के एक बड़े विशेषज्ञ माने जाते हैं। १९४७-४८ में जब एक कैटलडिवैल पमैन्ट कमेटी बनी, जिसका मैं भी एक सदस्य था और नन्दा जी भी थे।

१९४७-४८ में इन नन्दाजी ने उसके एक विशेषज्ञ मेम्बर की हैसियत से इस बात पर हस्ताक्षर किये थे कि इस देश में गाय का प्रश्न हल होने के लिये हमें गौवध कतई बन्द करना चाहिए। १९५५ ५६ में एक दूसरी कमेटी बनी श्री नन्दा जी के सभापतित्व में तो उन विशेषज्ञ महोदय की विशेष

( देखिये टा. पा. ३ पर )

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ ] अहमदाबाद, मई १९५९ [ अङ्क ३

## गाय का करुण क्रन्दन

(श्री गुलराज सुरेका 'प्रसन्न' कलकत्ता)

कृष्ण प्यारे भारत आवो, गौएँ करती करुणा पुकार।
इन्द्रपूजा बन्द करी तुम मुझको पूजन की उर धार।
नंगे पग वन दुख सह डोले मुझे चराते करते प्यार।
अब क्यों भूले तुम मनमोहन ? मेरे गल पर चलती धार॥

अपने सुत से बढ़कर गिन नर दूध पिलाया कर कर सार।
मेरे सुत खेती हित दिंहैं भूमि खाद दूँ गोवर सार।
आजीवन नर पालन करती मेरे सुत ढोते सब भार।
आज मनुज निष्ठुर अती बन रहे देखत मों पर अत्याचार॥

नगरों में गुवाले मोहि दुहते बड़ी दूर ला ग्राहक द्वार।
वर्षा शीत, वात दुख सहती वत्स मरे बिनु दूध अहार।
निर्दयी लेवें दूध सदा पर तनिक न पूछत कुशल हमार।
दूध सूख जब जाय हमारा बिकुं वत्स सह बधिक बजार॥

जीते जी मम चाम उधेड़त प्राण हरत खल भरे बजार।
बिड़ला बन्धु गोन्द बनाने खाद्य गुंवार का हरते सार।
खली खाद्य मम देत खेत अब परदेसों भेजत सरकार।
मानव देखें तनिक न बोलें शासक डर, कायरता धार॥

जन्म हिन्दु घर बनत धर्मध्वज माँ कह पूजत विविध प्रकार।
मनुज कहावत लाज न आवत धन-मद मद भूले उपकार।
भारत जन फिर दूध चहत यदि कैसे मूर्ख बने गँवार।
देखो कस अचरज यह मोहन ! माता कह इनको धिक्कार॥

मेरी सुध नां लो यदि मोहन ! यों ही मेरा रहे संहार।
निश्चय ही भारत के घर-घर मरघट बन मानव हो छार।
करुण-क्रन्दन कर मैं रोऊं तस रोवहिं निर्दयी के नर नार।
'प्रसन्न' कहे गोरक्षा कीजे चेतो ! मेटो !! गौ-संहार॥

# दयादेवी का प्रसाद

अर्थात्—जो अर्हन्त भगवान अतीत कालमें हुए, वर्तमान काल में हैं और भविष्यत में होंगे, वे सब इसी प्रकार कथन करते हैं, इसी प्रकार बोलते हैं, इसी प्रकार समझाते है और इसी प्रकार व्याख्यान करते है—अर्थात् सब का सिद्धान्त एक ही है। सब की प्ररूपणा समान है। वह क्या है ?

जगत में जितने भी प्राणी हैं, चाहे वह द्वीन्द्रिय अर्थात् कीड़ी मकोड़ा, जू, लीख आदि हो, चाहे, चतुरिन्द्रिय अर्थात मक्खी, मच्छर आदि हो, अथवा भूत अर्थात आम नीम लता आदि वनस्पतिकायिक हों चाहे पंचेन्द्रि अर्थात नरक के नारक, पांचों इन्द्रियों वाले मच्छ कच्छ आदि जलचर, गाय भैंस आदि स्थलचर, चील, चिड़िया, कौवा, कबूतर आदि खेचर, चूहा, नेवला आदि भुजपरिसर्प, साँप, अजगर आदि उरपरिसर्प, कर्मभूमिज अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्य, चारों निकायों के देव-भवनपति, वैमानिक, वाणव्यंतर और ज्योतिष्क—हों, अथवा सत्त्व अर्थात पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय, तेजस्काय के एकेन्द्रिय हों अर्थात इस संसार में जितने भी प्राणी है, उनमें से किसी भी प्राणी का हनन नहीं करना चाहिए। किसी पर हुकूमत नहीं चलाना चाहिए। किसी को संताप नहीं देना चाहिए, किसी को पीडा नहीं पहुँचाना चाहिए और किसी को प्राणहीन नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि अपनी ओर से ऐसा कोई कार्य न करो जिससे किसी प्राणी को तनिक भी कष्ट पहुँचे, उद्वेग हो, संताप हो; किसी की स्वाधीनतामें बाधा पहुँचे, प्राणों का विनाश हो। किसी के पूंछ नाक आदि अवयवों को काटना, किसी आंखें फोड़ना अथवा किसी भी प्रकार से कष्ट पहुंचाना हिंसा है। हिंसा से बचना धर्म है। कल्याण है।

जो लोग मांस, मछली या अन्डे का सेवन करते हैं, वे अहिंसा धर्म का पालन नहीं कर सकते, क्यों कि जीव का घात किये बिना मांस मिल ही नहीं सकता। खेद का विषय है कि आज अपने को आर्य कहने वाले लाखों-करोड़ों हिन्दू भी मांस का भक्षण करते है। वे लम्बे-लम्बे तिलक और छापा लगाते हैं और मांस खाने की लोलुपता का भी त्याग नहीं कर सकते। यह कितनी लज्जा की बात है। कहना चाहिए कि ऐसे लोगों ने धर्म को पहचाना हो नहीं है।

जो अन्डे खाते हैं, कबूतर जैसे सीधे-सादे भोले प्राणियों का भी मांस खा जाते हैं, बकरे को पेट में डाल लेते हैं, मछली को हजम कर जाते हैं और खा पीकर ठाकुरजी के सामने पड कर साष्टांग नमस्कार करते हैं. वे क्या बैकुंठ पा सकते है ? क्या ठाकुरजी ऐसे हिंसकोंको, निर्दयों और जिह्वा लोलुपों को स्वर्ग में भेज देंगे ? अगर ऐसे लोग स्वर्ग में चले जाएँ तो नरक में कौन जाएगा ? फिर तो नरक का द्वार ही बन्द हो जाएगा !

भाइयो। जरा धर्म को पहचानो। धर्म के अनेक रूप हैं, मगर दया उन सब से प्रथम और उत्तम है दया से बढ कर कोई धर्म नहीं है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि के मूल में भी दया देवी का ही प्रतिबिम्ब झलकता है। जहाँ दया नहीं, वहाँ कोई धर्म नहीं टिक सकता। समस्त धर्मों में प्राण संचार करने वाली भगवती दया ही है। दया से ही समस्त धर्मों का प्रारम्भ होता है। दया के सद्भाव में ही अन्य

धर्म पनप सकते हैं। दया के अभाव में कोई भी भी उत्पन्न नहीं हो सकता।

यह अहिंसा धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। यह शाश्वत धर्म है, मत समझो कि कभी यह धर्म नहीं रहता है। यही धर्म शुद्ध है, सनातन है है और नित्य है।

सच तो यह है कि विश्व अहिंसा के आधार पर ही स्थित है। अगर संसार में से दया-अहिंसा थोडी देर के लिए भी उठ जाय तो तत्काल प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो जाय। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि अहिंसा धर्म तब से ही चला आ रहा है जब से जगत है और तबतक प्रचलित रहेगा जबतक जगत है जगत की आदि नहीं और अन्त भी नहीं है। अत एव अहिंसा धर्म भी अनादि-अनन्त है। ज्ञानी महात्माओं ने सम्यक प्रकार से लोक के स्वरूप को जान कर इस धर्म का उपदेश दिया है।

मनुष्य का पेट दुखता है तो वह अपनी वेदना को वाणी द्वारा प्रकट कर देता है और उसका उपचार हो जाता है छ महीने के बच्चे का पेट दुखा है तो वह रोने लगता है और उसकी चिकित्सा की जाती है। गाय-भैंस के पेट में तकलीफ होती है तो वह चारा चरना बन्द कर देती है और उसकी भी दवा हो जाती है। कीडे मकोडे रोगग्रस्त होने पर चलना-फिरना बन्द कर देते है और एक जगह स्थिर हो जाते है। इससे पता चल जाता है कि इन्हें तकलीफ महसूस हो रही है। मगर पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और तेजस्काय के एकेन्द्रिय जीवों को तकलीफ होती है तो कौन जानता है? हम चर्मचक्षु जन इन जीवों की वेदना को समझ नहीं पाते, फिर भी यह नहीं समझना चाहिए कि इन्हें वेदना होती ही नहीं है। उनके शरीर में भी वैसी ही आत्मा स्थित है, जैसी हमारे शरीर में। उस आत्मा और इस आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। जैसे हमें सुख इष्ट और दुःख अनिष्ट है, उसी प्रकार उन्हें भी सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है यह बात हम तर्क के द्वारा समझ सकते है और दिव्य ज्ञानी प्रत्यक्ष देखते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष देखकर जो फर्माया है, उसका उल्लेख भी आचारांग'सूत्र में किया गया है। प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन द्वितीय उद्देशक में कहा है—

नाक कान आदि अवयवों से हीन एकेन्द्रिय जीव किस प्रकार वेदना का अनुभव करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे जन्म से अन्धे, बहिरे, गूंगे लंगडे और अवयवहीन किसी मनुष्य को कोई निर्दय भाला आदि शस्त्रों से पाँव, पिंडली, घुटने, जंघा कमर नाभि, छाती आदि अंग अंग में छेदन-भेदन करे तो उसे वेदना तो अवश्य होती है, फिर भी वह उस वेदना को प्रकाशित नहीं कर सकता। प्रकाशित करने की शक्ति न होने के कारण ही यह मानना उचित नहीं है कि उसे वेदना होती नहीं है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय आदि को भी छेदन-भेदन करने से वेदना की अनुभूति तो अवश्य होती है, फिर भी वे उसे व्यक्त नहीं कर पाते।

एकेन्द्रिय जीवों को सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय प्राप्त है। जिह्वा आदि इन्द्रियों से वे सर्वथा वंचित हैं। इस कारण बेचारे असमर्थ है और दया के पात्र हैं। उनकी हिंसा पूरी तरह त्यागी न जा सके तो भी कम से कम निरर्थक-निष्प्रयोजनहिंसा का त्याग तो करना ही चाहिए।

कोई-कोई लोग दया, करुणा और अहिंसा का दायरा मनुष्यों तक ही सीमित कर देते हैं। वे कहते हैं—मनुष्यों को न मारना धर्म है हाँ गाय, भैंस बकरी आदि को मार कर भले खा जाओ। कोई मनुष्यों और जानवरों को ही न मारने में धर्म कहते है। कीडी मकोडा मर जाय तो कोई हर्ज नहीं है। बहुत कम ऐसे हैं जो स्थावर जीवों को पहचानते और उनकी भी दया पालने का विधान करते है। दादूपंथी कहते है—

दादू सूखा सेज हैं, आला भांजे नाय।
काया को दुख दीजिए, साहब सब के भांय

और भी कहा गया है—

जले विष्णु: स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले विष्णु: सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

विष्णु का अर्थ है जीव, पृथ्वी में पानी में, पर्वत में और अग्नि में जीव है। सारा जगत जीवमय है।

मुसलमानों के कुरान कहीं में तो ऐसा नहीं है लेकिन उनके पैगम्बरों ने जो हिदिरशा बनाये है, वहाँ अवश्य लिखा है—'कत्ले शिदर'। अर्थात् हरे वृक्षों दरख्तों को मत काटो।

मगर आज तो हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने ही मजहबको छोड दिया है। तभी तो गाजर-मूली की तरह मनुष्यों को काट फैंकते है। कहाँ भागवत और गीता रही और कहाँ कुरान रहा। इस समय तो मनुष्य अपने विवेक को सर्वथा भूल चूका है।

भगवान महावीर ने दया का जो वर्णन किया है, उसकी सीमा बहुत विशाल है। कहना चाहिए कि जितनी चाहिए उतनी है, भगवान कहते है—हे प्राणीयो! तुम उघाडे मुँह भी मत बोलो, अन्यथा वायु काय के जीवों की हिंसा का पाप लगेगा। हवा के लिए पंखा झलना भी पाप है। पृथ्वी पानी और अग्नि नजर आ जाती है और समझने वाले उनमें जीव का अस्तित्व भी समझ लेते हैं; परन्तु वायु के जीव तो किसी भी प्रकार नजर नहीं आते। उन पर दया करने से क्या? लेकिन नहीं, यह तो केवली के वचन है। उन वचनों पर जिसे श्रद्धा है, वही इन पर दया कर सकता है। श्रद्धा के बिना कौन दया कर सकता है?

यही कारण है कि जैन साधु भयंकर से भयंकर गर्मी पडने पर भी पंखा नहीं झेलते और कितनी ही सर्दी पडने पर भी आग नहीं तापते। पंखा झालने से और आग प्रज्वलित करने से जीवों की हिंसा अवश्य होती है। अतएव ऐसा करने वाले दया का पालन नहीं कर सकते। इस प्रकार की दया वही कर सकता है, जिसके हृदयमें वीतरागसर्वज्ञ के वचनों के प्रति पूर्ण आस्था है। मांसभक्षी तो जीव का अस्तित्व ही उसमें नहीं मानते। कहते है—इसमें जीव कहाँ दिखाई देता है? मगर पाप के कारण जिनकी दृष्टि मलीन हो गई है, उन्हें जीवों का अस्तित्व कैसे दिखाई देगा?

कोई कहे—हम आपको पाँच रुपये देंगे, आप एक कीडा खा लीजिए। तो क्या कोई भी समझदार जैन या वैष्णव ऐसा करेगा? बदरीफल (बोर-बेर) छोटा फल है और उसमें प्रायः दो-दो चार-चार लटें पड जाती है। कई लोग कहते हैं अजी, क्या रक्खा है इस गहराई में उतरने में। लटके कोई हड्डियाँ थोडे ही होती है। मगर उनकी यह नादान दया के योग्य है। कहा है—

मत खाओ रे बोर जन्म बिगडे मत खाओ।
एक-एक बोर में कितनी है लट्टां,
आँखों खोल देखो सिगरे॥

भाइयो! एक-एक बोर में अनेक लटें होती है। असावधानी में बोर के साथ लटे भी गटक ली जाती हैं। अतएव विवेकशील मनुष्यो को हिंसा से बचनेके लिएँ बहुत सावधान रहना चाहिए। खान-पान, उठना-बैठना, चलना-फिरना आदि सभी क्रियाएँ यतन के साथ करनी चाहिए और हिंसा से बचकर जीव दया का पालन करना चाहिए।

आज संसार में जो दुःख व्याप रहा है, उसका कारण हिंसा ही है हिंसा की वृद्धि के साथ दुःखों की भी वृद्धि होती है, यह अकाट्य सिद्धांत है। जहाँ हिंसा है, वहाँ वैर-विरोध है, मारकाट है, छीनना झपटना है, अतएव संताप है, अशान्ति है, व्याकुलता है, परेशानी है। शान्ति नहीं है।

ज्ञानी जनों ने हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में बहुत गहरा विचार किया है। उन्होंने हिंसा के कारणों की भी खोज की है और बतलाया है कि हिंसा छह कारणों से की जाती है। भगवान ने श्रीमद् आचारांग सूत्र में इस प्रकार फर्माया है—

'इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण माणण पूयणाए जाइमरणमोयणाए, दुक्खस्स पडिघायहेउं'।

प्रथम तो मनुष्य अपनी आयु बढ़ाने के लिए हिंसा करता है। कई लोग देवी-देवताओं के सामने बलि चढाते हैं कि मेरी उम्र लम्बी हो जाय। कोई कोई अपने पुत्र आदि के जीवन की रक्षा के लिए भी ऐसी ही बलि देते हैं। अपने शरीर में-दूसरे जानवर का खून भरवाते हैं अथवा बन्दर के अण्डकोष लगवाते है। कई लोग जानवरों की जवान खा जाते हैं। कई लोग प्रशंसा के लिए हिंसा करते है। कहते है देखो मै एक ही झटके में गर्दन उडा देता हूँ। कोई कोई मान के लिए हिंसा करते है, जैसे मैं यह हिंसा नहीं करूँगा तो मेरी बात नहीं रहेगी। कोई-कोई यश-कीर्त्ति की प्राप्ति के लिए हिंसा करते हैं। कई छह काया का आरम्भ करके समझते हैं कि हमें मोक्ष मिलेगा। केले के झाड़ को काट-काट कर धूप देते हैं। और समझते हैं कि हम मोक्ष में चले जाएँगे। कई लोग अपने दुःख का प्रतीकार करने के लिए हिंसा का आश्रय लेते हैं। 'यदि मेरा लड़का जीवित रह जायगा तो एक पाड़ा मारूँगा अथवा बकरा चढ़ाऊँगा' इस प्रकार की मनौती मनाता है। अपने हाथ से हिंसा करने में ग्लानि होती है तो दूसरे से कह कर करवाता है। किन्तु इस प्रकार एक को जान लेने से दूसरे की जान बच जाती तो सदैव जीवित रहने का सरल उपाय पाकर कौन न जीवित रहता? राजा-महाराजा लाखों जीवों की हिंसा करवा सकते हैं। मगर इस भूतल पर आज तक कोई सशरीर अमर नहीं रह सकता।

लोग बात उलटी समझ बैठे है। हिंसा से वास्तव में कोई अच्छाई नहीं उत्पन्न हो सकती। भगवान् ने फर्माया है कि जो हिंसा करेगा, वह स्वयं उस हिंसा के कारण दुखी होगा। बार-बार जन्म-मरण प्राप्त करेगा। उसे अगले जन्म में सम्यक्त्व भी दुर्लभ होगा। हिंसा अन्ततः हिंसक के लिए ही काल रूप सिद्ध होती है।

भाइयो! हिंसा के फल अत्यधिक कटुक हैं। वर्तमान में भी और भविष्य में भी हिंसा दुःख, संताप

और अशान्ति ही उत्पन्न करती है ऐसा समझ कर हिंसा से बचो और जीवों के ऊपर दया करो। व्यक्ति समाज और देश अहिंसा से ही शान्ति और सुख का अनुभव कर सकता है। इस लिये सुख चाहते हो तो कड़वे कचरे की वेल मत बोओ। हिंसा जहरली वेल है और उस वेल में फल जहरीले ही लगते हैं।

दया से क्या होगा ?

दया की बोवे लता शुभ
फल वही नर पाएगा।
सर्वज्ञ का मन्तव्य है,
गर ध्यान में जो लाएगा॥
आयु दीर्घ होता सही,
अरु श्रेष्ठ तन पाता वही।
शुद्ध गोत्र कुल के बीच में,
फिर जन्म भी मिल जाएगा॥

याद रखो, जो दया करके आये हैं, जिन्होंने दया की वेल बोई है, उन्हें कैसा फल मिलेगा ? वह जीव जहाँ जन्म लेगा, वहाँ उसकी आयु लम्बी होगी। वह जन्म लेते ही नहीं मरेगा, अल्पायु भी नहीं होगा। कोई दुश्मन आग में फैंक देगा तो भी वह नहीं जलेगा। पानी में भी वह नहीं डूबेगा। क्यों कि वह दया पालकर आया है। जब भीम बच्चा था तो दुर्योधन आदि उसे लताओं से बाँध कर पानी में डालकर चले आये थे। लेकिन भीम मरे नहीं। बन्धन तोड़ कर घर आ गये। मशीनगन से भी वह नहीं मर सकता, क्योंकि वह पुण्यवान् जीव है। उसकी आयु को देवता भी नहीं तोड़ सकता। देखो प्रद्युम्न कुमार को ले गये थे मारने के लिये मगर वह मरा नहीं। जानते हो किसने उसकी रक्षा की थी ? उसका पुण्य ही उसका सहायक बना था।

## पांजरा पोलका जन्म

### ( भगवान् श्रीमहावीर के बालजीवन की महत्त्वपूर्ण घटना )

गु० लेखक—रतीलाल मफाभाई शाह—मांडल
हि० अनुवादक—मनमोहनाचार्य शास्त्री—भोपल

लच्छवी कुमारो की मर्यादा को उल्लंघन करती हुई शरारतों के कारण कुमार वर्धमान नाराज़ था और इसी लिये वह ऐसे मित्रों के साथ रहना नहीं चाहता था। परन्तु वे नटखट शरीर मित्र एक दिन घर आकर उसको खींच ले गये और आनन्द क्रीडा करने के लिये जंगल में घूमने चल दिये। उस समय के लच्छवी कुमार जैसे शरीर थे वैसे ही बहादुर भी थे; साथ ही साथ ये आकर्षक रूपवान भी थे, जिससे ये सबका दिल हर लेते थे।

सिर पर छोटा सा मुकुट कानों में कुण्डल और सुशोभित बाजुबन्धों से ये बालकुमार जैसे आकर्षक दीखते थे वैसे ही सुन्दर केश, अङ्गरखा, कमरे में बन्धा हुआ पीला दुपट्टा, सुन्दर यज्ञोपवीत, धनुष और पीछे बँधे हुए भाथे से शौर्यमूर्ति भी मालूम पड़ते थे। शरीर सुडोल और कसा हुआ था। विशाल हृदय, दीर्घ भुजा, गौरवर्ण, फैले हुए और हवा में लहराते हुए केश कलाप के बीच में देदीप्यमान सुन्दर मुखाकृति, चमकते हुए दीर्घ नेत्र, चढी हुई मस्ती के खुमार

हे निश्चय ही ये कुमार अतिमोहक लगते थे। इस प्रकार के ये कुमार कड़कड़ाती धूप में घूमने को निकल पड़े थे। जङ्गल में वृक्षों की घटा के नीचे, खुल्लेखेतों और बाग-बगीचों में एक दूसरे से टकराते, कूदते, रमते और मस्ती करते हुए आनन्द लूटने लगे।

चुलबुल लड़कों ने कहाँ से
मार दिया एक हिरणी को।
खडी खडी रहकर वह अपनी
दूध पिलाती बच्ची को ॥
उछल उछल कर भाग छीपे थे
दूसरे हिरन जंगल में।
स्नेह पाश से कैसे भागे,
छोड अपना बच्ची गिल में ॥

वहाँ अचानक एक नटखट क्षत्रिय कुमार ने भागते हुए हरिणों को देखकर धनुष पर वाण चढाया और अपने प्रिय बच्चों को दूध पिलाती हुई एक हरिणी को बींध डाला। दूसरे हरिण तो छलांग मार कर भाग गये किन्तु कीचड़ में फंसी हुई अपनी बच्ची को छोड़ कर हरिणी किस तरह जा सके? पशुजाति होने पर भी मानव जाति की अपेक्षा किञ्चित् मात्र भी कम मातृत्व इसमें नहीं था। अतः बच्ची पर के अत्यन्त स्नेह के कारण से जीवन की बाजी लगा कर भी वह न हटी। क्या कोई माता अपने बच्चे को ऐसी स्थिति में छोड़ कर भी भाग सकती है?

लगा वाण लहू घोघ उछलकर
जमीन पर वह गिर पडी।
करुण भयभीत आँखे फट गई
सहती वेदना अति ॥
करुण हाय पुकार मचाती
बच्ची को वह निरख रही।
लहू नहाती छटपटाती वह
अपने अंग को हिला रही ॥

तीक्ष्ण वाण शरीर में लगते ही वह उछलकर अपनी बच्ची के पैरों में पड़ गयी, खून का फव्वारा शरीर से छूट रहा था। आँखे भय; करुणा, और बच्ची के प्रेमविरह व्यथा के कारण फटी जा रही थीं। कीचड़ में फंसी हुई बच्ची भी माता की यह दशा देख कर करुणा की याचना करती आँखों से टप टप आँसू गिराती दर्द भरे स्वर से चिल्ला रही थी। इस की आँखों में माता बिना आने वाली करुण दशा का चित्र था जिसको देख कर पत्थर दिल भी पिघल जाये ऐसा यह करुण दृश्य था। दूसरी ओर हरिणी को भी वेदना का पार न था वह रक्त में नहा रही थी उसके अङ्ग अङ्ग में पीड़ा व्याप रही थी किन्तु इसकी अपेक्षा वह अपनी बच्ची की चिन्ता से अधिक व्याकुल थी। इस पर भी जब वह बच्ची की तरफ नजर डालती तो उसकी वेदना हजारों गुणा बढ़ जाती थी। कारण कि उसको अपनी मृत्यु सामाने दीख रही थी और उससे बच्ची की निराधारता वह सहन नहीं कर सकती थी।

बच्चो माता को और माता निःसहाय बच्ची को देख रही थी। दोनों का हृदय एक दूसरे के स्नेह के तार से बन्धा हुआ होकर धड़क रहा था। न तो माता बच्ची को आश्वासन दे सकती थी और न बच्ची माता को ही। दोनों असहाय थीं। एक दूसरी को देख नहीं सकती थीं; अतः आँखें फेर रही थीं और कोई सहृदय आत्मा को खोजती हुई और उससे

करुणा की याचना के लिये टगर टगर आँखों को इधर उधर फेर रही थीं।

वर्धमान ने नजरों देखा यही
करूणाद्रावक अति दृश्य
क्या है धर्म क्या शौर्य इसमें
मारन में भोले पशु वन्य
अनाथ बच्ची को उठाया
बरस रहे आंसू चौधार,
देख रहा मरती हरिणी को
रहा नहीं दुःख का जब पार,
दया याचती आंख से कहती
आश्वासन वीर में रखती,
बताऊँ क्या दर्द दिल देव ओ
बच्ची सौंप में जाती,

इस करुण दृश्य को देख कर कुमार वर्धमान का दिल करुणा से भर गया। हृदय रो पड़ा। अरे ऐसे निर्दोष भोले वन्य प्राणियों के मारने में कौन सा धर्म है ? कौन सी बहादुरी है ? यह कह कर मित्रों के ऐसे क्रूर व्यवहार के प्रति नापसन्दगी बतला कर वह मरती हरिणी के पास जा बैठा। बच्ची को कीचड़ में से बाहर निकाल कर उठा लिया। लेकिन मरती हुई हरिणी की पीडा का पार नहीं था, इस पर भी कुमार उसकी कुछ सहायता करने तथा दुःख दूर करने में अशक्त था। इससे उसकी आँखों में आँसू भर आये। मरती हुई हरिणी को यह देखता रहा और हरिणी भी अपने दुःख में भाग लेने वाले कोई सहृदय आत्मा तो है, यह समझकर 'ओ मेरे प्रिय देव ! मेरे दिल में जो दर्द है वह मै तुम्हें किस तरह समझा सकूँ ? किन्तु तुम्हारा हृदय मेरी व्यथा को समझ सकता है तो तुम पर मैं विश्वास रख कर आश्वासन प्राप्त करती हूँ कि तुम मेरी बच्ची की अच्छी तरह रक्षा करोगे और माता की कमी इस को नहीं पड़ने दोगे' इस प्रकार मानो कहती हो और कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से करुणा याचती आँखों द्वारा कुमार के साथ बात कर रही थी।

"दया धर्म ऊपर उठ आया वेदना का अनुभव हुआ विचार ज्ञात हुआ। सहाय देने के लिये अशक्ति को छोड़ दिया। अपने जाति मित्रों को समझाया, निर्बलों की रक्षा करना ही क्षात्र धर्म है। वह बिगड़ चुका है। अनाथ वन्य पशुओं को मारने में ही धर्म समझ लिया है। रक्षक तन्त्र बिगड़ चुका है। अनाथ हरिणी की बच्ची को लेकर कुमार ने उसकी रक्षा करने के लिये एक स्थान में रखा और भी पशुओं की रक्षा करने का विचार किया। यही विचार आगे पहुँचा। जगत जीव का वेदन क्या ? छोटे मोटे सूक्ष्म जन्तुओं को वेदना से समभाव हुआ। इसी करुणा और दया के भाव से अहिंसा तत्त्व प्रकट हुआ।"

इस करुण घटना से कुमार ने देखा कि वह स्वयं किसी को सहायता देने में कितना असमर्थ है। इस अशक्ति के कारण दूसरे को कितना दुःख भोगना पड़ता है उसे इस का ज्ञान हुआ। किन्तु इस दुःख को किस तरह हलका या निर्मूल करके दूसरे को सुख दिया जा सके ? इस प्रकार के प्रश्न में से इसके दिल में गहरी अनुभूति प्रकट हुई और पीछे तो इनके द्वारा इसका जो चिन्तन शुरू हुआ, उसी में से अहिंसा धर्म का जन्म हुआ और बड़ा होने पर इसका विकास करके इसको व्यापक रूप दे दिया। मित्रों को इसने समझायी कि चाची के पास से क्या हमने ऐसा हो सीखा था ? निर्बल की रक्षा करनी यही अपना क्षात्रधर्म है परन्तु हम तो इस धर्म को

राय बदल गई और यद्यपि उस कमेटी के टर्म्स आफ रिफ्रेन्स में गोवध का विषय नहीं था, लेकिन खींच तान करके इस विषय को लाया गया और १९४७-४८ की राय के ठीक खिलाफ उन्होंने यह राय की कि इस देश में गोवध होना चाहिए।

भिन्न भिन्न देश वालों ने भिन्न पशु पक्षियों को अपनी महत्वा कांक्षा या अपने चारित्र्य का प्रतीक बनाया है। उकाब संयुक्त राज्य अमेरिका का सिंह जर्मनी का और बुलडाइङ्गलैन्ड का, लड़ते हुए मुर्गे फ्रांस का और भालु पुराने रूस का प्रतीक हैं। सवाल यह हैं कि यह संरक्षक पशु पक्षी राष्ट्रीय चित्र को किस तरह से ले जायेंगे। इन से ज्यादातर तो आक्रमणकारी, लड़ाकू और शिकारी जानवर हैं। ऐसी दशा में यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि जो लोग इन नमूनों को अपने सामने रख कर अपना जीवन निर्माण करते हैं जानबूझ कर अपना स्वभाव वैसा ही बनाते हैं आक्रामक रूप अत्याचार करते हैं, दूसरों पर गुर्राते है गरजते हैं और झपट पड़ते हैं। और यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि हिन्दू नरम अहिंसक है, क्योंकि उनका आदर्श पशु है गाय।

मैं कहना चाहता हूँ कि गाय पञ्चशील के जो सिद्धान्त है उनका भी एक प्रतीक है। मैं आशा करता हूं कि सरकार इस ओर समुचित रूप से ध्यान देगी क्योंकि जैसा मैंने आरम्भ में निवेदन किया है कि अधिक अन्न उत्पादन और खेती के प्रश्न से हमारी गाय का बहुत निकट सम्बन्ध है।

( टा. पा. २ पर का शेष )

भूल कर उलटे रस्ते जा रहे हैं। किन्तु मित्रों को ऐसी दृष्टि प्राप्त नहीं हुई थी।

कुमार ने मरती हुई हरिणी की प्रार्थनानुसार उसकी बच्ची को पाल-पोष कर बड़ा किया। साथ ही साथ इस तरह के दूसरे भी घायल और असहाय पशु पक्षियों की रक्षा और देख भाल की व्यवस्था की। जिसमें से आगे जाकर पशुशाला—पांजरापोल की व्यवस्था प्रकट हो गयी है।

इस प्रकार एक हरिणी ने पशु जगत के कैसे दुःख है—वेदनाएँ हैं; इसका कुमार को भान कराया था। दूसरे के दुःख को समझने की यह दृष्टि उत्तरोत्तर व्यापक बनती गई। विश्व के जीवमात्र किस तरह वेदनाओं को भोगते है इसको कुमार जानने और समझने लग गया था। जिसका परिणाम यह हुआ कि जगत के छोटे बडे जीवों के प्रति करुणा, दया, समता और समानता की भावनाएँ इसके दिल में विकास करने लगी थीं। जगत को दीर्घकालीन चिन्तन के पश्चात ऐसे सूक्ष्म विचार पूर्वक जो अहिंसा धर्म इस की तरफ से प्राप्त हुआ है और आज जगत का यही एकमात्र धर्म होकर आदर ही आदर पा रहा है, इसके मूलमें उसकी जगत के जीवों के दुखों को समझने की ऐसी प्रकट और व्यापक दृष्टि थी।

इस प्रकार एक हरिणी के करुण प्रसंग के निमित्त से महावीर के दिलमें अहिंसा धर्म का उदय हुआ था। उसी तरह घायल पशु पक्षियों की रक्षा के विचार में से पांजरापोल का जन्म हुआ।

प्रकाशक : बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद मन्त्री हिंसा-विरोधक संघ, अहमदाबाद।
मुद्रक : वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद।

## पुराने ग्राहकों से एक आवश्यक अनुरोध

" हिंसा विरोध " पत्र के पुराने ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो गया है । अतएव जीवदया तथा अहिंसा के प्रेमी भाई-बहनों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि इस अंक को पाते ही वे अपना शुल्क रु० १॥ शीघ्र मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें और अपने मित्रों को भी ग्राहक बनाकर सहयोग प्रदान करें । दयालु पाठकों से भी सादर प्रार्थना है कि गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया प्रचार के कार्यमें भेंट मदद भेजकर पुण्य तथा यश के भागी बनें ।

**अहिंसा भवनमें रू. १०१ देकर नाम अमर करें**

### [illegible] की पुकार

कहती मछली मैं जलप्राणी स्वच्छ [illegible] निरनीर ।
बिना दोष धीवर संहारे मुझे [illegible], हे रघुवीर ! ॥

गौ कहती चिल्ला चिल्ला कर मुझको कहते जगकी मात ।
माता कहकर पूज रहे हो फिर भी करते मेरी घात ॥
मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में सहयोग करते दिनरात ।
वधस्थान में मारी जाती मुझे बचाओ, मेरे तात ! ॥

कुत्ता कहता पहरा देता निजस्वामी का जाकर यत्र ।
विष देकर यह क्रूर घातकी मुझको करता है अवसन्न ॥

मैं मैं कहकर बकरी कहती मैं हूँ दीन दुखी अत्यन्त ।
देवी के बलि हित, हा ! मेरे प्राणों को क्यों करते अन्त ॥
ईद के दिन में मानव करते लाखों जानों की कुर्बान ।
धर्मनाम पर कर के हिंसा मान रहे निजको इन्सान ! ॥

भेड़ी कहती मैं चलती हूँ सिर नीचे कर अपनी राह ।
बिना दोष मारी जाती हूँ दिलमें आती इसकी आह ॥

कहता घोड़ा कि मैं वनवासी जंगल में ही रहता हूँ ।
मार रहे क्यों मुझे शिकारी क्या बिगाड़ मैं करता हूँ ! ॥
मृग कहता मैं तृणचर प्राणी प्रिय मुझको अतिशय संगीत ।
मुझे न मारो, हे मनु-सन्तति ! समझो मुझको अपना मीत ॥

मुर्गी कहती अंडे खाकर क्यों करते मम वंश-विनाश ।
अन्य महौषध खाओ बल हित, करो न मेरा सत्यानाश ॥

वानर कहता पवनपुत्र की वंशज है यह मेरी जात ।
दंभ हमारा चीर रहे हो, कहते रामराज्य की बात ॥
[illegible] और [illegible] पर रहते देता क्यों प्यार ।
[illegible] अहिंसा [illegible] है [illegible] ॥


Regd NO. B. 7127

Licenced to post without prepayment

प्रेषक—
'हिंसा-विरोध' का
माणेकचौक
अहमदाबाद—१.

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसाविरोध

वर्ष ८ अङ्क ५

जुलाई : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे

वार्षिक शुल्क रु १–५० नये पैसे

हिंसा-विरोधक संघ अहमदाबाद

# भारत सरकार दस हजार गाय बैल मांस के लिये पाकिस्तान भेजेगी

लाहौर से प्रकाशित होने वाले "पाकिस्तान टाईम्स" तथा पैशावर से निकलने वाले "शाहबाज" ने एक सनसनी खोज खबर प्रकाशित की है कि "भारत सरकार ने पाकिस्तान में माँस की कमी को पूरा करने के लिये दस हजार गाय बैल देने को वचन दिया है। भारत सरकार के इस निश्चय का कारण यह बताया गया है कि भारत में अनेक प्रदेशों में गोवध निवारण कानून बन जाने के कारण अनुपयोगी गाय, बैलों की संख्या बढ गई है जो भारत का आर्थिक व्यवस्था पर अनावश्यक भार है। पाकिस्तान सरकार अपने विशेषज्ञों का एक शिष्ट मंडल इन पशुओं को देखने और उनकी खरीदारी के लिये बातचीत करने भारत भेजेगी।"

## कांग्रेस राष्ट्रीय योजना कमेटी का निर्णय

सन् १९३८ में कांग्रेस के प्रधान पं० जवाहरलालजी नेहरू की अध्यक्षता में बनी राष्ट्रीय योजना कमेटी की पशु–सुधार उप–समिति ने ३१ जनवरी १९४८ की रिपोर्ट के पृष्ट २३ पर लिखा है कि जनसंख्या उपसमिति ने यह सुझाव उपस्थित किया है कि जनता की धार्मिक भावनाओं में क्रान्ति करके भोजन की आदतों में तबदीली की जाये जिस से कि फाल्तु गोवंश भोजन के काम आ सके या फालतु पशुओं को पड़ोसी देशों को इस प्रकार के धन प्राप्ति के लिये भेजा जाये। मालूम होता है कि इस सुझाव के अनुसार ही पाकिस्तान को माँस के लिये गाय और बैल भेजें जा रहे हैं।

सरकार का यह कहना कि गाय और बैल के वध पर पाबन्दी लगने से अनुपयोगी गाय बैलों की संख्या बढ़ रही है यह बिल्कुल झूठ है। सरकारी पशु-गणना रिपोर्ट १९५५-५६ के अनुसार १९५१ में ३,८९,५०० अनुपयोगी पशु थे जो १९५६ में ३,०५,४००, रह गये। जिन राज्यों में गौवध सम्पूर्णतया बन्द है वहाँ बेकार गौवंश की संख्या उन राज्यों की अपेक्षा कम है जहाँ आज गौवध जारी हैं। जैसा कि १९५१ की पशुगणना रिपोर्ट के अकों से प्रगट होगा....

जिन राज्यों में गौवध बन्द है

| नाम प्रान्त | अनुपयोगी पशु प्रतिशत |
|---|---|
| मध्य प्रदेश | १-५१ |
| उत्तर प्रदेश | ०-७८ |
| पंजाब | ०-७ |
| जम्मु काश्मीर | ०-५६ |

जिन राज्यों में गौवध जारी है

| नाम प्रान्त | अनुपयोगी पशु प्रतिशत |
|---|---|
| मद्रास | ५-२८ |
| आन्ध्र | ३-३४ |
| बंगाल | २-४७ |
| उड़ीसा | २-४१ |

सरकारी अंक और तथ्यों के अनुसार हिसाब लगाया जाये और पशु को गोसदन में ठीक रखा जाये तो एक पशु के गोबर गोमूत्र से एक वर्ष में ५० रुपये प्राप्त होते हैं और खर्च होता है ३२ रुपये वार्षिक। पर दुःख है कि सरकार का ध्यान गोरक्षण पर नहीं गोमांस भक्षण की ओर है। सरकार ने गोचर भूमियों को तुडवाकर अनुपयोगी कहलाने वाले गोवंश की समस्या को जटिल बना दिया। दोष गोवध निवारण कानून का नहीं, सरकार की गोचर भूमितोड़ने की नीति का है।

आश्चर्य और दुःख की बात है कि भारत पाकिस्तान को गोमांस के लिये गाय और बल दे। चोरी से राजस्थान की सीमा से पाकिस्तान को वार्षिक हजारों गाय और बछड़िया ले जाई जाती रही हैं, अब सरकार ने इस दुष्कार्य पर इस प्रकार से अपनी स्वीकृति दे दी है।

मन्त्री, गोहत्या निरोध समिति

३ सदर नाथा रोड, दिल्ली–६

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ ] अहमदाबाद, जुलाई १९५९ [ अङ्क ५

## सरकार से !

( श्री जानार्दन प्रसाद कानोड़िया )

पहुँचा देना ये स्वर कोई दिल्ली की सरकार तक,
पार्लियामेंट को जाने वाली नेताओं की कार तक।
गायों को तुम नहीं खिलाते चाकलेट और गोलियाँ
और न उनको ला देते हो, गाउन साड़ी चोलियाँ
तो सिर्फ चरने दो उनको रूखी सूखी घास पर
तथा नीर पी लेने दो उनको अपनी प्यास भर।
धनी देते हैं द्रव्य भी गोशालाएँ चलती हैं,
लूली, अन्धी, वृद्ध अपाहिज सभी गाएँ पलती हैं।
भूल गये इतिहास, नृप दिलीप गाय चराते थे,
हमें दूध की बून्द नहीं है वे तो मक्खन खाते थे।
द्रव्य हुआ तो क्या हुआ, यदि गौ का प्रेम नहीं,
उस घर में प्रेत नाचेंगे, कभी कुशल अरु क्षेम नहीं,
कृष्ण चराई गाय गवाल गोपाल कहाया,
धन्य धन्य हो कृष्ण हमें यह सबक सिखाया।
म्युनिस्पैलिटी द्वारा गाएँ कटती रहती हैं,
पचीस लाख गाएँ प्रतिवर्ष कट जाती रहती हैं।
है 'राजेन्द्र' निवेदन तुमसे और 'जवाहरलाल' से,
कविराय जनार्दन माँग रहा यह तुच्छ भीख तुम लाल से।
करो न दानव रूपी करनी, मानव के इस वेश में
खुलने दो मत अब हत्याग्रह प्यारे भारतवर्ष में
सूखे मांस के लिए गौएँ काटी जाती हैं
चमड़े के व्यापार हेतु वे पाली जाती हैं।
गौ महिमा क्या कहूँ दूध देती हैं चौड़े
माँ का खाता माँस भाग्य वह अपना फोड़े
पहुँचा देना ये स्वर कोई दिल्ली की सरकार तक,
पार्लियामेंट को जाने वाली नेताओं की कार तक।

## बिहार गोशाला अधिकारियों तथा व्यवस्थापकों की सेवा में

नम्र निवेदन

# गौ को कसाई की छुरी से बचावें गोहत्या के पाप के भागी न बने

गोशालाएँ दो मुख्य उद्देश्यों को रख कर खोली गई। १—गोवध निषेध, २—वृद्ध तथा अपङ्ग गोवंश की सेवा। जनता के दूध के उत्पादन के लिये नहीं, इन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिये गोशालाओं को धर्मादा-दान देकर चलाया। आज गौशालाओं को दुग्धशालाएँ या डेरी फार्म बनाने की जो योजना चल रही है, यह दान-दाताओं के धन का दुरुपयोग ही नहीं विश्वासघात भी है। बिहार की प्रायः गौशालाओं को दूध के उत्पादन में पचास प्रतिशत तक घाटा रहता है, यह घाटा धर्मादा-दान से पूरा करना ईमानदारी नहीं। सरकार की कुटिल नीति, कुसंग और क्षणिक लालच के कारण गौशालाएँ सिद्धान्त और उद्देश्य से पथ भ्रष्ट होती जा रही हैं। जो संस्था उद्देश्य हीन हो जाती है उसे अधिक दिन तक जनता का सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता और न अधिक दिन चल सकती है।

उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश तथा मैसूर जैसे प्रान्तों में गोहत्या बन्दी के कानूनों पर अमल हो रहा है। लाखों गाय बैल कतल से बचे हैं। पर दुःख है कि महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर तथा अशोक के बिहार में आज प्रतिवर्ष कम से कम छः लाख गाय बैल कसाई की छुरी के नीचे आते हैं। गोहत्या बन्द कराना मुख्य उद्देश्य होते हुए भी गौशाला संघ के दुष्प्रभाव के कारण गौशाला चलाने वाले गोभक्तों को इस प्रश्न पर जितना ध्यान देना चाहिये था नहीं दे सके। बिहार की गोभक्त जनता के आन्दोलन के कारण बिहार में गोहत्या बन्दी कानून बना। सुप्रीम कोर्ट ने २० मई १९५९ को कानून स्थगित करने के प्रार्थना पत्र पर विचार करते हुए सब आयु की गाय बछड़े बछड़ी तथा १२ वर्ष तक के साँड, बैल, भैंसी भैंसे की हत्या बन्द करने का आदेश दिया। पर बिहार सरकार ने इस आदेश को अब तक लागू नहीं किया। बिहार के मुख्य मन्त्री महोदय ने ६ जून ५९ को बकरी-ईद की बाबत वक्तव्य देकर एक प्रकार से गोहत्या को प्रोत्साहन ही दिया। उचित था बिहार के गौशाला अधिकारी कानून को लागू करवाने की कोशिश करते। पर दुख है कि दरभङ्गा में २७ जून ५९ को होने वाले गोसम्वर्धन सम्मेलन में जो प्रमुख प्रस्ताव रखा है उसमें कानून लागू होने पर गौशालाओं का उत्तरदायित्व बढ़ने का उल्लेख करके इस कानून से गौशालाओं को भयभीत करने की कोशिश की गई है। राजस्थान, मध्यभारत, सौराष्ट्र आदि में कभी से गोवध बन्द है। उत्तर प्रदेश, पञ्जाब आदि में भी गोवध बन्दी के कानून बने। पर किसी भी प्रान्त की किसी भी गौशाला ने आज तक गोहत्या बन्दी कानून लागू होने पर उत्तरदायित्व बढ़ने का जिकर तक नहीं किया। और उसे सहर्ष स्वीकार करके गोहत्या बन्दी के काम में सहयोग दिया। जो बिहार सरकार गोवध बन्दी करने से बचना चाहती है उस सरकार के लिये यह उत्तरदायित्व शब्द गोवध जारी रखने की दलील का पक्ष लेकर गोवध निरोध के प्रश्न को कमजोर

करता है। सरकार के लोग गोवध निषेध के विरुद्ध जो सन्देह प्रगट किया करते है उसी की पुष्टि बिहार गोशाला संघ ने की है। हमारे लिये यह कितनी लज्जा की बात है कि गोशालाओं की प्रतिनिधि संस्था गोशाला संघ गोहत्या निरोध के प्रश्न की उपेक्षा और अप्रत्यक्ष रूप से गोहत्या का समर्थन भी करे।

यह सिद्ध है कि जिस प्रकार छिद्र के पात्र में जल डालने से समय और परिश्रम व्यर्थ जाता है उसी प्रकार जब तक कानून द्वारा गोहत्या सम्पूर्णतया बन्द नहीं होगी तब तक न दूध का उत्पादन बढ़ेगा न नसल सुधार होगा। पर दरभङ्गा की गोष्ठी में चर्चा के जो विषय रखे गये हैं उनमें गोवध निषेध का नाम तक नहीं, गोशाला संघ की दृष्टि में यह गोष्ठी बिहार के सांस्कृतिक नगर दरभङ्गा में नहीं, गोहत्या के समर्थक पाकिस्तान, इग्लैंड, अमेरिका में हो रही है और इस गोष्ठी में चर्चा करने वालों का हिन्दू धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं और न इनकी दृष्टि में गौ का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है।

यह किसी व्यक्ति विशेष का दोष नहीं। जो सरकार गोवंश को नष्ट करने पर तुली हुई है उसने गोहत्या बन्दी के प्रश्न से जनता और गोभक्तों का ध्यान दूर करने के लिये गोशाला संघ जैसी संस्थाओं का निर्माण किया है, और इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये सरकार सहायता देती है। यह सहायता भी प्रायः करके गौ के लिये लाभदायक नहीं हानिकारक ही है। इस वर्ष सैंकड़ों-हरियाणा गायें बिहार सरकार ने बिहार की गौशालाओं को दी है। हरियाणा की गाय बिहार पहुँच कर दूध तो कम देने लगती हैं जो गाय हरियाणा में रहकर आयु भर में कम से कम आठ दस बच्चे देती वह बिहार में चार-पाँच बच्चे देकर ही समाप्त हो जाती है। हरियाणे की गाय का बिहार में लाया जाना गौ के लिये हानिकारक और गोशाला के लिये अभिशाप है।

बिहार के उन गोभक्तों की सेवा में जो गोशालाओं के प्रधान, मन्त्री या सदस्य है, या व्यवस्थापक हैं नम्रनिवेदन है कि सेवक की प्रार्थना पर ध्यान देकर गोहत्या की जिम्मेवार सरकार द्वारा बनाये हुए गोशाला संघ की कुटिल नीति से बचें गोशालाओं को दुग्धशाला बनाने का पाप न करें। बिहार की पुण्य भूमि पर गाय के रक्त की एक बूँद भी न गिरने दे। गोहत्या के पाप से बचें गोरक्षा का पुण्य प्राप्त करें।

## बिहार को जनता की सेवा में नम्रनिवेदन

बिहार की गोभक्त जनता की सेवा में नम्रनिवेदन है कि जाग्रत और संगठित होकर गोहत्या बन्दी कानून पर अमल करवा के गोहत्यारों को पकड़वावें। उन्हीं गोशालाओं को सहयोग तथा सहायता दें। जो सिद्धान्त और उद्देश्य का पालन करें, गोहत्या बन्द कराने में सहायता दें, अपङ्ग तथा वृद्ध गोवंश की ठीक देख रेख रखें। दूधोत्पादन द्वारा होने वाले नुकसान को दान एवम् धर्मादे से पूरा करने वाली गोशालाओं को सचेत करें। उपरोक्त पत्र अधिक से अधिक लोगों को पढ़ाने सुनाने का पुण्य प्राप्त करें। गोहत्या निरोध समितियों के कार्यकर्त्ता स्थानीय गोशाला अधिकारियों तथा नगर के प्रभावशाली गोभक्तों से मिलकर सब स्थिति उनके सम्मुख रखें। गोशालाओं को पाप से बचाने की कोशिश करें।

हरदेव सहाय
मन्त्री गोहत्या निरोध समिति
३ सदर थाना रोड, देहली—६

## श्री राजेन्द्रबाबू पर पत्र

### परम पूजनीय आदरणीय डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी की पवित्र सेवा में

सादर प्रार्थना

संसार में एशिया और भारत ही ऐसा देश है जहाँ से सर्व धर्मों की उत्पत्ति होना माना जाता है जिसमें भी काश्मीर से गिरनार व गिरनार से पार्श्वनाथ हिल के प्रदेश को—महान अवतारों और तीर्थंकरों के जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है। भारत की राजधानी के निकट हस्तिनापुर में जैन तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ एक कबूतर के लिये अपने प्राण अर्पण करने को तत्पर हुए, तो राजा रघु एक गाय के लिए अपना सर्वस्व न्योच्छावर करने के लिये तैयार हुए, भगवान नेमिनाथ, जैनों के २२वें तीर्थंकर—श्री कृष्ण भगवान के भाईमूक पशुओं के आक्रन्दन को सुनकर शादी करने जाते हुए अपने रथ को लौटा लाए। काशी में भगवान पार्श्वनाथने तापस की धूनी में से सांप को बचाया, भगवान श्री कृष्ण ने गौओं को उगाराता जब पशु यज्ञ का जोर हुआ भगवान बुद्ध और महावीर ने जन्म लेकर एक नई क्रांति पैदा करके अहिंसा के संदेश को फैलाया, जिसको २५०० वर्ष हो गये उन्हीं भगवान बुद्ध की २५०० की जयन्ति मनाने में भारत सरकार लाखों रुपये व्यय कर रही है।

महात्मा गाँधी ने इस अहिंसा के संदेश को श्री मद्राजचन्द्र से प्राप्त कर राजनीति के कार्यान्वित किया और संसार को अहिंसा शस्त्र का उपयोग बताया। परिणाम स्वरूप भारत स्वतंत्र बना। इस गणराज्य के संविधान की समिति के प्रमुख होने तथा राष्ट्रपति बनने का सौभाग्य भी आपको प्राप्त हुआ। या नि जिस भूमि में भगवान बुद्ध और महावीर ने प्रगट होकर संसार को अहिंसा का संदेश दिया उसी मगध देश में २५०० वर्ष बाद आपने प्रगट होकर महात्मा गाँधी के अनुयायी बनकर शांति स्थापन करने का भार उठाया। आज संसार भारत की तरफ शांति के लिये चकित नयनों से देख रहा है।

संसार के सब प्राणी कर्माधीन हैं। संसार में शांति जब ही हो सकती है जब हम प्राणी मात्र को स्वराज्य देवें। आज ६०० राजाओं के स्थान में करीब ३२ करोड़ राजा बन गये और हमारी भारत सरकार जनता के उत्थान और जीवनस्तर ऊँचा उठाने के नाम पर अनेक हिंसक योजनाएँ बना रही है। जिस अहिंसा के सिद्धांत पर हमारा गणराज्य स्थापित हुआ उस सिद्धांत को ही हम भूल गये, और ताक में रख दिया।

सन् १९४७ में जब आप भारत के कृषि और खुराक प्रधान थे उस समय आपने गौवध निषेध और अन्य शिफारिशें की थीं और उन सिफारिशों को लक्ष में रख देश के विधान में सम्पूर्ण गौवध निषेध की नीति को स्वीकार कर राज्य सरकारों को निर्देश दिया था लेकिन आज उस नीति का पालन कहाँ तक हो रहा है। भारत के छत्र पर आपके विराजते हुए आपकी निर्धारीत नीति का पालन न हो यह कैसा स्वराज्य।

एक ओर हम कहते है कि हमारे पर भगवान बुद्ध और महावीर की छाप पडी है और दूसरी तरह मांस, मच्छी, मूर्गे आदि के व्यवसाय की पंचवर्षीय योजनाओं में व्यवस्था की जा रही है। जिस देश में

कसाई भी खुले आम दुकान लगाने में या अण्डे बेचने में हिचकते थे उसी देश में आज हमारी अहिंसक सरकार खुले आम आमिष वस्तुओं के प्रचार और प्रयोग बढाने में अपना गौरव समझती है, कितनी शर्म की बात।

ब्रिटिश के समय में भी जब भारत सर को आबू सेनेटीरियम बनाने को इजारे पर दिया गया तो सिरोही के महाराव ने अहदनामे में एक शर्त रखी थी कि आबू या आसपास की सरहद में गौवध नहीं किया जाय और दूसरे जानवरों का शिकार भी निषेध किया। ब्रिटिशने गौ मांस लाने का बहुत प्रयत्न किया और सिरोही के महाराव पर दबाव लाया पर सिरोही का महाराव टस से मस नहीं हुए। सर मनुभाई महता In Hind Rajasthan Page 480 published 1896 writes:-" One of the terms of the management was that no cows were to be slaughtered either on Mount Abu or within any portion of the territories of Sirohi State-a condition exhorted from the English in the true unsophisticated Kshtriya Spirit. The British Govt urged upon the Rao the necessity of cancelling that arrangement but withut suceses.

सन् १९१७ में जब आबू का स्थायी पट्टा दिया गया तब भी सिरोही के महारावने करारनामे में यह शर्त फिर रखी, धारा १० व १३ आबू लीज एग्रिमेन्ट।

तुगलक तथा मुगल सम्राट अकबर के समय में जैनाचार्योंने वर्ष मे अनेक दिनों के लिये जीव हिंसा का निषेध कराया जिसका पालन भारत की अनेक रियासतों में विलीनिकरण तक बराबर हो रहा था।

लेकिन अब हमारे ही राज्य में और प्रजातन्त्र में आप जैसे महान आदर्श राष्ट्रपति तथा पंडित जवाहरलाल जैसे त्यागी के समय मे भी मूक पशुओं की सुनाई न हो यह कैसा न्याय है ?

एक तरफ हम पंचशील का ढिंढोरा पीटें और दूसरी तरफ हमारे ही घर में हम मांसाहार को उत्तेजन देकर मूक प्राणियों को टिकने भी न दें यह कैसा ढिंढोरा। ढिंढोरा या ढकोसला।

भारत में विश्ववनसपत्याहार कांग्रेस सन् १९५७ में होने जा रही है और उसका उद्घाटन करने का आपने स्वीकार किया है यह बड़े ही संतोष की बात है। लेकिन इस कांग्रेस की सफलता तब ही हो सकती है जब कि हम मूक प्राणियों के लिये कुछ करें। बाहर के विदेशी भारत में आकर हमारी इस प्रवृत्ति को देखें यह कैसा शोभास्पद।

आदरणीय महानुभाव, मै आपका ज्यादा समय न लेकर इतनी ही विनती करता हूँ कि जिस भगवान बुद्ध की जयन्ती हम मानने जा रहे है उसी भगवान के अहिंसा के व्रत पर विचार कीजिये—

आप गीताजी के पाठ को मानते है तो यह स्पष्ट है कि पाप बढ़ने से ठीक २५०० वर्ष बाद अहिंसा की ज्योति को जगाने के लिये और क्रांति पैदा करने को जिस भूमि में बुद्ध और महावीर प्रकट हुए उसी मगध देश में आप प्रकट हुए।

अस्तु मेरी आपसे सादर नम्रता पूर्वक प्रार्थना है कि जो हमारी अहिंसा वादी सरकार हिंसक प्रवृत्तियां बढ़ाने में अपना गौरव समझ रही है वह प्रवृत्तियां रोक कर संसार के प्राणियों को अभयदान देकर शांति

स्थापित करने के लिये जिस तरह से भगवान महावीर व गौतम बुद्ध तमाम वैभव को छोड़कर निकल गये आप भी बाहर निकलिये। मेरी इस प्रार्थना में अगर अधिक या अनुचित लिखा गया हो तो उसके लिये मन वचन काया से क्षमा का प्रार्थी हूँ।

अलग डाक द्वारा एक पुस्तक जीव विचार प्रकरण की भी आपकी सेवा में रजू करता हूँ। कृपया उसको मनन करें।

उत्तर की आशा रखते हुए।

# अहिंसा-दर्शन

## ले. पं. मुनि श्री प्रतापमलजी म० के शिष्य राजेन्द्रमुनिजी सि० प्रभाकर बम्बई

शीतांशुरश्मिनिकरप्रसरानुषंगाद्,
यच्चन्द्रकान्तमणयः परितो द्रवन्ति।
तद्वत्त्वदीय महिमा श्रवणेन भव्याः
शान्तः प्रवृद्धकरुणा द्रविता भवन्ति॥

उपरोक्त श्लोक में आचार्य श्री ने यह फरमाया है कि हे प्रभो! जिस प्रकार चन्द्र की शीतल किरणों की निर्मल प्रभा पृथ्वी पर स्थित श्रेष्ठ चन्द्रकांतमणियों को द्रवित कर देती है अर्थात् पिघला देती है। उसी प्रकार आपकी अनुपम महिमा को श्रवण करते हुए, शान्त भव्य जीवों के हृदय से दया तथा अहिंसा के झरने झरते है।

विश्व के इस विराट् प्रांगण में चराचर छोटे बडे प्रत्येक प्राणी सदा जीवित रहने की अभिलाषा करते है, किन्तु मरने की नहीं। कितने मनुष्य दुःख से पीडित होकर नित्यप्रति मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए, कहते रहते हैं कि हे भगवन्! हमें शीघ्रतया मृत्यु प्रदान करो। जब साक्षात् रूप से मृत्यु समक्ष आती हुई देखते है, तब एक दम रुदन करना प्रारम्भ कर देते हैं, और कहने लगते हैं कि हे भगवान्! हमारी रक्षा करो।

यह दर्शन हमें मानवता के प्रथम सोपान का दर्शन कराते हुए यह सूचित करना है कि जैसे आपको अपना जीवन प्रिय है। इसी प्रकार समस्त प्राणियों को सुख तथा जीवन प्रिय है। इसलिये मानवता के कर्तव्य का पालन करते हुए तू किसी जीव को जीवन रहित करके परलोक में मत पहुँचाना।

अहिंसा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाति है कि—' न हिंसा इति अहिंसा' याने किसी जीव की हिंसा न करना। यह मानवता का प्रथम कर्तव्य है। प्रमत्त योग से जो प्राणियों का वध होता है वह हिंसा है। केवल किसी जीव को न मारना इसी में अहिंसा की मूर्ति नहीं होती। किन्तु जीवन के ये समस्त कार्य हैं जो कि मानव को अधोगति में ले जाते है। उन समस्त कार्यों का परित्याग करना और कराना अहिंसा है। कितने मानव ऐसा भी कहते हैं कि हम किसी जीव को नहीं मारते हैं और न किसी को मारने के लिये प्रेरणा देकर उन्हें दुःख देते हैं। यदि कोई स्वाभाविक किसी को मारता हो या दुःख देता हो तो हम उसका क्या कर सकते है, यह कहना ठीक नहीं है। जब आप यह जानते हैं कि एक स्थान पर हिंसा हो रही है, और आप उस समय चुप्पी साधकर देखते रहें

यह आपके लिये शोभनीय नहीं है। किन्तु बनते कोशिश उस की रक्षा करके दुःख दूर करना चाहिए।

यह जगत आज सुखी नहीं है। क्योंकि उसके सुख की इच्छा एक तरफी है। आज का मानव स्वयं अकेला सुखी होने की चेष्टा करता है यही दुःख का मूल कारण है।

सच्चा अहिंसक वही है जो दूसरे जीवों को अभयदान प्रदान करने में सहायक हो। केवल हिंसा न करो यही अहिंसा नहीं है। किन्तु इसके साथ साथ में जीने दो अर्थात् दूसरों के जीवन की रक्षा करो। इसमें अहिंसा की पूर्ति है। जीवन का सर्व प्रथम धर्म यही है—

'Live and let live'

**जीओ और जीने दो।**

जहाँ दूसरों के जीवन की उपेक्षा होती है, वहाँ मानवता नहीं रहती। एवं सुख और शांति भी नहीं रहती है। कोई मानव ऐसा विचार करे कि मै स्वयं अकेला सुखी बनूं और विजई कहलाऊं। इस अभिमान के वशीभूत होकर सिकन्दर ने दुनियां लूट कर भले विजय प्राप्त कर ली हो किन्तु वह सच्ची विजय नहीं थी, और न होगी। अन्त में पश्चात्ताप करते हुए उसने यह कहा कि या खुदा मैंने दुनियां को मार काट लूटकर बड़ा भारी जुल्म किया। यह धन तो मेरे कुछ काम नहीं आया और न आने वाला है। क्योंकि यह तो यहीं पडा रहा है। तथा मेरे कूच के नगारे बज रहे है। यह सच्ची विजय कहाँ हुई?

इसलिये ही भगवान् महावीर ने कहा है कि— आत्मा का दमन करना चाहिए। आत्मा दुर्जेय है। उसका दमन करना बड़ा कठिन है दमन किया हुआ आत्मा इस लोक और परलोक में सुखी होता है। अतएव प्रत्येक मानव को आत्मविजई बनना चाहिए। वही सच्ची विजय है।

कितने मनुष्यों ने उपरोक्त विजय की ओर लक्ष्य न देते हुए, इस जगत में मान, मर्यादा, धन, यश कीर्ति आदि की प्राप्ति के लिये अनेकों संघर्ष किये। किन्तु उन्होंने यह सम्यक्तया विचार भी किया है कि हिंसा के मूल में से घृणा, वैर, विरोध, विनाश के अतिरिक्त और कुछ भी सार नहीं निकलता है। अणुबम कदाचित तत्काल के लिये युद्ध को बन्द कर देगा, परन्तु उससे जगत में शांति नहीं होगी। क्योंकि संहार शक्ति के द्वारा जीवन विनाश और भय के कारण यह क्षणिक शांति है। यह शाश्वत शांति नहीं है। जीवन का सच्चा आनन्द संहार में नहीं किन्तु सृजन में है।

मनुष्य को अहिंसा के पथ पर इसलिये चढ़ना चाहिये और यह समझना चाहिये कि हिंसा के द्वारा सच्ची शान्ति नहीं है। हिंसा के वही सच्ची शान्ति है किसी का जीवन निर्भय नहीं होता है। जहाँ निर्भयता है यदि आप इस के इच्छुक है तो इस अहिंसा व्रत का पालन करना चाहिये।

अहिंसा-व्रत का पालन करने के साथ-साथ में इन पांच अतिचारों का भी सदा ध्यान रखना चाहिए बन्ध, बध, छविच्छेद, अति भारारोपण और अन्न पान निरोध।

(१) क्रोध के वशीभूत होकर किसी जीव को बांधना यह बंध है। बन्ध दो प्रकार के होते हैं। यथा-द्विपद बन्ध और चतुष्पद बन्ध। इन दोनों बन्ध के दो दो भेद है। सार्थक बन्ध और निरर्थक बन्ध।

निरर्थक बन्ध श्रावक के लिये त्याज्य है। सार्थक बंध के दो भेद है। सापेक्ष बन्ध और निरपेक्ष बन्ध। ढीली गांठ आदि से बांधना सापेक्ष बन्ध है। गाढे बन्धन से बांधना निरपेक्ष बन्ध है। श्रावकों को यह चाहिये की यथा योग्य रूप से पशु आदि को इस प्रकार न बांधना चाहिये जिससे उन्हें कष्ट हो और अग्नि आदि का उत्पात होने पर बन्धन खोला जा सके।

(२) कषाय के वशवर्ती होकर लाठी चाबुक आदि से ताडना करना वह बन्ध है। इस बन्ध के भी सापेक्ष और निरपेक्ष के भेद से दो भेद है। श्रावक को निरपेक्ष बन्ध का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

(३) शरीर या त्वचा आदि अवयवों को छेदन करना छविच्छेद अतिचार हैं। जो छविच्छेद कषाय के आवेश से किया जाता है यह श्रावक धर्म को सर्वथा दूषित करता है।

(४) बैल, घोडा, ऊँट और मनुष्य आदि के कन्धों या पीठ पर अधिक बोझ लाद देना जो उन्हें असह्य हो वह अतिभारारोपण अतिचार है क्रोध या लोभ के वशवर्ती होकर अनेक मनुष्य बैलगाडी या तांगा आदि पर असह्य बोझ लाद देते हैं या अधिक मनुष्य बैठ जाते है। जिससे उसमें जुते हुए बैल आदि मूक पशुओं को अत्यन्त कष्ट होता है। अहिंसा-वृत्ति दयालु श्रावक को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

(५) क्रोध के वशीभूत होकर अपने आश्रित मनुष्य और पशु आदि को भोजन पानी न देना वह अन्नपान निरोध अतिचार है। श्रावकों को ऐसा निर्दय व्यवहार नहीं करना चाहिए। क्योंकि तीव्र भूख-प्यास लगने से कभी किसी प्राणी की मृत्यु हो जाती है। अगर मृत्यु न हो भी उसे अत्यन्त कष्ट होता है। इसलिये जब भोजन का समय होतो अपने आश्रित समस्त मनुष्य और पशुओं को सार संभाल किए बिना नहीं रहना चाहिए तथा जो भूखे प्यासे हों उन्हें यथोचित भोजन पानी दिये बिना श्रावक वर्ग भोजन नहीं करते है। रुग्णावस्था में भोजन पानी न देना अतिचार नहीं है। यह बताने के लिये क्रोध के वशी भूत इस प्रकार कहा गया है।

उपरोक्त अहिंसा एवं अतिचारों का सम्यक्तया प्रत्येक मनुष्य को यथाविधि पालन करना चाहिए।

प्रेषक—

**वसन्तलाल जैन, बम्बई**

## सौराष्ट्र में गोहत्या

श्री वढवाण महाजन

वढवाण महाजन का श्रेष्ठत्तम जीवदया कार्य:—

वढ़वाण ता० २६–६–५९

परम पूज्य महाराज श्रीदयामुनीजी की पवित्र सेवा में। मु. अहमदाबाद

वढवाण महाजन का जयहिंद।

सुरेन्द्र नगर से पाँच, छ मील दूर कटुडा गाम हैं, वहाँ का एक आदीवासी की गाय को दिनांक-१७–६–५८ के दिन रात्रि में कटुडा गाम से हाँक कर बगल के गांव लटुडा की सीमा में पथ्थर की खाण में ले गया, और रात्रि के बारह बजे से दो बजे के अरसे में गाय को खड्डा में ले जाकर मारकर दुष्ट लोग भाग गये। इस प्रसंग में चार मुसलमान

गौ को मारने में सम्मिलित थे उन में से दो पकड़े गये हैं उनकी परिचय विधि कोर्ट के समक्ष किया गया है। दूसरे दो व्यक्तियां को जो भाग रहे हैं उनको पकड ने की कोशिश हो रही है। इन लोगों को कटुडा गाममें उस रात को अपने आँखों से देखने वाले दो हरिजन हैं वे लोग स्थिर नहीं होते हैं, इस लिये उन दोनों को पकड़ ने में विलम्ब हो रहा हैं, तथापि पोलिस की ओर से तथा गाँम की ओर से और अपनी तरफ से कोशिश की जा रही है और साथ साथ हर एक खाता की तरफ से भी सम्पूर्ण सावधानी पूर्वक कार्य किया जा रहा है। रात का समय सीमा में यह अनुचित कार्य हुआ इस कारण कुछ मुश्कली है। तो भी यथाशक्ति हम सब कोशिश करेंगे।

पूज्य श्री शंभु महाराज दिनांक २७–६–५९ को कटुडा गाँव में गये थे वहाँ से वे वढ़वाण गये। गौसम्बन्धी उन्हों ने तपास किया था और सम्पूर्ण हकिकत उन्होंने जाना। तत् पश्चात् विशेष कुछ भी उन्होंने कहा नहीं था।

द्वारका का भाटीया हरिदास गत वर्ष "कैटल कैम्प" (पशु छावणी) खोले थे। उन्होंने १३० गौएँ वाछड़िओं को वर्षा के एक घनश्याम भाई को रु. ५००) में विक्रीय कर दिये थे। द्वारका से गौएँ ले जाने वाले घनश्याम भाई के पास मार्ग खर्च के लिये एक पाई भी नहीं थी, और विरमगाम में उन गौओं का विक्रीय हो जाने की भय से इन गौओं और बछडों को शुल्क रु. १८०१ दे कर वढवाण महाराज ने छोडा लिया है।

हलवद गाम के पास सापकडी गाम में एक कणबी ने गाय मार दिया है उस सम्बन्धी केश चालू है।

१३ पाडा १ भैस एक मुसलमान विरम गाम ले जा रहा था उसे पुलिस विभाग द्वारा रोका गया है और केश चल रहा है।

चोटीला गाम के पास के गाँव से १० गौएँ,

१ मेड़ मुसल्मान के पास से छुडाया गया है, और उसकी अजब (किमत) रु. १२५) दिया गया है।

जीवदया सम्बन्धी हर एक प्रकार की प्रवृत्तियाँ और तत् सम्बन्धी खर्च का कार्य चल रहा है। मछलियों को बचाने के सम्यन्ध में और उसके संरक्षण के लिये वार्षिक रु. ५०००) के करीब इस वर्ष में खर्च होगा।

मेड (घेटा) बकरा वगैरे छोटे जीवों को छुडाने के प्रसंग में भी खर्च करना पड़ रहा है, गत वर्ष दुष्काल होने के कारण जीव दया प्रसंग में रु.-३१००० अंक एकतीस हजार का खर्च महाराज श्री ने किया था इस वर्ष के लिये रु. १५००० अंके रु. पन्द्रह हजार जितनी रकम स्वीकृत किया है।

आप जैसे महान पुरुषों की आशीर्वाद से हम सब यह पुण्य कार्य कर रहे हैं। हमारी सरकार जीवदया मानती नहीं है अतः हम जीवदया प्रेमियों को दिन प्रति दिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं। उसका शुभ परिणाम आप जैसे महान पुरुषों ही ला सकते है, जैन कोम के अतिरिक्त बहुमती अन्य कामों को इस कार्य में रुची नहीं है। अतः क्या करना चाहिए वह समझ में नहीं आता है।

लक्ष्मीशंकर नागरदास मेनेजर
श्रीवढवाण महाजन

प्रकाशक : बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद मन्त्री हिंसा-विरोधक संघ, अहमदाबाद।
मुद्रक : वैद्यराजस्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, काकरिया रोड, अहमदाबाद।

## पुराने ग्राहकों से एक आवश्यक अनुरोध

" हिंसा विरोध " पत्र के पुराने ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो गया है। अतएव जीवदया तथा अहिंसा के प्रेमी भाई-बहनों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि इस अंक को पाते ही वे अपना शुल्क रु० १॥ शीघ्र मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें और अपने मित्रों को भी ग्राहक बनाकर सहयोग प्रदान करें। दयालु पाठकों से भी सादर प्रार्थना है कि गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया प्रचार के कार्यमें भेट मदद भेजकर पुण्य तथा यश के भागी बनें।

## आवश्यक सूचना

संघ के प्रचारक वैद्यराज अमरचन्दजी जैन खींचन वाले—हमारे संघ की तरफ से करीब सात माह हुए प्रचार के लिये राजस्थान गये थे, लेकिन उनकी ओर से अभी तक संघ का हिसाब नहीं आया इस लिये हमारे ग्राहक महानुभावों से निवेदन है कि उनको हिंसाविरोध पेपर का मूल्य या मदद नहीं दें, क्योंकि संघने उनको छुटा कर दिया है। और वैद्यराज अमरचन्दजी जहाँ हो वहाँ का पता तार में भेजने की कृपा करें।

ली. मन्त्री, बालाभाई जी शाह,

Regd N0. B. 7127

Licenced to poct without prepayment L. N0. 61

प्रेषक—
'हिंसा-विरोध' कार्यालय
माणेकचौक
अहमदाबाद-१

सेवामें ______________

अहिंसा परमो धर्मः

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।

अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसाविरोध


८ अङ्क ७

म्बर : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे

वार्षिक शुल्क रु १-५० नये पैसे

# अहिंसा की प्रतिष्ठा का मार्ग

[ श्री साधक जी जैन दर्शन पर नई दृष्टि से चिन्तन करने वाले एक युवक सर्वोदयी कार्यकर्ता हैं। जैन भिक्षु के रूप में रहकर सर्वोदय का काम करने वाले लगनशील कार्यकर्ताओं में से एक साधक जी भी है। हम आज के युग में मांसाहार का विरोध किस प्रकार कर सकते है इस सम्बन्ध में एक दृष्टि इस निबन्ध से प्राप्त होगी। ]

अहिंसा, जीवन का महान सिद्धांत है। भारतीय ऋषियों ने अहिंसा की साधना के क्षेत्र में अत्यन्त गहराई के साथ अन्वेषण किया। व्यक्ति की उन्नति की अहिंसा को अद्यतम साधन मानते हुए उसका विविध दृष्टिकोणों से विश्लेषण भी किया। अहिंसा के इन अन्वेषकों में भ० महावीर ने जन्तु-जगत् का जितना गूढ़ अन्वेषण और विश्लेषण किया, वह सर्वांगीण, विचारपूर्ण और वास्तविक है। उनके यथार्थ, सत्यपरक प्राचीन अनुभवों को आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। साधक उनके प्रशंसक रहे है, शान्तिप्रिय उनके समर्थक रहे हैं, श्रमण उनके प्रचारक रहे हैं। हम लोग श्रमण परम्परा के ही प्रतिष्ठित प्रतिनिधि हैं। हमने भ० महावीर के उपदेशों को आगमसिद्धान्त माना है। जीवन की आन्तरिक तथा बाहरी कठिनाइयों का निराकरण उनकी अनुभूतियों में अन्तर्निहित है—ऐसा मानकर संसार को आगमों के तर्कपूर्ण मनन तथा निदिध्यासन करने की आवश्यकता बताई है।

विश्व-वात्सल्य की भावना अहिंसा है। अहिंसा जीवन की आवश्यकता है। इसलिये आदरणीय है। सबका चलना, फिरना, उठना, बैठना, रहना, खाना-पीना, बोलना आदि अहिंसात्मक हो, इसके लिये हम लोग घूम-घूम कर प्रचार करने लगे।

समस्त सीमाओं को लाँघ कर जब हम प्रचारार्थ निकले तो हमारे सामने सबसे जटिल प्रश्न मांसाहार का आया। अनेक जातियाँ तथा अनेक प्रान्त मांसाहारी थे। मानव के विकास, समाज की समृद्धि और अशेष दुःख निरोध की दृष्टि से हमने उन्हें मांसत्याग की बात समझाई, पर वहाँ अन्न की अपर्याप्तता के कारण मांस-निषेध न होने पाया। उस हालत में हमारे सामने दो रास्ते थे। एक तो यह कि हम उन प्रान्तों में जाना स्थगित कर दें, दूसरे मांसाहार की अनिवार्यता स्वीकार कर लें। हमारी शाकाहारी प्रकृति संस्कार गत है, उसकी अवहेलना करने के बजाय हम प्रथम मार्ग पर ही अग्रसर हुए।

# हिंसा विरोध

वर्ष ८ ] सप्टेम्बर १९५९ अहमदाबाद, [ अङ्क ७


## कहाँ गये गोपाल?

र. राधेश्याम प० खानदेश

हिंसा से जो दूर सदा, हा हिंदू वही कहायेगा।
टेक दया की रखने को, अपना खून वहायेगा॥
गोमाता की सेवा करके, वे गोपाल कहाते थे।
करके रक्षा वे दीनों की, दीनदयाल कहाते थे॥

पर चक्रों को दूर करे, तब चक्रधारी कहाये थे।
असूर मूर को मारे थे, तब ही मुरारी कहाये थे॥

परशा ले नरपशु को हनकर, परशराम कहाये थे।
भक्त जनों में रमते थे, तब वे राम कहाये थे॥
मां धरती को याद आती है, परशराम है गया कहाँ?
रेणुका दूध गौरव वह, गौ प्रेमी वह गया कहाँ?
कहाँ दिलीप कहाँ अर्जुन है, महाराज रणजीत कहाँ।
मां धरती को याद है आती वीर शिवाजी गया कहाँ॥
अब नाम धारी रह गये हैं, कर्तव्य का कुछ काम नहीं।
गोपाल कहाते गोकाल बने थे, इनमें है कुछ राम नहीं॥
गौ दूध पिये गोपाल बने नाम सार्थ गोपाल।
गौ खून पिये गोवध करते नाम सार्थ गोकाल॥
दांत में तृण और हाथ को जोडे, गऊ बनकर यह अया है
माफ करते शस्त्र को भी, गऊ बनकर यह आया है॥

भूल गये ये भूल गये, हो गये नमक हलाल।
जीवनदाके जीवनहा हो बन गये लालम लाल॥
हे चक्रधारी दो छोड़ चक्रकी, होवे वह भी लाल।
गौ भारत माता याद करत है कहाँ रहे गोपाल॥

# पर्वाधिराज पर्युषण

ले. श्रीदयामुनिजी महाराज

अनुवादक सन्तकवि श्रीरामवल्लभ

आर्य लोग अहिंसा प्रेमी होते है। इसलिये वे लोग प्रेम वात्सल्य से विभूषित हैं। आर्यलोग सर्वत्र-सर्व में मनुष्य, पशु, पक्षी जीव जन्तु, वनराजि आदि चराचर में प्रभु की प्रकृति को देखते हैं। 'इशावास्यम् इदं सर्वम् के अनुसार जड़ चेतनादि युक्त विराट ब्रह्माण्ड, परमात्मा में ओत-प्रोत है। अतः पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु वनौषधी, सूक्ष्म स्थूल सर्वजन्तुवर्ग वनचर--जलचर तथा खेचर वर्ग, मनुष्य भूतयोनि के जीव, देवादि समस्त वर्गों का वह परमात्मा पुरक है। प्रत्येक प्राणी जीने की इच्छा करता है। कोई भी मरना नहीं चाहता। अतः जीजीविषा होना स्वाभाविक है। वेदों में देखो अथवा जैनदर्शनों में देखो, अथवा बुद्धिपिटकों में देखो, सर्वत्र ही अहिंसा का विजय-डङ्का बज रहा है। यह अहिंसा धर्म मानव समाज का सर्व क्षेत्रे, सर्वकाल में परम धर्म है।

'मित्रस्य चक्षुषा द्रक्षामहे, के अनुसार सब प्राणी हमारे मित्र है। इस प्रकार से अनुभव करने के बाद सुहृदं सर्वभूतानाम् ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति सब भूतों को मित्र जान कर शान्ति रूपि आनन्द को प्राप्त होता है। अहिंसा रूपि सूर्य की अनेक किरणे हैं। वे किरणें अखिल विश्व के सत्व पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु और सर्व औषधियां तथा वनराजि फल फूल, कन्द तथा विश्व के पशु पक्षी जलचर थलचरादि प्राणियों को समान भाव से देखती है। आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यो अर्जुन! के अनुसार सर्वत्र सब में अपने को देखे, अनुभव करे, दूसरों के दुःख को अनुभव करें। प्रत्येक प्राणी को प्रभुमय जानकर, परपोकार के लिये जीवन अर्पण करता है। सम्पूर्ण विश्व को अपना प्रतिनिधि जानकर सब की सेवा जो करता है, वह अगर बत्ती की तरह स्वयं जलकर सब को सुगन्धि प्रदान करता है। इस प्रकार से सन्तों में अभेदभाव जागता है, स्व-पर का भेद होता ही नहीं। यह मेरा, यह तेरा ऐसी प्रवृत्ति भी नहीं होती। प्रेम--पुनीत विश्ववत्सल महानुभाव विश्व को रसमय मानते है।

रसयुक्त होने से प्रेमार्द्र, करुणा पुलकित मनवाला मानव होता है। अभयदाता, प्रणेता होता है। प्रेम-प्रवाह निरन्तर रहे, इसलिये मनुष्य को रचनात्मक नित्य पंच महायज्ञ कर्तव्य फरमाता है। उसमें भूतयज्ञ मुख्य है। भूतयज्ञ का अर्थ प्राणियों के लिये त्याग करना, यज्ञ किए बिना भोजन नहीं करना। यदि खा लिया तो उस को चोर कहना। मनुष्येतर मानवाश्रित पशु पंखियों का भाग अपने भोजन में है। ऐसा अनुभव कर के उन प्राणियों की तृप्ति के लिये प्रत्येक रोज कीडियों के लिये आटा, मछलियों के लिये आटे की गोली, पक्षियों के लिये अन्न, कुत्तों वान्दरों, गौओं के लिये ग्रास निकाल कर उनको तृप्ति करके पीछे खाना चाहिये। इस विश्व में सब जीव परस्पर आश्रित हैं देवान् भावयन्तः ते देवा भावयन्तु नः यह वाक्य चरितार्थ होता है। पृथ्वी-माता, सूर्य-पिता अग्नि, जल, वनस्पति आदि सभी लोग अपने को पोषण करते हैं।

इसलिये उनके हमलोग ऋणी है। विशेष ध्यान रहे कि हमलोगों से उन सब को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

मा गृद्ध कस्य स्विद्धनम् । किसी का धन बलपूर्वक अपहरण नहीं करना चाहिये । उक्तं च आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । अपने को जो प्रतिकूल होता हो, वह दूसरे लोगों को नहीं देना चाहिये । इस प्रकार का आचरण जब मनुष्य करेगा, तब वह विश्व का मित्र बन सकेगा।

आज का दिन पर्वाधिराज पर्युषण का दिन है पर्युषण का अर्थ आत्मा के* आस पास रहने वाला वैरभाव का त्याग । प्रेम, वात्सल्य, करुणा, अनुकम्पा, एवं उदारता, क्षमा, अभयादि भाव जो दबे हुये है और छीपे हुये है, इस वैरभाव के त्यागसे प्रेमादि भाव-जागृत होजाते है । इससे मित्रभाव का वातावरण फैल जाता है । ऊंच नीच का भेद-भाव नहीं रहता है। बाद में वह व्यक्ति सब को अभयदान दे सकता है अभयदान देने योग्य होने के बाद उसका सारा विश्व मित्र बन जाता है । तब अहिंसा धर्म का पूरा पालन करेगा । जैसा कि अहिंसा को जैनदर्शनने महत्व दिया है । मानव से मुक्त आत्मा बनने के लिये समभाव रखना जरूरी है । समता के रङ्ग से रङ्गे जाने से आवेश मिट जाता है । तेरा—मेर भी निकल जाता है । अहंकार,की गन्ध भी नहीं देखता । इस विराट ब्रह्माण्ड में जीव अनेकवार जाता है । सब योनियों में जन्म लेता है । नीचे से ऊँचे, ऊँचे से नीचे जाता है । जब मनुष्य जन्म लेता है, तब समझो कि वह उंच योनि में आया है । समता आजाने से वह प्रेम मूर्ति बन जाता है । जब वह प्रेममूर्ति बनता है तब प्रेममय परमात्मा से उसका सम्बन्ध हो जाता है । परमात्मा से सम्बन्ध होने से निर्वैर वृत्ति वाला बन जाता है ।

अपने को धिक्कार करने वाला, क्रोध करने वाला, दुःख देने वाला अपना शत्रु नहीं है, परन्तु अपना जसा हाड़—मांस से बना हुआ पृथ्वी माता का मानस पुत्र है । कर्म की विचित्रता से वह दूसरों को धिक्कारता निन्दा करता, मारता और शरीर का नाश करता है। परन्तु दूसरों की आत्मा का नाश नहीं करसकता है । इस प्रकार से विचार के उदार दृष्टि से देखा जाय तो अवश्य ही आनन्द प्राप्ति होता है ।

**समणे संजए दन्ते हणेज्ज कोई कत्थइ ।**
**नत्थि जीवस्य नासुत्ति एवं पेहेज्ज पन्डिए ॥**

ज्ञानिपुरुष की मृत्युञ्जय क्षमा है । वह सहिष्णु है जीवन की कसोटी को समझकर सब सहन करता है। वह मृत्यु से भी नहीं डरता, उसका कारण यह है कि उसकी देहदृष्टि नहीं है । देह में रहते हुये भी विदेह बनकर रहता है । अतः वह भावना उत्पन्न होती है कि शत्रुजनाः सुखिनः सन्तु, मुझे शत्रुभाव से देखने वाले मेरे शत्रु मित्र हैं । वे लोग सुखी बने, उनका कल्याण हो, इति शुभ ॐ शान्ति—शान्ति

अहिंसारूपि सूर्य की दूसरी किरण उदारता है । हृदय की विशालता है । हृदय को सागर बनाना है । उदारहृदयसागर में करुणा की लहरें समय—समय पर उछल—कूद मचाती हैं। स्वयंभू रमणस्पर्धी करुणा-रसवाहिणा के अनुसार भगवान के हृदय की विशालता स्वयं भूमध्य समुद्र के विस्तार और गहनता से भी विशेष घन है । अनुभव हृदय और समान दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि सर्वत्र करुणा ही करुणा है । सर्वत्र हिंसा का ही बोल—वाला है । सर्वत्र हिंसा का ही साम्राज्य है । राजतन्त्र वाहकों की दया मनुष्यतक है । मनुष्यों में अनेक वाद, अनेक पक्ष हैं राग—द्वेष, कुटिलता और अविश्वास बढ़ता जा रहा है । मनुष्य की वृत्ति हिंसामयी बन रही । गरीब समाज,

जीवन धोरण को ऊँचा लाने के लिये प्रयत्न करते हुये भी विशेष गरीब बन रहा है। केवल मुडीवाद समाज खूब ही मुडीवादी बन रहा है। मनुष्य दया हीन होगया है। जब अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं होता तब खञ्जर वाजी करता है। कौटम्बिक जीवन भी छिन्न-भिन्न हो गया है। खेडुत और जमीनदार, लेनेवाला और देनेवाला, मकान मालीक और भाडुआत, मील मजदूर और मील मालीक, शेठ और नौकर इत्यादि सब लोग स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दी बनकर संकुचित स्वार्थपरायण हो गये है। ग्राम उजड़ रहा है और शहर बढ़ रहा है। परन्तु शहर में खान-पान आदि विकृत और हिंसक बन गया है। अशोकचक्र को मान्य करने वाली हमारी सरकार अशोक के अहिंसा प्रचार के बदले मे मांस, चमड़ा और मछलियों के व्यापार को हिंसावृत्ति को बढा रही है। हमको दूध पीलाने वाली गोमाता और खेती में सहायता करने वाले बैल के गले में और बकरा भेड़ आदि मूक प्राणियों के गले में छूरी फेर रही है, उस पर सरकार का ध्यान नहीं जाता।

अनाज के कमी के कारण मत्योधोग में सहयोग दे रही है। मछलियों में वीटामीन है, इसि लिये सहयोग दिया जाता है, ऐसा भी प्रचार हो रहा है। ग्रामोधोग बढाने के लिये मूर्गा मूर्गी आदि जानवरों का खूब ही हनन हो रहा है। अण्डा खाने से गाल पर लालरंग आवेगा और रक्त विशुद्ध होगा, इस प्रकार का प्रचार हो रहा है। अण्डा और मांस खाने के विषय में भारत निवासी जो प्रतिकार करते थे, उसका प्रतिकार इससे हनन हो रहा है। इस से बालक-वर्ग में अत्यन्त असम्यता आगई है, विशेष करके विद्यार्थियों में शिष्टाचार भंग देखा गया है। इस का कारण मांस, मछली, होटल, सीनेमा इत्यादि है। इस प्रकार देश हित के नाम से हिंसा का नग्ननृत्य हो रहा है। मनुष्य करुणा तथा दया हीन बनता जा रहा है। इस लिये वह सर्वदा भय का अनुभव करता है।

प्राणी यदि वैर तथा हिंसावृत्ति छोड़ दे तो अवश्य ही वह प्राणी निर्भय होजावेगा। ये जैनाचार्यों के सिद्धान्त है। कहा भी है—**अहिंसाप्रतिष्ठायां वैरत्यागः**। वैर बुद्धि विसर्जन होने से प्रत्येक प्राणी का हृदय, उदार तथा विस्मय बन जाता है। इससे मनुष्य, पशु, ऊँच, नीच में भेद-भाव नहीं रहता है। **मयि सर्वं इदं तत्। सर्वस्मिन्नहमस्मि** के अनुसार सब में मै हूँ। इससे मेरा-तेरा का भाव, नष्ट होजाता है। प्रेम का प्रवाह बहता है। क्षमाशील हृदय होजाता है। इस से सर्वत्र ही उसको परमात्मा का दर्शन होता है। इस से दूसरों के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न होता है। जब हृदय में प्रेमभाव उत्पन्न होता है तब क्रूर प्राणी भी हिंसा वृत्ति को छोड देता है। वाघ, सिंह, सर्प जैसे हिंसक प्राणी अपने बालकों के प्रति प्रेमभाव के कारण खूब ही सन्तोष पूर्वक वात्सल्य भाव रखते हैं। प्रेमभाव के कारण बालकों को नहीं मारते हैं। प्राणियों में प्रेमभाव उत्पन्न नहीं हुआ तो भविष्य में विश्व अवश्य ही श्मशान बन जावेगा। यदि प्राणीमात्र को संसार में सुख-शान्ति से रहना हो तो हिंसा और वैरवृत्ति को छोड कर प्रेमभाव उत्पन्न करें। प्रेमी बनकर प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करो। सहनशीलता प्राप्त करने के लिये हिमालय बनो। शीतल जल बनकर संसार के दावानल को शान्त करो। अहिंसक बनकर हिंसा को प्रेम से शान्त करो। अपने प्राण को दे कर दूसरो के प्राण की रक्षा करो। ईशु ने शूलि पर चढ़ कर प्राण समर्पण

करके विश्व के पाप को धोकर समस्त प्राणियों को सहनशीलता का परिणाम बता दिया। सत्यं शिवं प्रियं सुन्दरं, इस वाक्य को अनुभव करके मनुष्य सत्य, और सुन्दर बनजाता है। यह भी सच्चा जीवन, सच्चा सुख माना गया है। इस लिये सत्यं वद। प्रियं वद इत्यादि उपदेश दिया जाता। सत्य के समान विश्व में कुछ भी पवित्र देखने में आता नहीं है।

भगवान बुद्ध, भगवान महावीर ने दुःख निवारण के लिये सब भोग विलास त्याग कर दया का मार्ग स्वीकार किया। कामना और वासना को त्याग करके विश्व को बताया कि त्याग ही परम सुख है। स्वयं वन में रहकर दुःख का कारण अनुभव किया।

कारण समझ कर भिक्षुधर्म को अपनाया। घर घर भीक्षा मांगकर अभिमान को दूर किया। स्वयं दुःख को सहन करके दूसरों को सुख दिया। विश्व के सामने यह आदर्श स्थापन किया कि जैनधर्म दूसरों के सुख के लिये है। यह भी बतलाया कि भोग-विलास के लिये नहीं है। किन्तु जीवन, विश्वरूप कुटुम्ब की सेवा के लिये है। **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना उत्पन्न करने के लिये है। **आत्मनः प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत्।** इस प्रकार का आचरण करना चाहिये, '**पर्वाधिराज पर्युषण,** यह उपदेश विश्व को देरहा है कि वैर तथा हिंसावृत्ति को छोड़ कर सभी प्राणी सुखी बनें। परस्पर मैत्रिभाव को प्राप्त करें। नीरोगी बनकर देश का कल्याण करें।

इति शम्।

## पशु-पक्षियों के साथ समानता और मित्रता

**ले. बहेन कुमारी रहियाना तैबजी,** **अनुवादक सन्तकवि श्रीरामवल्लभ**

हम सब भगवान् अल्ला की सन्तति हैं। स्रष्टा, संरक्षक और परम प्रेमी-मित्र प्रभु विश्वम्भर है। हम सब के स्वरूप और संस्कार भले भिन्न-भिन्न हो, परन्तु हम सब के अन्दर प्रभु की दिव्य ज्योति का वास है, जो समस्त जीवों का जीवन है। जब सब में इस आत्मा का नूर रोशन है, तब कौन किसी से श्रेष्ठ, कनिष्ठ कहा जाय? खुदा के पास कौन किसी से भेद-भाव बता सकेगा? और प्रभु के दरबार में कोई ऊँच-नीच भावना रहती नहीं है, इस निर्णय को सभी धर्मने स्वीकार किया है, क्योंकि तमाम धर्म तथा उन्नति का मार्ग आत्मैक्य, प्रेमबन्धुत्व और सहानुभूति पर रचा हुआ मौलिक सिद्धान्त एक होता है। परमात्मा भी एक है। सब विचित्र-विविधता के लिये एकता का साक्षात कार करना, इस में ही धर्मबुद्धि और आत्मशुद्धि भरी हुई है, परन्तु हम सब इस सत्य को यहाँ तक भूल गये कि सामान्य मनुष्य-मनुष्य में भी अपना जीवन हृदय और विचार में मानवता बिलकुल नहीं है और मनुष्य, मनुष्य ही नहीं रहा है। अतः ये सब नियम मरा हुआ है। आसुरी सम्पत्ति की बोलबाला है और दैवी सम्पत्ति मृत प्रायः है।

अब हमे नष्ट प्रायः मानवता की पुनः रचना किस प्रकार से करनी होगी, प्रत्येक मनुष्य इस पर विचार करे। मानवता का प्रचार हम कर रहे हैं, परन्तु मानवता मरी पड़ी हुई है। मैं आज मनन-चिन्तन का सार आप सब के समक्ष रजु कर तो हूँ।

सब से प्रथम तो बालको को प्राणियों से मैत्रीभाव, बन्धुभाव शीखना चाहिये। हमारे दरेक

प्रार्थना में मानवेतर कुटुम्बों के लिये एक प्रार्थना तैयारी होनी चाहिये। अपनी पुरानी प्रथा कितनी अच्छी थी कि अपना खोराक का अमुक भाग पशु-पक्षी रूपी मित्रो के लिये अलग काढना पडता था। आज अन्नकमी की जमाने में जो ऐसा बने तो पशु-पक्षियों की खाद्य–कमी का हल होजाता। बालकों को शिक्षा देनी चाहिये कि प्राणियों को दुःख देना, उनके ऊपर पत्थर फेंकना आदि कृत्य महापाप है। जो जीव अन्य जीव को पीडा पहुँचाता है, वह मानवता को खोकर दानवता को स्वीकार करता है। केवल इतना ही नहीं, परन्तु वह अपने के लिये एक दारुणपीडा और यातना की दुनिया बनाता है, जहाँ मरने के वाद जाना पडता है। अतः किसी को पीडा न पहुँचा कर सब के साथ मित्रता करें।

# भविष्य में मांसाहार अशक्य

**श्रीविनोवाजी के भाषण से**　　**अनुवादक सन्तकवि श्रीरामवल्लभ**

औषध के रूप में मांसाहार का आरम्भ हुआ है, उसका क्या ? इस विषय में बोलते हुये और डाक्टरी धन्धा का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये कि नहीं ? इन प्रश्नों का जवाब देते हुये सन्त विनोवाजीने कहा कि—

इस समय जनसख्या का प्रमाण बढता जारहा है। संयम द्वारा उसका निरोध हो सकता है, परन्तु आज की परिस्थिति अमुक वर्ष तक रहेगी। ज्यों-ज्यों मानव के पास जमीन कम होती जायगी त्यों–त्यों मांसाहार निभेगा नहीं। जमीन के आधार पर पशु जीन्दा रहता है और उसके आधार पर अपने लोग जिन्दे रहते है। यह सर्वदा के लिये चलेगा ऐसा नहीं दिखता सामान्य खेती के निमित्त एक व्यक्ति के लिये एक एकर जमीन की आवश्यकता है तो दूध पीने के लिये १॥ एकर जमीन की आवश्यकता होगी। यदि मांसाहार हो तो उसके लिये दो एकर जमीन की आवश्यकता है, जनसख्या देखने से स्पष्टरूपेण समझने में आता है कि अपने लिये मांसाहार सरल नहीं है। धर्म तो इस पर प्रहार ही करता है। विज्ञान भी कहता है कि मनुष्य के लिये मांसाहार ठीक नहीं है, फलाहार ही श्रेष्ठ है। मैं तो कहूँगा कि श्रेष्ठ आहार आकाश का है। खुली हवा में दूरदृष्टि तक नजर पहुँचे, ऐसा रहना चाहिये। आकाश सेवन कम होगा तो हृदय विशाल नहीं बनेगा। विशालता नहीं आवे ( यदि इस प्रकार से लोक रह सकें तो, आप लोग भी भूदान में सम्मिलित हो जाओगे, मेरा काम भी होगा ) वायु सेवन होना चाहिये। मैं तो ऐसे ही कहता हूँ कि मनुष्य निकम्मा बहुत अनाज खाता है, यदि वह आकाश और वायु सेवन करे तो बहुत कम खोराक से वजन बढे विना बहुत दिनों तक जीवित रह सकेगा।

मनुष्य को पुष्फल पानी पीना चाहिये और फलाहार भी करना चाहिये। अनाज का अंश तो कम से कम होना चाहिये। इस से लम्बा समय तक काम करने के लिये, शक्ति, स्फूर्ति, बुद्धि और तेजस्वीता बनी रहेगी।

मांसाहार में वजन बढने का खूब ही भय है। अल्प ज्ञान में मांसाहार किया जाता है। अपने यहाँ पहले दूध का खूब ही महत्व था और होना भी चाहिये एवं रहेगा भी, क्योंकि मांसाहार छोड़ने के लिये दूध ही उपयोगी वस्तु है। दूध द्वारा बहुत से मांसाहारी दूधाहारी होगये है। इस लिये दूध का महत्व है।

पश्चिम देश में शाकाहारी होते हुये, दूध पीते हो ऐसा प्रश्न पूछा जाता है। वास्तविक दूधाहार शाकाहार नहीं है। हमलोग भी धिरे–धिरे दूध आहार को छोड कर शकाहारी बन जायेंगे। अतः मेरे मन में मांसाहार बढने से क्या होगा, ऐसी कोई चिन्ता नहीं है।

# पशुओं में अहिंसा धर्म

रोमन पुराण में कथा है कि रोम में एन्ड्रोकलीस नाम का एक वीर युवान था। रोमन साम्राज्य के अन्यायी कानून का विरोध करने से रोमन–राज्य–कर्मचारीवर्ग ने देशद्रोह का आरोप लगाकर न्यायालय में उपस्थित किया। उसके ऊपर मुकदमा चलाया गया। उस समय वहाँ का कानून यह था कि देश-द्रोही को देहान्त दण्ड दिया जाय। इस लिये यह वीर–युवक अपना प्राण वचाने के लिये रोम में से भाग गया। वाद में राज्यकर्मचारीवर्ग ने खोजने के लिये आकाश-पाताल एक किया, परन्तु वह हाथ में नहीं आया। वह वीर इस बात को जानता था, इस लिये उसने जंगल का आश्रय लिया।

सघन जंगल था। हिंसक पशुओं से भरपूर था। मनुष्य का वहाँ कदाचित प्रवेश होता होगा। ऐसे जंगल के एक गुफा में वह रहने लगा। भूख-दुःख से उसकी निद्रा उड गई थी। चिन्ता में मग्न था। उस समय वनराज सिंह, मनुष्य की गन्ध की परीक्षा कर वहाँ आया। सिंह को देखकर वह वीर डरने लगा जब उसने देखा कि सिंह अपने से कुछ मदद मांगने के लिये इच्छा प्रगट कर रहा है, तब उसको कुछ शान्ति मिली। बाद में सिंह आकर उसके पास में बैठ गया और पंजा को उसके हाथपर रखा। एन्ड्रो-कलीस को इस से हिम्मत आगई। चान्दनी रात थी। प्रकाश चमक रहा था। उस प्रकाश में सिंह के पंजा को देखने से मालूम हुआ कि बडाभारी कान्टा उसके पंजे में गड़ गया है। तब वीरयुवक ने दूसरे कान्टे के सहयोग से सिंह के पंजे में गडे हुये कान्टा को निकाल दिया, और अपना वस्त्र फाड़कर सिंह के पंजे में बान्ध दिया। वीर एन्ड्रो के इस कार्य से सिंह को खूब ही आनन्द हुआ। इस उपकार से वश होकर सिंह प्रत्येकरोज शिकार कर के ले आता था। वे दोनों मिलकर आनन्द से स्व स्व उदर की पूर्ति करते हुये मित्रभाव से उस जंगल में रहने लगे।

थोड़े दिनों के बाद एन्ड्रोकलीस, रोम के सैनिकों के द्वारा पकडा गया। उसके ऊपर न्यायल में काम चलाया गया, और देहान्त दण्ड की सजा हुई। रोमन सरकारने उसको सिंहद्वारा मारने के लिये आदेश दिया। अचानक दो तीन दिनके पहले एक सिंह पकडागया था, उसे भी भूखा रखा गया था। भुखे सिंह के सामने उसको लाकर सजा देने के लिये बैठाया गया। रोम की प्रजा इस शिक्षा को देखने के लिये भारी संख्या में एकत्र हुई थी। वह वही सिंह था जिस के हाथ में से एन्ड्रोकलीस कान्टा निकाला था। भूखा होने पर भी पूर्वकालीन मित्र को पहचान गया। बाद में सिंह आकर नमस्कार करके वीरयुवक के पैर को चाटने लगा। इस प्रकार की मित्रता को देखकर रोम की प्रजा-चकित हो गई। बाद में एन्ड्रोकलीस और उस सिंह को वहाँ की प्राजाओंने बन्धन से मुक्त कराया। इस प्रकार से सिंह जैसे भयंकर प्राणी भी, इस प्रसंग में अहिंसाधर्म पालन करता है।

जैन शास्त्रों में कथा है कि भगवान महावीर का शिष्य मेघनाथ जो त्रिबिसार का पुत्र था, वह पूर्वजन्म में हाथी था। एक समय जंगल में आग लग गई। जंगल के पशु–पक्षी बाहर निकल कर हाथी के पास में आगये, परन्तु हाथीने दयावश होकर, उन पशु–पक्षियों को अपने पास में रहने दिया। एक दिन हाथी के पैर में एक खंजवाल आगई, तब उसने अपने पैर को ऊँचा उठाया। इतने में एक मेढक उसके पैर के नीचे आगया। हाथीने उस मेढ़क को देखकर विचार किया कि यदि मै पैर नीचे रखूँ तो, गरीब मेढक मर जावेगा। इस प्रकार से हाथी दया वशहोकर तीन दिनों तक अपने पैर को ऊँचा रखने लगा। पीछे दावानल शान्त होने के बाद पशु–पक्षियों अपने–अपने स्थानों में चले गये। हाथी का पैर तीन दिनों तक ऊँचा रहने से अकड गया। दर्द के कारण हाथी वहाँ पर पड रहा। कुछ दिनों के बाद उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार की अहिंसा, शास्त्र और पुराणों में पशुओं की देखी गई है। यदि एक पशु अहिंसा धर्म पालता है तो मानवसमाज को चाहिये कि पशु से वह पीछे नहीं रहे। हमलोग यह देख रहे हैं कि अपनी सरकार अहिंसा के नाम से वन्दरों कोनिकालकर हिंसा कर रही है।

अधूरा में पूरा इस समय समाचार मिला कि सरकार मछलियों का आटा विदेश से मंगा रही है और प्रचार कर रही है कि इसमें काफी विटामीन है। इसका प्रचार खोराक प्रधान चुस्त अहिंसा वादी जैन अजितप्रसाद कर रहे हैं। इस कार्य से तो जैन समाज को खूब ही दुःख का अनुभव करना पडा है। सरकार और उसकी प्रजा कहाँ जा रही हैं कहाँ जावेंगी कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। हम, सब बन्धुओं से निवेदन करते हैं कि हिंसा को छोड अहिंसा का आचरण करो। इससे सब को सुख–शान्ति अवश्य ही मिलेगी, क्योंकि मानव समाज का अहिंसा ही परम धर्म है।

***

**अहिंसा परमो धर्मः**

**आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल मान्यवर श्रीभीमसेनसचारजी को विशाख जिले के बाढ़ पीडितों के दर्शनार्थ अनकापलि आने के प्रथम अवसर पर अनकापल्लि श्रीसुजन समाज रजिष्टर्ड की ओर से समर्पित।**

## अभिनन्दनपत्र

**श्रद्धेयास्पद महोदय,**

विशाख जिले के बाढ़ पीड़ितों के दर्शनार्थ हमारे प्रदेश के राज्यपाल पदवी के हैसियत से हमारे अनकापलि गांव में पैर रखने के प्रथम शुभ अवसर पर श्रीसुजन समाज के सदस्यों की ओर से हम आप का अत्यन्त आदर के साथ स्वागत करते हैं। आपने सरकारी तौर पर बाढ पीड़ितों को जो तत्कालीन सहायता पहुंचायी, इससे हम भलीभांति महसूस करते हैं कि आप के पवित्र हृदय में बाढपीडितों के प्रति कितना प्रेम और सहानुभूति है। आप मान मर्यादा के रक्षक, विद्या के दृढ स्तंभ, देश के सच्चे सपूत तथा जीवदया से ओत-प्रोत हृदय वाले है।

मानव रत्न! जीवप्रेमानुरागी,

आजकल सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश में यत्र-तत्र-सर्वत्र देवी देवताओं के नाम पर मन्दिरों और अन्य स्थानों में बेचारे मूक प्रणियों की निर्दयतापूर्वक बलि देने

की कुप्रथा प्रचलित है। इस अमानुषी भयङ्कर अत्याचार से देवता प्रसन्न होकर हमारी इच्छाएं पूरी करायेंगी; इसी भावना से मानवता के लिये घोर अभिशाप जीव जन्तुओं को वध करने पर तुले हुये है।

मान्यवर,

नूकालम्मा यात्रा में हर वर्ष हजारों के ऊपर बकरे-मुर्गे आदि निर्दोष जानवरों की बलि दी जा रही है। इस निर्दयतापूर्ण राक्षसी प्रवृत्ति को प्रदेश से एकदम मिटाने के वास्ते 'दिवर्डस ऐंड एनिमलस सेक्रिफिस प्रोहिबिसन एक्ट' १९५० (बिल न० ३२ आफ ५०) पास हुआ है जो अधूरा है और और समूचे आन्ध्र प्रदेश में उस विधयक को लागू न किया गया है। सन् १९५६ के हिन्दू रेलिजियस एण्डोमेण्टस एक्ट के ९ वीं सूत्र के अनुसार आमोदित हिन्दू मन्दिरों के आवरण तक ही बलि निषेध है। अन्य धर्म या मजहबों के त्योहारों में या उक्त, हिं.रे. ए. एक्ट के ९ सूत्र से असम्बद्ध मन्दिरों के सम्मुख की गई बलिदान और हिंसा के घोर अत्याचार का फल जिसे सारे परिवार को भोगना पड़ा।

## नर बलि करने के अपराध में सारे परिवार को फांसी की सजा।

तीन बच्चों के बलि देने की कसूर में उत्तर विशाख जिला कोत्तुरु पुलिसथाना के गणसर गांव के मुन्शिफ चेंगल रामचन्द्रावनायुडु, चेंगल कृष्णमूर्ति चेंगल वरहालु, चेंगलचित्रमुनायुडु, मज्जिनारायणम्म चेंगल रत्नालम्म। इन ६ व्यक्तियों को भारत दण्डनीति (वि) से मिले ३०२,२०१ निबन्ध के मुताबिक विशाखपत्रम् जिला प्रिन्सिपल सेशन्स जज श्रीएस०. ओबुलेरेडीजी ने दिनाङ्क १३-८-५९ को अपने फैसले में फांसी की सजा दे दी।

यह मर्मभेदी कांड इस प्रकार घटित हुई। चेंगल रामचन्द्रावनायुडु गलसर ग्रामाधिकारी हैं। कृष्णमूर्ति और चित्रमुनायुडु के बेटे और वरहालु उसके पत्नी और नारायणम्म उसकी बेटी तथा रत्नालम्मा उनकी बहु हैं। पहले तो यह परिवार बहुत गरीबी में था। कुछ,ही वर्षों में उसकी जायदाद बढी। परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में हिल मिल कर रहते है। हर मंगलवार को वर लक्ष्मी की पूजा करते आये,इसीकेफलस्वरूप जायदाद बढ़ी ऐसा वे सोचते थे। घर के अन्दर ही एक कोने में वर-लक्ष्मी की प्रतिमा रख कर जोरदार से पूजा करने लगे। उस गांव के सभी लोग यह जानते है। इस वर्ष पोंगल त्योहार के पूर्व चेंगल वरहालु को एक स्वप्न आया। स्वप्न में धनलक्ष्मी ने नरबलि की मांग की, अगर मांग पूरी न की तो तुम्हारा बेटा मर जायगा' ऐसा धमकाया। यह स्वप्न परिवार के सभी सदस्यों को भयान्वित कर डाला। जो कुछ भी हो परिवार के लोगोंने निर्णय किया कि नरबलि देकर धन-लक्ष्मी का प्यास बुझाना ही चाहिये। परिवार के सभी लोग मिल कर दिनाङ्क २७-१. ५९ से लेकर २४. २. ५९ के भीतर गणसर गांव में ५-६ साल के बीच उम्र वाले तीन बच्चों को अपने घर ले जाकर धनलक्ष्मी को बलि देकर उनके लाश इधर उधर के कुओं में फेंक दिये।

चीपुरुपल्लि स्पेशल पुलीस सब इनस्पेक्टर श्री जे० सूर्यनारायण, पार्वतीपुर के डिप्यूटी पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री जि० बि० तिरुपति और बियनगर पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री सि० जि० साल थाना-तीनों ने घटना की पुरी जांच की। उक्त दुर्घटना २० अगस्त के समाचार पत्र 'आन्ध्रपत्रिका में प्रकाशित होनेपर ज्ञात हुआ है।

इस बीसवीं शदी के सभ्यता में भी जहां पशु की बलि देना ही अवैध एवं घोर अत्याचार माना जाता है वहां अबोध शिशुओं को न्योछावर करने की इस दुर्घटना ने आन्ध्र प्रदेश के तमाम व्यक्तियों को चिन्ताग्रस्त कर डाला है। भगवान करें आगे ऐंसी घटना न घटे। ब्रह्मचारी पीला रामकृष्ण" नवल निराला को रोकने में हमें कानूनी सहायता प्राप्त नहीं हो-रहा है। अतएव आप से सविनय निवेदन करना-चाहते हैं कि उक्त, मद्रास जीवजन्तु बलि निषेध कानून में यह संशोधन कर सारे अन्ध्र प्रदेश में उसे लागू करने के लिये घोषणा करने की कृपा करें कि देवी देवता के नामपर किसी भी मन्दिर में या किसी भी स्थानपर किसी भी प्राणी का बलि न हो। इस कानून को अमल करने के लिये सरकारी कर्मचारियों को आदेश दें।

आन्ध्र विधान सभा में दि १-३-१९ ५६ को श्री पि० वेंकट सुब्बय्याजीं से प्रतिपादित " गाय और महिष वध निषेध विधेयक " जो अभी तक सेलक्ट कमिटी के परिशीलन में, पेंडिङ्ग में है, तुरन्त पास कर विश्वजननी गौ और महिष इनकी सन्तति के वधपर पूरी रोक (प्रतिवन्ध) लगाने पर ध्यान दें। देश की तरक्की, उस देश के निर्माणक किसानों के ऊपर है। किसान जब ज्यादा पैदाइश करेगा। तभी देश आगे बढ सकेगा। उस किसान को दिनरात एक सेवक के भांति काम करने वाले बैल आदि के वध निरन्तर होता रहे तो आखिर खेती की क्या दशा होगी? उपज कैसे बढ़ सकती। देश की भलाई चाहते हुए हम प्रार्थना करते है कि उक्त " दि कौस कन्डसी बफलोस स्लाटर प्रोहि बिशन बिल " को शीघ्र एक्ट के रूप में परिणत कर उसे तुरन्त समूचे प्रदेश में अमल करके हमारी पशु सम्पत्ति को सजीव रख।

**गाय मरा तो जिये कौन?**
**गाय जिये तो मरा कौन?**

लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु।

भवदीय :— ब्रह्मचारी पीला रामकृष्ण' नवल निराला
मानद मंत्री
श्रीसुजन समाज (रजिष्टर्ड) अनकापल्लि

## गोहत्या से धर्म और संस्कृति पर आघात

बेट (शंखद्वारा) द्वारका ५ जुलाई १९५९ ब्रह्मचारी श्रीयदुनाथजी भण्डारी की अध्यक्षता में भगवान श्रीद्वारकाधीश के मन्दिर के विशाल चौक में सार्वजनिक सभा हुई। सभा के प्रारम्भिक भाषण में श्रीलाभशंकरशास्त्री ने गौ की महिमा पर प्रकाश डालते हुये गोहत्या को भारत के माथे पर कलंक बताया। मुख्य भाषण के पश्चात् गोहत्या के पक्षपातियों से असहयोग करने तथा गोहत्यारी सरकार को वोट न देने का प्रस्ताव एक मत से पास हुआ। अध्यक्ष पद से बोलते हुए ब्रह्मचारी श्रीयदुनाथजी-महाराज ने बडे ओजस्वी शब्दों में कहा कि गोहत्या से हिन्दुधर्म तथा संस्कृति पर आघात है। आपने ज्यतिष के प्रमाण देते हुये प्रगट किया कि कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात वर्ष गोहत्यारी सरकार को समाप्त होने में लगेंगे। आपने गौप्रेमी जनता से प्रबल अनुरोध किया कि वह गोरक्षा के पवित्र कार्य में अधिक से अधिक सहयोग करके पुण्य के भागीदार बनें।
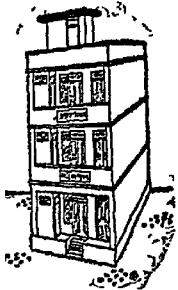
# हिंसाविरोधकसंघ

अहिंसा परमो धर्मः

दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणम्

## विनति-पत्र

**पर्वाधिराज पर्युषण पर्व में मूकप्राणियों को अभयदान देने के लिये पुष्कल धन की सहायता करो तथा कराओ।**

परमपूज्य १०८ श्रीआचार्यवृन्द ! पू. मुनिवृन्द ! तथा पू. श्रीसाध्वीजी श्रीमहासतीवृन्द ! एवं समस्त जैनधर्मावलम्बी धर्मपरायण नागरिकवृन्द !—

सेवा में निवेदन है कि अहमदाबाद का अपना यह हिंसाविरोधक संघ दश वर्षों से जीवदया के काम करते हुए साहित्य प्रचार द्वारा अहिंसा का प्रचार भारत भर में करता है। संघ की प्रवृत्ति निम्न-लिखित है।

### शिकारी पार्टियों को बन्द कराना

(१) अनाज का प्रश्न हल करने के लिये सरकार शिकारीपार्टियों को प्रत्येक जिले में भेजती है। वे लोग जाकर वान्दरा, हरिण, रोझ, भूण्ड आदि मूक–प्राणियों को मार डालते है। इस शिकारीपार्टी को रोक कर मूक–प्राणियों को अभयदान देना, यह कार्य हिंसाविरोधक संघ कर रहा है।

### पशुबली बन्द कराना

(२) धर्म के नाम पर अन्धश्रद्धालु जनता, (जैसे भील, कोली मुसलमान आदि) अपनी–अपनी मान्यता के कारण गामडाओं में जाकर पशुहिंसा करती है। इन लोगों को समझा बुझा कर अपना हिंसाविरोधक 'सघ' मूक–प्राणियों को अभयदान दिलाता है। चीखली, रूपाल, भोयण आदि गामडाओं की पशुबली हिंसाविरोधक संघ द्वारा बन्द हुई है। खमनोर (नाथद्वारा) रिंगस (फूलेरा) आदि ग्रामो में सघ के प्रचारक जाकर इस समय जीवदया का काम कर रहे हैं।

### मछलियों को बचाने की प्रवृत्ति

(३) नदी, नाला, तालावों में गरमी के समय मछलियों को बचाने के लिये यह संघ गामडओं में मदद भेजता है। जहाँ बोर्ड नहीं है वहाँ बोर्ड का निर्माण कराता। खेरालु के समीप कादरपुर चिमनबाई सरोवर में मछली पकड़ने की हराजी को, उस ग्राम के लोगों को समझा–बुझाकर बम्बई जीव दया कमेटी के साथ

मिलकर एवं अधिकारियों से पत्र व्यवहार करके इस संघने बन्द कर दिया है। चालु साल में गाम कणजरी में रु० १०१) और घोडासर में रु० ३०) भेजकर मछलियों को पानी पिलाने के लिये इस संघने व्यवस्था की थी।

## गोवध विरोधी आन्दोलन

(४) यह संघ बहुत दिनों से महागुजरात गोहत्य निरोध समिति के संचालन में पूरा सहयोग दे रहा है। अहमदाबाद में इसके प्रयत्न से गोवध बन्द हो गया है। सघने प्रत्येक पोल में (लता) सभा कर के गोपाष्टमी पर गोसप्ताह मनाया है। इस से आप लोग समझ गये होंगे कि यह संघ कितना उपयोगी है।

## "हिंसाविरोध" हिन्दी-गुजराती मासिकपत्र तथा साहित्य विभाग

(५)अहिंसा का प्रचार तथा जीवदया की प्रवृत्तियों को सजीवन रखने के लिये दस वर्षों से गुजराती तथा हिन्दी भाषा में दो मासिकपत्रो को चलता हुआ यह संघ हिंसा का विरोध भारत के प्रत्येक प्रान्त में करता है। इन दोनों मासिक पत्रों का वार्षिक मूल्य केवल रु० १॥) है। इस लिये समस्त अहिंसा प्रेमी भाई-बहनों से नम्रनिवेदन है कि इन दोनों मासिक पत्रों का ग्राहक बन कर इस संघ को सहायता प्रदान करें।

संघद्वारा समय-समय पर छोटी छोटी पुस्तिकाएँ, पम्पलेट, लीफलेट इत्यादि छाप कर अहिंसा का प्रचार चालु है। छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ खूब ही कम किमत में दी जाती हैं। पडतर से भी कम किमत में प्रचार के लिये अहिंसाप्रेमी सज्जनों को दी जाती है। पुस्तिकाओं के नाम निम्न लिखित हैं।

(१) चामडानी करुण कहानी।

(२) हिंसक दवाओ अने डॉक्टर।

(३) वनस्पत्याहार अने मांसाहार।

(४) सन्तफान्सीसनु जीवन झरमर

(५) प्राणी दुःख दर्शन।

### कुत्तराओं के लिये अभयदान और श्वानरक्षागृह

(६) पाँच एक वर्ष पहले अहमदाबाद म्यु.ने कुत्तराओं को मारने के लिये दूध में जहर देने की योजना बनाई थी, परन्तु इस संघने उसका सामना करके उसकी योजना को व्यर्थ कर दिया। हजारों कुतराओं को जीवनदान देकर आश्रयस्थान स्थापना करके अभयदान दिया है। इतना हो नहीं बहुतो से ग्रामों में रोटला का प्रबन्ध करके उनका दुःख दूर किया है। इन्दोर, खम्भात, साबरमती आदि श्वानगृहों में संघ की तरफ

से पैसा दिया गया है और श्वानों के लिये दवाई का प्रबन्ध भी किया गया है। इस प्रकार से प्रतिवर्ष संघ की तरफ से मूक प्राणियों के लिये कुछ न कुछ व्यवस्था की जाती है।

## जीवदया

(७) धार्मिक प्रसंग पर्युषण पर्व में कसाइयों से जानवरों को मुक्त करके पांजरा पोल में उनकी व्यवस्था इस संस्था के द्वारा की गई है। सन्त फ्रान्सीस के जन्मदिन और बकरीइद के दिन उपाश्रय में से टीप करके रु. ७५७–५० व्यय करके बहुतों से मूक–प्राणियों की जीवनरक्षा इस संघद्वारा हुई है। जीवों के ऊपर दया करना इस संघ का प्रथम धर्म है।

## अहिंसा–भवन

(८) इस संघ को सर्वदा जीवित रखने के लिये तथा अहिंसा के प्रचार के लिये नगरशेठवण्डा-अहमदावाद में अहिंसा–भवन बनाया गया है। लग-भग उसमें रु. ३५) हजार खर्च हुआ है। अब करीब दश हजार, भवन के फण्ड के लिये खूट ( कमपड ) रहा है। अपनी इच्छा से जो सज्जन इस भवन के फण्ड में रु. १०१) देंगे, उनका नाम यादगिरी के लिये तकती में लिखा जावेगा। इस लिये जिस महानुभाव की इच्छा हो, वह अपना नाम लिखाने के लिये अहिंसा–भवन कार्यालय में पत्र द्वारा सूचना करे।

इस संघ की प्रवृत्तियाँ चलाने के लिये, (जैसे कि ऑफिस स्टाफ, साहित्य खर्च, प्रचार खर्च, सम्मेलन खर्च, प्रवास तथा जीवदया इत्यादि) मदद की जरूरत सर्वदा रहती है। इस संघ के पास कोई मोटा फण्ड नहीं है। अतः जीवदया प्रेमी भाइयो, जैन संघ के ट्रस्टी और वहीवटदार सज्जनों के पास नम्र विनति है कि यह पवित्र पर्युषण पर्व में जीवदया के टीप में से इस संघ को पूरी रकम भेजने की अवश्य कृपा करें, ऐसी नम्र विनति है।

| कार्यालय | ली. सेवक |
|---|---|
| हिंसाविरोधक संघ | घालाभाई गिरधरलाल शाह |
| अहिंसाभवन | चीमनलाल के० कडीया |
| नगरशेठ का वण्डा | मानद मन्त्री हिंसाविरोध संघ |
| अहमदावाद | अहमदावाद |

# गोपूजन

बोरी गांव (डाक से) २० जुलाई १९५९ गुरु पूर्णिमा के दिन यहां "स्वदेश रक्षक गोसेवा रक्षा यज्ञ" द्वारा गोरक्षिणी पताका का पूजन गोभक्त सेठ श्रीगोवर्धनलालजी द्वारा बडे उत्साह के साथ हुआ और गोपूजन का कार्य गोप्रेमी सेठ कान्तिलालजी के कर कमलों से हुआ। कई गांव के भील तड़वी लोगों ने प्रेम के साथ गोपूजन किया और गाय बैल न मारने की प्रतिज्ञा की।

गोलोक तिर्थ व यज्ञ के आचार्य प्रबन्धक पूज्य स्वामी ज्ञानानन्दजी ने गाय को भारत की शक्ति बतलाते हुये यह सिद्ध किया कि गोहत्या के पाप से भारत में अन्न की महंगाई हो रही है। सरकार को चाहिये कि गोहत्या रूपी पाप को त्याग दे। समाज का कर्तव्य है कि वह पूर्ण रूप से संगठित हो कर अपने कर्तव्य के बल से सरकार को बतला दे कि गाय के रक्षकों की है न कि भक्षकों की। पूज्य स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में साफ साफ बतलाया कि यदि समाज व सरकार ने गोहत्या को मिटा कर और सेवा रक्षा का भार अपने सिर पर न लिया तो देश तबाह हो जायेगा। आज तो सरकार व समाज से पूछने की जरूरत है कि परोपकारी गोवंश किस अपराध से मिटाया जा रहा है?

यज्ञ रक्षक समिति के अध्यक्ष श्रीसेठराजमलजी जैन ने अपने भाषण में श्रीसेठ गोवर्धनलालजी के प्रति आभार प्रकट करते हुए बोरी गांव में जो पूज्य स्वामी ज्ञानानन्दजी द्वारा जो यह यज्ञ प्रारम्भ हुआ है उसके रूप का सुन्दर चित्र खींचा। सेठजी ने अपने भाषण में स्वामीजी के व्यवहरों की प्रशंसा करते हुए बतलाया कि स्वामीजी के प्रभावशाली भाषण और यज्ञ के प्रभाव के परिणाम से कई हजार भीलों ने गोवंश की हत्या न करने की प्रतिज्ञा लेते हुए गोपूजन में भाग लिया।

श्रीसेठ मोहनलालजी जैन मंत्री गोसेवा रक्षक यज्ञ ने समिति के कार्य की अब तक की रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। और भारत सरकार ने मास के लिये दस हजार गोवंश पाकिस्तान को देने के लिये स्वीकृति दी है उस का घोर विरोध किया। भारत सरकार की यह नीति उस के धर्म निरपेक्षता को कलंकित किये बिना न रहेगी। भारत सरकार गायों के प्रति हिंसा का व्यवहार करके गोभक्तों को मार्मिक चोट पहुंचा रही है। आदिवासी लोग, खेती की बिजाई का कार्य होते हुए भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए।

पं. मोहनलालजी ने प्रधानपद से बोलते हुए गोमहात्म पर अच्छा प्रकाश डाला। प्रीतिभोज के बाद यह कार्य आरती के पश्चात् समाप्त हुआ। श्रीमोहनलाल पटवारी श्रीगोपालदासजी, श्रीमाधवजी, श्रीसमरथमल जैन, श्रीरिसभनन्दजी जैन आदि स्वयंसेवकों का कार्य सराहनीय रहा। गोभक्त डाक्टर गणपति-दासजी उपस्थित न हो सके, इसका सभी को अफसोस रहा।

---

## सूचना

**वैद्य अमरचन्द जैन छूटे होगये हैं।**

हिंसाविरोधक संघ से अमरचन्द जैन हिसाब किताब के साथ राजिखुशी से छूटे हो गये है। उनके विरोध में हम को कुछ भी कहना नहीं है।

लि० हिं० स० मन्त्री

---

# हिंसा विरोध पत्रनो वधारो

## सने १९५८ सालनी भेट मदद्नी यादी

### जनवरी

५) शेठ नहालचंद हीराचद अमदावाद
११) सभवनाथ जैन कमीटी हा. सरेमल झवेरचद स्टे : मोरी (राजस्थान) बेडा
११) अरविंद वीवींग वर्कस अमदाबाद
२) शा. शांतीलाल ए. शाह अमदाबाद
१०१) स्थानकवासी जैन सघ, हा. चदुलाल चुनीलाल पूर्व खानदेश, पांचोरा
२) जनता स्टोर धरणगांव

### फरवरी

३) चोकसी माधवलाल मगनलाल, अमदावाद
४) शा. अमीचंद रायचंद ,,
३॥) शेठ भुरचंद केशरीमल, ,,
३) शेठ मीखाजी परतापजी, ,,
११) शेठ रतीलाल सौभाग्यचद ,,
१२५) शा वेलसीभाई पुंजाभाई तरफथी हा. शांतीलाल मोहनलाल, पो. जासपुर, ता. कलोल, साबासपुरा
३॥) शेठ गणेशमल हस्तीमल, अहमदावाद
२॥) शेठ तलकचद ककलभाई अमदावाद
२) शेठ मनसुखलाल माणेकचंद ,,
२) पादशाह ब्रधर्स ,,
२) शेठ मोहनलाल मावजी ,,
९॥) वालचद मनसुखराम ,,

### मार्च

५) हेमकोरबेन हा. सवीताबेन, अहमदावाद
५) शेठ मणीलाल नगीनदास, ,,
५॥) चन्दुलाल मुलजीभाइ राठोड, वाव
११) शेठ मतीलाल मोतीलाल, अहमदाबाद
११) शा. माणेकलाल चदुलाल, अहमदाबाद

### अप्रैल

५) कमलाबेन हरजीवनदास, मुबइ
२) मुलजी चत्रभुज वोरा, जलगांव
७) शेठ रतनसी विरम, पाचोरा
९॥) शा. चंदुलाल गीरधरलाल मोदी, पांचोरा
७) चपालाल वृद्धिचदजी एन्ड क्रु. ,,
१२॥) श्री पांचोरा श्रावीका समाज तरफथी, पांचोरा
७) सौभाग्यमलजी कनैयालालजी जैन, बेटावद
२) मानमलजी चम्पालालजी जैन, ,,
१०) घेलाभाई नानजीभाई मीठाइवाला, जलगांव
१०) नारणदास मोहनलाल, ,,
१०१) श्री जैन सघ पांचोरा, पांचोरा
७) शेठ नेमीचद मीश्रीलालजी कोठारी, अमलनेर
७) रुईआ ओइलमील, ,,
७) पुनमचन्द मुलचन्द ,,
१९॥) वेस्ट ईन्डीया वेजी टेवल प्रोडकशन, ,,
७) मेघराज खुशालचन्द टोडरमल, चालीसगाम
१५॥) शेठ कुदनमल पुखराज लुकड, बेंगलोर
७) सेठ पासुभाइ शीवजीभाई, अमलनेर
७) शेठ पन्नालाल लक्ष्मणदास ,,
२५) शेठ गांडालाल भीखालाल, ,,
७) शेठ भोगीलाल हीरालाल ,,
७) सेठ त्र्यंबकलाल अमुलखचन्द, ,,
७) शेठ नटवरलाल हीरालाल, ,,
७) शेठ न्यालचंद देवचंद, ,,
७) शेठ पोपटलाल छोवलाल, ,,
७) शेठ वकोरदास चतुरभाइ ,,
७) शा. खेतमलजी हजारीमलजी कोठारी ,,
१५) ए. मुलचन्द पारेख, त्रीचीनापल्ली
११) शाह मावजी मेघजी भाइ प्रेमजीना शुभ लग्न प्रसंगे, संघवा
३॥) शा. प्रेमजी डुगरजी, चोपडा

२॥) शाह लीलाधर कानजीभाइ, कच्छ
११) गोवर्धनदास भीखारीदास, चोपडा
११) आसकरण ताराचन्दजी, चोपडा
१५) शाह उमरसी मालसी, ,,
२०) राणीदानजी ताराचन्दजी, ,,
११) चुनीलालजी कीशनलालजी जैन, ,,
२७ शा नेमीचंद सुखलालजी, ,,
११ शाह नथमलजी माणेकलाल, ,,
१० शा. नरोत्तमदास भगवानदास, मुंबइ २
५ शाह ओंकारमलजी पुनमचन्दजी जैन, पाचोरा
३॥. शेठ गणेशमल चुनीलाल, अमदावाद
२५ शेठ चुनीलाल काळीदास, ,,
१७॥ दशा श्रीमाळी स्था. जैन संघ, भावनगर
३॥) शेठ जीवराज लालचन्द, साणंद
५॥ गांधी जीवणलाल माणेकलाल ,,
५। बुधालाल ठाकरसी, ,,
३॥ महेता बुधालाल जीनदास, ,,
९॥ मणीलाल झवेरचन्द वेरावलवाला, राजकोट
९॥ शेठ उगमराज शांतीलाल, साबरमती

## मे

१५ केशवलाल गीरधरलाल, अमदावाद
१५ श्रीकमलाल जे. देसाई, ,,
५१ एन दलीचद C/O ब्रीटीश बरोडा ट्रेडींग कु. मुबइ २

## जून

११) शेठ भुराभाई नागरदास, साबरमती
५) महुडी जैन श्वे. कारखाना मुनीम पुनमचन्द प्रभुदास, महुडी
१५) भावनगर दशा स्थानकवासी जैन संघ, भावनगर
११) महावीर स्टोर्स, अमदावाद
३॥) मोत्री नारणभाई रणछोडभाई, ,,
१०) मुलचद मगनलाल महेता, ,,

## अगस्त

५) मेघजी घेलाभाइ, गोंदीया
१५) वैद कृपाशंकर शकरलाल डाक्टर, वीणा
५) श्रीकमलाल उगरचन्द वकील, अमदाबाद
५) चीनुभाइ वाडीलाल, ,,
५) शेठ चमनलाल मगनलाल, ,,
५) शेठ शांतिलाल छोटालाल ,,
२) शेठ लालभाई सोमचंद ,,
२) शेठ नटवरलाल मणीलाल सुरती ,,
५ नागरदास हठीसींग, ,,
१ शारदाबेन मनुभाई घेलाभाई, ,,
५ शेठ जयंतिलाल मणीलाल ,,
२) शेठ मगलदास वेचरदास, ,,
२ शेठ नगीनदास मुलचद, ,,
२ शेठ जयंतिलाल काळीदास, ,,
२ शेठ अमृतलाल केशवलाल ,,
२) शेठ चमनलाल महासुखराम, ,,
२) शेठ चीनुभाई हीमतलाल, ,,
३) लालभाइ हीमतलाल, ,,
५ शेठ मणीलाल नानचंद, ,,
११ रतीलाल चुनीलाल सोलंकी, साबरमती
११ हरीलाल जेठालाल, ,,
११ प्रेमचन्द माणेकचन्द, ,,
११ मनसुखभाइ जगजीवनदास गोसलीया ,,
१२५. साबरमती स्थानकवासी जैनसघ, ,,
५ शेठ मोतीलाल मणीलाल, कलोल
११ वकील न्यालचन्दभाई वीरचन्द, ,,
५ शेठ चमनलाल छोटालाल, ,,
५ शेठ वाडीलाल परसोत्तमदास, ,,
१५ शेठ नागरदास केशवलाल, ,,
५ नाथालाल छगनलाल, ,,
५ रतीलाल हकमचन्द, ,,
१५ शेठ आत्माराम मोहनलाल, ,,
५ शेठ मंगलदास केशवलाल, ,,

५ शेठ चीमनलाल जेसींगभाई, ,,
५ शेठ मोहनलाल कस्तुरचन्द, ,,
५ शेठ मोहनलाल शोभाराम, ,,
५ शेठ मधुकांत हींमतलाल, ,,
५ शेठ चमनलाल शामळदास, ,,
२० काळीदास मगनलाल घडीयाळी, ,,
५ शेठ रतीलाल नाथालाल, ,,
११ शेठ छगनलाल परसोत्तमदास केवळदास ,,
१० घेलाभाइ प्राणलाल, ,,
१० शेठ वनमालीदास लल्लुभाइ, ,,
१० प्रांतीज स्था जैन सघ, हा. अंबालाल महासुखराम, प्रांतीज
५ शेठ मलुकचन्द झवेरचंद महेता, मुंबई
५ नरसींहलाल लल्लुभाइ शेठ, अमदावाद
५ शाह मीठालाल चालाभाइ, ,,
२१ हीरालाल वाडीलाल, ,,

सप्टेम्बर

१० जामनगर स्थानकवासी जैन संघ, जामनगर
५ स्थानकवासी जैन सघ, हा. भवानभाई खेतसीभाई ध्रोल
२५ श्री छकोटी जैन सघ गुंदाला, हा. रामजी तेजाभाइ, गुदाला
१० नामचन्द शांतिदास स्था. जैन संघ, C/o मीखाभाई, साणंद
३१ शेठ खुशालदास ओधवदास, अमदावाद
१० गांधी हीरांचन्द नथुभाई, ध्रोल
१५ दोशी वाबुलाल भाईचन्द, ध्रोल
३॥ शेठ मंगळदास कस्तुरचन्द, अमदावाद
३॥ भाईश्री हरगोवन काका, राजकोट
१५ स्थानकवासी जैन सघ हा. भालसागर प्रीकमभाइ, पाणसीणा
१० स्थानकवासी मोटा उपाश्रय जैन संघ, लींबडी
२ श्रीवर्धमान स्थानकवासी श्रावकसघ, राजाजी काकेरका

११ चंपकलाल घेलाभाई, अमदावाद
११ शा. कांतीलाल पोपटलाल, ,,
१५ कांताबेन भोगीलाल, ,,
११ सवीताबेन भोगीलाल, ,,
५ शा. त्रंबकलाल अमरतलाल, ,,
२२ मणीलाल वोघाभाई, ,,
५१ अमृतलाल वर्धमानभाई, ,,
११ लक्ष्मीबेन अमृतलाल महेता, पालनपुर
५ महेता राजकरण केवळभाइ, ,,
५ धनीबेन कोदरभाइ, ,,
५ ताराबेन C/o आर. के. महेता ,,
११ केसरबेन C/o कुंवरजी छोटालाल, ,,
७ चंन्दनबेन कचराभाई झवेरी, ,,
५ ताराबेन C/o रसीकभाइ चीमनलाल चौधरी, ,,
५ एक सदगृहस्थ तरफथी, खेडा
२ भावसार गांडालाल गोरधनलाल, खेडा
२ शा. बाबुलाल वीरचन्द, ,,
११ मदनलाल कालीदास, सेक्रेटरी श्री वर्धमान जैन श्रावक संघ, कीशनगढ–मदनगज
११ श्री स्थानकवासी जैन सघ खभात, सघवी तलकचन्द मथुरदास, खभात
२१ जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, सिद्धपुर
१० वी. झेड फेमीलीट्रस्ट C/o बाबालाल एन्ड कं. मद्रास ३
१५ श्री स्थानकवासी जैन संघ समस्त, सुरेन्द्रनगर
१० श्री धानेरा तपगच्छ जैन सघ समस्त, धानेरा
५ श्री लाघणज जैनसघ समस्त, लाघणज
५ आमोद जैन सघ समस्त; शा. रतीलाल छगनलाल आमोद
५ शीवनाथ मलीनाथ, जोधपुर
५) राजपींपळा जैनसघ शाह खेमचन्द नाथाभाइ राजपींपळा
१० नोंधणवदर जैनसघ, नोंघणवदर

३ स्नाकवासी जैनसंघ धोलका, C/o सांकळचन्द खुशालचन्द शाह, धोलका
२० श्री जैन संघ तरफथी शा. हरखचन्द हंसराज, बहुधान
१० समी जैन संघ समस्त हा. देवसीभाइ भुधरभाइ, समी
११ स्थानकवासी जैनसंघ C/o शा ठाकरसी करसनजी, थानगढ़
१० सरदारमलजी हंसराजजी C/o धर्मशाळा, आहोर
७ वजेचन्द चुनीलाल शाह, वगवाडा उदवाडा
१० श्री जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ, सीहोर

**ओक्टोम्बर**

५ श्री शीनोर जैन संघ समस्त, शीनोर
२० शेठ मोहनलाल डुंगरलाल, सीकन्द्राबाद
११ श्री आदरीआणा जैन श्वेतांबर संघ, शेठ वर्धमान इच्छाचन्द संघवी, आदरीआणा
५ जैन संघ समस्त शाह चुनीलाल रायचन्द, भरुच
२५ श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक, संघ तिवरी
१० पार्श्वनाथजी महाराज जैन देरासरजी, मुंबइ
१० श्री ईडर जैन श्वेताम्बर संघ C/o आणदजी मंगलजीनी पेढ़ी, ईडर
५१) छीपापोळ आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय, शाह केशवलाल नरसींहदास, अमदावाद
५ शेठ कचराभाइ रायचन्द, कुकरवाडा
५ सुगनचन्द सरावगी जैन, सुजानगढ़
११ श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक संघ, नडीआद
१५ पारसमल खजान्चि, नागोर
१० पार्श्वनाथ भगवाननी पेढी, नवसारी
२५ शेठ चुनीलाल मोतीचन्द, पालेज
३३) श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक संघ, बडनगर
११ श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, ,,
५० वीरमगाम दशा दरी आपुरी स्था जैन संघ वीरमगाम
५) श्री गंभीरा जैन संघ, गंभीरा

१५ श्री शांताकुझ जैन तपगच्छ संघ, वंबई
५ श्री मोटा अगीआ जैन संघ हा. मेता वाडीलाल टोकरसी, मोटाअगीआ
१० श्री राजकावाडा जैन उपाश्रय, पाटण
५१ श्री छाणी जैन संघ, छाणी
११ शेठ जगजीवन अमरसी C/o हठीसींग भुराभाई, सायला
२० श्री राजपुर जैन संघ हा. सादडा चीमनलाल राजपुर डीसा
२५ चाणस्मा जैन संघ हा. मंगलदास कालीदास मणीआर, चाणस्मा
१५ श्री दरीआपुरी जैन संघ हा. मदनलाल चन्दुलाल सुरत
१० श्री जैन संघ सावरकुंडला हा. दलीचन्द रायचन्द काटांवाला, सावरकुंडला
३० शेठ धुकलचन्द रुपचन्द, औरंगाबाद
११ श्री तपगच्छ अमर जैन शाळा शेठ रमणलाल दलसुखभाई, खंभात
५१ श्री ठाकोरद्वार जैन श्वे मूर्तिपूजक संघ, मुंबइ
२० पी रतनलाल एन्ड सन्स बेन्कर्स, कुनुर
१० श्री जैन संग समस्त, झींझुवाडा
६) श्री हरीपुरा जैन संघ हा. गमनलाल लल्लुभाई, सुरत
१०) श्री तलाजा जैन संघ, तलाजा
१०) श्री जैन श्वे संघ, वांकली
७) श्री मासर जैन संघ समस्त हा. कांतीलाल हीराचन्द, मासररोड
१५) मयाचन्द मोहनलाल डाक्टर, कलोल
१०) शेठ वाडीलाल केशवलाल, ,,
१०) शेठ चीमनलाल मोहनलाल, ,,
५) प्रेमचन्द छगनलाल शेठ, ,,
५) शेठ छोटालाल डोसाभाइ, ,,
५) शा. रामचन्द रणछोडभाइ ,,

५) कस्तुरचंद जमनादास, ,,
५) शेठ जीवणलाल भगनलाल, ,,
५ शेठ गोपालदास उगरचंद, ,,
१० शेठ. रतनचंद गुलाबचंद जैन उपाश्रय, अमदावाद
२० श्री जैन संघ कम्बोइ C/o जीवाचंद मीखाचंद कम्बोइ
५) शेठ धनराजजी वागचालजी, भीलवाड़ा
२० डीसा जैन श्वे. मूर्ति पूजक संघ C/o पुनमचंद सी शाह, डीसा
२५ श्री जैनसंघ समस्त, उदेपुर
३॥।= श्री हरीपुरा जैन संघ, C/o मदनलाल चन्दुलाल सुरत
७ टींटोइ जैन सघ, टींटोइ
२५ श्री स्था. ,, C/o हीरालाल चन्दनमल लोढ़ा, औरंगाबाद
२५ श्री छकोटी स्था जैनसंघ सेवक आर के. डाकटर लाकडीआ
५० भोगीलाल नरोत्तम-शाह C/o शेठ आणंदजी कल्याणजीनी पेढी, सुरेन्द्रनगर
२ बुधसिंहजी हीराचंदजी वैद्य, जयपुर
१० श्री जैनसघ वीसनगर हा. करशनलाल मोहनलाल शाह, वीसनगर
२५ रतनचंद नवलचंद झवेरीनी कुं. सुरत
५० मास्तर मगलचन्द सुखाभाइ, अजमेर
५ वड़ावजार वोर्ड नं. ३, उदेपुर
२२) मन्त्री बालाभाइ गीरधरलाल, अमदावाद
११) प्रांतीज निवासी मंडळ, शेठ गोरधनदास चन्दुलाल अमदावाद
२४॥= साध्वीजी श्री महेन्द्रजी, नाडोल
५) श्री जैनसघ, C/o शेठ भगुभाइ मोहनलाल,
५१ शेठ मुलचंद त्रीभोवनदास, अमदावाद

## नवेम्बर

११ श्री रतनपोळ कापड महाजन, ,,
२०) मुनीम गेनमल, श्रोपचमहाजनमालवाडा, माल

५१ मुवईथी परचुरण मेट, हा. बालकृष्ण ओझा,
२१ श्री सभवनाथ जैन श्वे. पेढी, बेडा
२० श्री भाभर जैन सघ तरफथी हा. पानाचन्द छुआभाइ, भाभर
५ भवानी गुलराज एन्ड सन्स, जोधपुर
५ श्री मांडल जैन छकोटी सघ C/o सघवी गमनलाल पोपटलाल, मांडल
११ श्री जैन सघ C/o शाह मोहनलाल झवेरचन्द एन्ड कुां. मायसोर
५ आणद जैन सघ, आणंद
५० कोडाय कच्छ जैन महाजन शाह रवजी खेराज कोडाय
२५ श्री घाटकोपर जैन श्वे मूर्तिपूजक तपगच्छ संघ, घाटकोपर
२५ शेठ बन्सीलाल कोचर, हिंगनघाट
१० शेठ मेघजी घेलाभाइ, गोंदीया
१० सीरोही जैन सघ समस्त, सीरोही
५ चुनीलाल भाइचन्द शाह, कोल्हापुर
२१। शा. कालीदास मुलचन्द, अमदावाद
५। सैयदखांन पठाण, ,,
२। पटेल कानजीभाइ अंबाराम, ,,
५। लखवारा गलबाजी दलाजी, ,,
५। भासंगभाइ जेसींगभाई, ,,
५। वाघरी बवाभाइ अजमाभाइ, ,,
५। मोदी लल्लुभाइ ववलदास, ,,
५। महावीरप्रसाद भोळानाथ, ,,
५। शेठ मुरारीलाल इदराज, ,,
७। सुलाखीदास एन्ड सरदारनी कुा हा. मनसुखलाल एक प्रति ,,
५। शे...

वार्षिक शुल्क दे

[illegible] (decorative banner)

३। पटेल खोडीदास अंबालाल, ,,
२। शेठ छोगालाल मेलापचन्द, ,,
११ श्री स्थानकवासी जैन संघ, सतना
५० मेसर्स लालचन्द उदेचन्द, वीनौली
५ श्री वडाली महाजन, चुनीलाल लल्लुभाइ भंडारी वडाली
२१ शेठ धारसीभाइ पारसवीर, थानगढ़
१० गांधी गुलाबचन्द उजमसी जैन, ,,
५ त्रीभोवन प्रेमचन्द शेठ, ,,
५ कालीदास केवलचन्द जैन, ,,
१० ठाकरसी करसनजी जैन, ,,
१० शेठ वाडीलाल धनजी जैन, ,,
५ शेठ छबीलदास मगनलाल जैन, ,,
५ शेठ तेजपाल वागजी जैन, ,,
२ शेठ चतुरभाइ जेठाभाइ, ,,
२ शेठ माधवजी छगनलाल जैन, ,,
२ मणीलाल कसलचन्द जैन, ,,
१२ जेठालाल त्रीभोवनदास, ,,
५ दोशी पानाचन्द हरजीवनदास, ,,
७ कोठारी वागजी बेचरदास जैन, ,,
५ छोटालाल देवसीभाइ शेठ, ,,
२५ शाह माणेकलाल पोपटलाल, ,,
५ दरजी खीमजी भीखाभाइ, ,,
५ हरजीवन छगनलाल, ,,
२५ श्री जैन श्वे. संघ, C/O फुलचन्द मदनराज, राजमहेन्द्री
५० नेमीनाथ महाराज जैन टेम्पल, मुंबइ
७ सोमचन्द लखमीचन्द संघवी, खेडगाम
५ सीपोर जैन पांजरापोळ, सीपोर
२५ शेठ खोडीदासलाल मा..., धधुका
२५ मदद ... जैन श्वेताम्बर मूर्ति पू...बाद
११ श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, ,,
५० वीरमगाम दशा दरीआपुरी स्था जैन संघ वीरमगाम
५) श्री गंभीरा जैन संघ, गंभीरा

३ शांतिभुवन उपाश्रय, C/O मणीलाल मोहनलाल जामनगर
११ शेठ छकडलाल मगनलाल, अमदावाद
११ वर्धमान स्थानकवासी जैनश्रावक संघ, बिलाडा

## डिसेम्बर

११ शेठ बाबुलाल हीरालाल, बीयावर
५ श्री जैन संघ समस्त सुमेरपुर
२५ श्री जैनमुरती पुजक तपगच्छ संघ, नागपुर नं. २
६० पंचमाईनी पोळनी बहेनो तरफथी अमदावाद इ. कान्ताबेन
२५ श्री वडाला जैन संघ C/O छगन भाणजी मुबई ३१
११ हाजी अलावक्ष हलवावाळा अमदावाद
११ शा. बळवतराय झवेरीलाल, ,,
२१ शेठ शान्तीलाल चूनलाल, ,,
११ शेठ परसोत्तमदास त्रीकमलाल, ,,
५ मंगुबहेन ,,
२० पीज स्थानकवासी जैन संघ पीज
५ अवलाजी हेमाजी दरजी, अमदावाद
५ शाह पोपटलाल नागरदास, ,,
२ स्थानकवासी जैनश्रावक संघ प्रतापनगर
२ हरसुख हरखचन्द जैन, राजकोट C/O शांतिलाल एन्ड कु.
३॥ शेठ मांगीलाल भवरलाल, ,,
२ शेठ केसुभाई उजमसी कोठारी, ,,
२ शेठ जगजीवन धुंआभाई कोठारी. ,,
२ शांतिलाल रेवाशकर, ,,
२५ जोटाणा जैन श्वेतांबर मूर्तिपुजक संघ, जोटाणा
५ शेठ गुलाबचन्द छोटालाल, अमदावाद
११ शाहपुर दोलतना खाचाना श्रावक संघ तरफथी ,,
५ मणीबहेन भलाभाई छगनलालनी विधवा ,,
३२॥।) परचुरण मदद

५११०/९९

# हिंसा विरोधक संघ, १९५८ आवक जावक का सरवैया

| जमा आवक | | उधार जावक | |
|---|---|---|---|
| ५३६०/९९ | भेट मदद | २८३२/— | पगार |
| २९७/२६ | व्याज | ५१७/१० | प्रचार |
| २६/५० | धर्मादा | ६५/३ | परचुरण |
| २६/७५ | पस्ति वेचाण | ९५/७ | स्टेशनरी |
| ८/५० | रायशी मोणशी | १३/४४ | मासिक कमीशन |
| ५४/७५ | सभ्य फी | २१७/९९ | टपाल |
| ८६५/७५ | गुजराती मासिक | ७८/९४ | सायकल रीपेर |
| २९६/— | हिन्दी „ | २/२५ | बेंक कमीशन |
| ६९६७/५० | | १४/५० | जाहेर खबर |
| ४२९/९२ | नुकशान | ३००/— | मकान भाडुं |
| ७३९७/४१ | | ४९/३४ | घालखाद. (भांडीवाडा) |
| | | १८३९/६९ | गुजराती मासिक |
| | | ९६२/६८ | हिन्दी मासिक |
| | | ७३९७/४२ | |
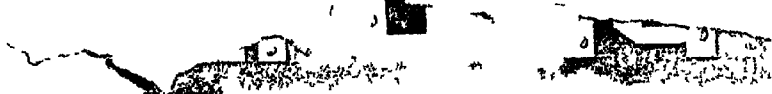
…ादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये …
वार्षिक शुल्क …

प्रकाशक : वालाभाई गि…
मुद्रक : वैद्यराज स्वा…

## पुराने ग्राहकों से एक आवश्यक अनुरोध

" हिंसा विरोध " पत्र के पुराने ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो गया है। अतएव जीवदया तथा अहिंसा के प्रेमी भाई-बहनों से हमारा हार्दिक अनुरोध है कि इस अंक को पाते ही वे अपना शुल्क रु० १॥ शीघ्र मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें और अपने मित्रों को भी ग्राहक बनाकर सहयोग प्रदान करें। दयालु पाठकों से भी सादर प्रार्थना है कि गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया प्रचार के कार्यमें भेट मदद भेजकर पुण्य तथा यश के भागी बनें।

### जीवों की पुकार

कहती मछली मैं जलप्राणी स्वच्छ बनाती हूँ नितनीर।
बिना दोष धीवर सहारे मुझे बचाओ, हे नरवीर ! ॥

गौ कहती चिल्ला चिल्ला कर मुझको कहते जगकी मात।
माता कहकर पूज रहे हो तो भी करते मेरी घात ॥
मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में सहाय करते दिनरात।
वधस्थान में मारी जाती मुझे बचाओ, मेरे तात ! ॥

कुत्ता कहता पहरा देता निजस्वामी का खाकर अन्न।
विष देकर यह क्रूर घातकी मुझको करता है अवसन्न ॥

मैं मैं कहकर बकरी कहती मैं हूँ दीन दुखी अत्यन्त।
देवी के बलि हित, हा ! मेरे प्राणों को क्यों करते अन्त ॥
ईद के दिन में मानव करते लाखों जानों की कुर्बान।
धर्मनाम पर कर के हिंसा मान रहे निजको इन्सान ! ॥

भेडी कहती मैं चरती हूँ सिर नीचे कर अपनी राह।
बिना दोष मारी जाती हूँ दिलमें आती इसकी आह ॥

कहता रोझ कि मैं वनवासी जंगल में ही रहता हूँ।
मार रहे क्यों मुझे शिकारी क्या बिगाड़ मैं करता हूँ ! ॥

मृग कहता मैं तृणचर प्राणी प्रिय मुझको अतिशय संगीत।
मुझे न मारो, हे मनु-संतति ! समझो मुझको अपना मीत ॥

मुर्गी कहती अंडे खाकर क्यों करते मम वंश-विनाश।
धन्य महोदय खाओ फल-हित, करो न मेरा सत्यानाश ॥

वानर कहता पवनपुत्र की वंशज है यह मेरी जात।
हनन हमारा कौर रहे हो, कहते रामराज्य की बात ॥

मूक जीव सब आर्तनाद कर कहते मेरा करो बचाव।
'दया' धरो मन में हे मानव ! यही अहिंसा का है भाव ॥

Regd NO. B. 7127

Licenced to post without prepayment
L. NO. 61

प्रेषक—
'हिंसा विरोध' कार्यालय

बाभचन्द लखमीचन्द संघवी, खेडगाम
५ सीहोर जैन पांजरापोळ, सीहोर
२५ शेठ खोडीदासलाल मा०, धंधुका
२५ नदर श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक ...
११ श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक संघ, ,,
५० वीरमगाम दशा हरी आपुरी स्था जैन संघ
वीरमगाम
१) श्री गंभीरा जैन संघ, गंभीरा

११ शाहपुर दाल
संघ तरफथी
५ मणीबहेन भलाभाई
३२।।।) परचुरण मदद

५३१०/११

अहिंसा परमो धर्मः

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी।
अहिंसा माताके समान सब प्राणियोंका हित करनेवाली है।

# हिंसा विरोध


वर्ष ८ अङ्क १०
डिसम्बर : १९५९

सम्पादक—वालाभाई गिरधरलाल शाह

एक प्रति १३ नये पैसे
वार्षिक शुल्क रु. १-५०

ओसवालों का न्याति नौहरा
जोधपुर (राज.)

## चक्षुदान समारोह

ता० २०–२२ दिसम्बर तदनुसार मिती पौष वदि ५–६ वार रवि व सोम को संत परमानन्द नेत्र सुधारक संघ देहली की देख-रेख में आँखों के सिद्धस्त सर्जन द्वारा मोतिया, फूला, पड़वाल आदि भयंकर नेत्र रोगों का मुफ्त इलाज होगा। एकत्रित रोगियों को सर्जन द्वारा जांच होगी, जो आपरेशन के लायक होंगे, उनके आपरेशन किये जावेंगे, दवाई वालों को दवा और बाकी लोगों को उचित सलाह दी जावेगी। आंख के रोगी जो गर्मी, सुजाक, दमा, तपेदिक, दिल की बीमारी इत्यादि रोगों से पीड़ित हों, वे आपरेशन करवाने के पहले उनका सही व साफ साफ हाल बयान कर देवें। रोगियों को उपरोक्त स्थान पर ता० २०–१२–५९ रविवार को ठीक ७ बजे पहुँच जाना चाहिये। इलाज के लिये करीब १०–१२ दिन ठहरना होगा। ओढने बिछौने के कपडे और जाने का खर्च आदि साथ लावें। स्त्रियां सिर धोकर आवें। जन्मांध माता (चेचक) से अन्धे व बैठी आँख वाले कृपया न आवे।

नोट :- केम्प इत्यादि का खर्चा एक समाजसेवी सज्जन की ओर से होगा।

निवेदक
पुखराज अबाणी

## यह अत्याचार बन्द हो

अजमेर (डाक से) राजस्थान प्रदेश मजदूर संघ के मन्त्री श्रीनानकराम ईसराणी, एडवोकेट का प्रेस वक्तव्य

यह बडे दुःख की बात कि मानव पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिये तो राज्य तथा केन्द्र सरकारें एवं राष्ट्र संघ की ओर से तो भिन्न–भिन्न नियम बनाये गये हैं किन्तु मूक पशुओं पर आये दिन जो अत्याचार हो रहे है उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। एक ओर मानव विज्ञान के क्षेत्र में जितना महान होता जा रहा है। उतना ही स्वार्थान्ध होकर मानवता के मूल गुणों को भी भूलाता जा रहा है।

१८ अक्तूबर १९५९ को जयपुर से अजमेर होती हुई तीन मोटर ट्रक चित्तौड़ जा रही थीं, इन लारियों में बोरियों की तरह गायों को भर रखा था। इस कारण सब गायें बुरी तरह घायल हो गयी थीं। उनमें से कुछ तो मर भी चुकी थीं। गायों के गोबर और मल–मूत्र एक ही स्थान पर लारी में गिरने से बड़ी बदबू आ रही थी। इन तीन लारियों में से दो लारियां तो निकल गयी किन्तु तीसरी को ट्रैफिक पुलिस ने रोका। यह बडे खेद की बात है कि इस लारी को रोकने के बाद भी पुलिस ने छोड़ दिया। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि उनके पास कोई कानून नहीं है। सरकार का एक लूला–लंगड़ा कानून "पशु अत्याचार निरोधक अधिनियम सन् १८९०' है। मैंने इस की ओर पुलिस अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया किन्तु पुलिस वालो को यह भी पता नहीं था कि ऐसा भी कोई कानून है जब उनको पुस्तक लाकर दिखाई गई तब कहीं उन को विश्वास हुआ। पुलिस वालों के इस अज्ञान तथा कोई कड़ा नियम न होने के कारण आये दिन पशुओं पर अनेक अत्याचार होते हैं। अजमेर से प्रति दिन बकरे मोटर ट्रकों में भरकर बम्बई भेजे जाते हैं। एक लारी में अनुमान १५० बकरे भरे जाते हैं। इस कारण कई बकरे रास्ते में ही मर जाते हैं।

अतः मैं राजस्थान सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए अनुरोध करता हूँ कि इन मूक पशुओं पर होने वाले अत्याचारों को अविलम्ब रोकने के लिये आवश्यक कार्यवाही करें। मै राजस्थान की अहिंसा प्रेमी जनता से भी अनुरोध करता हूँ कि वे मूक पशुओं की रक्षार्थ अपनी आवाज उठायें।

# हिंसा विरोध

[ वर्ष ८ डिसम्बर १९५९ अहमदाबाद, [ अङ्क १०


## गोमाता का उद्धार करो यदि इन्सान कहाते हो

( डा० राजाराम शर्मा, वालसन्द निवासी )

सच्चे बनों भक्त गावों के गर हिन्द की उन्नति चाहते हो ॥
भूखी मरती गौ माता तुम बैठे मौज उड़ाते हो ॥
विना दूध के बच्चे रोवें मिलता है उन्हें पानी
एक वक्त कहीं सूखा टुकड़ा भूख से हो हैरानी
मिलता था खाने को मक्खन, अब मोट की ओर लखाते हो ॥
चढने को मिले जीप कार करते हो सैर सपाटे
जब ब्रिटिश का डंडा था इन्हें रो २ के दिन काटे
पहन के खादी बने बगुले भक्त क्यों इसके लाज लगाते हो ॥
कहा करते यह भारत को, हम स्वर्ग बना देंगे
जब होंगे आजाद तो कुछ करके दिखला देंगे
बूचडखाने करें तरक्की, अहिंसावादी कुछ भी नहीं शर्माते हो ॥
उसी अंग्रेज के रंगीले गीदड़ मैदान में आये
हकूमत की ली डोर हाथ में होगये मन चाये
गोकशी कानून वन्द कराओ, हिन्दू आर्य कहाते हो ॥
राजाराम वालसमन्दवाला, लिखने से नहीं करता टाला
इन गोमाताओं का कभी तो होगा राम रखवाला
गोमाता का उद्धार करो, यदि सच्चे इन्सान कहाते हो ॥

# निसर्गोपचार ही दीर्घायु वर्द्धक

## राज्यपाल श्रीप्रकाश का मन्तय, डा० सिधवा का प्रवचन

बम्बई जीवदयामण्डली ह्युमेनीटेरीयन युथ काउन्सील थीओसोफीकल सोसायटी और सीटीजन्स नेचर क्योर सोसायटी के संयुक्त आश्रयके नीचे बम्बई खाते की ब्लेवेटस्कीलोज बीझेन्ट होल में बम्बई श्रीनामदार गवर्नर श्रीप्रकाश की अध्यक्षता में ता० ६-९-५९ की जाहेर सभा में निसर्गोपचार चिकित्सक श्रीसिधवा ने निसर्गोपचार पर माननीय भाषण दिया

मण्डली के मन्त्री मानकर ने, नामदार गवर्नर और अन्य मेहमानों का स्वागत करते हुये कहा कि ईश्वर ने प्राणी पैदा किया, परन्तु उसके साथ दर्द पैदा नहीं किया था, परन्तु दीर्घायुष भोगने के लिये विविधप्रकार के प्राणीसमाज और मनुष्य समाज, कुदरत के अनुकूल रहकर जीवन व्यतीत करे, यह उसका संकेत था। मनुष्य का जन्म जिस तरह विकास होता गया उसी तरह उसका जीवन व्यवहार में विकास के नाम पर कुदरती कायदाओं का भंग होने लगा। बाद में वह सजा के रूप में रोगी बनने लगा और अल्पायु भी होने लगा। पूर्व समय में इस समय की विज्ञान डाक्टरीविधा और दश में प्रसरित नहीं थी तब मनुष्य सामान्य रूप में नीरोगी तथा दीर्घायु होता था, परन्तु जैसे-जैसे हाल की भ्रामक तुलना की तरह उसका कार्य-क्रम उंचा गया, तैसे-तैसे उसका जीवन व्यवहार अकुदरती बन गया। रोग बढने लगा। आज जिस तरह डाक्टर दवाखना, वैज्ञानिक शोध खोज से कारखाना बढ़ने लगा, उसी तरह मानव शरीर दरद का कारखाना बनने लगा। जब मनुष्य सम्पूर्ण विचार करके अपना आहार-विहार और जीवन क्रम कुदरत के अनुकूल बनायेगा और चिकित्सा में निसर्गोपचार का आश्रय लेगा तब नीरोग रहकर दीर्घायु भोगेगा।

श्रीमानकर ने कहा कि बडे भाग्य से देश में निसर्गोपचार चिकित्सापद्धति लोकप्रिय बनती जारही है और आज तो विलायत, अमेरिका जैसे देश में भी निसर्गोपचार और योग आदि उपाय लोकप्रिय बन रहे है। आज के विद्वान विख्यात डा० सिधवा ने विलायत में निसर्गोपचार की उच्ची डीग्री सम्पादन किया है और कितने वर्षनक न्यु० केमलओनटाइन खाते, निसर्गोपचार चिकित्सक की तरह सफलतापूर्वक काम करके अब भारत में आकर बम्बई की जनता की सेवा करने के लिये निर्णय किया है। आज के व्याख्यान के प्रसंग में अपना लोकप्रिय गवर्नर श्री-प्रकाश ने अध्यक्ष पद स्वीकार करके निसर्गोपचार के प्रति अपनी अभिरुचि प्रकट की है। इतना ही नहीं उनके द्वारा निसर्गोपचार का खूब ही महत्व बढा है। डा० सिधवा ने कहा कि हरेक मनुष्य और प्राणी-समाज नीरोगी होकर दीर्घायु भोगने के लिये भगवान ने उन लोगों को जन्मसिद्ध हक्क दिया है, परन्तु दुर्भाग्य वशात् कुदरती कायदा विरुद्ध और विना विचार किये हुये जीवन यापन करने से हक्क, आपत्ति में पड़गया है। लोकोक्ति भी ठीक कही गई कि खाने के लिये जींदगी नहीं है, परन्तु जीन्दगी के लिये खान-पान है। अपना शरीर एक प्रकार का अन्न-मय कोष है। मशीन की तरह जो खुराक उसको दिया जाता है, उसका पाचन होकर रस, रक्त, मज्जा

मांस आदि धातु बनते है। उस से प्रकृति और विचार का निर्माण होता है। उस से मनुष्य को सुकर्म और दुष्कर्म में जाने के लिये प्रेरणा मिलती है। अलग-अलग प्राणियो को गुण-कर्म द्वारा अच्छा-बूरा शरीर मिलता है। उसका ख्याल करके जो मनुष्य अपना जीवन व्यवहार चलता है उसका जीवन नैसर्गिक बनता है। निसर्गोपचार वास्तविक रूप में कोई दवाई का विज्ञान नहीं है तो भी वह जीवन का विज्ञान है। निसर्गोपचार का अर्थ शरीर का सम्भाल है। इस लिये कुदरती जीवन में पैदा होने वाला रोग को दूर करने के लिये कुदरती जीवन क्रम को अनुकूल बनाने से तन्दुरस्ती प्राप्त हो सकेगी।

खुराक के विषय में बोलते हुये डा० सिघवा ने कहा कि मनुष्य सहकारी प्राणी है। उस के अन्न, फल, शाक खुराक ये कुदरती खुराक हैं। संतुलित खुराक खाने से शरीर नीरोग होता है।

नामदार गवर्नर ने कहा कि जीवन के हेतु आध्यात्मिक है। प्राणिसृष्टि का विकास होते ही मनुष्य प्रथम ही बना है। उसका नियम केवल जैसा-तैसा नहीं है, परन्तु प्राप्त हुई शक्तियां, बुद्धि, विवेक, विचार इत्यादि विकास पाकर उसके परम-तत्व को पाने के लिये इरादा रखना चाहिये। शरीर आत्मा का मन्दिर है। शरीर और मन की तन्दुरस्ती के लिये सात्विक खुराक की आवश्यकता है। शरीर जो पंच शुद्ध तत्वों से बना हुआ है। उसको समृद्ध रखने के लिये पृथ्वी, जल, वायु, प्रकाश और व्यायाम की आवश्यकता है। दैनिक जीवन का क्रम उसीतरह बनाना चाहिये कि जो अनुकूल हो। आज जगत में अशान्ति और हिंसा का वातवरण जागृत होने का कारण अपना कुदरती व्यवहार है। हम लोग जब शान्ति चाहते है तब अपना व्यवहार नैसर्गिक होना चाहिये। विश्वशान्ति के लिये और युद्ध से दूर रहने के लिये सात्विक मनुष्य निमाण करना चाहिये।

महात्मागान्धी ने अहिंसक समाज रचना में निसर्गोपचार को अपनाया था। आज अपने देश में उसका प्रचार आरम्भ हुआ है। वह आनन्द की बात है। जिस मण्डली ने आज का समारम्भ प्रारम्भ किया, उसको मै अभिनन्दन देता हूँ। आज के विद्वान वक्ता द्वारा उत्तम विचार प्रकट हुआ है अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार के प्रचार चालू रहने से निसर्गोपचार जीवन पद्धति लोकप्रिय होगी और मनुष्य मात्र नैसर्गिक जीवनपद्धति का अनुसरण करके तन्दुरस्ती और दीर्घायु को प्राप्त करेंगे। इस से जीवन का ध्येय प्रगति शील बनेगा।

# विश्व प्राणी दिन

ले० चुनीलाल भावसार, मानद मन्त्री-बर्मा ह्युमनो टेरीयन लीग, रंगून

आज तारीख चार अक्तुबर है। आज समस्त विश्व पशुदिन मना रहा है। पशु के प्रति सहानुभूति व्यक्त करना, उनको हत्या न करना हिंसा से दूर रहना और अहिंसा को अपनाना यही धर्म कहलाता है।

**अहिंसा परमो धर्मः**

तथागत भगवान बुद्ध ने पंचशील के पहले आदेश में यही बताया है। "पानाती पाता वीरामती

शिक्षापदम् समाधियामि, " मानसिक दृष्टि में मांसाहार हिंसा है। मांसाहार सब अनिष्ट का उत्पादक है। अनाज, साग, सब्जी, फल फूलादि घी, दूध ये सब मानव जाती के लिये कुदरती खुराक है।

मांसाहार हर तरह से हानिकारक और कुदरत के विपरीत खुराक है। चार पांव वाले पशु भी भूख से भूखे ही मर जाय मगर मांसाहार कदापि नहीं करते। गाय, हाथी जैसे प्राणी घास और फलों पर निर्भर रहकर जीवित रहते है।

शेर, सिंह और अन्य जानवर जो मांस भक्षण करते है तथा अन्य जानवर पशुओं को मारकर उनका मांस भक्षण करते हैं, उनकी गणना हिंसक पशुओं में होती है।

इस प्रकार जो मानव, मांस भक्षण करता है उनकी गणना हिंसक मानव में होती है। जिस देश में मांस भक्षण करने वाली प्रजा रहती है उस देश की गणना अहिंसक देश के रूप में नहीं होती।

शहरों में मारपीट और खून के जो किस्से होते है, खास कर मांस भक्षण करनेवाले मनुष्यों में अधिक देखने को मिलते है। मांस भक्षण करने से मानव का मन खूनी और हिंसक पशुओं जैसा बन जाता है। यही बात सत्य है।

शारीरिक दृष्टि से विचार करने से मांसाहार सब रोगों का उत्पादक है। विशेषकर केनसर, क्षय, टाईफाईड, दांत की पीड़ा, एपन्डीसाईटी, पायोरिया आँख के दर्द, छाती के दर्द, चरबी बढ जाना और सभी पीड़ायें मांसाहार करनेवालों में और उनसे उत्पन्न होनेवाली सन्तानो में विशेष रूप से अधिक देखने को मिलती है। मांसाहारियों का खून हमेशा के लिये कुदरत के विरुद्ध शरीर में बनता है, इसका मतलब यह है कि वह खून अस्वच्छ और शाकाहारी मनुष्यों के खून से प्रतिकूल बनता है। इस लिये मांसहारियों में अधिक रोग उत्पन्न होते है।

कतलखाने में जिन पशुओं का वध होता है। वे सब जानवर खास करके किसी न किसी रोग से पीड़ित होते है। क्षय और केन्सर जैसे रोगों से ग्रस्त जानवरों के मांस के भक्षण से दुनियाँ में ज्यादा रोग फैलता है। मांसाहारी स्त्री के शरीर में कुदरती चरबी बढ जाती है और उस से प्रसूतिकाल में अधिक वेदना होती है। विश्व के बडे–बडे डाक्टरों ने और वैज्ञानिकों ने मांसाहार को एकदम रोगिष्ट और मानवजाति के लिये अप्राकृतिक आहार बताया है। पश्चिम देशों की प्रजा अपने अनुभव से और ख्याल से मांसहार छोड़ कर शाकाहारी जीवन व्यतीत करने की उत्तरोत्तर अग्रसर होरही है।

अमेरिका और युरोप के देशों के लाखों मनुष्यों ने शाकाहार अपनाने का शुरू किया है। तन्दुरस्ती के लिये मांसाहार खतरनाक है और शकाहार से शरीर तन्दुरस्त रहता है। ऐसा पश्चिमी देशों के डाक्टरों ने बतलाया है कि मांसहार मानवजाति के लिये अकुदरती और खतरनाक आहार है। और यह भी कहा है कि मांसाहारी मनुष्यों से शाकाहारी मनुष्य अधिक मजबूत, शांत और ताकतवाले होते हैं।

आर्थिक दृष्टि से यदि सोचा जाय तो साग, सब्जी और अनाज की अपेक्षा मांस का दाम अधिक पड़ता है। अमरिका और युरोप के सभी अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि मांस का दाम साग और सब्जी से ज्यादा होता है। समतलभूमि में साग, भाजी और अनाज उत्पन्न करने से मांस की अपेक्षा अधिक परिमाण में सस्ते दाम से अनाज उपलब्ध होगा।

मांसाहारियों को मांस खाने की आदत पड़ जाती है इस लिये मांस खाना वे छोड़ नहीं सकते। और ज्यादा मांसाहार करने से ज्यादा रोग होता है। इस तरह मांस महंगा होने के साथ साथ हानिकारक भी है। आर्थिक दृष्टि से मांसाहार अपने देश के लिये अत्यन्त घातक है।

प्रोटीन की दृष्टि से डाक्टरों ने साबित किया है कि साग, सब्जी, दूध अनाज और फल में जितने प्रमाण में प्रोटीन है उसकी तुलना में मांस में कम प्रोटीन है। ब्रह्मदेश और भारत की सरकारों ने अण्डे मछली और मांस भक्षण करने का जो आवाहन किया है इस से प्रजा को गलत रास्ता बताया है। शायद उन्हें मालूम नहीं होगा कि मांसाहारी जनता अधिक रोगों से दुःखित होती है और ऐसे रोगवाले मांसाहारियों को डाक्टर भी शाकाहार से रोग नष्ट होने की सलाह देते हैं। और ऐसे मांसाहारियों के लिये शाकाहार दवा के समान है। वर्मा और भारत जैसे देश की हवा के लिये प्रतिकूल और रोगिष्ट आहार है। इन दोनों देशों की सरकारों को भली-भाँति सारी बातों का अध्ययन कर मासाहार निषेध करना चाहिये, और मांसाहारी जनता से शाकाहारी बनने का आग्रह करना चाहिये, तथा पर्याप्त अनाज उत्पादित कर जनता को सस्ते दाम में अनाज देना चाहिये।

धार्मिक दृष्टि से विचार करने से तो मांसाहार पाप है। मांस कोई जड़ पदार्थ की वस्तु नहीं है। घास, लकड़ी और पत्थर से नहीं बनता है। मांस एक जीवित प्राणी को मारकर उसे काटकर तैयार किया जाता है इस लिये मांसाहार महान पाप है। पशुवध करनेवाले, पशुओं का मांस खरीदने वाले, और बिक्री करने वाले, मांस को पकाने वाले और उसको परोसने वाले, तथा उसे खाने वाले सभी प्राण वर्गको मारने के समान दोषित है, किन्तु सबसे दोषी तो मांस खावाला है। मांस खाने वाला मांस छोड़ दे तो पशुवध नहीं होगा, और आप को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। पशुवध करना हेवान और घातकी मनुष्य का काम है। विश्व में हरेक प्राणी मात्र को इस संसार में जीने का हक है। विश्व के सभी धर्मों के शास्त्रों ने कहा है कि किसी जीव को मारना या दुःखी करना महान पाप है, और ऐसा करने वाले ईश्वर की निगाह में गुनहगार है।

इस तरह विचार करने से मालूम होता है कि मांसाहार मानव जाति के लिये अकुदरतखुराक है और मनुष्य के लिये घातक है। जब तक दुनियाँ में मांसाहार होता रहेगा तब तक जगत में युद्ध का भय बना रहेगा और हिंसा का बोलबाला रहेगा। दुनियाँ की लड़ने की हीन वृत्ति दूर नहीं होगी। विश्व की प्रजा नीरोगी नहीं बन सकेगी और सुख शान्ति नहीं मिल सकेगी। इस तरह सब दुःखों का कारण मांसाहार है। मांस, मच्छी, अण्डे खाना छोड़ दे, इस से जीवन को सच्चा सुख मिलेगा। जगत सच्चा अहिंसक बनेगा।

परम कृपालु परमात्मा से प्रार्थना है कि जनता को सदा सुखी रखे।

आज हम पशु दिन मना रहे है। इस के पीछे भी अहिंसा जीवदया की भावना देखने को मिलती है अहिंसा का यह भी एक अंग है। आज के दिन हम प्रार्थना करे कि मै कभी भी जीव हत्या नहीं करूँगा और जो कोई भी हत्या करता होगा उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे भी इस हिंसात्मक कृत्य से दूर रहें।

सभी मूक प्राणियों को शान्ति।

# एकबार आप भी साक्षात्कार करें

ले० मुनिनिरंजन विजय

१. आज हमारे पूर्ण सौभाग्य है आप सज्जनों के कर-कमलों में अहिंसा के अग्रदूत श्रमण भगवान श्रीमहावीर प्रभू का हृदय स्पर्शी पवित्र चित्र प्रस्तुत करने का स्वर्ण सुअवसर उपलब्ध हो रहा है।

२. जो चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है वह चित्र वास्तविक एक अद्भुत चमत्कारिक जीवित स्वामीजी की पूज्य प्रतिमा का है। वह प्रतिमा निम्न लिखित तीर्थाधिराज में मूल नायक पदस्थ है।

३. आबूजी तीर्थ की पश्चिम दिशा में आबूरोड भंडार सड़क ३० पर बीच मार्ग में ही वर्माण के नाम प्रसिद्ध यह परम पवित्र तीर्थराज है।

४. जो श्रमण भगवान प्रभू महावीर का चरण स्पर्श से पावन और २५०० वर्ष पुराना एक आर्य कला का केन्द्र स्वरूप है।

जहाँ पर अति प्राचीन प्रभू महावीर का विशाल मन्दिर है जो अत्यन्त जीर्ण शीर्ण सा बन चुका है जिसकी ५२ जैनालयों का जीर्ण उद्धार स० १२४२ में हुआ था। और बीच में स० १३५१ में भी पुनरोद्धार तथा प्रतिष्ठा हुई है और अन्तिम स० १६७२ में आचार्य सम्राट विजय श्रीहीर सुरीश्वरजी के तृतीय पट्टधर ने यहाँ मूर्तियों की प्रतिष्ठा व उद्धार करवाया जैसा शीलाक्षरों से स्पष्ट ज्ञात होता है।

किन्तु पीछले चारसौ पांचसौ वर्ष में कोई ऐसा करुणा परिस्थिति उपस्थितहुई जिसके फलस्वरूप मन्दिर के अनेक अंग-उपांगो के साथ ५२ जैनालायो का मूलतः नाश हो गया है जिसकी करुण कहानी को मूकभाषा में इतः स्तत' विकीर्ण पाषाण के टुकडे सुनार है।

७. वर्त्तमान में मन्दिर बहुत ही खराब हालत कुछ खड़ा कुछ पड़ा हुआ नजर आता है और देखने वालों के हृदय को काफी दुःख व आघात पहुँचाता है

८. मन्दिर की कारिगरी काफी खूब सुरत है जिसको कुछ क्रूर दुष्ट मुगलो ने वेसुन्दर बनादी है।

९. मन्दिर बहुत ही भीमकाय है जो दूर से किसी को भी भ्रम में डाल देता है। मन्दिर के सैकड़ों स्थंभ गीर गये जिसका कोई पता भी नहीं चलता।

१०. मन्दिर का वर्त्तमान स्वरूप तो यह है कि शीखर काफी ऊँचा व विशाल है जिसके बाद विशाल मण्डप के बाहर में भारी कोट है, कुल मन्दिर का विस्तार १२० फुट लम्बा, ७२ फीट चौड़ा और ५२ फीट ऊँचा है जिसके मण्डप के मध्य भाग में ४ प्रतिमा स्थापित हैं, जिसके बीच में चरमतीर्थपति महीसावतार श्रमण भगवान श्रीमहावीर प्रभू अद्भुत लावाण्य शाली सौम्याकृति पीयूषवर्षी विशाल व अत्यन्त सुन्दर मुक्ता वर्ण की विशाल प्रतिमा है जो करीवन ५ फीट की है। जिसको देखने मात्र से भावुक आत्मा की नेत्र लुब्ध भ्रमरे बन जाती है और इतना आकर्षित बन जाता है कि वहाँ से हटना तो बड़ी बात है किन्तु दूसरी बात भी याद आना—असम्भव सा हो जाता है।

११. उपरोक्त ( चित्र में प्रदर्शित ) पूज्य अलौकिक प्रतिमा के दर्शन करने का स्वर्ण सुअवसर सं २०१ के ९ को अविच्छिन्न प्रयास से मुझे प्राप्त हुआ और दर्शन होते ही मेरे रोम नाच उठे। अनिमेष नेत्रों से उस प्रतिमा के सौन्दर्य रूपी पीयूष का पान करने में मस्त बन गया।

# गोसाहित्य की जानकारी आवश्यक

श्री श्रीनिवासदासजी पोद्दार कलकत्ता

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती। ऋ०१। १६४।४०

अर्थात्—हे अवध्य गौ तू वध के लिए अयोग्य है, धान्य एवं तृण खाकर अच्छा भाग्य देने वाली हो, पश्चात् तुम्हारे कारण हम भाग्यवान बनें, सदैव तू घास खा के और चारों ओर संचार करने वाली तू

निर्मल एवं पवित्र जल का पान कर।

इस मन्त्र से सिद्ध है कि घास आदि हरा चारा वनौषधियों से परिपूर्ण यदि गाय को मिले तो वन शहरों की गलियों में पडे गले सडे, कूडे-करकट की गन्दी चीजों को कभी न खायेगी। गो ही नहीं दूध देने वाली सभी जानवर जैसा खाना चाते हैं उनके दूध में वैसा ही असर रहता है। अर्थात् गाय यदि गलियों की सड़ी गली चीजें खायेगी तो उसका दूध भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होगा और जनता का स्वास्थ्य खराब होगा।

आज सरकार और जनता करोड़ों रुपयों की लागत से अस्पताल तथा औषधालय बनवाती है इस विषय पर लाखों रुपया प्रतिमास खर्च करती है। प्रति दिन नये-नये रोगों का सृजन होता है। यदि गंगा और गौ के महत्व पर ध्यान दिया जाये तो अस्पतालों का खर्च आधा हो जाये। आगामी पंचवर्षीय योजना में ४२०० करोड़ का बजट बन रहा है। १०० करोड़ गौ के लिये, १०० करोड़ गंगा आदि से नहरें निकाल कर खेती आदि पर उपयोग के लिये १०० या २०० करोड़ खेती के लिए रखाजाये। इस प्रकार अन्नाभाव और बिमारियों से बहुत सा छुटकारा मिले, साथ ही स्वास्थय नाशक महात्मागांधी जी के कथनानुसार मीठा जहर बनस्पति घी के कारखाने खारिज कर इनकी मशीनरी दूसरी कार्य में लगाके लिये १०० करोड रखें तथा भविष्य में धन-जन नाशक कारखाने खुलने न पावें, मनुष्य का रहन सहन सादगी का हो, अधिक जनता गायों में रहने को उत्साहित की जावें। नये नये टैक्स लगाने से जो परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं उन पर विचार कर टैक्सों को कम किया जावे तो सुख शन्ति रहेगी।

श्रीविनोबाजी ने चरागाह या गोचर भूमि तुड़वा कर भयंकर अन्याय किया वे चरागाह फिर ठीक किये जावे।

चारो वेदों से संकलन करके 'गो ज्ञान कोष' में १७८९ मंत्र संग्रह किये गये हैं। मेरा गौ प्रेमी भक्तों से नम्र निवेदन है कि अनादि कालीन, त्रिकाल सत्य ज्ञान भंडार से यह संकलन पूरा पढकर हृदयाङ्गम करके जनता में फैलावें। छोटे छोटे बालकों से अर्थात् प्रथम कक्षा से १२ वीं, १४ वीं कक्षा के पाठ्यक्रम में आ जावें तो आज प्रश्न स्वयं हल हो जायेंगे। सरकार की आँखें खुलेंगी क्योंकि जनता अज्ञान में रहकर 'किंकर्तव्य विमूढ़' न रहेगी। आज जनता में गौ के प्रति सद्भावना है परन्तु गौ के प्रति तात्विक रूप की काफी जानकारी है। जिसमें लार्ड मेकाले की दूषित शिक्षा के द्वारा भारी भ्रम छाया है।

हम गोवध तो सर्वथा बन्द करवाते है पर गौ साहित्य की खोज नहीं करते। उसके चमत्कारिक तात्विक बातों से अनजानकार हैं। अनेक तत्व इसमें है। उनकी जानकारी आज की यूनिवर्सिटियों के स्नातकों तक को नहीं। अतः गौ के प्रति धार्मिक भावना कह कर पुरातन बातों की अवहेलना की जाती है। विदेशियों की डेयरियों में बछड़ा- बछड़ी जन्मते ही हटा दिए जाते है। वत्सहीन अवस्था में दूहे हुए दूध में गोदुग्ध के गुणों का तो अभाव रहता ही है साथ ही वत्स प्रेम की भावनाओं का भी लाप हो जाता है। क्योंकि नारी जाति के स्तनों में सन्तान प्रेम से दुग्ध उत्पन्न होता है। उस प्रेममय दुग्ध में शृंखलाओं से प्रसारित दुग्ध खून जैसा बनता है। प्रेम के अभाव में अनेक दोषों वाला मनुष्य के लिये ही आक्रमणकारी सिद्ध होता है।

इस तरह अनेक तात्विक रहस्यों के जानने की अति आवश्यकता है । अगर यह जानकारी कम से कम दिल्ली की लोकसभा के सदस्यों को पूरी तौर से हो तो एक दिन उसका असर होगा और अवश्य होगा। साथ ही भारतीय सब ही भाषाओं के पत्र सम्पादकों से प्रार्थना है कि इस ज्ञान को प्रकाशित करने के लिये अपने पत्रों में प्रतिमास कितने कालम दे सकते हैं । गोधन कार्यालय में सूचना भेजें ।

विद्वानों से तथा गौ प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे मास में कम से कम एक लेख भेजें । इतना कार्य का प्रबन्ध होने पर सरकार और जनता से इस प्रचार के लिये अर्थ की व्यवस्था के बजट बनाकर किसी जवाबदार कमेटी की संरक्षता में अनिवार्य आवश्यकता के लिये खर्च करें । आज रुपये पैसे संग्रह होते हैं तो संस्थाओं में बेढंग से खर्च हो जाता है । कार्य नहीं हो तो यहत्रुटि न हटेगी तब तक हमारा कल्याण न होगा ।

वैदिक मंत्रों के आधार पर मै यह भी जोर से कहता हूँ कि आज जब से स्वराज्य सरकार हुई है प्रतिवर्ष प्रकृति उपद्रव अधिक वृष्टि बाढ, बिमारियों का प्रकोप, खेती की हानि, अकाल अनावृष्टि, आदि उपद्रवों का मूल कारण गौ के दुःखी स्वांस, गोवध से गिरे गोरक्त का दूषित प्रभाव है । जो आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान से सिद्ध हो सकता है ।

वैदिक ज्ञान अनादि काल से हर कसौटी पर सत्य साबित होता आया है । हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने ही विश्व के धर्मों में, गोमांस खाद्य नहीं, जीव हिंसा हि मात्र देखने में आता है । मुस्लिम सम्राटों तक ने गोमांस का त्याग किया था निन्दा की है ।

आज विदेशियों में मांसाहार के विरुद्ध सैंकडों सस्थायें प्रचार कर रही हैं । सैकड़ों हजारों शाकाहारी होटल रेस्टोरेन्ट खुल गये है । वह हिन्दू धर्म की भावना से नहीं खुले हैं बल्कि वहाँ के लोगों की मांग है' मानवता की पुकार है । दानवता बुद्धि के कारण विश्व–विनाश की तरफ बढ रहा है । वह अहिंसा प्रतिष्ठा से रुकेगा, अन्यथा भयंकर ह्रास हो कर रुकेगा । यह अनादि कालीन नियम चला आया है। जिसको त्रिकालज्ञ महर्षियों ने अपनी ऋतुम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रत्यक्ष करके देखा है ।

आशा है कि गोधन के प्रेमी पाठक गौ प्रमियों को चेतना देकर भारतीय सरकारी अधिकारियों के साथ लिखा–पढी करके इस विषय को आगे बढायेगे।

## अभयदान

नवम्बर मास में आठ गायों को कसाई के हाथ से छोड़वाकर पांजरा पोल में भेजी गईं ।

चालुमास में १६ गाय और बैल तथा बकराओं को कसाई के हाथ से छोड़वाकर पांजरापोल में भेज कर अभयदान दिया गया

संघ के प्रचारक

(१) धीरुभाई अमृतलाल देसाई, बम्बई
(२) रायचन्द मुन्सी मोती पुनडीवाला
(३) रतीलाल दुलाचन्दशाह कार्यकर
(४) चन्दुलाल अमुलकदोषी
(५) उच्छवलाल कस्तूरचन्द
(६) वैद्यराज अमरचन्द जैन
(७) रणजीत के शाह
(८) माधवप्रसाद पाराशर

प्रकाशक— बालाभाई गिरधरलाल शाह, मानद मन्त्री हिंसा–विरोधक संघ, अहमदाबाद ।
मुद्रक— वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री, श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस, कांकरिया रोड, अहमदाबाद ।

### जीवो की पुकार

कहती मछली मैं जलप्राणी स्वच्छ बनाती हूँ निज नीर।
बिना दोष धीवर संहारे मुझे बचाओ, हे नरवीर॥

गौ कहती चिल्ला चिल्ला कर मुझको कहते जगकी मात।
माता कहकर पूज रहे हो तो भी करते मेरी घात॥
मेरे पुत्र तुम्हारी खेती में सहाय करते दिनरात।
वधस्थान में मारी जाती मुझे बचाओ, मेरे तात॥

कुत्ता कहता पहरा देता निजस्वामी का खाकर अन्न।
विष देकर यह क्रूर घातकी मुझको करता है अवसन्न॥

मैं मैं कहकर बकरी कहती मैं हूँ दीन दुखी अत्यन्त।
देवी के बलि हित, हा! मेरे प्राणों को क्यों करते अन्त॥
ईद के दिन में मानव करते लाखों जानों की कुर्बान।
धर्मनाम पर कर के हिंसा मान रहे निजको इन्सान॥

भेड़ी कहती मैं चलती हूँ शिर नीचे कर अपनी राह।
बिना दोष मारी जाती हूँ दिलमें आती, [illegible] आह॥

कहता रोझ कि मैं वनवासी जंगल में ही रहता हूँ।
मार रहे क्यों मुझे शिकारी [illegible] करता हूँ॥

मृग कहता मैं तृणचर प्राणी प्रिय मुझको अतिशय संगीत।
मुझे न मारो, हे मनुसन्तति! सबको [illegible] अपना मीत॥

मुर्गी कहती अंडे खाकर क्यों करते मेरा वंश-विनाश।
वन्य महौषध खाओ बल-हित, करो न मेरा सत्यानाश॥

वानर कहता पवनपुत्र की वंशज हूँ यह मेरी बात।
हृदय हमारा चीर रहे हो, कहते रामराज्य की बात॥
मूक जीव सब आर्तनाद कर कहते मेरा करो बचाव।
'दया' धरो मन में हे मानव! यही अहिंसा का है भाव॥


Regd NO. B. 7127

Licenced to post without prepayment

L. NO. 61

प्रेषक—

'हिंसा-विरोध' कार्याल

अहिंसा भवन नगरशेठका व

अहमदाबाद-